

फणीश्वरनाथ रेणु :
चुनी हुई रचनाएँ-1



वाणी प्रकाशन

नयी दिल्ली-110002

फणीश्वरनाथ रेणु

कुना हुई स्वनाएँ

RRR7093

5.3.93

संपादक
भारत यायावर

GIFTED BY
Raja Ram Mohun Roy Library Foundation
Block-DD-34, Sector-I, Salt Lake City
CALCUTTA-700064

1

वाणी प्रकाशन
4697/5, 21-ए, दरियागज, नई दिल्ली-2
द्वारा प्रकाशित

द्वितीय संस्करण : 1959
© पद्मपराग राय वेणु
आवरण नरेन्द्र श्रीवास्तव

विशाल ऑफसेट प्रिन्टर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-32
में मुद्रित

मूल्य : 150.00
संपूर्ण सेट : 450.00

FANEESHWARNATH RENU :
CHUNEE HUEE RACHANAYEN
Edited by Bharat Yayawar

सुख है, परिचय में कई हंगल और भव्यता अलौकिक अणुविज्ञान है.

जो कालकोष्ठियों में बैठ कर भोगी दुई प्रियमी और किंव गर्व करो...
अनुभव लिख का राता एत प्रसिद्ध प्राप्त का ली है। अब तक किसी अणुविज्ञान
का नहीं गया है और सुन प्रकाश के नीचे - केनेसहैन्ड के कदम पर बैठ का
हस्त लिख एत है। किंतु, इस दसगज्रा 'मारी' 'केनेसहैन्ड' के 'रस पा'
'अणु पा' मुक्त शक्ति या मृत 'कैपन' कानि... अणु पा काल दिवस
होगा में अच्छी कम मिल सकती है। अणु है कोई साकरी हिलाव प्रदु
- वीरता की कोई हृषीय पदवी भी प्राप्त है। यदि मुक्त शक्ति पकड़ सक
वे प्रसिद्ध के बाद अणुओं की एक लकी बंदिरत हो जाय के हाथ नली के
या आगगा। देश दूध का अनुपय की साहसी के इलाज भी लगे या हकत है
ए कोई अणु नहीं कि मुक्त किसी नई ~~हस्ताक्षर~~ और अणुप्रत एतनीतिक पाठ्य
कमान देता प्रसिद्ध का दिया अणु अणु कई दुल्लत अंतर्द्वीय ~~हस्ताक्षर~~
। में एतद ~~हस्ताक्षर~~ और का - मुक्त कदम कमाने की एत कानिगत की
गम। अणु अणु में इस बात की है मुक्त देहने की ~~हस्ताक्षर~~ - रस पा' का
पा' ~~हस्ताक्षर~~ - जोली पा' की राय दिने और के प्रसिद्ध-विभाग में कई दसरे ली
पहलाने है। किंतु, अणु मृत देह का, मुक्त पहलाने ~~हस्ताक्षर~~ का भी एतपा.
क प्रसिद्ध के अणु में पद गते है और अणु एक शक्ति में है अणु को रस लिख
हस्ताक्षर ~~हस्ताक्षर~~ लेता है कि वे मुक्त कोई और प्रारंभ एक ~~हस्ताक्षर~~ है। ... में एत
के लिए, वगैरे - इस दसगज्रा के कदम पर - बैठ है। अब जो है।

और, में 'रस पा' और लिख एत है। अणु... अणु... निक-निक वगैरे
काल। किंतु, ~~हस्ताक्षर~~ प्रसिद्ध के लोच में नहीं। और, ~~हस्ताक्षर~~ ~~हस्ताक्षर~~
प्रसिद्ध हस्ताक्षर ~~हस्ताक्षर~~ दिने के लिख। प्रसिद्ध में, में 'रस दसगज्रा' के मा' में -
रस के 'रस पा' और 'अणु पा' के ~~हस्ताक्षर~~ गाँवों, लोगों और आरगों के प्रसिद्ध
में मुक्त लिख बगैरे वगैरे एत एकता, प्रसिद्ध शब्द, पर के किसी कोने में यह अणुविज्ञान
दिने दुई है कि लिख दिने - जोली भी - यह प्रकाश में साधना - आरगों की
लेका कालका कानिगतों को ~~हस्ताक्षर~~ मान्य-शक्ति के दस प्रसिद्ध उगदण,
कई विभिन्न गणने मिल जायेगी। ~~हस्ताक्षर~~ ~~हस्ताक्षर~~ ~~हस्ताक्षर~~ ~~हस्ताक्षर~~
में अणुविज्ञान में की एक दिने की ~~हस्ताक्षर~~ अणु भी नहीं दिने। ~~हस्ताक्षर~~ एतमुक्त, ~~हस्ताक्षर~~
~~हस्ताक्षर~~ प्रसिद्ध मृत की प्रसिद्ध ~~हस्ताक्षर~~ ~~हस्ताक्षर~~ लिखने में एक अणु प्रारंभ का काल

क्रम

| | |
|-------------------------------------|------|
| विजप्ति | ix |
| कहानीकार रेणु की कहानी | xi |
| अपरूप-रूपों की पहचान | xvii |
| न मिटनेवाली भूख | 23 |
| पार्टी का भूत | 31 |
| घमंक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे | 46 |
| वंडरफुल स्टुडियो | 52 |
| टौंटी नैन का खेल | 59 |
| रसप्रिया | 67 |
| तीसरी कसम, अर्थात् मारे गये गुलफाम | 79 |
| लाल पान की बेगम | 107 |
| नेपथ्य का अभिनेता | 119 |
| टेबुल | 125 |
| कस्बे की लड़की | 143 |
| हाथ का जस और बाक का सत्त | 154 |
| तैंबे एकला चलो रे | 165 |
| अच्छे आदमी | 177 |
| संबदिया | 195 |
| एक श्रावणी दोपहरी की छूप | 203 |
| रोमांस-शून्य प्रेम-कथा की एक भूमिका | 213 |
| उच्चाटन | 228 |
| एक आदिम रात्रि की महक | 242 |
| आत्म-शास्त्री | 255 |
| आजाद परिवारे | 268 |

| | |
|-----|----------------------|
| 275 | विकट संकट |
| 288 | अभिनय |
| 294 | विघटन के क्षण |
| 307 | जलवा |
| 316 | अक्ल और भ्रूस |
| 324 | रेखाएँ : वृत्तचक्र |
| 337 | जैव |
| 342 | मन का रंग |
| 347 | सफ़ाई |
| 355 | अग्निसंचारक |
| 360 | अग्निलोचन |
| 373 | भित्तिचित्र की मयूरी |

विज्ञप्ति

किसी भी महत्त्वपूर्ण साहित्यकार के संपूर्ण वाङ्मय से कई खंडों में 'चुनी हुई रचनाओं' के रूप में प्रकाशन की परंपरा हिंदी में सर्वथा नवीन है। 'रेणु : चुनी हुई रचनाएँ' के प्रकाशन के पूर्व मेरे देखने में 'नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएँ' (संपादक—शोभाकांत) ही मिफं प्रकाशित हुई है, जिसमें बाबा नागार्जुन के वैविध्यपूर्ण रचना-संसार के दर्शन हुए हैं, जिसके प्रकाशन का श्रेय भी वाणी प्रकाशन को जाता है। 'वाणी' ने इस प्रकार के प्रकाशन की एक स्वस्थ परंपरा की शुरुआत की है। इसके अलावा किसी अन्य प्रकाशन से इस प्रकार का प्रकाशन-आयोजन हिंदी में शायद अब तक नहीं है। अपितु, रादुगा प्रकाशन, मास्को ने पुष्किन आदि कई रूसी लेखकों की हिंदी में चुनी हुई रचनाओं को कई खंडों में प्रकाशित अवश्य किया है।

रेणु मूलतः कहानीकार एवं उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनके कुल छः उपन्यास एवं पाँच कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। रेणु के उपन्यास बहुपठित और चर्चित हैं। चूँकि ये बड़ी रचनाएँ हैं, इसलिए इन्हें स्वतंत्र रूप से प्राप्त किया जा सकता है। 'रेणु : चुनी हुई रचनाएँ' में इसीलिए उपन्यासों को संकलित नहीं किया गया है। इन दोनों विधाओं के अलावा रेणु ने रिपोर्ताज, कविताएँ, सामयिक राजनीतिक-सामाजिक घटनाओं पर टिप्पणियाँ, नाटक, निबंध, स्केच, संस्मरण, फिल्म-स्क्रिप्ट, गद्य-गीत, पत्रादि भी लिखे हैं। साथ ही विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कई छद्म-नामों से वैविध्यपूर्ण लेखन भी किया है। यहाँ उनके समग्र रचना-संसार से (उपन्यासों को छोड़कर) सभी प्रकार के लेखन से चयन किया गया है। 'रेणु : चुनी हुई रचनाएँ' में पहला खंड कहानियों का है। दूसरे खंड में आत्म-रेखाचित्र, रेखाचित्र (स्केच), संस्मरण, निबंध, यात्रावृत्तांत, उपन्यास-अंश व अनुवाद हैं। तीसरे खंड में रिपोर्ताज, राजनीतिक व सामाजिक घटनाओं पर लिखी गयी रपटे व टिप्पणियाँ, इंटरव्यू, कविताएँ, गद्य-गीत एवं पत्र संकलित हैं।

रचनाओं का क्रम उनके प्रकाशन-वर्ष के अनुसार रखा गया है। रचनाओं

के अंत में उनका प्रथम प्रकाशन-वर्ष भी दे दिया गया है। रचनाओं को 'बुनने' के क्रम में दो बातों पर विशेष तौर पर ध्यान रखा गया है—रचनाएँ हर दौर की हों एवं विषय-वैविध्य में परिपूर्ण हों। इससे रेणु के प्रारंभिक दौर से अंतिम दौर तक की महत्त्वपूर्ण रचनाओं में एक साथ साक्षात्कार के साथ, उनके रचना-सामर्थ्य की सही ऊर्जा के भी दर्शन होंगे।

'रेणु : चुनी हुई रचनाएँ' के प्रकाशन की परिकल्पना 1984 में ही की गयी थी, पर इसका प्रकाशन अब जाकर संभव हो पा रहा है। इसके प्रकाशन की पूरी तत्परता श्री अशोक महेश्वरी ने निभायी है। उनके अथक परिश्रम एवं सूझ-बूझ के कारण ही इतने बेहतर ढंग में इसका प्रकाशन संभव हो पा रहा है।

—भारत यायावर

कहानीकार रेणु की कहानी

जब रेणु की उम्र छः-सात साल की थी, उन्होंने अपने पिताजी को अपने संबंध में बड़े ही सहज ढंग से एक अद्भुत कहानी गुनायी थी। पिताजी ने माँ को बुलाकर कहा था, 'सुनो जरा, यह क्या कहता है?' तब रेणु ने माँ से भी स्पष्ट शब्दों में कह दिया था, 'तुम मेरी माँ नहीं। मेरी माँ ने मुझे एक मिट्टी की हंडी में बंद कर, नदी में डाल दिया था। बहते-बहते हंडी एक घाट पर जा लगी। और वहीं से तुम मुझे ले आयीं।' रेणु ने आगे बताया, 'मुझे पुनर्जन्म की बात भी याद है।' मैं स्कूल में पढ़ता था। अहा ! कितना सुंदर था हमारा स्कूल ! चारों ओर रंग-बिरंगे फूलों की खारियाँ। पोखरे में पुरझन के फूल। एक दिन मैं फूल 'लोढ़ने' के लिए... और तभी उनकी माँ चीख पड़ी थी। और घनघोर आर्यसमाजी पिता ने एक कट्टर सनातनी पंडित को बुलाकर पूजा-पाठ और पुरश्चरण की व्यवस्था करवायी थी।

रेणु ने अपने बचपन के इस प्रसंग का जिक्र अपनी आत्म-रचना 'पांडुलेख' में किया है। दरअसल यह उनकी गढ़ी हुई पहली कहानी थी, जिसका प्रभाव भी पुरजोर हुआ था। रेणु को बचपन से ही कथा-कहानियाँ सुनने का अद्भुत शौक था और अपनी दादी से व गाँव के बड़े-बूढ़ों से पूणिया क्षेत्र के जन-जीवन में रची-बसी कहानियों को अपनी स्मृति में बसा चुके थे। अद्भुत स्मृति के धनी रेणु को बचपन तक की एक-एक घटना ब्योरेवार याद थी। बचपन की सुनी हुई कहानियों के अलावा, लोकगीत और लोगों के चेहरे, हाव-भाव—सभी दाद थे। उन्होंने अपने कथाकार होने के बारे में लिखा है, 'बचपन से ही मुझे कथा-कहानी सुनने और गुनने का शौक रहा है। गुनने का शौक तो बहुत बाद में चलकर पैदा हुआ, और वह भी शायद इसलिए कि बचपन से ही इतने तरह के लोगों को नजदीक से देखने-समझने का मौका मिला कि बाद में चलकर मैंने महसूस किया—मेरा प्रत्येक परिचित अपने-आप में अनगिनत कहानियों की खान है। बस, फिर क्या था, कलम उठाई और कथा बुनने के घंघे में लग गया।' इस बीच स्कूल-जीवन और

उसके बाद के मेरे अनगिनत मित्र-परिचित, गाँव-घर की घटनाएँ मेरी कहानियों का ताना-बाना बनी हैं और मैंने उन्हीं से अपनी अच्छी-बुरी कहानियाँ बुनी हैं।

पर यह आश्चर्य की बात है कि रेणु का लेखन कहानी से प्रारंभ न होकर कविता से हुआ। वैसे कविताएँ वे ताउम्र लिखते रहे, पर बहुत कम कविताएँ ही प्रकाशित हो पायीं। जब वे फारबिसगंज के 'ली अकादमी' उच्च विद्यालय के कक्षा नौ के विद्यार्थी थे, अपने जीवन की पहली कहानी 'रिजल्ट' लिखी एवं कक्षा में पढ़कर मनाई। इसमें एक छात्र के परीक्षा में असफल होने एवं आत्मग्लानि की पीड़ा को न बर्दाश्त कर पाने पर आत्महत्या करने का ऐसा सजीव चित्रण किया गया था कि सभी छात्र-श्रोता करुणा से भर उठे। यह लगभग 1937 की बात है। इसी वर्ष रेणु नेपाल के त्रिराटनगर में कोइराला-परिवार के साथ रहने चले गये एवं अगे का अध्ययन वहीं रहकर किया। पूरे कोइराला-परिवार के साहित्यिक एवं राजनीतिक चेतना से संपन्न होने के कारण रेणु की प्रतिभा तेजी से विकसित होने लगी। हिंदी एवं बंगला के साहित्य से तो वे परिचित थे ही, कोइराला-परिवार के साथ रहकर विदेशी साहित्य से भी उनका परिचय बढ़ा। कोइराला-बंधुओं में स्व० तारिणीप्रसाद कोइराला से इनकी इतनी गहरी दोस्ती थी कि वे साथ खाते-पीते-मोने और आधी रात तक साहित्य-चर्चा करते। तारिणी-प्रसाद कोइराला नेपाली के महत्वपूर्ण कवि-कथाकार हुए। वैसे उनसे बड़े विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला की कहानियाँ पहले से ही छप रही थीं, जिनमें से कुछ का अनुवाद रेणु ने आगे चलकर किया। 1939 से '41 तक रेणु वाराणसी में रहकर अध्ययन करते रहे। उन्नीस दौरेन उनकी कई कहानियाँ व कविताएँ वाराणसी के दैनिक व साप्ताहिक पत्रों में प्रकाशित हुईं। वाराणसी में वे आचार्य नरेन्द्र देव के संपर्क में आये और उन्हीं से मार्क्सवाद की दीक्षा ली। रेणु स्वभाव से रोमांटिक थे, पर नरेन्द्र देव के सान्निध्य ने उनमें यथार्थवादी चेतना विकसित की। 1942 के आंदोलन में वे गिरफ्तार हुए। जेल में सतीनाथ भादुड़ी भी उनके पास थे। भादुड़ीजी ने नियमित तौर पर लिखने-पढ़ने की उनमें आदत डाली। भादुड़ीजी ने वहीं (भागलपुर जेल में) अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'जागरी' की रचना की और रेणु ने कई कहानियों एवं कविताओं की रचना की। श्री बीरेन्द्रनारायण, जो रेणु के साथ जेल में थे, को एक कहानी की स्मृति अब तक है। वे लिखते हैं— "वहीं (जेल में) मालूम हुआ कि रेणु ने कहानियाँ भी लिखी थीं, जो प्रकाशित हो चुकी थीं। जेल में साहित्यिक गतिविधि भी शुरू की गयी, बड़े ही अप्रत्याशित ढंग से। शोलोखोव की किताब हम लोग पढ़ रहे थे और उसके यथार्थवादी चित्रण से बड़े ही प्रभावित थे। बड़े-बूढ़े इसे अश्लील कहते थे और हम लोग कसमसाकर रह जाते थे। इसी की प्रतिक्रियास्वरूप मैंने एक नाटक लिखा और रेणु ने एक कहानी। दोनों कृतियाँ पढ़ी गयीं। सांप्रदायिक दंगे में बलात्कार

के बाद एक लड़की कैप तक पहुँची। रात में एक वरिष्ठ कांग्रेसी स्वयंसेवक पहुँचे। उस लड़की के सामने प्रस्ताव रखा। उसने सिसकते हुए कहा, 'आमाके माफ़ कोरुन। बाँधन भेंगे गेछे।' '...मुझे आज भी वह दिन याद है, जब हम तीन नौजवान एक तरफ़ थे और दूसरी तरफ़ बुजुर्ग, जिन्होंने कहानी या नाटक का मिलसिला ही बंद करवा दिया। कह नहीं सकती कि उनका क्रोध किस बात पर अधिक था—कांग्रेसी स्वयंसेवक का ऐसा चरित्र-चित्रण या 'बाँधन भेंगे गेछे !' जैसे वाक्य पर ! रेणु को ऐसा गहरा धक्का लगा कि उसने लिखना ही बंद कर दिया। उस कहानी का क्या हुआ, पता नहीं।'

पर रेणु अपने प्रौढ़ कहानी-लेखन की शुरुआत 1944 से मानते हैं, जब जेल से छूटकर वे गाँव लौट रहे थे तो उन्हें लगा—न जाने किस गाँव में जा रहा हूँ। पता नहीं, कहाँ जा रहा हूँ ! '...किधर है अपना गाँव 'औराही-हिगना' ? दिग्भ्रांत होकर किसी अन्य दिशा की पगडंडी तो नहीं पकड़ ली ? '...अचानक कलेजा धक् ! बट बाबा कहाँ है ? गाँव के उत्तर, मड़क के किनारे विशाल बट वृक्ष नहीं है ? और बट वृक्ष के बिना सारा गाँव नग-धड़ग...श्रीहीन, छूछा...अजनबी-सा लग रहा था। '...गाँव पहुँचकर विस्तारपूर्वक बट बाबा के तिरोधान की कहानियाँ सुनता रहा। '...पिछले साल एक रात के दूसरे पहर में बिना किसी आधी-तूफान अथवा 'हवा-बतास' के ही बट बाबा जड़ से उखड़कर भू-लुठित हो गये। '...गगनभेदी धमाका...हल्का भूकंप, और फिर आतंताद, कोलाहल, कलरव ! सारा गाँव जग पड़ा और सभी एक सुर में रो पड़े—औरत-मर्द, बच्चे-बूढ़े-जवान, कुत्ते-गाय-बैल-भैंस—सभी रात-भर रोते रहे—दुहाय बाबा ! अब हमारा क्या होगा ? कौन हमारी रक्षा करेगा...सुख-दुःख में, सदा कौन पास में खड़ा होगा अब ? '...दादा-परदादा से भी बड़ा, गाँव के हर परिवार का पूज्य, प्रत्येक प्राणी का 'समांग'—बट बाबा !

...और कुछ सप्ताह बाद बट बाबा से गाँव वालों के लगाव, उन पर निवास करने वाले पक्षियों एवं उनके न रहने पर गाँव वालों की मनोदशा पर रेणु ने अपनी पहली व्यस्क कहानी 'बट बाबा' लिखी और साप्ताहिक 'विश्वामित्र' में प्रकाशनार्थ कलकत्ता भेज दी। रेणु अपनी आत्मरचना 'ईश्वर रे, मेरे बच्चे...' में यह कहानी कैसे लिखी गयी, इसका पूरा व्योरा देते हुए लिखते हैं—कई सप्ताह बाद संपादकजी का प्रोत्साहनपूर्ण पत्र मिला और साथ ही 'विश्वामित्र' का ताजा अंक, जिसमें मेरी पहली कहानी 'बट बाबा' छपी थी। दौड़कर दादी के पास गया। चरण स्पर्श कर बोला, 'दादी ! तुमने इसे बचपन से ही न जाने कितनी कहानियाँ सुनायी होगी। '...इस बार मैं तुमको एक कहानी सुनाऊँ ?' कहानी समाप्त करके देखा, दादी की आँखों में एक अलौकिक ज्योति-सी कुछ जगमगा रही थी। उनका झुर्रीदार चेहरा अचानक दमकने लगा था। गद्गद कंठ से बोली

थीं, 'बट बाबा की महिमा लिखकर तुमने—समझो कि अपने 'पुरखों' को पानी दिया है।... तुमने सारे गाँव के लोगों की ओर से 'बट बाबा' की समाधि पर पहला फूल चढ़ाया। बाबा की कृपा बरसती रहे सदा...!'

बाद में लगभग एक दर्जन कहानियाँ साप्ताहिक 'वि. वमित्र' में ही प्रकाशित हुईं—न मिटनेवाली भूख, पाटों का भूत, पहलवान की ढोलक, कलाकार, प्राणों में घुसे हुए रंग इत्यादि। आजादी मिलने के बाद देश की विपम परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए रेणु ने 'रेखाएँ, बूत-चक्क' कहानी 1947 के दिसंबर में लिखी जो आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा संपादित साप्ताहिक 'समाज' (वाराणसी) के 1 जनवरी, 1948 के अंक में प्रकाशित हुई। पर इन कहानियों से रेणु की कोई ठोस पहचान कहानीकार के रूप में नहीं बन पायी। उनकी पहचान बनी छठे दशक में प्रकाशित 'तीसरी कसम अर्थात् मारे गये गुलफाम' (अपरंपरा-1 में प्रकाशित), निक्क-1 (संपादक—धर्मवीर भारती) में प्रकाशित 'रसप्रिया', कहानी (संपादक—श्रीपतराय, भैरवप्रसाद गुप्त) में प्रकाशित 'लाल पान की बेगम', कल्पना में प्रकाशित 'सिरपच्चमी का सगुन' आदि कहानियों से, जिनका संग्रह 'ठुमरी' नाम से 1959 में प्रकाशित हुआ। अपने पहले ही कहानी-संग्रह से रेणु की पहचान एक महत्वपूर्ण कहानीकार के रूप में हो गयी। जैसे 'मेला आँचल' एवं 'परती-परिकषा' के प्रकाशन के साथ ही उन्हें प्रेमचंद की परंपरा का एक श्रेष्ठ उपन्यासकार माना गया, उसी प्रकार अपने पहले ही कहानी-संग्रह से रेणु प्रेमचंद की परंपरा के श्रेष्ठ कहानीकारों के रूप में परिगणित होने लगे। पचास के बाद ग्रामीण परिवेश की कहानियाँ भैरवप्रसाद गुप्त, माकंडेय, शिवप्रसाद सिंह, शैलेश मटियानी आदि कई लेखक लिख रहे थे, पर रेणु की कहानियों ने ही ऐसी कहानियों की ओर व्यापक रुचि और पाठकीय माहौल पैदा किया।

1960 में '66 के बीच की लिखी चौदह कहानियों का संग्रह 'आदिम रात्रि की महक' 1967 ई० में प्रकाशित हुआ और 1970 से 72 तक की लिखी कहानियों का संग्रह 'अग्नि खोर' 1973 में प्रकाशित हुआ। मृत्योपरांत पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित, पर लगभग गुमी हुई कहानियों के दो संग्रह 'एक आबणी दोपहरी की चूर' (1984) एवं 'अच्छे आबमो' (1986)—मेरे वर्षों के खोज-कार्य के फलस्वरूप प्रकाशित हुए। इन पाँचों संग्रहों के अलावा एक संग्रह-भर कहानियाँ और भी गुम हैं, जिनकी खोज जारी है। इस तरह कुल मिलाकर रेणु की लगभग अस्सी कहानियाँ प्रकाशित हुईं। इन कहानियों में लगभग पचास कहानियाँ हिंदी की श्रेष्ठ कहानियाँ मानी जा सकती हैं। हिंदी के बहुत कम लेखक हैं जिन्होंने इतना कम लिखा हो, पर गुणात्मक दृष्टि से जिनका साहित्य इतना महत्वपूर्ण हो।

रेणु की चुनी हुई कहानियों के अब तक तीन सकलन प्रकाशित हुए हैं। पहला

राजेन्द्र यादव के संपादन में 'रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ' 1963 में प्रकाशित हुआ था। अब वह संकलन अप्राप्य है। दूसरा खुद रेणु द्वारा चुनी हुई कहानियाँ 'मेरी प्रिय कहानियाँ' 1973 में राजपाल एंड संस, दिल्ली से प्रकाशित हुआ एवं तीसरा 'प्रतिनिधि कहानियाँ' 1984 में मोहन गुप्त के संपादन में राजकमल पेपरबैक्स से प्रकाशित हुआ। ये तीनों संकलन छोटे हैं। रेणु की 'चुनी हुई रचनाएँ' का पहला खंड 'चुनी हुई कहानियों' का है जिसमें पहली बार उनके प्रारंभिक दौर की कहानियाँ से लेकर अंतिम दौर तक की कहानियाँ भी हैं। रेणु के कहानी-लेखन के हर दौर एवं हर प्रकार को इसमें संकलित किया गया है, जिससे पाठकों को उनके विस्तृत कथा-आयाम के दर्शन हो सकेंगे।

—भारत यायावर

‘अपरूप-रूपों’ की पहचान

हिंदी कथा-साहित्य में रेणु की पहचान एक गहरे लोक-संपृक्त कथाकार के रूप में है। वे साधारण जन की ‘आत्मा के सजग और मर्मों शिल्पी’ हैं। लोक-संस्कृति की जितनी गहरी पकड़ रेणु के कथा-साहित्य में है, अन्यत्र दुर्लभ है। अपने कथा-साहित्य की सुदृढ़ भित्ति उन्होंने लोक-भाषा की नींव पर खड़ी की है, इसीलिए वह इतनी टिकाऊ और मन को छूने वाली है। जो ग्राम-भाषा पढ़े-लिखे शहराती लोगों को गंवारू और गलीज लगती है, रेणु के कथा-साहित्य में उसके शब्द आकर मोतियों की तरह चमकते हैं। भाषा का खड़ी बोली का ढाँचा होने पर भी उनकी भाषा का पूरा मिजाज ग्रामीण है, जिसे कभी ‘आँचलिक’ कहने का पुरजोर चलन था। पर इस ‘आँचलिक’ शब्द का रेणु ने पुरजोर विरोध भी किया था। वे ‘आँचलिकता’ को लेकर चल रहे बहस को बेमानी समझते थे। वे उपन्यास को सिर्फ उपन्यास और कहानी को सिर्फ कहानी मानने के पक्षपाती थे—आँचलिक आदि किसी विशेषण जोड़ने के नहीं। यद्यपि उनके अधिकांश कथा-साहित्य को आँचलिक कहा गया है। रेणु ने ‘मैला आँचल’ की भी रचना भारत के एक पिछड़े गाँव को प्रतीक मानकर की थी, जैसे प्रेमचंद ने ‘गोदान’ की रचना की थी, पर उनके उपन्यास और कहानियों को ‘आँचलिक’ कहकर एक क्षेत्र-विशेष की सीमा में बाँध देने का प्रयास किया गया, जैसे अन्य क्षेत्रों के जीवन से, उनकी समस्याओं से उनका कुछ लेना-देना ही न हो। रेणु ने इसका विरोध किया था।

रेणु प्रेमचंद के बाद ग्रामीण जीवन के सबसे प्रमुख कथाकार हैं। इनकी प्रमुखता का सबसे बड़ा कारण है—ग्रामीण जीवन को अपने कथा-क्षेत्र का आधार बनाते हुए भी प्रेमचंद के कथा-शिल्प और रचना-दृष्टि से अपने को विलगाना। जबकि उनकी पीढ़ी के अन्य कथाकार, जो ग्रामीण जीवन की कहानियाँ लिख रहे थे, प्रेमचंद के हू-ब-हू नक्शे-कदम पर चले। इन्होंने प्रेमचंद के कथा-साहित्य की तमाम विशेषताओं को कमजोरियों सहित अपनाया। किसी भी बड़े

लेखक की तर्ज पर रचनाएँ लिखना आसान काम है, और उसे आज तक हिंदी में किया जा रहा है। आज भी ढेर सारी कहानियाँ ऐसी लिखी जा रही हैं, जिन्हें यदि प्रेमचंद की कहानी कहा जाये, तो किसी को अविश्वास नहीं होगा। पर रेणु की कहानियाँ आज भी अलग-थलग दीखती हैं। इसका कारण क्या है? प्रेमचंद और रेणु दोनों के पात्र निम्नवर्गीय हरिजन, किसान, लोहार, बहई, चर्मकार आदि हैं। दोनों लेखकों ने माधारण पात्रों के जीवन को रेखांकित किया है, पर दोनों के कथा-विन्यास, रचना-दृष्टि और 'ट्रीटमेंट' में बहुत फर्क है। प्रेमचंद की अधिकांश कहानियों में इन उपेक्षित और पीड़ित पात्रों का आर्थिक शोषण या उनका सामंती व महाजनी व्यवस्था के फंदे में पड़ी हुई दारुण स्थिति का चित्रण है, जबकि रेणु ने इन सताये हुए, शोषित पात्रों की सांस्कृतिक संपन्नता, मन की कोमलता, रागात्मकता और कलाकारोचित प्रतिभा का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद रूसी कथाकार गोर्की के करीब पड़ते हैं, जबकि रेणु मिखाइल शोलोखोव के। इस तरह रेणु प्रेमचंद की परंपरा के कथाकार न होकर, एक अलग परंपरा का श्रीगणेश करते हैं। ये दोनों कथाकार मिलकर उस 'साधारण' आदमी का संपूर्ण चित्र दे पाते हैं। अन्यथा, एक प्रकार से अपने-आप में दोनों एकांगी हैं। रेणु प्रेमचंद के संपूरक कथाकार हैं।

इसका मतलब यह नहीं कि उनका जनता की समस्याओं के प्रति ध्यान नहीं है। वे लिखते हैं, "परती-परिक्षा मे मैंने जमीन, भूमिहीनों और खेतिहर मजदूरों की समस्याओं को लेकर बातें कीं। जातिवाद, भाई-भतीजावाद और भ्रष्टाचार की पनपती हुई बेल की ओर मात्र इशारा नहीं किया था, इसे समूल नष्ट करने की आवश्यकता पर भी बल दिया था। "'आत्म-साक्षी' के द्वारा राजनीतिक पार्टियों के आपसी कलह और जनता से अलगाव की ओर अपने पाठकों का ध्यान आकषिप्त किया था। अपनी अन्य कहानियों में मैंने निम्न-मध्यवर्ग, पिछड़े लोगो, भूमिहीनों, खेतिहर मजदूरों तथा समाज के ऐसे लोगो का चित्रण किया, जिन्हें 'हरिजन' कहकर गौरवान्वित तो कर दिया गया, किंतु वे आजादी के बाद भी बे-जमीन, पिछड़े और अछूत एवं आक्रांत होते रहे। शोषण तो कभी बंद नहीं हुआ, बल्कि सारी विकृतियाँ दिन-दूनी, रात-चौगुनी होकर समाज को प्रसती गयीं।"

आजादी के बाद के कथा-साहित्य के मूल्यांकन के तहत हिंदी आलोचकों ने प्रेमचंद को आदर्श मानकर, उनकी परंपरा को स्वीकार कर, आलोचना का एक सहज तरीका अपना लिया है। नामवरजी सरीखे बहुत कम आलोचक हैं, जो इससे परे हैं, पर अधिकांश की यही हालत है। ये देखते हैं कि अमुक लेखक प्रेमचंद की तरह की कहानियाँ लिख रहा है, इसलिए श्रेष्ठ है। उससे जरा भी अलग जो भी पड़ा—उसे नकारने का फैसला-सा हो गया है। इधर अति वामपंथी ख़ान के लेखकों का एक खेमा उभरकर आया है, जो हर रचना में वर्ग-संघर्ष या क्रांति

का पक्षधर है। इनकी स्थिति और भी भयावह है। ऐसे आलोचकों-विचारकों के शिकार रेणु जैसे महत्त्वपूर्ण लेखक भी होते रहे हैं। उन पर तरह-तरह के आरोप लगाये जाते रहे हैं और साहित्य से पूर्णतः खारिज करने की साजिश भी रची जाती रही है। बावजूद इसके, साधारण पाठक प्रेमचंद के बाद जितना रेणु के साहित्य से संतुष्ट रहा है, किसी अन्य के नहीं। इस संदर्भ में रेणु अपने आत्म-कथ्य में कहते हैं—“मेरे साधारण पाठक मेरी...स्पष्टवादिता तथा सपाटबयानी से सदा संतुष्ट हुए हैं। और साहित्य के राजदार पंडित-कथाकार-आलोचकों ने हमेशा नाराज होकर मुझे ‘एक जीवनदर्शनहीन-अपदार्थ-अप्रतिबद्ध-व्यर्थ रोषांटिक प्राणी’ प्रमाणित किया है।...सारे तालाब को गंदला करने वाला जीब ! इसके बावजूद कभी मुझसे इससे ज्यादा नहीं बोला गया कि अपनी कहानियों में मैं अपने को ही ढूँढ़ता फिरता हूँ : अपने को अर्थात् आदमी को !...” अर्थात् रेणु के कथाकार ने जो इतने पात्रों से, इतनी जीवन-स्थितियों से परिचित कराया है—दरअसल उसकी पूरी कोशिश ‘आदमी’ की तलाश के तहत है और इसी में उसके कथाकार होने की सार्थकता है। साहित्य के राजदार पंडितों-कथाकारों-आलोचकों के तमाम आरोपों के बावजूद, इसीलिए उनसे इससे ज्यादा कुछ कहते नहीं बनता। वह शमशेर बहादुर सिंह की इन पंक्तियों को प्रस्तुत करते हैं, ‘बात बोलेंगी, मैं नहीं...’ भेद खोलेंगी बात ही !’ अर्थात् रचना यदि स्वयं नहीं बोलती, तो अलग से कोई स्पष्टीकरण देना आवश्यक नहीं।...पर यहाँ देखना यह है, यह ‘आदमी’ कौन है, जिसमें रेणु अपने-आपको तलाश करते हैं या जिसके चित्रण में अपने जीवन की सार्थकता पाते हैं?—पंचकौड़ी मिरहंगिया, जो नाच और गाना सिखाकर अपना पेट पालता है, बुढ़ापे में जिसकी बोली ‘फटी भाँथी’ की तरह हो गयी है; हिरामन—काला-कलूटा चालीस साला गाड़ीवान—प्रेम के लिए तरसता, भोला-भाला; हीराबाई—मंले में नाचने वाली पतुरिया; सिरचन—खाने-खाने को मुहताज पर अक्खड़, स्वाभिमानी कलाकार; बिरजू की माँ—‘सर्वे-सेटलमेंट’ से प्राप्त थोड़ी-सी धनहर जमीन पर ही ‘लाज पान की बंगम’ की तरह दीखती; हरगोबिन संयदिबा—मानवीय संवेदना से ओतप्रोत साधारण भावुक प्राणी; रातभर जागकर मिट्टी की गंध से मदमाता—करमा, गाँव की संकीर्ण वर्णवादिता व आपसी ईर्ष्या-द्वेष को रोकने के लिए अपने को बलिदान देता, ‘एकला चलो रे’ के दर्शन को मानने वाला किशन महराज, मुस्लिम अध सांप्रदायिकता के खिलाफ सघर्ष करती फातमाबि !—यही वे ‘आदमी’ हैं, जिनमें रेणु खुद को ढूँढ़ते हैं—व्यवस्था के द्वारा सताये हुए, उपेक्षित, दलित, पर बेहद मानवीय, जमीन से जुड़े, सांस्कृतिक सपदा से संपन्न प्रेम और राग में पगे हुए लोग !...जिनके जीवन से ‘एकाकार’ होकर रेणु ने ये कहानियाँ लिखी हैं।

रेणु मूलतः यथार्थवादी कथाकार है। पर पहले ही कहा जा चुका है कि

xx]

xx]

के 1.2.5.5.5

अनेक कहानियों का यथार्थ भिन्न प्रकार का है। 'लोक-हृदय' की गहरी पहचान से ये कहानियाँ बुनी गयी हैं। मनुष्य के रागात्मक सौंदर्य के इतने मार्मिक चित्र उन्होंने दिये हैं कि उनकी भाषा कभी-कभी गद्य की सीमा को तोड़कर कविता की सीमा में चली आती है। लोक-गीतों और लोक-ध्वनियों के प्रयोग से कहानियों में एक जादू-सा पैदा होता है। इसीलिए रेणु को 'गाते हुए गद्य का कथाकार' भी कहा गया है। चीजों या स्थितियों के रंगों को और गाढ़ा करने के लिए वे प्रायः कवियों की तरह बिंबों या उपमाओं का प्रयोग करते हैं, पर ये परंपरित न होकर सामान्य जीवन से ही लिये गये होते हैं।

रेणु की कहानियों को पढ़ते हुए कभी-कभी मन 'रामुरा झि-झि' करने लगता है और मुँह से स्वर निकलता है—'अपूर्व' ! इन 'अपरूप-रूपों' की पहचान मर्मी पाठक-आलोचक को ही हो सकती है, उनके सौंदर्य की ग्राह्यता कला-सजग नेत्र ही कर सकते हैं, जिनका लोक-जीवन के प्रति भी गहरा राग हो !

—भारत यायावर

RR 27023

5.3.73

Ms. 457

फणीश्वरनाथ रेणु
चुनी हुई कहानियाँ

न मिटनेवाली भूख

आठ बज रहे थे। दीदी बिछोने पर पड़ी चुपचाप टुकुर-टुकुर देख रही थी— छत की ओर। उसके बाल तकिये पर बिखरे हुए थे, इधर-उधर लटक रहे थे। एक मोटी किताब, नीचे चप्पल के पास, ओघे मुंह गिरकर न जाने कब से पड़ी हुई थी। बुधनी की माँ, दवे पाँव कमरे के पास आती थी और झाँककर चुपचाप लौट जाती थी। आठ बजे तक बिछोने पर रोगिनी की तरह चुपचाप पड़ा रहना, मौन साधे, दयनीय मुद्रा बनाकर, टकटकी लगाकर देखना आदि बातें कुछ ऐसे बानावरण की सृष्टि कर रही थीं कि बुधनी की माँ कुछ पूछने की हिम्मत नहीं कर पाती थी। बेचारी हाथ में झाड़ू लेकर बार-बार लौट आती थी। अंत में छोटी दीदी (मिस फ्लोरा) से जाकर वह बोली, “दीदी के का भेल है, अब ले पड़ल बाड़ी। आखिर...”

“बड़ी मुश्किल है बुधनी की माँ। कल से ही उनका यह हाल है। न खाती हैं, न पीती हैं और कुछ बोलनी भी तो नहीं। पूछने पर कहती हैं कि कुछ हुआ ही नहीं है। ज्यादा कुछ पूछने की हिम्मत भी तो नहीं होती।” मिस फ्लोरा ने बालों में कंधी चलाते-चलाते ही कहा।

“सुबहे से झाड़ू देवे ले ठाढ़ हुई। तनी चलिके...” बुधनी की माँ बात पूरी भी नहीं करने पायी थी कि दीदी की प्रिय छात्रा—बंचला किशोरी ‘मदालसा’ मुँह लटकाये, आकर खड़ी हो गयी और जिज्ञासु दृष्टि से मिस फ्लोरा और बुधनी की माँ को देखने लगी। बुधनी की माँ खिलकर बोली, “एहे तो लल्ली ! चल त रानी ! देख, तोहर दीदी के का भेल है !”

मदालसा चुपचाप दीदी के कमरे में दाखिल हुई। दीदी अपलक दृष्टि से उसे देखती रही। बुधनी की माँ चौखट के पास ही खड़ी रही।

“दीदी !” मदा ने बहुत देर तक चुप रहने के बाद पुकारा।

“हूँ ?”

“कैसा जी है दीदी ?”

“हैं...” दीदी ने बिना हिले-डुले ही उत्तर दिया।

बुधनी की माँ ने पहले बरामदे पर एक-दो बार ‘छप-छप झाड़ू चलायी, फिर डरते-डरते कमरे में आकर हल्के हाथों झाड़ू देने लगी। मदालसा दीदी के टेबल पर बिखरी हुई किताबों को सजाकर रखने लगी। कैलेंडर में तारीख बदलकर, दिन भी बदल डाला उमने—दीदी चुपचाप देख रही थी।

“क्यों, आज सोमवार हो गया न?” दीदी ने अचकचाकर पूछा। मदालसा डरी, एक बार कैलेंडर की ओर देखकर वह बोली, “जी नहीं।” वह दिन बदल रही थी कि फिर याद कर रुकी और बोली, “जी हाँ, आज सोमवार ही है। कन रविवार, आज सोमवार...”

“सोमवार हो गया?” दीदी उठकर बैठ गयी, बोली, “तो बारातवाले चले गये?”

“हूँ, चार बजे भोर चल गेलन सब।” बुधनी की माँ झाड़ू के तिनकों को सजाती हुई बोली।

दीदी डरते-डरते बिछौने के पास वाली खिड़की को, जो स्कूल की ओर खुलती थी—खोलने लगी। खिड़की खोलकर उसने देखा—स्कूल खाली पड़ा है। दो दिनों से बंद खिड़की जो खुली तो कमरे में एक ताजी हवा आकर खेलने लगी। वह अँगड़ाई लेकर उठी, उसके चेहरे की गंभीरता तत्क्षण ही दूर हो गयी। मदालसा के ओठों पर भी मुस्कान की एक सरल रेखा दीड गयी। बुधनी की माँ को कुछ हिम्मत हुई, पूछ बंठी, “कैमन तबियत है दीदी?”

“अच्छी है,—तू जल्दो मे जाँकर स्कूल के कमरों को झार-बुहार दे। न हो तो फुलिया को भी बुला लेना। भगेलू से कह दो—गाडी पर आज मरजू जायेगा। भगेलू क्लासों में बेंच सजाकर रखेगा। जाओ!” कहती हुई वह तौलिया और साडी लेकर ‘बाथरूम’ की ओर चली।

मदालसा ने टोका, “दीदी !”

“क्या है री !” दीदी ने रुककर मुस्कराते हुए पूछा।

“आप नहीं गयी, इंदु बहुत रोती थी, कहती थी—दीदी से भेट नहीं हो सकी।” पैसिल-कटर में पैसिल डालकर घुमाने हुए मदालसा बोली। दीदी ने प्रत्युत्तर में सिर्फ एक लंबी निःश्वास छोड़ दी।

“आप तो उसे उपहार देने के लिए एक चित्र बना रही थी न?”

“बना तो रही थी, पर अमूरा ही रह गया। अच्छा, मेज दूंगी... मुझसे बड़ी भारी गलती हो गयी मदा, जाने के दिन उसमे मिल नहीं पायी।” कहती हुई दीदी धीरे-धीरे चली गयी।

मदा वहीं बैठकर दीदी का ‘एनबम’ देखने लगी।

श्रीमती उषादेवी उपाध्याय—उर्फ दीदीजी । शहर के गर्ल मि० ई० स्कूल की प्रधानाध्यापिका । मझोले कद की, दुबली-पतली, सुंदरी विधवा युवती । जिस दिन से स्कूल में प्रधानाध्यापिका होकर आयी, स्कूल की उन्नति में चार-चांद लग गये । छात्राओं की संख्या चौगुनी हो गयी । परीक्षाफल सुंदर होने लगा । स्कूल को हाई स्कूल बनाने की चर्चा होने लगी । उस दुबली-पतली मृदुभाषिणी 'दीदी' की मीठी चपल जिस बालिका ने एक बार खा ली, वह उसकी चेरी हो गयी । बालिकाओं और किशोरी छात्राओं की बात तो दूर, अध्यापिकाएँ भी उसके स्नेह की भूखी रहतीं । बुधनी की माँ उसकी प्राइवेट सेक्रेटरी थी । मदा प्रसन्न रहनेवाली दीदी के ओठों पर मुस्कुराहट सदा खेलती रहती । वह कभी-कभी मितार बजाकर मीरा की पदावली गा लेती थी, टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ खींचकर कलापूर्ण चित्र भी बना लेती थी । विधवा थी, ओढ़ने-पहनने, खाने-पीने की चीजों में सादगी के कड़े नियमों को मुस्तंदा से पालती थी, लेकिन अन्य अध्यापिकाएँ, जो सधना थीं, वे भी उनकी सादगी पर फिदा थीं ।

स्नान-भोजन करके, दीदी अन्य अध्यापिकाओं के साथ जब स्कूल में दाखिल हुई तो बुधनी की माँ फुलिया को लेकर कमरो में झाड़ू दे रही थी और बड़बड़ा रही थी । भगेलू चुपचाप बेचों को उठा-उठाकर अंदर कर रहा था । दीदी को देखने ही बुधनी की माँ जोर-जोर से चिल्लाकर बोलने लगी, "छी-छी ! एक दिन मैं सुअर के खुहार बना देलन सब...राम-राम...!"

दीदी ने कमरे में जाकर देखा—दीवाल पर स्थान-स्थान पर पान की पीक पड़ी हुई थी । नीचे फर्श पर सिगरेट के अधजले टुकड़े, सिगरेट के खाली डब्बे और माचिस की जली हुई तीलियाँ बिखरी हुई थीं । दीदी ने किंचित् नाक मिकोड़ते हुए कहा, "लो, जल्दी साफ करो ।" कहकर वह ऑफिस खोलने चली । वह ऑफिस खोल ही रही थी कि उसकी आँखें दीवाल पर लिखे सुंदर अक्षरों पर अटक गयीं—

'उठ सजनी खोल किवाड़ें तेरे साजन आये दुआरे !'

दूसरी जगह—'खिड़कियाँ तुम्हारी बंद रहीं पर मैंने तुमको देख लिया ।'

लाल अक्षरों में—'रानी अब अध्यापन छोड़ो, मेरे दिल का राज सँभालो ।'

नीले पेंसिल से—'प्रेम की भाषा सजनि मुझको भी पढ़ा दो ।'

पढ़ते-पढ़ते दीदी तिलमिला उठी । ऑफिस खोलकर घग्म से कुर्सी पर जा बैठी । उसके ओठों पर कुछ घंटे पहले जो स्वाभाविक मुस्कुराहट लौट आयी, वह विलीन हो गयी । वह उठी, फिर बैठ गयी । एक कागज पर लिखने लगी—'बेयरमैन की सेवा में', फिर न जाने क्या सोचकर कागज को फाड़कर वह उठ खड़ी हुई ।

"फ्लोरा !" दीदी ने पुकारा ।

फ्लोरा और उर्दू अध्यापिका मलमा आयीं, दीदी की गंभीर मुद्रा को देखकर अवाक् खड़ी रहीं।

“क्या है दीदी?” फ्लोरा ने मौन भंग करते हुए पूछा।

दीदी ने, बाहर आकर दोनों को दीवाल की ओर दिखलाया। दोनों ने पढ़कर घृणा से मुँह विकृत कर लिया। मलमा बोली, “यह बारातियों का काम है!”

“हूँ,” दीदी ने कहा, “सभ्य बारातियों ने लिखा है।”

लड़कियाँ दल बाँधकर मुस्कुराते हुए आ रही थीं। सरजू भी स्कूल की गाड़ी पर लड़कियों को लेकर आ गया था।

“प्रणाम दीदीजी, दीदीजी प्रणाम, प्रणाम……” कहकर मुस्कुराती हुई लड़कियों की टोली ज्यों ही स्कूल की सीढ़ी पर पाँव रखने लगती, दीदी की गंभीर वाणी सुनकर सब एक साथ रुक पड़तीं।

“तब तक बाहर मैदान में खड़ी रहो।”

दीदी तथा अध्यापिकाओं के चेहरों को देखकर लड़कियाँ आपस में कानाफूसी करने लगतीं, “देखो-देखो! दीदी की आँखें लाल हैं!”

“ऐसा तो कभी नहीं……”

“समझी, समझी……” मंजू खुश होकर कहती, “कोई बड़े आदमी मर गये हैं, फिर वही पाँच मिनट चुप……”

“फ्लोरा! रोलकॉल करके छुट्टी दे दो।” कहती हुई दीदी पुनः ऑफिस में जा बैठी।

छुट्टी दे दी गयी। छात्राओं ने बुधनी की माँ से पूछा, मदालसा से दरयाफ्त किया, पर कुछ भी पता नहीं चला।

दीदी अपने कमरे में लौट आयी और बिछीने पर सेट गयी। उसके अंदर एक आग-सी जल रही थी, सिर फटा जा रहा था और रह-रहकर प्यास लग रही थी।

शनिवार को शहर के प्रतिष्ठित रईस श्री आनंदीप्रसादजी के यहाँ बारात आयी थी। उनकी एकमात्र पुत्री ‘इंदु’ के शुभविवाहोपलक्ष में स्थानीय धर्मशाला में बारातियों के ठहरने का प्रबंध किया गया था। किंतु सभ्य-असभ्य, साधारण-असाधारण और धनी-गरीब के वर्गीकरण की ओर प्रबंधकों-का ध्यान ही नहीं गया था। सभ्य और सुसंस्कृत बारातियों ने जब ‘जेनरल बारातियों’ के साथ रहना अस्वीकार कर दिया तो चेयनमैन साहब से अनुमति लेकर ‘गर्ल्स स्कूल’ में ही ठहरने का प्रबंध कर दिया गया था—सभ्य, शिक्षित और सुसंस्कृत बारातियों के लिए। स्कूल के कंपाउंड में ही अध्यापिकाओं के ‘क्वार्टर्स’ थे। रविवार की शाम को अन्य अध्यापिकाएँ विवाह-गृह के समारोह में सम्मिलित होने चली गयी थीं,

स्कूल की ओर खुलनेवाली खिड़की को बंद करके दीदी अपने कमरे में बैठी अधूरे चित्र को पूरा कर रही थी। खिड़की के उस पार—स्कूल में सभ्य बारातियों का भोजन-पान शेष हो चुका था। पत्तलों पर कुत्तों की लड़ाई, भिखारी और भिखारिनों की करुण पुकार को सुनकर दीदी का ध्यान भग हुआ। चित्र को अपूर्ण ही छोड़कर—वह न जाने क्या सोचने लगी थी। धीरे-धीरे कुनों का भूंकना बंद हुआ तो भिखमंगो ने आपस में लड़ाई शुरू कर दी थी। लड़ाई जब शांत हुई तो एक छोटे शिशु के रोने की आवाज सुनायी पड़ी थी। दीदी ने पहचान लिया था, अभागिन मृणाल के बच्चे के कोमल कंठ-स्वर को। “ओ बाबा, एन झाल ताई तो बोलि छेले आमार काँदछे केन।” मृणाल खाने-खाते बोल उठी थी। ‘मृणाल के छोटे-से शिशु ने जूठन का स्वाद लेना शुरू कर दिया।’...दीदी कुछ आश्चर्यित हुई थी। दीदी मृणाल को जानती थी, उसे प्यार करती थी, कभी-कभी बुलाकर भरपेट भोजन कराती थी और उसके प्यारे बच्चे को गोद में लेकर पुचकारती भी थी। बंगाल के भुक्कड़ों की जमात में मृणाल जब इस शहर में आयी थी तब उसकी गोरी अथवा देह में यह शिशु नहीं था। रोज शाम को कुछ बासी रोटियाँ पाकर बदले में मृणाल ने दिया था इस शहर को वही भोला-भाला शिशु, जो कड़वी तरकारी खाकर रो उठा था। मृणाल बंगाल के एक ग्राम के खुशहाल किसान की पुत्री थी। तो, उस शाम को बैठी-बैठी दीदी बहुत-सी बातें सोच रही थी—कुत्ते, मनुष्य, मृणाल और उसके प्यारे बच्चे के संबंध में न जाने क्या-क्या सोचते-सोचते आरामकुर्मी पर थकी-सी लेट गयी थी। स्कूल के बरामदे पर किमी ने, किसी सरोज नामक व्यक्ति को पुकारकर कहा था, “सरोजजी ! ओ सरोजजी ! जरा इधर आइए।”

“क्या है ?” सरोज अथवा किसी दूसरे ने पूछा था।

“देखिए। यहाँ की भिखारिनों की आँखों में भी एक अजीब जादू है।” पुकारनेवाले व्यक्ति ने दिखलाया था। दीदी की भौहें जरा तन गयी थीं और कान सतक हो गये थे। देखनेवाले व्यक्ति ने देखकर कहा था, “ओहो !...‘जादू’ मत कहिए, ‘मद’ कहिए ‘मद’।”

“अरे आप कवि ठहरे।” प्रथम व्यक्ति ने संशोधन को स्वीकार कर लिया था। एक तीसरी आवाज सुनायी पड़ी थी, “अच्छा कविजी ! कल्पना कीजिए तो, जहाँ की सड़कों पर ऐसी ‘परियाँ’ मारी फिरती है, खिड़कियाँ बंद कर बैठनेवाली मलिकाएँ कैसी होंगी ?”

इस पर जोरों से कहकहे लगे थे और वह प्रमंग, कहकहे के साथ, खिड़की की लकड़ियों को छेदकर ‘दीदी’ के अंतःस्तल में घुस गया था।

उसी रात को तीन बजे तक स्कूल के बरामदे पर ‘अंगूरीबाई’ नाचती रही थी। घुंघरू की छमछमाहट, दर्द-भरी आवाज और ‘वाह ! वाह ! क्या

खूब !!' को मुनते-मुनते 'दीदी' तकिये में मुँह छिपाकर रोयी भी थी। दूसरे दिन भी वह यों ही बिछौने पर निश्चेष्ट पड़ी रही थी। बिछौने पर मे उठते ही उमका सिर चक्कर खाने लगता था। एक ही रात में न जाने कितनी दुर्बलता आ गयी थी। रविवार की शाम को ही अंगूरीबाई कूक पड़ी थी, "अंधेरिया है रात सजन....!"

"वाह! नेकी और पूछ-पूछ...." साजनों में मे एक ने फरमाया था, शेष साजनों ने जबर्दस्त कहकहे लगाये थे।

"चुन-चुन कलियाँ सेज बिछायी...."

"—मजेदार...."

कहकहों के बवंडर में 'दीदी' जानशून्य हो गयी थी, अंगूरीबाई गाती ही रही थी।...सोमवार को रौलकॉल के बाद छुट्टी देकर जब वह लौटी थी तो उसके अंदर आग-मी लग रही थी, सिर फटा जा रहा था और उमे रह-रहकर प्यास लगती थी।

एक ही दिन में बुखार ने भीषण रूप धारण कर लिया। लेडी डॉक्टर आयी, नुस्खा देकर चली गयी और दवा होने लगी। मंगलवार को सुबह से ही 'प्रलाप' के लक्षण दिखायी पड़ने लगे। वह बिछौने पर अचल हो रही थी और रह-रहकर कुछ बड़बड़ाती भी थी। कभी-कभी चौंककर पास में बैठी मदालसा को उठकर पकड़ लेती थी और रो पड़ती थी, "मदा! छिप जाओ बिट्टी मेरी... वह बीड़ीवाला...बीड़ीवाला!!"....कहते-कहते वह बेहोश होकर बिछौने पर लुढ़क पड़ती थी।

हाँ, एक बीड़ीवाले को अक्सर 'मिस्ट्रेस क्वार्टर्स' के पाम आकर दिल में दर्द पैदा हो जाया करता था और वह इलाही से उम दर्द को न मिटाने के लिए आरजू करता हुआ चला जाता था।

दीदी आँखें खोलकर इधर-उधर देखती, मदा, फलोरा, सलमा और बुधनी की माँ करुण नेत्रों से बँठी हुई है...नहीं, वह खड़ी है, मृणाल; उसकी गोदी मे नन्हा शिशु है! वह बीड़ीवाला!! "उँह-हँ हैं!"

"दीदी!" सलमा पुकारती।

दीदी आँखें फाड़े दीवाल की ओर देखती ही रहती, "मजेदार...पीली अंगूरी और वह गुंगी पगली...गर्भवती पगली हँम रही है—हेंह-हेंह उँह हेंह उँह...!!"

"हेंह-हेंह उँह हेंह उँह"—गुंगी-सी दीदी भी हँम पड़ी।

"दीदी...." प्रायः रोती हुई फलोरा ने पुकारा। सलमा ने मिर पर आइसबैग रखा और मदालसा पंखा झलने लगी। दीदी आँखें बंद किये मोचने लगती—वह पगली गर्भवती है। उस पर भी बलात्कार किये गये। छी-छी! वार, वाइन एंड वीमेन—सुरा, युद्ध और नारी...सत्यानाशिनी चीजे है।...उठ सजनी,

खोल किवाड़ें?"...वह फिर चौंककर उठ बंठती, बड़बड़ा उठती, "खोल दो खिड़कियाँ-याँ-याँ..." बुधनी की माँ पकड़कर उसे लिटा देती।

"खिड़कियाँ तो खुली ही हुई हैं।" सलमा कहती।

दीदी चुपचाप आँखें मूंदे रहती...भरी सभा में द्रोपदी चीरहरण... उसकी करुण पुकार, उसे नंगी देखने की वासना... "ओह!" आँखें मूंदे ही अपनी साड़ी के छोर को पकड़ लेती और चिल्ला उठती, "मैं नंगी हो जाऊँगी... मैं नंगी हो जाऊँगी-गी-गी!!"

"दीदी..." फ्लोरा, मदा और सलमा तीनों प्रायः एक ही साथ पुकार उठती। दीदी घृणा से मुँह विकृत कर लेती।

भगेलू लेडी डॉक्टर के यहाँ गया था, लोटकर आया तो चुपचाप खड़ा रहा। बहुत पूछने पर भगेलू ने कहा, "डाक्टरनी साहेब राजा रघुवीरसिंह के हिया जाते थे। हम जाकर बोले तो बोलिन कि..." वह चुप हो रहा।

"क्या बोली?" फ्लोरा ने डाँटकर पूछा।

"बोलिन कि जाकर अपना दीदी को दूसरा विवाह कर दो, सब ठीक हो जायेगा।"

इधर बिछौने पर पड़ी-पड़ी वह दीवाल की ओर एकटक देख रही थी—स्कूल कंपाउंड में वह मृणाल, नंगी अंगूरी और गूंगी पगली खड़ी है। चहार-दीवारी के चारों ओर गहर-भर के लोग—सभ्य-असभ्य, शिक्षित-अशिक्षित और गरीब-अमीर, अपनी-अपनी भाषा में हल्ला मचा रहे हैं:

"तनि हमरो देख द आज सुरतिया पतली कमरिया..."

"तेरे दर पे खड़ा हूँ कब से..."

"उठ सजनी खोल किवाड़ें..."

"तिरछी नजरियावाली रे!..."

"रे पगलिया..."

"री बच्चेवाली छोरी..."

"घूँघट हटाके चाँद-सा मुखड़ा..."

लोगों की भीड़ क्रमशः उत्तेजित हो रही है। सब फाटक पर धक्का दे रहे हैं। अंगूरीबाई आँचल से अपने को ढँक लेती है। मृणाल रो पड़ती है, उसकी गोद का बच्चा छाती में मुँह छिपाकर सिमट गया है। पगली हँस रही है—हेह-ऐँ-उँ अह-अह हे-हे... फाटक टूटने को है। ओह! दीदी चौंककर उठ बंठी। इस बार उसको देखकर मदा, फ्लोरा वगैरह घबड़ा गयी। दीदी अचानक बिछौने पर से उठकर भागी।

"दीदी! दीदी!! दीदी...अरी रोको, पकड़ो..." सब पीछे-पीछे दौड़ी। वह 'हेह उँह ओय अह-अह' करके हँसती और भागती जा रही थी। फाटक के

घोस जाते-जाते दीवाल से टक्कर खाकर गिर पड़ी। जमीन पर रक्त की धारा बह चली।

दीदी अस्पताल में अंतिम घड़ियाँ गिन रही थी। 'एभरग्रिन रेस्ट्रू' में चाय पीनेवाले नौजवानों को एक नया मसाला मिल गया। चाय की चुस्की लेते हुए एक नौजवान ने कहा, "अरुण ! तमने कुछ सुना..." उसकी हालत बड़ी नाजुक है यार !"

"आखिर ऐसा क्यों हुआ, कुछ पता चला ?"

"भई, आखिर वह भी अपने पहलू में दिल रखती थी, किसी ने छीनकर बेमुरीवती से तोड़ डाला होगा, और क्या ?"

"सुना है कि बारात में उसके कोई पुराने प्रेमी आये थे।"

"तब ठीक है..." एक कहानी-लेखक, जो अब तक चुपचाप बंठे हुए थे, बोल उठे, "मैंने भी ऐसी ही कल्पना की थी।"

"हि-हि ऐह हे-हे ओय..." रेस्ट्रू के सामने सड़क पर गुंगी पगली जो बहुत निकट भविष्य में ही माता बननेवाली थी, खड़ी-खड़ी हँस रही थी—"ऐह हेंह हों..." हँसते-हँसते पेट में बल पड़ जाने की मुद्रा बना रही थी।

"अरी भाग, हट शंतान !"

"हेंह ऐ..." वह प्रत्येक डग से धरती पर एक विशेष जोर डालती हँसती हुई चली गयी।

(अप्रैल, 1945)

पार्टी का भूत

यारों की शक्ति से अजी डरता हूँ इसलिए
किस पारटी के आप हैं ? वह पूछ न बंटे ।

मुखकर काँटा हो गया हूँ । आँखें धँस गयी है, बाल बढ़ गये है । पाजामा फट गया है । चप्पल टूट गयी है । आशिकों की-सी मुरत हो गयी है । दिन में चैन नहीं, रात में नींद नहीं आती । आती भी है तो बुरे मपने देखकर जग पड़ता हूँ । जी नहीं, आप जो सोचते है—वह बीमारी नहीं । यदि वह रहती तो कम-से-कम बेकारी और इंतजारी में मजे तो लूटता । यह तो 'राँची' का टिकट कटानेवाला रोग है । चूँकि यह दिन दूर नहीं, इसलिए अपनी बीमारी का इतिहास प्रकाशित कर देना, मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ । क्योंकि इसके बाद 'न जाने मैं कहाँ और तू कहाँ' की दशा में यह संभव नहीं । बात यह है कि मेरे सिर पर 'पार्टी का भूत' सवार है । इसने मुझे ही का न रखा । बहुत कम उम्र से ही इसने मुझे अपना शिकार बना लिया है ।

पाठशाला से ही प्रारंभ करता हूँ ।

एक दिन पिताजी के पास बैठकर 'आमोद-पाठ' पढ़ रहा था । गाँव की पाठशाला के गुरुजी आये । बहुत देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद गुरुजी ने नम्रतापूर्वक दाँत निपोरते हुए पिताजी से कहा, "लड़ाई-झगड़ा जो कुछ भी है, आप लोगो में है । मेरा क्या कसूर है ? आप लोग बड़े आदमी ठहरे । जिस प्रकार एक जंगल में दो सिंह, उसी प्रकार एक गाँव में दो...हे...हे...यह तो भगवान का नियम है । लेकिन पाठशाला तो कुछ उनकी (बिरोधी पार्टी के नेता की) नहीं है । पाठशाला में तो मैं हूँ, मेरे लिए जैसे आपके बच्चे..."

“आप नहीं ममझते पंडितजी,” पिताजी ने बान काटते हुए कहा, “पाठशाला उसी पार्टी की है। अपने लड़के की बान छोड़िए, गाँव के लड़कों को भी मैं उसमें नहीं भेज सका तो इसमें हमारी पार्टी की बेइज्जती है।”

गुरुजी ने पुनः दौन निपोरते हुए कहा, “सो तो है, सो तो है। मैं तो... आप विश्वास कीजिए... मैं तो आपकी मेवा करना चाहता हूँ।” गुरुजी बलपूर्वक खासकर, इधर-उधर देखकर पिताजी से निम्न स्वर में कुछ तथ्य की बातें करने लगे। फल यह हुआ कि मुझे और मेरे गाँव के लड़कों को पाठशाला में पढ़ने जाने की आज्ञा मिल गयी।

दूसरे दिन मैं अपने साथियों के साथ पाठशाला में दाखिल हुआ। गाँव-समाज, पास-पड़ोस, टोले-मुहल्ले, जाति-बिरादरी में, यहाँ तक कि कचहरी की ‘बार लाइब्रेरी’ में भी यह खबर बिजली की तरह फैल गयी। तरह-तरह के प्रश्न पूछे जाने लगे।

“तो क्या अब गाँव में एकता हो गयी?” गाँव के गवाही पेशा करनेवालों ने माथा ठोंक लिया।

“अब खान-पान, शादी-ब्याह भी चलेगा?” बिरादरी के कर्णधारों के पेट में चूहे कूदने लगे।

“यह जो फौजदारी चल रही है, इसको उठा लिया जायेगा क्या?” वकीलों ने लंबी साँस ली।

किंतु हुआ कुछ भी नहीं। पार्टियाँ बनी रहीं और पाठशाला में पार्टी कायम हुई। छुट्टी के बाद डेलेबाजियाँ, छोटी-मोटी लड़ाइयाँ, मार-पीट होने लगी। गुरुजी की छड़ी, जहाँ तक कर सकती, शांति स्थापित करती। लड़ाई-सगड़े में मैं सक्रिय रूप से न तो भाग ही लेता था और न मुझ पर गुस्से की छड़ी ही पड़ती थी, पर इसमें संदेह नहीं कि मैं अपनी पार्टी की विजय चाहता था। मंत्रणा दिया करता था। इसलिए मेरे लड़के, मुझे अपना ‘हीरो’ समझते थे।

इन लड़ाई-सगड़ों के बीच, एक दिन पाठशाले में दाखिल हुई ‘चंद्र’, विरोधी पार्टी की एकमात्र कन्या। उस दिन छुट्टी के बाद मैंने अपनी पार्टी के लड़कों को समझा दिया कि लड़ाई-सगड़े से कोई फायदा नहीं। उसी दिन से लड़ाई-भिड़ाई बंद हो गयी। उसी पार्टी की ओर से एक-आध बार इसकी चेष्टा हुई भी, पर इस पार्टी की लापरवाही देखकर वे हतोत्साहित होकर चुप रह गये।

आज ‘यौन विज्ञान’ की कुछ पुस्तकों को पढ़कर अच्छी तरह समझ गया हूँ कि उन दिनों ‘चंद्र’ की ओर मैं इतना आकर्षित क्यों हुआ था। ‘लैला-मजनू’ की कहानी तो पाठ्य-पुस्तकों में नहीं थी, पर इतिहास कथामाला में ‘पृथ्वीराज-संयुक्ता’ की कहानी मैंने अवश्य पढ़ी थी। मैं पृथ्वीराज की तरह ‘चंद्र’ को प्राप्त करना चाहता था। एकांत में एक दिन मौका पाकर, मैंने ‘चंद्र’ से कहा, “चंद्र !

पृथ्वीराज और संयुक्ता की कहानी....”

“मुझसे मत बोलो ! उस पार्टी के हो । हटो ।”—उसने डाँट बताया ।

“नहीं, नहीं—मैं उस पार्टी का नहीं हूँ ।”—मैंने गिड़गिड़ाकर कहा ।

“तब ?”—वह जाते-जाते रुक गयी ।

“मैं तुम्हारी पार्टी का हूँ ।”—मैंने कह दिया ।

“सच ?”—वह मेरे पास चली आयी ।

मैंने उसका हाथ पकड़कर कहा, “सच ।”

फूल की झाड़ी में, मेरी पार्टी का हट्टा-कट्टा लड़ाकू रजना छिपा हुआ बैठा था । उसने प्रकट होकर दाँत पीसते हुए मेरी ओर देखकर कहा, “घोलेबाज !”

मेरी संयुक्ता और पृथ्वीराज की कहानी अधूरी रह गयी । थँडू हाथ छुड़ाकर चली गयी । पृथ्वीराज के बदले, इतिहास में सिर्फ रामकथा पढ़नेवाले भी, मुझे जयचंद कहने लगे ।

हा० ई० स्कूल ।

पाठशाले की पढ़ाई समाप्त करके शहर के हा०ई० स्कूल में पहुँचा । सीभाष्य-वश या दुर्भाग्यवश मेरे पिताजी के वकील एक बंगाली सज्जन थे । अपने मुवक्किल के पुत्र को आपने सहर्ष अपने परिवार में सम्मिलित कर लिया । बंगालियों से घनिष्ठता तो हुई ही, साथ ही बंगला भाषा और बंगला संगीत की ओर भी मैं झुका । दो-तीन वर्षों के बाद तो स्वयं मुझे संदेह होने लगा कि मैं अ-बंगाली हूँ । कुछ दिन के बाद ही ‘बंगाली-अबंगाली’ की लड़ाई छिड़ी । दोनों ओर से खुलकर गालियाँ दी जाने लगी ।

अ-बंगाली कहते, “बंगाली जाति डरप्रोक जाति ! नीच !”

बंगाली प्रत्युत्तर में कहता, “छातूखोर, खोट्टा ।”

क्रोधित अ-बंगाली सीमा का उल्लंघन कर जाते । गालियाँ सुनकर मैं सिहर पड़ता । छीः, रबीन्द्र, जगदीश बसु, शरत् और सुभाष भी तो बंगाली है !!

बंगाली भी ईंट का जवाब पत्थर से देता । मेरे अंदर का अ-बंगाली बंगाली को डाँट देता ।

बंगाली मित्रों ने मेरे संबध में राय दी, “जाइ होक, हिंदुस्तानी शेखे हिंदुस्तानी ई !”

अ-बंगाली दोस्तों ने मेरी पीठ कोचते हुए कहा, “कहो, देख लिया न इनकी दोस्ती ! कमीना कोन....”

“चुप भी रहो ।”—झल्लाकर इनका भी मुँह बंद कर दिया ।

“यह बात है ?”—कहकर अ-बंगालियों ने सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पास कर ही दिया, “बंगालियों की गाली की हम परवाह नहीं करते, क्योंकि वे जो कुछ कहते या करते हैं, प्रांतीयता के नाम पर। किंतु, अ-बंगाली होकर भी जो बंगालियों का पक्ष लेते हैं, वे दगाबाज हैं, मक्कार हैं, मीरजाफर हैं। हमें वैसे व्यक्तियों से कोई संबंध नहीं रखना चाहिए।”

कॉलेज की कहानी जरा लंबी है, मगर है दिलचस्प।

स्कूल से इन विशेषणों से विभूषित होकर कॉलेज में पदार्पण किया। प्रांतीयता के फेर में न पड़ने की प्रतिज्ञा मैंने पहले ही कर ली थी।

‘फर्स्ट इयर’ तो देखते-मुनते बीत गया। सेकेंड इयर में पहुँचकर मैंने चोला बदलने की सोची। विशेष कोई परिवर्तन नहीं, सिर्फ धोती छोड़कर पाजामे में आ गया और डेढ़ इंच गले की पट्टी वाला लंबा कुर्ता बनवा लिया। एक शुभ दिन को वेप बदलकर सिनेमा हाउस की यात्रा मैंने की। तंगि पर बैठे हुए मेरे सहयात्री सज्जन ने मेरा नाम, इयर, कंबीनेशन, होस्टल और रूम-नंबर पूछने के बाद जब पूछा कि ‘आप किस पार्टी को बिलोंग करते हैं?’ तो मैं घबरा गया।

“सी० पी० (कम्युनिस्ट पार्टी)?” उन्होंने मुस्कराकर पूछा।

“जी हाँ।” मैंने पाँच मिनट का मामला समझकर कह दिया।

“आई सी...” कहकर हँसते हुए उन्होंने बेरहमी से एक धौल जमा दिया। मैं चौक पड़ा।

“वी आर कामरेड्स। डरो मत।”—वे मेरे कंधे पर हाथ रखकर प्यार-भरे शब्दों में बोले।

उस दिन ‘काश्मीर केबिन’ का बिल तो उन्होंने चुकाया, सिनेमा के फर्स्ट क्लास का टिकट भी खरीद दिया।

दूसरे दिन ज्यों ही क्लास पहुँचा, मेरे अंतरंग मित्र विनोद ने आकर मुस्कराते हुए कहा, “बाह ! पक्के सोशलिस्ट मालूम पड़ते हो।”

मैंने कहा, “जो भी कह डालो।”

विनोद बोला, “जो भी कह डालो नहीं, होना होगा।”

“क्या होना होगा?”—मैंने आश्चर्यित होकर पूछा।

“मेंबर ! और क्या ? मैं तो समझता था कि तुम किमी पार्टी पॉलिटिक्स से दिलचस्पी नहीं रखते। लेकिन देखता हूँ तुम कोरे नहीं हो।” वह मुस्कराने लगा।

मैं आज भी नहीं समझ पाया हूँ कि विनोद ने मुझमें किन गुणों को देखकर

पार्टी से दिलचस्पी रखनेवाला पक्का व्यक्ति समझा। जो भी हो, जिस दिन मेरा नाम स्टुडेंट फेडरेशन (कम्युनिस्ट ग्रुप) के रजिस्टर में दर्ज हुआ उसी दिन मेरे पास यह भी सूचना आ गयी कि मैं स्टुडेंट फेडरेशन (सोशलिस्ट ग्रुप) की वर्किंग कमेटी में ले लिया गया हूँ।

सिर्फ दो ही पार्टियों की बात रहती तो कोई बात न थी, एक दिन तीसरी पार्टी के चक्कर में पड़ गया।

‘क्यालक्याटा क्याफे’ (साइन बोर्ड के अनुसार) में बैठकर चाय पी रहा था। मेरे हाथ में बंगला की एक मासिक पत्रिका थी। मेरी बगल में मेरी ही उम्र के एक सज्जन चाय पी रहे थे। उन्होंने कई बार मुझे और मेरे हाथ की पत्रिका को घूरकर देखा और अंत में पूछ ही दिया, “आपनी बांगाली?” छातूखोर की उपाधि से बचने के लिए मैंने कह दिया, “आग्ये हूँ।”

“ओ ! एखाने पोड़ें ? की पोड़ें ?”

“सेकेड इयर आर्ट्स।”

‘भाली’—कहकर उन्होंने काफी के एक कोने में बैठकर बहस करते हुए युवकों को पुकारकर कहा, “उहे ! हावू, भोला, कालू, नीलू, फेला ! तोमरा से दिन बलले जे सेकेड इयर आर्ट्स में कोनो मेंबर नाय। एइजे इनी...”

‘ताइना की ताइना की’—कहते हुए ये सब-के-सब बहस छोड़कर दौड़ आये और मुझे घेरकर बैठ गये। फिर चाय का आर्डर हुआ, बाते हुई, मिलने-मिलाने के वादे हुए, ऑर्गेनाइज करने पर जोर दिया गया। सबसे मजे की बात तो यह रही कि मैं उन लोगों की पार्टी का नाम जाने बिना भी, ‘हाँ-हाँ’ करता गया। उसमें से एक युवक ने बढ़कर मैंनेजर से कुछ कहा फिर मेरे पास आकर धीरे से बोला, “आज थ्रेंगे कनसेशन। बुझलेन ! पार्टीर काफी तो ! एरा जानतो ना जे आपनी ब्लाकेर मेंबर।”

उस दिन से फारवर्ड ब्लाक के नाम पर ‘क्यालक्याटा क्याफे’ में मैं कनसेशन रेट पर ‘चाय-कटलेट’ पाने लगा।

रविवार को आराम से लेटकर ‘गोदान’ पढ़ रहा था कि विनोद ने, धड़-धड़ाते हुए, आकर कहा, “अजी ओ वर्किंग कमेटी के मेंबर साहब ! कुछ पता भी है ? कामरेड रामप्रताप आ रहे हैं। आज कमेटी की अर्जेंट मीटिंग है, चार बजे। समझे ? और कल पार्क में सभा हांगी।...अरे ! यह क्या पढ़ रहे हो, गोदान ? सिली।”

“क्यों ?”—मैंने महान् आश्चर्य प्रकट करत हुए पूछा।

“इट्स एरिएक्शनरी बुक।...अच्छा, चार बजे आते हो तो ?”—कहकर वह जैस आया था वैसे ही चला गया और मैं डिक्शनरी उठाकर ‘रिएक्शनरी’ का अर्थ ढूँढ़ने लगा।

ठीक साढ़े तीन बजे मैं सज-धजकर निकला। फाटक पर एक प्रियदर्शिनी 'अप-टु-डेट' युवती माली से पूछताछ कर रही थी। मैंने अपनी चप्पल से लेकर पंजाबी तक पर सरसरी निगाह डाल ली। माली ने मुझे देखते ही मेरी ओर दिखाकर कहा, "वही हैं।" वह मुस्कुराती हुई बढ़ी, मेरे पास आकर एक 'काम-रेडी अभिवादन' करके मेरे हाथ में एक पत्र देकर बोली, "अजेंट लेटर।" मैंने पत्र खोलकर पढ़ा, "'सोशलिस्ट लीडर रामप्रताप आ रहे हैं। अपनी पार्टी ने उसे चार स्टेशन बढ़कर काला झंडा दिखाने का प्रस्ताव पास किया है। आप मिस रोस्सा के साथ अभी चले जाइये। कल सुबह से ही वहाँ के मेंबरों को लेकर प्लेटफार्म पर तैयार रहियेगा। पंजाब मेल के आते ही 'रामप्रताप मुर्दाबाद' आदि पार्टी के नारों के साथ काला झंडा दिखा दीजियेगा। सेक्रेटरी।' पत्र समाप्त करके मैंने प्रतिवाद के लिए, आँखें जो उठायीं तो सारा शरीर पुलकित होकर रह गया। मैंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि मिस रोस्सा जैसी सुंदरी, मेरी ओर कभी उस मोहक दृष्टि से देखेगी। नेपोलियन एक आला दिमाग का आदमी था, मानना पड़ा। मैंने फिर एक बार आँखें उठायी। वह मुस्कुराती हुई, मिथ्री में भी मधुर स्वर में बोली, "चल रहे हैं न?"

"चलिए।" मैंने मस्ती में झूमते हुए कहा।

तंगे पर बैठकर हम लोग स्टेशन की ओर चल पड़े। कुछ क्षण के लिए मानो मुझे होश हुआ, 'यह मैं क्या करने जा रहा हूँ! जिनके लिए मेरे हृदय में अगाध श्रद्धा है उन्हीं का अपमान...' वह भी बेमतलब का? नहीं-नहीं, यह मुझसे नहीं होने का।'

"आप सिगरेट नहीं पीते?"

"....."

"आप सिगरेट नहीं पीते?"

"जी?...जी नहीं।"—मेरा ध्यान भंग हुआ।

"क्या सोच रहे थे कामरेड?"—उसने मेरी आँखों में आँखें डाल दी।

"सोच रहा था कि...जी, मैं कुछ नहीं सोच रहा था।"—मेरी आँखें बर-बस झुक गयीं।

"जाइये, मैं नहीं विश्वास करती। आप सोच तो कुछ जरूर रहे थे। मुझसे मन की बात क्यों छिपाते है? खैर, आप जो भी सोच रहे हों...क्या आप सिगरेट...एकदम नहीं पीते?"

"जी, एकदम माने...एकदम नहीं। पीने का आदी यानी 'हैबिच्युएटेड' नहीं हूँ।"

"तो पीजिए न!"—उसने अनुनय-भरे स्वर में कहा।

तंगेवाले ने उतरकर सिगरेट का टीन ला दिया। टीन काटकर अदा से मेरी

और मिगरेट बढ़ाने और माचिम जलाने तक की क्रिया उन्होंने ही की। सिगरेट सुनगाकर मैंने पूछा, "और आप?"

"मैं नहीं पीनी।"—किमी खाम मिनेमा स्टार की तरह उसने बड़े अंदाज से गरदन हिलायी। मैं मुंह बाये देखता रहा।

"आपके आश्चर्यित होने का कारण मैं समझ रही हूँ। बात यह है कि कई चीजों के संबंध में मेरी खाम राय है।"—पूछिए तो कहूँ की मुद्रा बनाकर वह मुस्कराती रही।

"जैसे?"—मैंने, मिगरेट का घुआ बाहर की ओर फेंकते हुए, पूछा।

"घुआ उधर क्यों फेंक रहे हैं?"—उसने उन्हाहना दिया।

"तो किधर फेंकूँ?"

"नहीं। मेरी ओर फेंकिए।"—बच्चों की भाँति वह मचलकर बोली।

"आपकी ओर?"

"जी हाँ। मैंने अभी कहा न कि कुछ चीजों के संबंध में मैं खाम राय रखती हूँ। मिगरेट को ही लीजिए न। मैं तो बिना मिगरेट के घुएँ की मुगंध के, पुरुषों के माथ की जाशा भी नहीं कर सकती। मिगरेट पुरुषों के पीने की चीज है और उसकी मुगंध स्त्रियों के उपभोग की चीज है।" अपनी राय नंबर एक को वह बड़ी गभीरतापूर्वक सुना गयी। मैं मिगरेट की फिलॉसफी में डूबकियाँ लेने लगा। दुनिया को भूल गया। वह फिर बोनी, "और दूसरी राय मैं नहीं बताती।"—'मैं रुठ गयी, मनाओ साजन' की मुद्रा उसने बनायी।

"बतलाइए न!" मेरी बोली में भी रंग उतर आया।

"पहले आप बतलाइए कि आप उस समय क्या सोच रहे थे?"

"मैं सोच रहा था..."

"हाँ-हाँ, कहिए।"

"क्या बताऊँ?"—मैंने उसकी ओर देखकर मुस्करा दिया।

"आप बड़े वो है। ऐसी बातें करते है, मानो नये और कोरे मेंबर हो।"

"मैं सोच रहा था कि मैं...आप..."

"बस, मैं समझ गयी।"—वह खिलखिला पड़ी। इतनी देर के बाद मुझे दुनिया, सड़क, राही, दूकान और ताँगेवाले की याद आयी। अप्रतिभ होकर इधर-उधर देखने लगा।

"बगल क्या झाँक रहे हैं? आप बताना तो खूब जानते है। बड़े आये है दुनिया की ओर इशारा करके मेरी परीक्षा लेने। सुनिए, मेरी दूसरी राय पुरुषों की दाढ़ी के संबंध में है। मैं 'डेली शेव' (दैनिक हजामत) के पक्ष में नहीं। एक दिन के बाद एक दिन की बनी हुई दाढ़ी..."

'सिगरेट-घुआ-फिलॉसफी' से यह 'दाढ़ी-फिलॉसफी' जरा कम गहरी थी।

मैं गड़ाप से जमीन तक पहुँच गया। मेरे मुँह से निकल ही पड़ा, “माई गाड……” फिर तुरंत स्मरण हुआ कि हम कम्युनिस्ट हैं और भगवान की लीला देखिए कि आप-ही-आप शब्द पूरा हो गया, “……रेज” पर जाकर।

“माई गाडरेज ! मतलब ?”—यह पूछ बैठी।

“गाडरेज ! गाडरेज नंबर एक, चाबी ट्रेड मार्क, स्वदेशी याने ‘गाडरेज शेविंग-स्टिक।’—मैंने अपनी हाजिर-जवाबी के लिए मन-ही-मन भगवान को धन्यवाद दिया।

“ओ ! दाढ़ी बनाने की बात मुनकर आपको शेविंग-स्टिक की बात याद आ गयी। क्या आप गाडरेज यूज करते हैं ?”

“जी।”—मैंने थककर संक्षिप्त उत्तर दिया।

“लेकिन……”

तांगा स्टेशन पर पहुँच चुका था। तगिबाने ने टोका, “हुजूर, गाड़ी प्लेट-फारम पर लग गयी।”

ट्रेन में बैठकर, कुली को पैसे देने के पहले उन्होंने सिगरेट का टीन मेरी ओर बढ़ाया। गाड़ी ने सीटी दी और मैंने ‘भक्क’ से खिड़की के बाहर धुआँ फेंका तथा अपनी गलती के लिए आँखों से ही क्षमा माँगकर, लगातार चार-पाँच बार उनके चेहरे पर धुएँ का गुब्बारा फेंक दिया। उनकी आँखें, धुएँ के मीठे अत्याचार सहती हुई, झिप गयीं, पर उनकी लंबी नुकीली नाक, पुलकित होकर सिगरेट-मोरभ का उपभोग करती रही।

दूसरे दिन प्रातःकाल।

गाड़ी आकर प्लेटफार्म पर लगी। और मैंने, अपनी पार्टी के दो दर्जन मेंबरों (जिनमें अधिकांश किशोर और किशोरियाँ थीं) के साथ नारा लगा ही दिया—“रामप्रताप मुर्दाबाद।” काले झंडों से प्लेटफार्म भर गया।

“रामप्रताप, कांग्रेस का पुछल्ला !”—यह नारा मिस रोस्सा ने लगाया।

“रामप्रताप, कांग्रेस का दुम !” मैंने इसका हिंदुस्तानी अनुवाद कर दिया।

यह तो नारा लगाने और झंडा दिखाने की बात थी, मिस रोस्सा के इशारे पर तो मैं किसी की गर्दन तक मरोड़ सकता था। एक-से-एक वजनी नारे लग रहे थे कि एक कंपार्टमेंट का दरवाजा खुला। भव्य ललाट और पश्चातोत्पादक व्यक्तित्व लिए एक व्यक्ति दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया तथा मंद-मंद मुस्काने लगा। उस मुस्कान को पवित्र मुस्कान कह सकते हैं।

“यही है, यही है।” रोस्सा बोली।

“हूँ……।”

“रामप्रताप मुर्दाबाद।” रोस्मा ने नारा लगाया।

“....।” मैंने क्या दुहराया, यह मेरी समझ में नहीं आया।

गाड़ी चल पड़ी। वह व्यक्ति उसी तरह मुस्कराता खड़ा रहा।

“लेकिन चेहरे पर जग भी शिकन....।” मैं कह ही रहा था कि रोस्मा बात काटकर बोली, “अरे गांधी का चेला है न ! सब पोपबाजी गांधी से इन लोगों ने सीखी है। जूते खाकर मुस्कराना। हिम् ! रंगे मियार !! बड़े चले हैं समाजवादी बनने ! क्रांति करेंगे ! ढोंगी !”

होस्टल पहुँचने के बाद मैं दो बातों की आशंका कर रहा था। प्रथम, विनोद से मैत्री-विच्छेद की, दूसरे इस पार्टी की ओर से अपने नाम ‘रटी-रटाई’, ‘छपी-छपाई’ गालियों की। कुछ हो जाता तो कम-से-कम पिंड छूटने की उम्मीद थी। पर हुआ कुछ भी नहीं। विनोद ने आकर अनुपस्थिति के लिए उलाहना भर दिया और घंटों सभा की सफलता की बातें करता रहा।

एक-दो महीने तक यही रवैया जारी रहा। कभी-कभी तो पढ़ाई-लिखाई छोड़कर घर भाग जाने की इच्छा होती। एक ही साथ तीन-तीन पार्टियों का मेंबर होना आखिर कब तक कोई अपनी इज्जत को सलामत रख सकता है ?

‘कलकटा काफे’ के कनसेशन और क्रेडिट के आगे सभी पार्टियों को कुर्बान करने जाता, तो मिस रोस्मा की रमभरी आँखें राह रोककर खड़ी हो जातीं। एक दिन ‘ब्लाक’ के एक मेंबर ने मुझे एकांत में ले जाकर एक बंगला ‘हैंड बिल’ दिया और उसका हिंदी अनुवाद करने का भार सौंप दिया। मैंने अनुवाद कर दिया। रात-भर मे ही उमकी छपाई-सफाई भी हो गयी। दूसरे दिन सुबह-सुबह मैं चौक से वापस आ रहा था। ताँगा रोककर ‘हैंड बिल’ का दो गट्टर मुझे चुपचाप सुपुर्द कर दिया गया। बँटवाना भी पड़ेगा। बाँटनेवाले न मिलें, तो खुदवा बाँटना भी पड़ेगा, यह था पार्टी का आदेश। एक जमाना था, जबकि माता-पिता के आदेश को विशेष महत्त्व दिया जाता था, माता-पिता के आदेश पर लोग जंगल की खाक तक छानते थे। पर इस वैज्ञानिक युग में पार्टी के आदेश को विशेष महत्त्व दिया गया है। माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना तो क्रांतिकारियों का धर्म ही है। सो इन परचों में गर्मागर्म बातें हों या ‘एटम-बम’, बाँटना या बँटवाना पड़ेगा ही। ताँगा दूसरे चौराहे के पास भी नहीं पहुँचा था कि किसी की भीठी पुकार मुनायी पड़ी, “कामरेड !”

मिस रोस्मा ! वह अपने तंगे पर से उतरकर मेरे तंगे पर आ गयी, मानो मेरे ही लिए जोगन-सी बन-बन भटक रही थी। हम लोग सिलसिले से बात करने का पोज बना ही रहे थे कि दस कदम पर फिर ताँगा रोका गया। इस बार की रुकावट आखिरी रुकावट थी। सी० आई० डी० इंस्पेक्टर महोदय थे। हम दोनों को साथ पाकर आपने बेहद खुशी जाहिर की। उन्होंने आवश्यकता से अधिक

नम्र होकर फर्माया, “माफ कीजिये, आप लोगों की तलाशी लूँगा।”

पास ही कोनवानी का एक छोटा दफ्तर था। हम लोग वही न जाये गये। बाजाप्ला तलाशी होने लगी। मिस रोस्सा के हैंड बैग से कुछ मुगंधित चिट्ठियाँ मथ लिकाफे के निकलीं। मैंने आँखें बचाकर एक पत्र को देखा। शीपंक था—मे रानी। कनेजा तो घड़क रहा था ही, आँखों की रोशनी भी गायब हो गयी।

जब गट्टरों की बारी आयी तो मैं धम्म में एक टूटी कुर्मी पर बैठ गया। गट्टर खुलने लगे। पुलिसवालों की बाछे खिल गयीं, ‘हियर यू आर।’

“कहिये साहब, इन गट्टरों में भृंगार की मामग्रियाँ और साड़ियाँ थीं न ! पचें कहीं से आ गये ?” इंसपेक्टर साहब ने मुस्कुराने हुए चुटकी ली।

मैं चुप रहा। रोस्सा पीली पड़ गयी। उसके मुँह में एक हल्की-सी चीख निकल पड़ी, “मेन्सेविख !!”

हम लोग स्थानीय जेल में पहुँचा दिये गये। ‘लेडीज वाइंड’ की ओर जाती हुई क्रांति की मूर्ति मिस रोस्सा फूट-फूटकर रो पड़ी। जेल में पहुँचकर मैंने राहत की साँस ली।

दूसरे दिन एक पत्र में निकला, ‘स्टुडेंट फेडरेशन (कम्युनिस्ट ग्रुप) के सदस्य कामरेड पी० राय तथा मिस रोस्सा आपत्तिजनक पत्रों के साथ गिरफ्तार !!’

दूसरे पत्र में खबर छपी, ‘स्टुडेंट फेडरेशन (सोशलिस्ट ग्रुप) की कार्यकारिणी समिति के सदस्य कामरेड प्रफुल्ल आपत्तिजनक पत्रों के साथ गिरफ्तार।’

तीसरे पत्र ने लिखा, ‘अग्रगामी दल के प्रमिद्व बंगाली कार्यकर्ता मिस्टर राय सरकार के मेहुमान बना लिये गये।’

यदि सच पूछा जाय तो प्रथम श्रेणी के राजनैतिक बंदियों को घर से भी बढ़कर जेल में आराम रहता है। खाना-मोना, पढ़ना-लिखना। किसी बात की फिक्र नहीं। सो ज़िदगी के दिन चैन से कटने लगे। रोस्सा तो दो दिन के बाद ही छोड़ दी गयी। पर अदालत ने मुझे तीन वर्ष की लंबी सजा दे दी। सोचा था. पार्टी के भयंकर भूत से पीछा छूटा। लेकिन 1947 का देशव्यापी आंदोलन छिड़ा। जेल खचाखच भर गयी। देखते-ही-देखते पार्टी की बीमारी भी फैल गयी। मुफ्त का खाना, आराम से सोना और गला फाड़कर बहस करना—बस। जेल में कम्युनिस्टों की संख्या नहीं के बराबर थी। वे अपनी दाल गलाने की चेष्टा करने की भी हिम्मत नहीं करते थे। गाँधी बाबा के भक्तगण तो चर्खा चलाने के सिवा अध्ययन, पठन-पाठन को भी पार्टी की ही चीज समझते थे। अतः वे इन झगड़ों से कोमों दूर रहते थे। बहस करना तो दूर, जेल अधिकारियों के दुर्व्यवहारों के खिलाफ आवाज उठाने को भी वे हिंसा करार देते थे। सोशलिस्टों का बहुमत था

और मैंने अपने को सोशलिस्ट कहने में ही अपना कल्याण समझा। कुछ दिनों के बाद मालूम हुआ कि कम्युनिस्ट पार्टी वाले अपने मेबरो की रिहाई के लिए अथक परिश्रम कर रहे हैं। उनके मुकदमों को देख-सुनकर पूरा भरोसा हुआ कि वे अपने मेबरो को अवश्य छुड़ा लेंगे। अतः एक दिन छिपकर कम्युनिस्टों को याद दिला आया कि वे मुझे भूल न जायें। यो तो जेल में किसी प्रकार की तकलीफ नहीं थी, फिर भी अपनी मुक्ति के लिए दिन-रात छटपटाया करता था। जेल से मुक्ति का अर्थ था पार्टी के दलदल से मुक्ति। इस दलदल में निकलने के लिए मैं जितनी ही चेष्टा करता था, उतना ही उसमें फँसता जाता था। दिन-भर भौतिकवाद पढ़कर ईश्वर की मत्ता को मिटाया करता था और रात में ममहरी के अंदर भगवान से अपनी मुक्ति के लिए पटो रो-रोकर प्रार्थना किया करता था। भगवान ने मुझ जैसे अनन्य भक्त की प्रार्थना मंजूर ली। मैं बीमार पड़ा। बीमारी ने रंग दिखलाया। पत्रों ने बारी-बारी से मेरी मुक्ति की माँग की। सरकार का ध्यान आकर्षित हुआ और मुझे समुचित चिकित्सा के लिए जनरल हॉस्पिटल भेज दिया गया। चिकित्सा होने लगी। वजन बढ़ने लगा, बुखार घटने लगा और सबसे बड़ा बात तो यह हुई कि पार्टी के भूतो में पिंड छूटा। ए० आर० पी० ट्रेनिंग के लिए आयी हुई मुशिक्षिता प्रियदर्शिनी बगानिन नर्मो मेरी तीमारदारी करती थी। मैंने देखा कि वे सबकी सब मुझमें खिंची रहती हैं। एक दिन बड़ी चतुराई से इस मनमुटाव के कारणों को जानने की चेष्टा की तो—पंचतंत्र की उम चक्रवाली कहानी की तरह—मिर पर पार्टी का चक्र सवार होकर नाचने लगा। मुझे गांधीवादी समझकर वे मुझसे चिढ़ती थी। क्योंकि गांधीवादियों ने सुभाष बोस को धोखा दिया था। मैंने एक अज्ञान प्रेरणा से प्रेरित होकर गांधीवादियों की जरा निंदा कर दी और उन लोगों ने मुझसे सैकड़ों प्रश्न पूछकर पता लगा ही लिया कि मैं फारवर्ड ब्लाकिस्ट हूँ। फिर क्या था, 'क्षण-भर चैन न पाऊँ सजनबी तोरे बिना' के सभी लक्षण प्रकट होने लगे। सरकार ने मुझे शीघ्र ही छोड़कर बुद्धिमानों का परिचय दिया वरना मैं एक नयी बीमारी का शिकार हो जाता।

मुक्ति पाकर मैंने प्रतिज्ञा की कि किसी पार्टी की चर्चा छिड़ते ही वहाँ से भाग खड़ा होऊँगा। चेष्टा तो मैंने खूब की पर एक पार्टी के हिमायती से भेंट हो ही गयी। पुरानी जान-पहचान थी, टालना आसान नहीं था। बातें करते-करते आपने पार्टी की पिटारी खोल ही दी। 'बवई योजना' के विरुद्ध—राय योजना का घोषणा-पत्र मेरे हाथ में देते हुए आपने फर्माया, "देखिए! यह रही कामरेड राय की योजना।" बहस करने से ही फँस जाने की पूरी आशंका थी और अपनी

राय दिये बिना रायिस्ट महोदय मे पल्ला छूटने की आशा नहीं। मेरे मुँह मे, 'अच्छी है'—सुनकर ही आपने दम लिया।

घर पहुँचते-पहुँचते ही मैंने पत्रों में पढ़ा, 'कामरेड प्रफुल्ल ने रिहा होकर बंबई योजना पर वक्तव्य देते हुए बताया कि यह शोपकों की योजना है। राय योजना से इसकी कोई तुलना हो नहीं सकती। राय योजना मही अर्थों में शोपितों की योजना है।'।

पढ़ाई-लिखाई की तो इतिथी हो गयी थी, घरवालों ने शादी का राग अलापना शुरू कर दिया। जेल जाने के पहले तो कन्या पक्षवालों का नाता लगा रहता था, मैं एक कीमती सोदा ममझा जाता था। किंतु अब तो लोग मुझ जैसे बेमतलब जेल चले जानेवाले को लडकी देना और लडकी को कुएँ में डाल देना, बराबर समझते थे। फिर भी एक सौभाग्यवती कन्या के अक्खड़ पिता को मुझ पर भरोसा था। माँ और पिताजी की आरजू-मिन्नतो को मानकर मैंने अपनी राय दे दी। बुलाहट हुई। मज-घजकर पहुँचा एक दिन। भावी जमाना के अनुकूल ही आवभगत हुई। कन्या के पिता आधुनिक विचारों के कायल थे और वर्तमान संसार में कुछ अपनी भी राय रखते थे। कन्या देखने-दिखाने के बाद उन्होंने संसार की राजनीति पर भाषण देना शुरू कर दिया। वे मुना रहे थे, मैं मुन रहा था। कुछ देर के बाद मैंने अनुभव किया कि पर्दे के उम पार खड़ी जनता मेरा प्रवचन सुनने को अधीर हो रही है। मैंने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि मुझे 'हाँ में हैं' मिलानेवाला ममझकर लोग छोट दें। अपनी भावी पत्नी को देखकर मैंने कल्पन के संसार में, नये डिजायन के कितने बंगले बना डाले थे। मुझे मैदान-जंग में उतरना ही पड़ा। बातों का मिलमिला 'क्विट इंडिया' तक पहुँच चुका था। मेरे भावी श्वसुर की राय थी कि कांग्रेस ने क्विट इंडिया प्रस्ताव पाम करके बक्कों की-गी गलती की। मुझे इसका विरोध करना ही पड़ा। वानावरण गर्म हो गया। पर्दे के उम पार की गर्मी का भी मैंने अनुभव किया। मेरी आवाज चौगुनी हो गयी और मैंने यहाँ तक कह डाला कि, "हमारी मजिन अब दूर नहीं। 1942 के बाद देश ने..."

"सुनिये!" मेरे एकमात्र भावी साले माहब ने अपनी कोठरी से निकलकर मुझे रोका, मैंने उनकी जवानी पर विश्वास करते हुए कहा, "कहिये मोहन बाबू! मैं गलत कह रहा हूँ?"

वे बैठ गये और बड़ी गंभीरतापूर्वक बोल्ने लगे, "देखिये प्रफुल्ल बाबू! अब तक मैं चुपचाप आपकी बातें सुनता रहा। जहाँ तक मेरी शक्ति थी, मैंने अपनी आत्मा को धोखा दिया, यानी अपने को रोके रहा। लेकिन बातें यहाँ तक बढ़ गयीं कि चुपचाप रहना मैंने मरामर नमकहुरामी समझी।"...

"जरूर! अवश्य!"—मैंने उत्साहित होकर कहा।

“आपने अंतिम कई बातें ऐसी कही है कि जो सोशललिस्टों की बातें हैं और एकदम भारत रक्षा कानून में आ जाती है। मेरा जहाँ तक अनुमान है कि आप किसी की इयूटी की महत्ता को अवश्य महसूस करते होंगे, इस अवस्था में भी मैं अपनी इयूटी नहीं बजा रहा हूँ, यह मेरी नमकहरामी के गिवाय और कुछ नहीं तो ...”—वे अपने पिना के मिगरेट केम में एक मिगरेट निकालकर सुलगाने लगे।

बूढ़ ने मुस्कुगते हुए मेरी ओर देखकर कहा, “वास्तव में यह पहला मौका है कि मैंने जल्दू को गम खाने देखा।”

“किस मुंह से बोलते हैं—पदों के उम पार से आवाज आयी, “लड़के की नयी नौकरी है, तरफ़की के लिए कोशिश करना तो दूर, बैठे-बिठाये बमबालों से रिश्ता जोड़कर नौकरी भी जे डूबने की तैयारी कर रहे हैं। मेरी लड़की क्वारी रहेगी, नहीं चाहिए मुझे ऐसा रिश्ता।”

सम्भवतः यह मेरी माम माहिया की क्रुद्ध वाणी थी। मेरी समझ में कुछ नहीं आया कि माजरा क्या है। मुझे तुरत ही समझा दिया गया कि मोहन बाबू को खाफ़या विभाग में नौकरी मिल गयी है—1943 में। यह उनके दास-जीवन में पहला मौका था कि वे अपनी आँख-कान से देख-सुनकर भी भारत रक्षा विधान के मुजरिम को छोड़ रहे थे। मेरे माय उन्होंने इतनी-सी रियायत अवश्य की कि मुझे दो घंटे का समय दे दिया।

मैंने मिफ़ पत्रह मिनट में ही तैयार होकर उनका घर तो ‘क्विट’ कर ही दिया, माय ही शादी की रही-सही आशा को भी ‘क्विट’ कर दिया। वह सौभाग्य-वती खिड़की पर खड़ी दयनीय मुद्रा बनाकर देखती रही। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में अंगू स्पष्ट दिखायी पड़ रहे थे, पर एक लंबी मांस छोड़कर वापस आने के सिवाय और चारा ही क्या था !

इस छोटे से ‘व्यापारिक कस्बे’ को पार्टी-पॉलि’ ... में परे समझकर मैंने यहाँ एक छोटी-सी नौकरी कर ली। किंतु अब आटे-दा’ का भाव मालूम हो रहा है। यहाँ तो मैकडों पार्टीयाँ हैं। अपने को किसी पार्टी से अलग रखकर एक कदम भी चलना मुश्किल है। महाशय ‘क’ से जरा हँसकर बात कर ली कि मिस्टर ‘ख’ की आँखों में चढ़ जाता है। पंडित ‘ग’ के यहाँ ट्यूशन करने जाता हूँ तो मुंशी ‘घ’ मुँह फुला लेते हैं। श्रीमान् ‘त’ एक मिल मालिक है, एक दिन मैंने उनका निमन्त्रण स्वीकार कर उनके यहाँ जरा खीर क्या चख ली, कार्ल मार्क्स का सारा ‘कैपिटल’ कलंकित हो गया। बड़ी-बड़ी दूकानों की बात तो जाने दीजिए, फेरी लगाने वालों की भी पार्टी है। एक दिन बाजार से मिगरेट अचानक गायब हो

गयी। सिगरेट पीनेवाले लोहे की दूकानों में भी सिगरेट तलाश करते पाये जाते थे। मैंने अपने चाय और सिगरेटवाता श्री शिबजी से पूछा कि भाई, तुम कहीं से सिगरेट ले आते हो? तो उसने दान निपोड़कर कहा, "जी, अपनी पार्टी के लोगों के लिए क्या करें...हैं...हैं ब्लैक मार्केट से..." समझने में देर नहीं लगी कि पार्टी की बढ़ीलत ही मैं सिगरेट पी रहा हूँ और मैं उसकी पार्टी का ही हूँ।

जब से कांग्रेस ने चुनाव लड़ने की घोषणा की है, यार लोग रंग बदल रहे हैं। जिन्होंने सरकार बहादुर के सामने प्रतिज्ञा की थी कि कभी किसी पार्टी में भाग नहीं लूंगा, उन्होंने भी 1942 की धुली, बक्म में बंद, गांधी टोपी निकालकर पहनना शुरू कर दिया। 'कांग्रेस' शब्द को उच्चारण करने के पहले जो इधर-उधर देख लेते थे, वे ही आज राह रोककर चुनाव की चर्चा करने लग गये हैं। मैं भी अब अपने को किसी पार्टी का घोषित कर सकता हूँ। कम्युनिस्टों से मेरी कोई दिलचस्पी नहीं रह गयी, क्योंकि मिम रोस्सा ने एक अमेरिकन मैगजिन से ज्ञादी करके अपने अंतर्राष्ट्रीय सिद्धांत को कार्य में परिणत कर दिया है। सोशलिस्टों को लोग दामन पसारकर दुआएँ दे रहे हैं। ब्लाक और कांग्रेस में मतभेद अब रहा ही नहीं। रास्ता साफ है। लेकिन पार्टी की चर्चा छिड़ने ही हृदय की गति बंद होने को हो जाती है। दिमाग चक्कर खाने लगता है। कुछ स्थिर भी कबू तो कैसे? दिन-भर में हजार बार प्रश्न पूछे जाते हैं:

"मि० 'ड' और 'ड' दोनों इस बार कांग्रेस के टिकट पर खड़े होने की मोच रहे हैं। आपकी राय में दोनों में से कौन 'फिट' है?"

"मिस्टर 'म' पर तो अनुशासन की कार्रवाई हुई थी?"

"मुनते है, राजा माहब कांग्रेस के विरोध में खड़े हो रहे हैं!"

"अरे साहब! श्रीयुत 'श' तो हिंदू मभा के टिकट पर खड़े होंगे। वे तो आपके घनिष्ठ मित्र है। मदद तो करनी ही पड़ेगी।" आदि।

मैं एकदम चुप्पी साध लेता हूँ। मेरी चुप्पी को इतना महत्व दिया जाने लगा है कि प्रत्येक पार्टी के मेंबर मुझे अपनी विरोधी पार्टी का भेद जाननेवाला समझने लगे हैं। नाको मे दम है। मैं सभी पार्टियों का हूँ, मैं किसी भी पार्टी का नहीं हूँ! किसी एक पार्टी को बरण किए बिना गुजर नहीं, पर जब प्रश्न उठता है कि 'किस पार्टी को?' तो मिर चक्कर खाकर रह जाता है।

दिन में चैन नहीं, रात में नींद नहीं आती। आती भी है तो बुरे सपने देखने लगता हूँ। देखता हूँ कि मैं मड़क पर भागा जा रहा हूँ। शहर के आवाजे लड़के मेरे पीछे टीन-बजा-बजाकर दौड़ रहे हैं। सब चिल्ला रहे हैं, "आप किस पार्टी के? आप किस पार्टी के?" मैं चिढ़कर उन लोगों को मारने दौड़ता हूँ, लड़के ढेले फेंकते हैं, तानियाँ पीटकर हँमते हैं। मड़क पर दौड़ रहा हूँ। दर्जी चिल्लाकर कहता है, "मड़क 'क' पार्टी की है!" मड़क छोड़कर पगडंडी पकड़ लेता हूँ। नाई

आवाज देता है, "पगडंडी 'ख' पार्टी की !" पगडंडी छोड़कर नाले में गिर पड़ता हूँ... चौकी पर से नीचे गिरकर नींद टूट जाती है। उठने की शक्ति शेष नहीं रह जाती है। कासा ज्वर से पीड़ित सेवक बुद्धन किसी तरह उठाकर चौकी पर बैठा देता है। सांत्वना देता है कि यह कुछ नहीं है। वह एक दिन गाँव जाकर अपने चचा को बुला लायेगा। वह झाड़-फूँक कर सब ठीक कर देगा। मुझे भूत लगा है। आदि-आदि।

मैं भी मानता हूँ कि मुझे भूत सता रहा है। भूत-प्रेत को नहीं माननेवालो से मेरी प्रार्थना है कि वे कम-से-कम इस भूत पर अवश्य विश्वास करें।

(अक्तूबर, 1945)

धर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे

भादो की रात । तुरत बारिस बंद हुई है । मेढक टरटरा रहे है । साँप ने बेग को पकड़ा है, बेग की दर्दभरी पुकार पर दिल में दया आने के बदले, भय मालूम होता है । आसपाम की झाड़ियों में फँला हुआ अधिकार और भी खोफनाक हो जाता है । उमी झाड़ी में एक गज की दूरी पर खड़ा करामत खाँ सिपाही, कमांडर के इशारे को प्रतीक्षा कर रहा है । बाँसो और पाट के खेतों में छरों की 'फुरहरी' जैसे जुगनू चमक रहे है । बीच-बीच में बिजली चमकती है । केले के पेड़ों से घिरे हुए झोपड़े सामने से नजर आते है । जब-जब झोपड़े दिखायी पड़ते हैं, करामत को अपने गाँव के अपने झोपड़ों की याद आ जाती है । '...कही उसके झोपड़े के आसपास भी, रात में, इसी तरह पुलिस और मिलेटरीवाले बंदूक ताने तो खड़े नहीं होंगे ? कौन जाने ?' और उसकी प्यारी बीबी अपनी बच्ची को छाती में सटाकर सोयी होगी । माँ शायद जगी हो । ...

लेकिन करामत से पचास गज की दूरी पर, पाटो के झुरमुट में खड़ा 'गोरा' सिपाही 'टाम' यह सब कुछ भी नहीं सोचता है । झाड़ियों के छोटे-छोटे बरसाती जोंकों से वह परेशान है । इन जोंकों के खोफ से वह पेशाब भी नहीं कर पाता है । '...फू...ब्लाडी !' बार-बार पतलून का बटन वह खोलता और बंद करता है । उसकी क्रुद्ध निगाह आसपाम की झाड़ियों की फुनगी पर लपलपाते हुए उन 'ब्लडी' हिंदुस्तानी जोंकों पर और कान चौकस—बिगुल सुनने के लिए । बिजली चमकती है, गाँव के झोपड़े नजर आते है । टाम को याद आती है 'जैक' की बात । कल 'जैक' रेड पार्टी में गया था । 'जशन' मनाया था जैक ने भी जी-भर । टाम के अदर का पशु भी धीरे-धीरे जागता है । ...वह और पेशाब की हाजत को रोक नहीं पाता है ।

टाचसिगनल !—रेड करो !! नौद में विभोर गाँव में घुमता है—आगे-आगे करामत का जत्था और पीछे-पीछे 'टाम' की टुकड़ी ।

...कुत्ते भूँकने लगे । सैकड़ों 'टाच' की रोशनी जीभ लपलपाने लगी । खूंट

से बँधे हुए जानवर रस्सी तुड़ाकर भागे । “भागो मट, गोनी मार डेगा”—इहल उठा गाँव । कुहराम शुरू हुआ । हजारों इंसान एक साथ रो पड़े । कुत्ते, इमान, उनकी औरतें, उनके बच्चे !...

“बायनट—फिक्स !”

“चार्ज !”

“आह-ह !”...

कुहराम और बढ़ता है । आवाजे और भी दर्दिली होती जाती है । कुत्ते और भी तेजी से भूँकने लगते हैं ।

“कोन भागटा है ?”

“फायर !”

“टूथिय !...।”

बाँसों के झुरमुट में, पास के पेड़ों पर सोये हुए पारदे फड़फड़ाकर उड़ भागे । रात अँधेरी होने पर भी आममान मुक्त है, वे पाँखे फैलाकर उड़ सकते हैं । जहाँ जी चाहे जा सकते हैं । मगर, घरती पर, गाँवों में, झोंपड़ों के इंसान ? वे तो घिरे हैं !

“बाबा हो, अरे बाप मरि गेल्ला रे बाप !”

“चडन कुमार कहाँ है, बटाव ?”

“हुजूर, हमरा कुच्छू नै मालूम ।”

“गाँडी का बच्चा, काला कुट्टा ।”

“घरों में घुसकर खोजा जाय ।”

भूखे कुत्तों की तरह टामियों की टुकड़ी टूट पड़ती है । पूर्वी मोर्चे पर मरने से पहले इन्हें खुलकर ‘मौज’ करने का हुक्म है । हिंदुस्तानी गिपाही के जत्थे में करामत के सिवा सभी हँसते हुए बड़े । इस बार औरतों और बच्चों की चीख-पुकार से आसमान भी रो पड़ता है । मूसलाघार बरसा में टाच की रोशनी अजीब-सी मालूम होती है ।...घर-घर में गोरे और काले सिपाही !

“हे सरकार...” एक घर के कोनों में से किसी के लंबे बालों को पकड़कर बाहर घसीट लाता है । एक गोरा । लंबा बाल ! औरत । गोरा उन्मत्त हो जाता है ।

“आह...”

“सिस्—सटअप !”

“आयग गि-गि-गि...” मुँह में कुछ ठूस दिया गया शायद ।

गोरा अँधेरे में उसकी छाती टटोलता है फिर तुरंत उठ खड़ा होता है । बूट की एक ठोकर देकर बड़बड़ाता है, “फ्...ओरुड दिस ।”

फर्श पर पड़ी बुढ़िया बूट की ठोकर खाकर चिल्लाने की चेष्टा करती है,

“जीय गि-गि....।”

“माय री....”

टाम के हाथ एक चौदह वर्ष की बालिका पड़ती है। बरसा की रफ्तार और तेज हो जाती है। बिजलियाँ और जल्दी-जल्दी चमकने लगती हैं और फूल जैसी बालिका के सीने पर बैठा इंसान और भी जानवर बनता जाता है। बिजली चमकती है... उसके सुदूर मुखड़े का गोरा काट खाता है। बिजली चमकती है, मुखड़े से लहू की बूँदें टपकती हैं। बिजली चमकती है—बच्ची की निष्कलंक आँखें पथराती जाती हैं।... जमीन पर उमका शरीर निस्पंद पड़ा रहता है। ‘टाम’ खड़ा होकर पतलून का बटन लगाता है। फिर बिजली चमकती है—बच्ची की पलकें मिपनी नहीं, खुली की खुली ही रह जाती हैं...

घर-घर से दबोचे हुए मुँह में धिधियान की आवाज आती है। बलिदान के समय पशु जिस तरह धिधियाते हैं। बच्चों के गले से खून निकल रहा होगा, उनकी रोने की आवाज से ऐसा ही मालूम होता है।...

करामत खाँ आम्ड फोर्स का सिपाही नं० 285 एक अंधेरी गली में चुपचाप खड़ा, नमकहरामी और नमकहलाली की सीमा पर झूलता है। वह गिनता है—उसके पास सिर्फ पंद्रह गोलियाँ हैं। सिर्फ पंद्रह? ... उसकी बीबी, उसकी बच्ची, माँ... सामने कोई छाया उसे देखकर छिप जाती है, ‘जाने भी दो, कोई बेचारा जान बचाकर भाग रहा है।’—करामत ने पहली नमकहरामी की।

गाँव में कुहराम जारी है। मदों पर लाठियाँ, संगीन और कोड़े बरसते हैं। गाँव-भर की बूढ़ियाँ बूट की ठोकर खा रही हैं, जवान औरतें घर-घर में, झाँपड़े-झाँपड़े में जमीन पर बेहोश, दम तोड़ती कराह रही हैं। और श्री पारम चौधरी, पाम के गाँव के ही प्रमुख जमींदार, जो आदतन खट्वाधारी थे और जिन्होंने सिर्फ ता० 1-0 अगस्त से मिल का कपड़ा पहनना शुरू किया था। ऐसे पारस चौधरीजी, एस० पी० साहब से कहते हैं, बार-बार कहते हैं, “घर घुमकर खाजा जाय, हुजूर, इस घर में देखा जाय, हुजूर, उमका पाँटा जाय, वह भारा काप्रेमा बदमाश है,” उम्मी पारम चौधरी के कहने पर एक घर में आग लगा दी जाती है। छप्पर भीगा हुआ है, इसलिए आग धीरे-धीरे मुलगतो है। किन्तु उम मुदार रोंशनी से भी अंधरा दूर हो रहा है। रोंशनी में करामत कुछ दखता है और उसका झूलना मानो शेष हो जाता है। ... खुले आममान के नीचे, कीचड़ में एक औरत हाथ-पाँव मार रही है... गारा नहीं, काला मिपाही...? रामपरीक्षा सिंह? ... और बगल में वह दो बरस की बच्ची गला फाड़कर रो रही है... रामपरीक्षा सिंह... उसकी बीबी... उसकी बच्ची... माँ... नमकहरामी... वह निशाना लेता है, ‘ठाय !’

करामत ने दूसरी नमकहरामी की। वह और चौदह बार नमकहरामी तो कर ही सकता है। ... नमकहलालों में इस अकेले नमकहराम की अब मुठभेड़

होती है... ठाय, ठाय, ठाय...।

अंत में वह नमकहराम ठीक-ठीक सोलह बार नमकहरामी करने का मजा पाता है। आ...अल्लाह...!

भादों की अँधेरी रात। जिस समय गाँव में लूट मची हुई थी, दो माइल दूर एक जंगल में 'आजाद दस्ते' की बैठक में हिमा व अहिंसा के सवाल पर मतभेद हो चुका था। इलाके के पुराने और प्रतिष्ठित कांग्रेसी नेता श्री चंदनकुमारजी, जिन्हें खोजने के लिए एक सारे गाँव का मत्यानाश कर दिया जाता है, अपने साथियों के साथ पूरे अहिंसक हो गये हैं और बाकी लोग अ० भा० का० क० के 8 अगस्त के फैमले और ऐलान के मुताबिक अपने को अपना नेता मानकर, अपनी आत्मा की आज्ञा को मानकर रायफलों, बमों, रिबॉल्वरो और रूपयों का हिसाब-किताब कर रहे थे। वे हिंसक हो चुके थे...

करामत की पहली नमकहरामी के कारण, छिपकर भाग आनेवाला 'आजाद दस्ता' का दूत सतना दौड़ता हुआ खबर देता है, "गाँव पर फौजी हमला हो गया है।"

"मगर हम तो दूर हैं, सुरक्षित हैं।" चंदनकुमारजी जवाब देते हैं। क्योंकि वे उस समय अपने को सारे दल का नेता मानते थे।

"वे लूट रहे हैं!"

"वे तो करेंगे ही।"—चंदनकुमारजी कहते हैं।

"वे औरतों को बेइज्जत कर रहे हैं!"

"क्या किया जा सकता है?"—लाचारी जाहिर करते हैं चंदनकुमारजी।

"गाँव-भर में एक औरत नहीं बची।"

"तैयार!" हिंसकों में से एक उठकर कहता है। सभी हिंसक उठ खड़े होते हैं। एक बढ़ता है, उसके पीछे सभी बढ़ते हैं। वे चले जाते हैं और चंदनकुमारजी अपने दल के लोगों से कहते हैं, "गांधीजी की अहिंसा का मखौल उड़ानेवाले थे, इन मूखों को कौन समझावे। जाने दो..." जंगल से बाहर निकलकर, नया कमांडर चार-पाँच शब्दों का एक भाषण दे डालता है, "यदि इन्हें छोड़ दिया गया तो हजारों-हजार गाँवों की ऐसी ही दुर्दशा करेंगे ये। हमने यदि आज डटकर मुकाबला किया तो फिर समझ लीजिये कि ऐसी घटना फिर नहीं घट सकती।"

"और मिलिटरी वालों को बुला लाये थे पारस चौधरीजी।"—दूत 'सतना' कहता है।

"पारस चौधरी?"

डेढ़ दर्जन हिंसकों ने दाँत पीसा, मानो बिजली चमक उठी। आसमान में

नये बादल उमड़-धुमड़ रहे थे ।

गाँव में कुहराम धम गया था । कुछ औरते धीरे-धीरे रो रही थी और एकाध बूँबे रो रहे थे । जिस घर में आग लगायी गयी थी, वह जलकर खाक हो चुका था, मगर आग लहलहा रही थी ।

“मिलेटरीवाले घाट पार कर रहे हैं ।”

“चलो ।”

आसमान में जोरों से वादल गरज उठता है । मिलेटरी और मिलेटरी अफसरों को लेकर दसों नाव किनारा छोड़ रही थी । नदी के किनारे ऊँचे कगार पर एक मेंड़ के बगल में लेटकर डेढ़ दर्जन ‘हिसक’ हिमा के लिए तैयार है ।

“उन्होंने लूटा है !”

‘टू ठाय, टू ठाय’...

“उन्होंने मारपीट की है, जुल्म किया है !”

‘टू ठाय, टू ठाय’...

“उन्होंने औरतों को बेइज्जत किया है ।”

‘टू ठाय, टू ठाय’...

‘फड़ फड़ फड़र र र र’...

फौजी अफसर का मशीनगन फड़फड़ा उठा । ‘...घबराओ मत दोस्त ! देबन की लाश हटा दो, उगसा रायफल लो । ...बंशी की थैली में देखो कारतूस है ! ...बंशी को एक चुल्लू पानी पिलाओ ! लेट जाओ, दाहिनी नाव पर निशाना करो’...

‘धड़ धड़ाम ! धड़ धड़ाम !’—आजाद दोस्त की ओर से ‘हेडघेनेड’ फेंके जाते हैं । बिजली गिरने जैसी आवाज होती है, नदी का पानी बाँसो उछलता है ।...

“...सब शात !”

शात नहीं, पारम चौधरी को देखना होगा । चलो ! चार कम डेढ़ दर्जन हिमको ने अपने माथियों की लाशों को कंधे पर टाँग लिया और चले ।

बाद में खबर फैली, ‘बिसनपुर मिलेटरी रेंज में एक मुसलमान सिपाही को बलात्कार करत देखकर एक हिंदू सिपाही ने रोका । इस पर मुसलमान सिपाही ने उसे गोली दाग दी । इसके बाद तरह हिंदू और एक गोरा को उसने मार दिया । आखिर में वह भी मारा गया । इस पर गोर और हिंदू सिपाहियों में फिर घाट पर लड़ाई हो गयी । करीब-करीब चालीस गोरा मिलेटरी, दस हिंदू और पाँच अफसर मारे गये ।’

जनता ने, इस खबर को सुनकर, मन-ही-मन उन हिंदू सिपाहियों की धोरत को सराहा और करामत के नाम पर थूका, “साला !”

यह भी खबर फैली, 'राघोपुर के पारस चौधरी के घर में आतिकागियों ने सशस्त्र डकैती की। रुपये, गहना-ज्वर लूट लेने के बाद पारस चौधरी को गोली से उड़ा दिया।'।

जनता ने इस खबर को सुनकर आतिकागियों के प्रति घृणा प्रकट की।

अभी हाल में ही, एक सभा में श्री चंदनकुमारजी एम० एल० ए० का समाजवाद-विरोधी भाषण हो रहा था क्योंकि समाजवादियों ने यहाँ के किसानों को न जाने कैसे समझा दिया कि अब जमींदारी प्रथा नहीं रह सकती और जमीन पर जोतने-वालों का हक होना चाहिए और किसान मजदूरों के राज का मतलब ही है असली सुराज। एम० एल० ए० साहब के फायल और बिस्तर ढोनेवाले, स्थानीय कांग्रेस कमिटी के एक पदाधिकारी और भावी एम० एल० ए० साहब ने कहा, "वे गाँव की शांति भंग करते हैं।"

चंदनकुमारजी एम० एल० ए० साहब कह रहे थे, "भाइयो ! याद रखिए। ये बही लोग हैं, जिन्होंने पारस चौधरी जैसे प्रमुख कांग्रेस भक्त को गोली मार दी थी। ये डकैत हैं, देश के दुश्मन हैं..."

उनके फायल ढोनेवाले शांति के अग्रदूत जी ने जोरों से ताली पीटकर नारा लगा दिया, "देशद्रोही ! मुर्दाबाद !"

(अगस्त, 1949)

वंडरफुल स्टूडियो

फोटो तो अपने दर्जनो पोज में उतारे हुए अलबम में पड़े है, फ्रेम में मड़े हुए अपने तथा दोस्तों के कमरे में लटक रहे है और एक जमाने में, यानी दो-तीन साल पहले, उन तस्वीरों को देखकर मुझे पहचाना भी जा सकता था। लेकिन 'स्वास्थ्य-संशोधन' के बाद वजन में परिवर्तन और चेहरे में परिवर्तन होकर जो मेरी सूरत का नया संस्करण निकला, उसे पहचानने में मैं खुद कई बार भटक गया हूँ। कहीं वह 95 पाउंडवाला चेहरा और कहीं यह 154 पाउंड की सूरत !

दास्तो ने कई बार सलाह दी कि एक नया फोटो उतरवाकर पिछली सभी तस्वीरों के 'कैसिल' होने की घोषणा कर दूँ, और अपने मन में भी कई बार सोचकर देखा कि यह 'गुलगुली' न जाने कब गायब हो जाय ! चुनौति एक नया फोटो खिचवाने का फैसला कर लिया गया। वरना, मैं तो अपने को ऐसा परिपक्व पॉलिटिशियन समझे बैठा था जिसकी तस्वीर के लिए सैकड़ों नहीं, तो कम-से-कम दस कमरेवाले नौजवान ज़रूर चक्कर काटते है। असल में अपना फोटो उतरवाना 'बचकाना' शौक-सा मालूम होता था।

फोटो उतरवाने की बात तो तय हो गयी, लेकिन उस शाम को यह फैसला नहीं हो सका कि फोटो कहीं उतरवाया जाय। हमारे एक मुँहबोले भाईजान हैं, जिन्हें हम इनसायक्लोपेडिया की तरह काम में लाते है। अमली जाफरान किस दूकान में मिलती है, मुर्ग-मुसल्लम किस होटल पर बेहतरीन होता है, कॉफी किस 'काफे' की सही जायकेवाला होती है, असली गबरडीन कपड़ा किस दूकान में है, बड़े सज्जन और फिजिशियन कौन-कौन है और किस 'टेल्सिंग' की क्या विशेषता है, वगैरह बातों के अलावा पारिवारिक उलझनों को सुलझाने में उनसे बराबर मदद मिलती है।

भाईजान ने कहा, "एक जमाना था जब राजू चौधरी अच्छी तस्वीरें बनाया करता था। गवर्नमेंट हाउस से लेकर 'शहादत आश्रम' तक उसकी पूछ थी। अब्बल दर्जे के फोटोग्राफर के साथ ही वह पक्का मेहनती भी था। उस बार इमजान

घाट में पूरे तीन घंटे तक मेहनत करके डॉ० अग्रवाल की लाश की ऐसी तस्वीर उमने ली कि जिसे देखकर हर आदमी की स्त्राविश...

मनमोहनजी की आदत है कि हमेशा भाईजान की बात को बीच में ही काट देते हैं। बोले, "किम मुर्दे की बात कर रहे हैं आप? आजकल चतुर्वेदी स्टुडियो है जिसके बारे में दो राये नहीं हो सकती!"

भाईजान ऐसे मौके पर कभी झुंझलाने नहीं है। उन्होंने फिर शुरू किया, "इसके बाद घोपाल अपने नये कैमरों के साथ मैदान में उतरा। उसके बारे में यह मशहूर है कि बगैर 'रिटच' किये ही बेहतरीन तस्वीरें बनाया करता था। फिर 'आलोछाया' वालों का युग आया, जो 'लाइट और शेड' की कला में निपुण था। प्रोफेसर किरण की एक ऐसी तस्वीर उमने उतारी थी, जिसे इंटरनेशनल फोटोग्राफी प्रदर्शनी में प्रदर्शित करने की चर्चा जोगों पर चल पड़ी थी। मिर्फ नाक पर लाइट दिया गया था। जरा कल्पना कीजिए, काले कांड पर मिर्फ नाक और चश्मे के फ्रेम के एक कोने पर हल्की रोशनी डाली गयी है और आप उस काले कांड पर प्रोफेसर किरण की मूर्त को स्पष्ट देख रहे हैं। अब तो चतुर्वेदी का मार्केट है, मगर..."

"मगर क्या?" रमाकिशुनजी ने पूछा।

"मतलब यह कि चतुर्वेदी के यहाँ जानेवालों को अपने पॉकेट पर पूरा भरोसा होना चाहिए।" भाईजान ने फरमाया।

बीरेन को न जाने क्यों यह बात लग गयी। वह बोला, "भाईजी! आपका यह इल्जाम सरामर गलत और गैरवाजिब है। बेचारा पैसा लेता है तो काम भी करता है। फिल्मों और प्लेटों की बढती हुई कीमतों का भी पता है आपको?"

मजलिस को बहम के लिए काफी ममाला मिल गया था और मुझे याद आयी कि 'चाय' के पैकेट खत्म होने की सूचना मुझे सुबह ही दे दी गयी थी। सरकारी ट्रेजरी से पैसों का खर्चा निकालना आसान है, लेकिन 'चूल्हे-चौके' की सरकार में पैसे मजूर करवाकर निकलवाना कितना कठिन है, यह लिखने की बात नहीं। पैसे निकलने है जरूर, मगर हड्डियों में घुस जानेवाले रिमाकों के साथ।

"हजार बार कहा कि अपने लिए 'हैपी वैली' लाते हो तो उसके साथ ही ब्रुकबाइ के 'होटल ब्लेंड' वाले डस्ट का भी एक पैकेट ले आया करो। लेकिन इन तरतों 'चाय का शोकीन' कहाने का भूत सवार है। दोस्तों ने कह दिया—यार, चाय के असल शोकीन तो तुम्ही हो—बस, बन गये उल्लू। पूरे छः रुपये बारह आने पाउंडवाली चाय पिलाये जा रहे हैं। दुनिया में आग लगी हुई है और यहाँ 'व्हाइट प्रिंस' पीने के मसूबे बाँधे जा रहे हैं..."—यह मेरी सरकार की, सलाह कहें या फटकार कहें, नसीहत है।

'व्हाइट प्रिंस' नहीं, 'व्हाइट जेसमिन'! एक दिन हमारी मजलिस में इस

बात की चर्चा हो रही थी कि हिंदुस्तान की कौन-सी गविसयस कौन-सी चाय और सिगरेट पीती है। मौलाना आजाद के बारे में कहा गया कि वे व्हाइट जेसमिन चाय पीते हैं। मौलाना ने अपनी किताब 'गोवारे खातिर' में कबूल की है। और इसी सिलसिले में हममें से किसी की सरस और चंचल रसना से यह पुरहौसला उद्गार जरा जोरसे निकल पड़ा था, "जिंदगी कायम रही तो हम भी कभी चब लेंगे भाई!" पदों के उस पार यही बात पहुँच गयी थी और उसी दिन से मुझ पर व्हाइट प्रिंस का व्यंग्यबाण छोड़ा जा रहा था। यहाँ तक कि ससुराल से यह बात यों 'रिडायरेक्ट' होकर पहुँची थी, "व्हाइट ऐलिफेंट साहब व्हाइट प्रिंस पीने के मसूबे बाँध रहे हैं।"

चुन्नीलाल को चाय और सिगरेट के लिए बाजार दौड़ाकर जब मैं वापस आया तब बात एकोनामिक्स के डिप्रेसन के दायरे को पार कर पॉलिटिक्स के सोशलिज्म, कम्युनिज्म और प्रजा-सोशलिज्म के भँवर में चक्कर काट रही थी। रोज यही होता है। बात कोई भी हो और कहीं से प्रारंभ किया जाय, उपसंहार यही होता है।

इसलिए उस शाम की मजलिस में यह तय नहीं हो पाया कि फोटो कहाँ उतरवाया जाय।

दूसरे दिन शाम को जब मैं चौक से गुजर रहा था, 'बंडरफुल स्टुडियो' के बंडरफुल माइनबोर्ड की जलने-बुझनेवाली रोशनी ने फोटो की याद दिला दी। यह भी याद आयी कि राजन यही काम करता है। राजन, हमारा कलाकार मित्र, जो शांतिनिकेतन से फाइन आर्ट्स का डिप्लोमा प्राप्त कर साल-भर तक यहाँ फाँक करता रहा। अब इसी स्टुडियो में उसे नौकरी मिल गयी है। आखिर 'बंडरफुल' में ही फोटो उतरवाने का इरादा मैंने पक्का कर लिया।

दूकान में दाखिल होते ही एक खास ढंग के आदमी से सामना हुआ, "फर्माइये जी। मैं ही बंडरफुल का डिरेक्टर हूँ।"

"फोटो लेना है।"

"बेहतर जी। चलिए, अंदर स्टुडियो में।"

सामने मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था, 'यह दुनिया एक बंडरफुल स्टुडियो है।'

"राजनजी कहाँ है?" मैंने पूछा।

"कौन राजन? म्हारा आरटिस्ट! वो तो आज बिथ-बाइफ रेडियो सटेजन गया हुआ है। कमरमल आरट पर आज उनका टाक है।" वह आदमी लुढ़कता हुआ आगे-आगे चल रहा था।

अदर के एक कमरे में पहुँचकर वह हमारा ओर मुड़ा, "अच्छा जो न्हाई मा'ब, पांज आपका अपना होगा या हमारे सेट्स के मुताबिक?"

“क्या मतलब ?”

“मतलब समझा देता हूँ”—उसने अपने गले से लटकते हुए मेगनीफाइंग ग्लास की रेशमी डोरी को उँगलियों में लपेटते हुए कहा, “सा’ब, बात यह है कि हमने अपने कस्टमरों की इच्छा के मुताबिक, बड़े-बड़े आर्टिस्टों को एम्पलाय करके तरह-तरह के सेट्स बनवाये हैं ।... इधर आइए । (पर्दा हटाकर) वह है हमारा फिल्मी सेट, और ये रहीं तस्वीरें इस सेट की !” उसने एक बड़ा एक्जम्पल खोला ।

तस्वीरों में देखा, फिल्म की मशहूर अभिनेत्रियों के अभिनय के दृश्य थे । बात कुछ समय में नहीं आयी । बोला, “ये तो फिल्मी तस्वीरें हैं ?”

“जी मा’ब, देखने से तो यही मालूम होती है”—अपनी काया के अनुपात से एक भारी-भरकम हँसी हँमते हुए उसने कहा, “यही तो म्हारी बसूसियत है । जरा गौर से देखना जी—हमने अपने कस्टमरों की क्वाहिश के मुताबिक उन्हें सुरैया, नरगिस, ललिनी, निम्मी बगैरह के साथ एक्टिंग के पोज में खड़ा कर फोटो लिया है !”

अब सभी तस्वीरें मेरी निगाह में एक साथ नाच गयीं । राजकपूर, दिलीप-कुमार तथा देवानंद की तरह बालों को सँवारे हुए नौजवान (और किशोर भी) अभिनय की मुद्रा बनाये हुए हैं । कोई सुरैया की ठुड्डी पकड़कर कुछ कह रहा है । कोई घुटनों तक नेकर और नेवी गंजी पहने हुए, नरगिस के हाथ-में-हाथ डाले, ‘आवारा’ के एक पोज में है और कोई निम्मी के कंधे पर हाथ डाले, दिलीप-कुमार के अंदाज में कुछ कहना चाहता है !

“यह सब ? ये अभिनेत्रियाँ ?” मैं सिलसिले से कुछ पूछ भी न सका ।

“ये एक्टरस ! हैंजी, वो ‘डमी’ हैं । हमने बड़े-बड़े फनकारों को अपने यहाँ एम्पलाय किया है, वो हमें हर नये पोज के लिए मिट्टी की मूर्तियाँ गढ़ देता है ।”

“क्या लड़कियाँ भी इस तरह के पोज में तस्वीरें उतरवाती हैं ?” मैंने जरा साहम से काम लिया ।

“जी भोत ! उनके लिए हमने एक्टरों की ‘डम्मियों’ बनवा रक्खी हैं । ज्यादातर लड़कियाँ अशोककुमार, दिलीप और राजकपूर के साथ ‘अपियर’ होना चाहती हैं । वैसे तो उम दिन एक कालिजगर्ल ने कामेडियन मिर्जा मुशर्रफ के साथ उतरवाने की क्वाहिश जाहिर की, मगर एक कस्टमर के लिए कौन डम्मी बनाता है ? पिछले महीने पचीस कस्टमरों के आर्डर पर हमने एक ‘शेर’ की ‘डमी’ बनवायी, लोग ‘मेममन’ की तरह शेर से तरह लड़ते हुए तस्वीर उतरवाना चाहते हैं ।”

“लेकिन फोटो में तो ये डम्मी जानदार मालूम होते हैं ।” मैंने अपनी मुस्कुराहट को होंठों में ही रोकते हुए कहा ।

“जी सा’ब ! वो हमारे लाइट शेड, मेकअप और रिटैब मे ठीक हो जाते हैं।”

लड़के ने आकर कहा, “सा’ब ! फिल्म सेट का कस्टमर आया हुआ है।”

“ले आओ”—फिर मुझमे बोला, “चलिए, हम आपको अपना दूसरा सेट दिखावें। आपको मेरा पॉलिटिकल सेट जरूर पसंद होगा।”

हॉल के दूसरे पार्टीशन में हम गये। बड़े उत्साह से बंडरफुल डिरेक्टर साहब ने मुझे अलबम दिखाना शुरू किया, “देखो जी भाई सा’ब ! ये है आइना पोजेज !”

एक तस्वीर में देखा, मिलिटरी पोशाक में कुछ लड़कियाँ कवायद कर रही हैं।

“आइना पोज क्या ?”

“आप आइना नहीं ममझे ? अरे ! आइना ? इंडियन नेशनल आर्मी ! बिल्लन, सहगल, शाहनवाज और काप्टन लक्ष्मी....”

“ओ ! आइ० एन० ए० ?”

“उस समय तो सा’ब, सब लड़कियों को बम यही शौक था, लिहाजा हमने मिलेटरी वर्दियाँ और ‘डम्मी’ रायफल बनवाये !”

मैं एक तस्वीर को गौर से देखने लगा—एक दुबली-पतली, लंबी लड़की, जिसके गालों में गड़वे ये, आँखें छोटी और अंदर घुमी हुई, ठीक कैप्टन लक्ष्मी के पोज में सेल्यूट....नहीं....जयहिंद कह रही है। उसके दुबले हाथ में रायफल का कुंदा हाथी के पाँव—जैसा मालूम हो रहा है।

“और इधर देखिये। हजारों का मजमा है। नेताजी भाषण दे रहे हैं। मामने ‘माइक’ है।”

फोटो में भीड़ को देखकर कांग्रेस के महाधिवेशन की याद आ रही थी। मैंने ताज्जुब से कहा, “हजारों का मजमा नहीं, लाखों का कहिए। लेकिन....इनने लोगों को, यानी इतनी ‘डम्मियाँ’ आपने कैसे बनवायीं ?”

वह हँस पड़ा, शायद मेरी बेवकूफी पर। फिर बोला, “सा’ब, ये फोटोग्राफ़क टिरीक हैं। हमने इस तरह के पर्दे बनवा लिये हैं।”

“देखो जी ! ये मजदूरों का लीडर है। हजारों मजदूरों के जनूस की रहनुमाई कर रहा है।”

देखा—हजारों मजदूरों की लंबी कतार के आगे हाथ में झंडा (सही रंग नहीं कह सकता, क्योंकि फोटो में काला ही था, और झंडे के निशान के बारे में जानकर क्या कीजियेगा ?) लिए हुए, बाल बिजराये हुए, मुँह फाड़े हुए, मजदूरों के लीडर कदम आगे बढ़ा रहे हैं। बाह !

“इस पोज में राजनैतिक कार्यकर्ता या लीडर क्यों अपनी तस्वीर उतरवायेंगे ! इसे तो बँडे-छाले लोग ही पसंद करते होंगे। फोटो देखकर भी तो यही जाहिर होता है ?” मैंने कहा।

“आप ठीक कहते हैं सा'ब । ज्यादातर ऐसे-वैसे लोग ही—खामकर व्योपारी, मेठ-साहूकारों के लड़के इसे पसंद करने हैं । हमने कुछ जवाहर जैकेट, कुछ मुफेद और रंगीन टोपियाँ बनवा ली हैं । लेकिन अभी उस दिन... माफ करना जी... प्राइवट बात है... आप किसी से बोलना मत । अभी उम रात को मनिस्टर कृपा बाबू का प्राइवट सिकरटरी चौबे आके हाजिर । बोला— देखो जी पापडा, पुरानी दोस्ती है तुमसे, भोत प्राइवट बान है । मनिस्टर सा'ब रायपुर में ब्रच्छ-रोपण में गये थे । वेदर अच्छा नहीं था, तस्वीर माफ नहीं आयीं । कोई उपाय करो । कल ही अखबारों में देना है । मैं बोला—मगर मनिस्टर सा'ब को स्टुडियो में आना होगा जी ! ग्यारह बजे रात को मनिस्टर सा'ब आये । हमने झंडोत्तोलनवाला पर्दा लगा दिया, हमारे आर्टिस्ट ने झंडे की जगह ब्लैक कर दिया, वहीं मनिस्टर सा'ब ने ब्रच्छ-रोपण किया । झंडोत्तोलन के बदले ब्रच्छ-रोपण ही सही ।”

उसने तस्वीर देखने को दी । अरे ! यह तस्वीर तो हाल ही पत्रों में छपी है । मुझे तो इसके ऊपर की मुर्खी और नीचे का चित्र-परिचय भी याद है ।

बगल के पार्टीशन से (फिल्म सेट में) आवाज आ रही थी, “कमर को और झुकाइए... जरा... हाँ... और उँगलियों को बिखराइये फूलों की पेंखुड़ियों की तरह... हाँ... उरह... हाँ...”

बंडरफुल माहब मुस्कुराकर बोले, “वो डान्स का पोज ठीक हो रहा है । नरत्य-निकेतन है न वहाँ... मोड़ पर, उसी का डिरेक्टर हमारा डान्स पोज बनाना है !”

“बाह माहब ! वास्तव में बंडरफुल है आपका स्टुडियो ! युनिक है ।” मैंने कहा ।

“सा'ब, हम इसे और डेवलप करेंगे । इधर हमने फिर दो सेट बनवाये हैं । कौमी सेट... और... फरेंच सेट !”

“कौमी सेट ? जरा वह भी दिखाइए ।”

इस बार बंडरफुल माहब कुछ हिचकिचाये । फिर बोले, “देखिए जी बाबू सा'ब ! आप जब राजन के मित्तर हैं तो हमारे भी मित्तर ही ठहरे ; वरना, हम औरों को नहीं दिखाते । आइए ।”

तीसरे पार्टीशन में ले जाकर बंडरफुल ने मुझे दो-तीन तस्वीरें दिखायीं । एक में एक नौजवान को एक लुगीधारी बूढ़े के पेट में छुरा धुमेड़ते देखा । दूसरे में एक बहादुर युवक शिवाजी की तरह घोड़े को उछालता और तलवार चलाता हुआ दिखायी पड़ा । तीसरे में भारतमाता आममान में पुष्प-वृष्टि कर रही है और एक वीर राष्ट्रीय झंडे को फाड़कर चित्थी-चित्थी कर रहा है... हजारों की भीड़ है ।...

“और इधर फरेंच सेट है... हालीउड फिल्म सेट !”

मेरा मिर चकग रहा था। मैं पास की पड़ी हुई तिपाई पर बैठते हुए बोला, "वंडरफुल सा 'ब' ! आपको किन शब्दों में धन्यवाद दूं। आपने कितना बड़ा कल्याण किया है समाज का—यह कहने की बात नहीं। आपने यदि यह स्टुडियो नहीं खोला होता तो दुनिया के लोग पागल हो गये होते।" "आप इंसान के मन में सोयी हुई अतृप्त इच्छाओं की तस्वीर लेते हैं। यह तो बेजोड़ है। मही तस्वीर तो आप ही लेते हैं इंसान की। वाह !"

वंडरफुल अब बकने लगा, "बाबूजी ! यहाँ बिजनेस का तो कोई मजा ही नहीं। लाहौर में जब हम थे तो ऐसे एक-एक पोज के लिए एक-एक मौ रुपये लोग देते थे। यहाँ तो लोग 'आरट' को ममझते ही नहीं।" "अच्छा जी ! अब फर्माइए, आपके लिए कौन-सा सेट लगवाऊँ ?"

"मेरे लिए ?" "मेरे लिए सेट लगवाने की जरूरत नहीं। मैं अपने मन का पोज देना चाहता हूँ।" मैंने गंभीरतापूर्वक कहा।

"बेहतर जी ! फर्माइए।"

"मेरे गले में रस्मी का फंदा डालकर एक पेंड से लटका दो। फोटो ऐसा उतरे, जिसमें मेरी आँखें और जीभ बाहर निकली हुई हो और हाथ में एक कागज का टुकड़ा हो जिस पर लिखा हो, 'खुश रहो वंडरफुल वतन, हम तो सफर करते हैं'।"

(जुलाई, 1953)

टौटी नैन का खेल

“लड़की मिडिल पाम है।”

“मिडिल पाम?”

“मिडिल पाम ही नहीं, दोहा-कवित्त जोड़नी है।”

“देखने में भी, मुनते हैं कि गोरी है।”

“मीप्रमाद ब्राह्म की बेटा कौमे होगी?”

“पाम नहीं होता है।”

“मुमरचन्ना नहीं आया है। आ जाय तो मही बात का पता चले।”

“यदि बात मच है तो मममो कि पानी में आग लग गयी।”

“मुमरचन्ना का भाग तेज है।”

“चिड़िया का गुलाम किमका है? रग ओट करो।” चिड़िया का गुलाम, लाल पान की बीवी से कट गया और खेल खत्म। खेल में अब किसान का जी नहीं लग रहा है, मुमरचन्ना का भाग तेज हो गया, खेल में जी कैसे लगे?

“लेकिन—मुमरचन्ना तो अपर पाम भी नहीं?”—रमचनरा कहता है।

“अब पाम कर जायगा।”—दुलरिया बात बनाना जानता है।

सभी हैंम पड़ते हैं। गाँव-भर के निठल्ले नौजवानों के श्म ताश के अड्डे को बड़े-बूढ़े बड़ी बुरी निगाह से देखते हैं। देखा करें, उनकी बुद्धि सठिया गयी है। सेमापुरिया ‘मैला’ की तरह माथा मुड़ाकर रहो तो ये बहुत खुश रहेंगे। जरा-सा थोबड़ा केश बढ़ाकर, थोड़ी-थी बगली छँटाकर सिर में तेल डालते ही इनकी आँखों में लाल मिर्च की बुकनी पड़ जाती है। ‘‘लुच्चा हो गया, आबारा है वगैरह। ‘‘ मुमरचन्ना बाबड़ी नहीं रखता है, डोमन लौआ से जब वह केश छँटाता है तो गाँव के नौजवानों को एक सप्ताह के लिए हैंगने का मसाला मिल जाता है। ‘‘हल जोत दिया है। अब खेसाड़ी बोना बाकी है। और उमी मुमरचन्ना का हल जोता हुआ कपाल इतना उपजाऊ साबित हुआ। रमचनरा आधा मोछ कटाता है लेकिन। मिडिल पास स्त्री, दोहा-कवित्त जोड़नेवाली और गोरी! भगवान भी

कैसे हैं ?

मुमरचन्ना—श्री मुमरचंद विश्वास बल्द अमीरचंद विश्वास जाति...
मोजा लोरिकगज थाना फारबिसगंज जिला पुरोनिया।

रामपुर के मीप्रसाद मंडल को कौन नहीं जानता ? जाति-बिरादरी में उनका स्थान ऊँचा है। नयी मातवरी हुई है। मगसों और तंबाकू से दो हजार रुपये की आमदनी होती है। बटूक का लैसन मिलनेवाला है। कंगरेमी हैं। उन्हें कौन नहीं जानता ?

यह बड़े अचरज की बात है कि मीप्रसाद बाबू ने मुमरचन्ना को ही क्यों अपनी मिडिल पाम, दोहा-कविता जोड़नेवाली और गोरी लडकी के लिए वर चुना ? मुमरचन्ना की माँ ऐसी झगड़ालू हैं कि दीवाल से भी झगड़ा करती हैं। बाप बहग है। धन में धन दो भैंस हैं। और मुमरचन्ना की सूरत ?... अचरज की बात है। गाँव के निठूने नौजवानों के कलेजे पर माँप लोट रहे हैं ! भगवान भी कैसे हैं ?

“रे मुमरचन्ना ! इधर आओ इधर ! कहाँ से आ रहे हो ? बीड़ी पिलाते जाओ !”

“हरगोबिन भाय ! रामपुर गये थे।”

“शादी का दिन ठीक हो गया ?”

“हाँ। यही फागुन एकादशी है।”—मुमरचन्ना ‘मोटर मार सिगरेट’ मुलगाते हुए कहता है।

“तुम्हारी किस्मत बड़ी तेज है। रुपैया-पैसा भी दिया है ?”

मुमरचन्ना को घेरकर सभी बैठे हुए हैं। बीच में मोटर मार सिगरेट का पाकिट खुला हुआ है। ताश की गड्डी पड़ी हुई है। सभी सिगरेट पी रहे हैं। मुमरचंद विश्वासजी मुना रहे हैं। “अर हरगोबिन भाय ! यह तो भोग-भाग की बात है। विधविधाना जिमकी जोड़ी जहाँ मिला दे। रमैन में कहा है—मुनहू भरथ भावी प्रबन्ध बिलख कहे मुनि नाथ... अर्थात् हे भरथजी !...”

इस ‘अर्थात्’ में हानि-लाभ के माथ शादी-विवाह और जोड़ी मिलाने की चर्चा कहाँ की गयी है। इस पर ध्यान देने का होश किसको है ?

मुमरचन्ना मिडिल पाम भी नहीं लेकिन ‘रमैन’ और ‘महभारथ’ और कीरतन में उसमें कोई पार नहीं पा सकता है। जब कीर्तन में ‘झाँखी’ गाने के समय पेर में झुनकी बांधकर ‘झाँखी जुगल मोहनियाँ हो राम’ गाता है तो सुननेवालों की आँखों से प्रेम के आँसू झरने लगते हैं।

बात यह हुई कि... मीप्रसाद बाबू के बूढ़े बाबू लाम्लरैन बाबू बड़े धार्मिक आदमी हैं। गाँव में ठाकुरवाड़ी बनवा दिया है। राम लछमन सीताजी की मूर्ति नाराम से लाये हैं। घर में भी मूर्ति है—सीताराम की जुगल जोड़ी। कीर्तन के

बड़े प्रेमी हैं। उस बार ढालगंज के नवकुंज में सुमरचन के मीन पर मोहित हो गये। मीप्रमाद बाबू की छोटी बेटी (जिससे सुमरचन की बातचीत पक्की हो गयी है) लामलरैन बाबू की बड़ी दुलारी है। बड़ी प्यारी ! दादा के सभी गुण उसमें आ गये हैं। बचपन से ही दादा के साथ में रहकर 'भगवान' और कीर्तन उसके रोम-रोम में रम गया है। इसीलिए दादा ने उसका नाम रखा है—आरती। माँ कहती है—अर्त्ती ! बूढ़े लामलरैन बाबू ने आरती की शादी किसी भगवान भक्त से ही करने की प्रतिज्ञा की थी। '...पूरा भक्त, कंठीधारी वैष्णव हो, भले ही गरीब हो, अपढ़ हो, लेकिन अपनी ही जाति का हो। आरती सतरहवाँ पार कर चुकी लेकिन उसके जोग वर मिल नहीं रहा था। कोई मिलता भी तो स्वजाति का नहीं। पढाई-लिखाई की बात रहती तो आजकल एमे० बीए० की भी कमी नहीं होती...' लेकिन वैष्णव, भगवान का अगली भवत, कंठीधारी कहाँ मिले ? मुर्गी के अंडे खानेवालों की बात रहती तो एक बात भी थी। बस, ढालगंज नवकुंज में लामलरैन बाबू को आरती के जोग वर मिल गया। '...स्वजाति का, भक्त, वैष्णव और कंठीधारी सुमरचन्ना !

"एह ! यह तो राजा रानी का खिया हो गया कि एक राजा था और उसकी एक लड़की थी"—दुलरिया बहुत देर तक रुकें हुए साँग को एक ही बार छोड़ते हुए कहता है, "एकदम खिया पाड़े नार पार ।"

सभी हँस पड़ते हैं लेकिन पर बात तो सवसम्मति में स्वीकार हो जाती है कि सुमरचन्ना का भाग बड़ा तज है। भगवान की महिमा अगम अपार है।

"लड़की मिडिल पाम, गेरी, धनी सगुराल, बूढ़े मालिक का दुलारा जमाई ...और क्या चाहिए ?"—हरमोयिन गंभीर होकर कहता है।

सभी गंभीर हो जाते हैं। भाग का बात है। इससे बढ़कर और क्या चाहिए ?

"लेकिन सुमरचन्न धाय ! कारतन दल को भूल मत जाना। हरमुनियाँ का भाषी एकदम खराब हो गया है। ढोलक भी कठमुरहा हो गया है। गरुआ पोशाक एक दर्जन बनवा देते ताँ फिर क्या है ?"

"और एक 'कीरनोट' और एक 'बिहला' बाजा यदि खरीद दो तो समझ लो कि 'होल इंडिया' में हम लोगों के दल का नाम हो जाय।"

"अरे भगवान ने चाहा तो सब कुछ हो जायेगा। पगु होहि वाचाल मूक बढ़हि...नही-नही...मूक होहि वाचाल..."—सुमरचंद बिश्वास, विश्वास विलाते हुए कहते हैं, "और हम यदि कीरतन दल को भूल जायें तो भगवान हमारे गरव को कितनी देर तक रखेंगे ? ...रावन गरव कियो लका मे..."

फागुन एकादशी ! लामलरैन बाबू ने खबर भिजवा दी है—बर-बरात एकदम नहीं। जो आये वह कीर्तनियाँ हो। ढोल-ढाक, बाजा-गाजा, नाच-तमाशा, रंग-रवायश कुछ नहीं। सिर्फ कीर्तन।

बुलरिया बड़ा मस्त जानवर है, हरदम हँसते-हँसाने रहता है। मुनते ही कहता है, "तब तो लड़की के लिए भी कोई गहना बनाने की जरूरत नहीं। कंठी-माला ही ले चलो सुमरचन्न भाय।"

सुमरचन आजकल दिन-रात सपना ही देखता रहता है। उसे कुबेर का भंडार मिल गया है। हँसते हुए कहता है, "असल गहना तो कंठीमाला ही है बुलारे। पूरब मुलुक बंगाला मे जाओ तो ? जब तक माला-बदल नहीं होगा, शादी पक्की नहीं समझी जायेगी। पहले जमाने में राजा-महाराजा की राजकुमारी माला डालकर ही सुयेँवर करती थी। जयमाला !"

'कुमारी आरतीदेवी मीरा' श्रीमान सुमरचद विश्वामजी के गले में जयमाला डालेगी।

आरतीदेवी मिडिल पास है। घर बैठे ही गीता और रमैन की परीक्षा देकर पास कर चुकी है। मासिक मानव कल्याण पत्रिका की स्थायी ग्राहिका और पाठिका है। कभी-कभी खुद गीतों की रचना कर लेती है—दोहा-कवित्त ! इसलिए अपने नाम के साथ 'मीरा' लिखती है। अठारहवें में पाँव रख रही है। पिछले दो मास से गाते-गाते भगवान के आगे कभी-कभी बेहोश हो जाती है। घंटों बेहोश रहती है और जब आँखें खुलती हैं तो '...सपने में तुम पास रहे प्रभु, जगी हो गये दूर'...। प्रेमविह्वल हृदय की वाणी कोकिल कंठ से फूटकर निकल पड़ती है। बूढ़े लामल-रैन बाबू प्रसन्न होकर करताल बजाते रहते हैं—'हुई बोयो, हुई बोयो ! छन, छन, छन।' गेरुआ रंग को छोड़कर और किसी रंग का कपड़ा नहीं पहनती है आरतीदेवी। एक बार सोशलिस्ट पार्टी के 'लाल पताका' के संपादक या 'चिनगारी' जी आये थे। एकदम नास्तिक। हरदम मुँह में सिगरेट, आँख पर चश्मा। खासिते रहते थे और हवा में झोलते रहते थे। डॉक्टर के कहने से मुर्गी का अंडा खाते थे। जाति-धरम को एकदम नहीं मानते थे। उस बार सीप्रसाद बाबू के साथ आये। शाम को जब उन्होंने आरतीदेवी का भजन-कीर्तन सुना तो उनकी आँखें एकदम खुल गयीं। प्रेमविह्वल नारी, गोरा शरीर, मुडौल मुख-मंडल और गेरुआ बस्त्र में लिपटी हुई पवित्र जबानी ! बस, उसी क्षण से भगवान भक्त हो गये। '...लेकिन लोग जो कहते हैं कि आरतीदेवी से उनका'...हो गया था सो झूठी बात है। सुनी हुई बात दुनी होती है। बात यह हुई थी कि सीप्रसाद बाबू ठहरे कगरेसी आदमी ! उनके यहाँ यदि कोई सोशलिस्ट पार्टी वाला तोमरे दिन पड़ा रहेगा तो उनकी बदनामी नहीं होगी ? इसलिए उन्होंने मना कर दिया था। बाद में 'चिनगारी' जी ने सोशलिस्ट पार्टी को भी छोड़ दिया। आजकल एकदम भक्त हो गये हैं, अपना कीर्तन पार्टी खोले हैं। वह भी अपने से गीत बनाते हैं और गाते हैं।

लामलरैन बाबू ने आरतीदेवी की शादी के दिन 'अष्टजाम' कीर्तन कराने

का निश्चय किया है। दम समाजी को उन्होंने निमंत्रण भेज दिया है। जाति-बिरादरी वाले तो सभी शादी-ब्याह और श्राद्ध में खाते ही हैं। पर आरतीदेवी की शादी है। भगवान की गायिका की शादी है, इसमें तो सिर्फ कीर्तनियाँ लोगों को ही भाग लेना चाहिए।

शाम में ही कीर्तनियाँ का दल एक-एक कर आ रहा है। गाते-बजाते और नाचते।

‘अरे सोचे सिया जी के मया हो धेनु कंसे टुटे।’

‘धाके धिन्ना ताक धिन्ना।’

छनन छनन छुम्म छन्नन।

‘हाँ, यह शायद लखनपुर का दल है। देखना। हरंक समाजी के मभापति से पहले ही पूछ लेना कि कितने लोग है? लखनपुर वालों को नहीं जानते? तीन बुलावे तेरह आवे।’

‘गौरी के माई डराओल हो बमभोला के देखिके।’

धाक धिना ताक धिना।

‘हाँ, यह परबत्ता का दल है। देखना रे। गंगातीर वाली खड़ाऊँ की जोड़ियाँ कहाँ है? उस पार परबत्ता दल वालों ने खड़ाऊँ ही पार कर दिया।’

कातपुर के दल के साथ आये हैं ‘चिनगारी’ जी। आजकल नाम बदल लिया है—‘चदन’। चदनजी। उनके दल को निमंत्रण नहीं मिला था लेकिन कातपुर में उनका ‘ममहर’ है। चिनगारीजी यानी चदनजी ने अब बाल बढ़ा लिया है। लंबे-लंबे घुघराले बाल, दाढ़ी-मूँछे मुड़ा हुई और आँखों पर चश्मा। अब सिगरेट कम पीते हैं—पान खाते हैं।

सभी समाजी आ गये हैं। रात को आठ बजे से अष्टजाम शुरू होगा। तब तक बाराती, कीर्तनियाँ समाज भी आ जायगा। इसके पहले बैठकी कीर्तन हो रहा है। एक-एक दल बारी-बारी से गाता है। ऐसा लगता है कि कातपुर दल का ढोलकिया आज ढोलक को तोड़ ही देगा! चिनगारीजी उर्फ चदनजी गा रहे हैं। खेल बात है। इसीलिए ढोलक बजाते-बजाते जोश में ढोलक पर चढ़ जाता है। चिनगारीजी जब गर्म बात अखबार में लिखते थे तो सरकार बहादुर घर-घर कांपने लगता था। चदनजी ऐसा कीर्तन गाते हैं कि मुननेवालों पर आग का भी कोई असर नहीं हो। आँख मूंदकर गा रहे हैं, विभोर हाकर गा रहे हैं। चेहरे पर पेट्रोमेक्स की पूरी रोशनी पड़ रही है, इमालए चेहरे पर करुण भाव की छोटी-से-छोटी लहरे भी स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं।

अरे नैनो को दरशन मुख दे दो नैनो का

अरे नैनो को दरशन मुख दे दो।

मिटे हृदय की साध...दरशन बिनु नैना है त्रकार। आज मेरे आँगन में चदन

चिंचित बधू आरती चुपचाप बैठी हुई है, बूढ़े लामलरैन बाबू का हुक्म है—औरतें कोई गीत नहीं गा सकतीं। भगवान का ही गीत मंगल गाये। रुक्मिणी जाइछे... नहीं-नहीं... यह गीत नहीं चलेगा। ओ ! रुक्मिणी का नाम है ? तब तो भगवान का गीत है। यह चलेगा :

अरे अच्छा-अच्छा चूड़ियाँ बनावे रे भइया लहेरिक ।

रुक्मिणी जाइछे ससुराल !

अरे ऐसना चोलिया बनावे रे दरजिया कि

छतिया पर जाड़ो रे अनार !

आरतीदेवी 'मीरा' !... आरती पुर्जे पर अपना नाम देखकर चमक उठती है। अक्षर तो पहचानती है वह। चरवाहा ने लाकर दिया है। चिट्ठी है। वह उठकर ठाकुरजी के घर में चली जाती है। हाँ, चिट्ठी ही है। चंदनजी उर्फ चिनगारीजी ने लिखा है :

'मेरे मानस की मीरा !

तुम जिसके गले में जयमाला डालनेवाली हो, वह एकदम निपट गंवार है। बात करने का ढंग नहीं। कीर्तन गाता है मगर पुराने जमाने का। पढ़ा-लिखा बहुत कम है। शायद लोअर पास भी नहीं। सिर्फ गला सुरीला है। समझ में नहीं आता कि बूढ़े बाबू ने क्यों तुम्हारा सत्यानाश कर दिया। सीप्रसाद बाबू भी कैसे हैं, उन्होंने क्यों नहीं खुद जाकर देखा। लड़का तो एकदम चिड़िया का गुलाम है...

चिड़िया का गुलाम ? भगवान ने निपट गंवार ही उसके भाग में सिखा दिया है तो वह क्या कर सकती है ? भगवान की मर्जी ! लेकिन चंदनजी ? उग्रा बार कितनी अच्छी कविता बनाकर चिट्ठी लिखे थे :

तुम मीरा गिरधर की दासी

चंदन तेरा दास,

करो मत मुझको प्रिये निराश !

दास के सुन लीजें छोटी अरजिया हो रघुवर सुन लीजें मोरी अरजिया !

ताक धिन्ना ताक धिन्ना ।

लोरिकगज बाराती, कीर्तनियाँ समांज आ गया। वर श्री सुमरचंद विश्वास गा रहे हैं—दास के सुन लीजें...

शादी चाह किसी भी नियम से हो, शादी आखिर शादी ही है। वर को देखने के लिए औरतें झुड़ बांधकर दौड़ पड़ती हैं। कौन ? यही जो बीच में नाच रहा है ?... माई गे !... माई गे क्या ? वह तुम्हारी-उसकी शादी नहीं, आरती की शादी है ! भगवान !

बूढ़े लामलरैन बाबू आरतीदेवी की माँ को समझा रहे हैं, डाँट रहे हैं और

बिगड़कर लेक्चर झाड़ रहे है। गुस्से में उनकी पोपले मुँह की बोनी ठीक अंग्रेजी की तरह सुनायी पड़ती है, “छिबई की छाजी में भी गोई की माई डछी लयह ओची छी ! किछी अम्मयमी, मुगीखाय छे छाजी होनी चो बहुत अच्छा। छे ? भगवाय का भकच कभी छुजय नहीं होगा। छुजय छईय किछ काम का ? हुमाय जी।”

अर्थात्—वर अधरमी और मुरगीखोर नहीं। भगवान का भक्त सुंदर नहीं होता। हनुमानजी सुंदर थे ? सुंदर शरीर किस काम का ?

आरती भी मोचती है—सुंदर शरीर किस काम का ?

अष्टयोग गुरु हो गया। वर मंडप पर पहुँच गया है। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण.....

आरतीदेवी आँखों को बार-बार रोकती है मगर आँखों में चोरी में देख ही लिया, ‘सुमरचन्नजी, भक्तजी - चिड़िया का गुलाम !’ शादी आखिर शादी है। सुमरचन्नजी वधू निरीक्षणी करके अपनी वधू को मंडप पर ले चले। आरती का सारा शरीर सिहर उठता है। उसका सुंदर शरीर किस काम का ? ...पग घुघरू बँगी मीरा नाची रो।

‘हरे राम हरे राम !’

वर-वधू के मंडप पर पहुँचते ही गानेवालों का जोश और भी बढ़ जाता है। ढोल पर और भी तेजी से ताल बोलने लगता है। करताल और भी तेजी से खनकने लगते हैं। छुम छुम छन्न छन्न ! प्रेम में विभोर होकर बूढ़े लामलरैन बाबू भी करताल बजाकर नाचने लगते हैं, “हये आम हये आम !”

आरती के पाँवों में गुदगुदी लगने लगती है। उसका सारा शरीर सिहरने लगता है। ऐसा लगता है कि वह भी अब नाचने लगेगी। वह बेहोश हो रही है। बेहोश ...छुम छुम छन्न जन्न...। छनाक् !

“ऐ सम्हालो ! सम्हालो !!”

“गिर गयी।”

“पानी लाओ।”

ढोल रुक जाता है, करताल बंद हो जाते हैं। लामलरैन बाबू करताल बजाने हुए और नाचते हुए कहते हैं, “कीचन बज यही हो। जाई यहें...हये आम हये आम ! छुम छुम छन्न छन्न !

धिक धिन्ना धिक धिन्ना !”

“पानी लाओ।”

“पखा दो।”

आरतीदेवी आँखें खोलती है। उसके मुँह से एक हल्की-सी चीख निकल पड़ती है, “चिड़िया का गुलाम !”

मुमरचंद के बहरे बाप ने हल्ला मचाना शुरू किया, "हम जानते थे, लड़की को मिरगी की बीमारी है। हम लोगो को गरीब जान खूब उल्लू बना रहे थे। अरे बापू ! हमारे खानदान में कभी मिरगी नहीं हुई।" "चल रे मुमरचन्ना !"

लेकिन जब मुमरचन्ना टस से मस नहीं हुआ तो वह गाली-गलौज करते हुए अपने गाँव की ओर चल पड़ते हैं।

रात-भर आरतीदेवी बेहोश रही। सुबह को ठाकुर साहब ने देखकर कहा, दिमाग पर चोट लगी है। कीर्तन समाजियों को सूचना दे दी गयी—हालत बहुत खराब है। शादी नहीं हो सकेगी। सभी अपने-अपने घर चले जाये।

"जलपान भी नहीं देगा क्या?"—दुलारे की बात सुनकर रात-भर के भूखे लोगो को भी हँसी आ जाती है।

"चलो खेल-तमाशा खतम।"

गाँव के निठल्लों का नाश का अड्डा गुलजार है। मिडिल पास, दोहा-कवित्त जोड़नेवाली लड़की, धनी ममुगल पाना खेल नहीं। मुनो ! कांतपुर दल का चंदन जो गवैया चक्का पार कर दिया। अरे, वह तो उसी रात को लेकर पार हो गया। अभी तक कहीं पना नहीं चला है।

मुमरचन्ना को मभी चिड़िया का गुलाम कहकर चिढ़ाते हैं। बहरा अमीरचंद की दोनों भैंस बिक गयी है, इसलिए मुमरचन्ना को दिन-रात गाली-गलौज करता रहता है। मुमरचन्ना ने कीर्तन भी छोड़ दिया है।

"छोड़ दिया है तो छोड़े। उसके कपार पर तो चिड़िया का गुलाम सवार है।..."

"रंग औट करो रे।"

लाल पान की बीबी मे चिड़िया का गुलाम काट लिया जाता है। जोतनेवाले खुशी से ताली पीटते हैं।—टोटी नैन का खेल जारी रहता है।

(अगस्त, 1953)

रसप्रिया

झूल में पड़े कीमती पत्थर को देखकर जीहरी की आँखों में एक नयी झलक झिल-मिला गयी—अपरूप-रूप !

चरवाहा मोहना छोड़ा को देखते ही पंचकोडी मिरदगिया के मुह में निकल पड़ा—अपरूप-रूप !

“खेतों, मैदानों, बाग-बगीचों और गाव-बैलों के बीच चरवाहा मोहना की सुंदरता !

मिरदगिया की धीण-ज्योति आँखें मजल हो गयी ।

मोहना ने मुस्कराकर पूछा, “तुम्हारी उँगली तो रसप्रिया बजाने देखी हुई है, है न ?”

“ऐ !”—बूढ़े मिरदगिया ने चौकते हुए कहा, “रसप्रिया ? ... हाँ ... नहीं। तुमने कैसे ... तुमने कहाँ सुना वे ... ?”

‘बेटा’ कहते-कहते वह रुक गया । ... परमानपुर में उम्र बार एक ब्राह्मण के लड़के को उसने प्यार से ‘बेटा’ कह दिया था । सारे गाँव के लड़कों ने उस धेर-कर मारपीट की तैयारी की थी, ‘बहरदार होकर ब्राह्मण के बच्चे को बेटा कहेगा ? मारो साले बुढ़े को घेरकर ! ... मृदग फोड़ दो ।’

मिरदगिया ने हँसकर कहा था, ‘अच्छा, इस बार माफ़ कर दो सरकार ! अब मैं आप लोगों को बाप ही कहूँगा ।’

बच्चे खुश हो गये थे । एक दो-ढाई साल के नगे बालक की ठूड़ी पकड़कर वह बोला था, ‘क्यों, ठीक है न बापजी ?’

बच्चे ठठाकर हँस पड़े थे ।

लेकिन, इस घटना के बाद फिर कभी उसने किसी बच्चे को बेटा कहने की हिम्मत नहीं की थी । मोहना को देखकर बार-बार बेटा कहने की इच्छा होती है ।

“रसप्रिया की बात किसने बनायी तुमसे ? ... बोलो बेटा !”

दम-बाग्रह माल का मोहना भी जानता है, पंचकौड़ी अधपगला है ।... कौन इसमें पार पाये ! उमने दूर मैदान में चरने हुए अपने बैलों की ओर देखा ।

मिरदंगिया कमलपुर के बाबू लोगो के यहाँ जा रहा था । कमलपुर के नदूबाबू के घराने में अब भी मिरदंगिया को चार मीठी बातें सुनने को मिल जाती है । एक-दो जून भोजन तो बंधा हुआ है ही; कभी-कभी रसचरचा भी यही आकर सुनता है वह । दो साल के बाद वह इस इलाके में आया है । दुनिया बहुत जल्दी-जल्दी बदल रही है ।... आज मुबह शोभा मिसर के छोटे लड़के ने तो साफ-साफ कह दिया, "तुम जी रहे हो या थेथरई कर रहे हो मिरदंगिया ?"

हाँ, यह जीना भी कोई जीना है ? निर्लज्जता है, और थेथरई की भी सीमा होती है ।... पंद्रह साल में वह गले में मृदग लटकाकर गाँव-गाँव घूमता है, भीख माँगता है ।... दाहिने हाथ की टेंटा उँगली मृदग पर बैठती ही नहीं है, मृदग क्या बजायेगा ! अब तो, 'धा तिग धा तिग' भी बड़ी मुश्किल में बजाता है ।... अनिश्चित गाँजा-भाँग मेवन में गले की आवाज विवृत हो गयी है । किंतु मृदग बजाते समय विद्यापति की पदावली गाने की वह चेष्टा अवश्य करेगा ।... फूटी भाथी से जैसी आवाज निकलती है, वैसी ही आवाज—मो-य, मो-य !

पंद्रह-बीस साल पहले तक विद्यापति नाम की थोड़ी पूछ हो जाती थी । शादी-व्याह, यज्ञ-उपनयन, मुंडन-ध्दन आदि शुभ कार्यों में विद्यापतिया मंडली की बुला-हट होती थी । पंचकौड़ी मिरदंगिया की मंडली ने, महरसा और पूर्णिया जिले में काफी यश कमाया है । पंचकौड़ी मिरदंगिया को कौन नहीं जानता ! सभी जानते हैं, वह अधपगला है ।... गाँव के बड़े-बूढ़े कहते हैं, "अरे, पंचकौड़ी मिरदंगिया का भी एक जमाना था ।"

इस जमाने में मोहना जैसा लड़का भी है—सुंदर, सलोना और सुरीला !... रसप्रिया गाने का आग्रह करता है, "एक रसपिरिया गाओ न मिरदंगिया !"

"रसपिरिया सुनोगे ?... अच्छा, सुनाऊँगा । पहले बताओ, किसने..."

"हे-ए-ए हे-ए... मोहना, बेल भागे..." एक चरवाहा चिल्लाया, "रे मोहना, पीठ की चमड़ी उधेड़ेगा करमू !"

"अरे बाप !" मोहना भागा ।

कल ही करमू ने उसे बुरी तरह पीटा है । दोनों बैलों को हरे-हरे पाट के पीधों की महक खींच ले जाती है बार-बार ।... खटमिट्टा पाट !

पंचकौड़ी ने पुकारकर कहा, "मे यही पेड़ की छाया में बैठता हूँ । तुम बेल हँककर लौटो । रसपिरिया नहीं सुनोगे ?"

मोहना जा रहा था । उमने उलटकर देखा भी नहीं ।

रसप्रिया !

विद्यापति नाचवान रसप्रिया गाते थे । महरसा के जोगेदर सा ने एक बार

विदापति के बारह पदों की एक पुस्तिका छपायी थी। मेले में खूब बिक्री हुई थी रसप्रिया पोथी की। विदापत नाचवालों ने गा-गाकर जनप्रिया बना दिया था रसप्रिया को।

खेत के 'आल' पर झरजामुन की छाया में पंचकोड़ी मिरदगिया बैठा हुआ है; मोहना की राह देख रहा है। 'जेठ की चढ़ती दोपहरी में खेतों में काम करनेवाले भी अब गीत नहीं गाते हैं।' 'कुछ दिनों के बाद कोयल भी कूकना भूल जायेगी क्या? ऐसी दोपहरी में चुपचाप कैसे काम किया जाता है! पाँच माल पहले तक लोगो के दिल में हुलाम बाकी था।' 'पहली वर्षा में भोगी हुई धरती के हरे-भरे पौधों से एक खास किस्म की गंध निकलती है। तपती दोपहरी में मोम की तरह गल उठती थी—रस की डाली। वे गाने लगते थे बिरहा, चाँचर, लगनी। खेतों में काम करते हुए गानेवाले गीत भी समय-असमय का ख्याल करके गाये जाते हैं। रिमझिम वर्षा में बारहमामा, चिलचिलाती धूप में बिरहा, चाँचर और लगनी :

“हाँ...रे, हल जोते हलवाहा भैया रे...”

खुरपी रे चलावे...म-ज-दूर !

रहि...रे, धनी मोरा हे रूसलि...”

खेतों में काम करते हलवाहों और मजदूरों से कोई बिरही पूछ रहा है, कातर स्वर में—उसकी रूठी हुई धनी को इस राह में जाते देखा है किमी ने ...

अब तो दोपहरी नीरस कटती है, मानो किमी के पाम एक शब्द भी नहीं रह गया है।

आसमान में चक्कर काटते हुए चील ने टिहकारी भरी, “टि...ई...टि-हि-क !”

मिरदगिया ने गाली दी, “शैतान !”

उसका छोड़कर मोहना दूर भाग गया है। वह आतुर होकर प्रतीक्षा कर रहा है। जी करता है, दौड़कर उसके पाम चला जाये। दूर चरते हुए मवेशियों के झुंडो की ओर बार-बार वह बेकार देखने की चेष्टा करता। सब धुंधला !

उमने अपनी झोली टटोलकर देखा—आम है, सूड़ी है। 'उमने भूख लगी। मोहना के मुखे मुँह की याद आयी और भूख मिट गयी।

मोहना जैसे मुंदर, मुशील लड़की की खोज में ही उसकी ज़िंदगी के अधिकांश दिन बीते हैं। 'विदापत नाच में नाचनेवाले 'नटुआ' का अनुसंधान खेल नहीं। 'मवणों के घर में नहीं, छोटी जाति के लोगो के यहाँ मोहना जैसे लड़की-मुँहा लड़के हमेशा पैदा नहीं होते। ये अवतार लेते हैं समय-समय पर ज़दा-ज़दा ही...

मैथिल ब्राह्मणो, कायस्थो और राजपूतों के यहाँ विदापतवालों की बड़ी इज्जत होती थी। 'अपनी बोली—मैथिलाम—में नटुआ के मुँह से 'जनम

अवधि हम रूप ! नह ! रल सुनकर वे निहाल हो जाते थे । इसलिए हर मंडली का 'मूलगन' नटुआ की खोज में गाँव-गाँव भटकता फिरता था—ऐसा लड़का, जिसे सजा-धजाकर नाच में उतारते ही दर्शकों में एक फुसफुसाहट फैल जाये ।

“ठीक ब्राह्मणी की तरह लगता है । है न ?”

“मधुकान्त ठाकुर की बेटी की तरह...”

“नः ! छोटी चंपा जैसी सुरत है !”

पँचकौड़ी गुनी आदमी है । दूसरी-दूसरी मंडली में मूलगन और मिरदंगिया की अपनी-अपनी जगह होनी । पँचकौड़ी मूलगन भी था और मिरदंगिया भी । गले में मृदंग लटकाकर बजाते हुए वह गाता था, नाचता था । एक सप्ताह में ही नया लड़का भाँवरी देकर परवेश में उतरने योग्य नाच सीख लेता था ।

नाच और गाना सिखाने में कभी उसे कठिनाई नहीं हुई; मृदंग के स्पष्ट 'बोल' पर लड़कों के पाँव स्वयं ही धिरकने लगते थे । लड़कों के जिद्दी माँ-बाप से निबटना मुश्किल व्यापार होता था । विणुद मैथिली में और भी शहद लपेटकर वह फुसलाता...

“किमन कन्हैया भी नाचने थे । नाच तो एक गुण है ।—अरे, जाचक कहाँ या दसदुआरी । चोरी-डकैती और आवारागर्दी में अच्छा है अपना-अपना 'गुन' दिखाकर लोगों को रिझाकर गुजारा करना ।”

एक बार उमे लड़के की चोरी भी करनी पड़ी थी ।... बहुत पुरानी बात है । इतनी मार लगी थी कि... बहुत पुरानी बात है ।

पुरानी ही सही, बात तो ठीक है ।

“रमपिरिया बजाते समय तुम्हारी उँगली टेढ़ी हुई थी । ठीक है न ?”

मोहन न जाने कब लौट आया ।

मिरदंगिया के चेहरे पर चमक लौट आयी । वह मोहन की ओर एक टक-टकी लगाकर देखने लगा... यह गुणवान मर रहा है । धीरे-धीरे, तिल-तिल कर वह खो रहा है । लाल-लाल हाँठों पर बीड़ी की कालिख लग गयी है । पेट में तिल्ली है जरूर !...

मिरदंगिया बँच भी है । एक झुंड बच्चों का बाप धीरे-धीरे एक पारिवारिक डॉक्टर की योग्यता हासिल कर लेता है ।... उसवों के बागी-टटका भोग्यान्नों की प्रतिक्रिया कभी-कभी बहुत बुरी होती । मिरदंगिया अपने माथ नमक-मुलेमानी, चानमार-पाचन और कुर्नन की गोनी हमेशा रखता था ।... लड़कों को मदा गरम पानी के माथ हल्दी की बुकनी खिलाता । पीपल, काली मिर्च, अदरक वगैरह को घी में भूनकर शहद के माथ मुबह-शाम चटाता ।... गरम पानी !

पोटली से मूँदी और आम निकालते हुए मिरदंगिया बोला, “हाँ, गरम पानी । तेरी तिल्ली बढ़ गयी है, गरम पानी पियो ।”

“यह तुमने कैसे जान लिया ? फारबिसगंज के डागडर बाबू भी कह रहे थे, तिल्ली बढ़ गयी है। दवा...।”

आगे कहने की जरूरत नहीं। मिरदगिया जानता है, मोहना जैम लड़कों के पेट की तिल्ली चिता पर ही गलती है। क्या होगा पूछकर कि दवा क्यों नहीं करवाते !

“माँ भी कहती है, हल्दी की बुकनी के साथ रोज गरम पानी। तिल्ली गल जायेगी।”

मिरदगिया ने मुस्कुगाकर कहा, “बड़ी सयानी है तुम्हारी माँ !”

केने के मुखे पत्तन पर मूढ़ी और आम रखकर उमने बड़े प्यार से कहा, “आओ, एक मूढ़ी खा लो।”

“नहीं, मुझे भूख नहीं।”

फिर मोहना की आँखों में रह-रहकर कोई झाँकता था, मूढ़ी और आम को एक साथ निगल जाना चाहता था।...भूखा, बीमार, भगवान !

“आओ, खा लो बेटा !...रसपिरिया नहीं मुनोगे ?”

हाँ न भिया, आज तक किसी अन्य व्यक्ति ने मोहना को इस तरह प्यार से कभी परोसे भोजन पर नहीं बुलाया।...लेकिन, दूमरे चरवाहे देख ले तो माँ से कह देंगे।...भीख का अन्न !

“नहीं, मुझे भूख नहीं।”

मिरदगिया अप्रतिभ हो जाता है। उमकी आँखें फिर सजल हो जाती है।

मिरदगिया ने मोहना जैसे दर्जनो मुकुमार बालको की सेवा की है। अपने बच्चों को भी शायद वह इतना प्यार नहीं दे सकता।...और अपना बच्चा !
टु !...अपना-पराया ? अब तो सब अपने, सब पराये।...

“मोहन !”

“कोई देख लेगा तो ?”

“तो क्या होगा ?”

“माँ से कह देगा। तुम भीख माँगते हो न ?”

“कौन भीख माँगता है ?” मिरदगिया के आत्मसम्मान को इस भोजन लड़के ने बेवजह ठेग लगा दी। उसके मन की झाँपी में कुडलीकार सोया हुआ साँप फन फैलाकर फुफकार उठा, “ए-स्माला ! मारेगे वह तमाचा कि...”

“ए ! गाली क्यों देते हो !” मोहना ने डरते-डरते प्रतिवाद किया।

वह उठ खड़ा हुआ, पागलों का क्या विश्वास ?

आसमान में उड़ती हुई चील ने फिर टिगारी भरी—“टि-ही...ई...टि-टि-ग !”

“माहना !” मिरदगिया की आवाज गंभीर हो गयी।

मोहना जरा दूर जाकर खड़ा हो गया ।

“किसने कहा तुमसे कि मैं भीख माँगता हूँ ? मिरदंग बजाकर, पदावली गाकर, लोगों को रिझाकर पेट पालता हूँ ।...तुम ठीक कहते हो, भीख का ही बन है यह । भीख का ही फन है यह ।...मैं नहीं दूँगा ।...तुम बैठो, मैं रसपिरिया सुना दूँ ।”

मिरदंगिया का चेहरा धीरे-धीरे विकृत हो रहा है ।...आसमान में उड़ने-वाली चील अब पेड़ की डाली पर आ बैठी है ।...टि-टि-हि टिटिक !

मोहना डर गया । एक डग, दो डग...दे दौड़ । वह भागा ।

एक बीघा दूर जाकर उमने चिल्लाकर कहा, “डायन ने बान मारकर तुम्हारी उँगली टेढ़ी कर दी है । झूठ क्यों कहते हो कि रसपिरिया बजाने समय...”

‘ऐ ! कौन है यह लड़का ? कौन है यह मोहना !...रसपतिया भी कहती थी, डायन ने बान मार दिया है ।’

“मोहना !”

मोहना ने जाते-जाते चिल्लाकर कहा, “करैला !” ‘अच्छा, तो मोहना यह भी जानता है कि मिरदंगिया ‘करैला’ कहने से चिढ़ता है ।...कौन है यह मोहना ?’

मिरदंगिया आतंकित हो गया । उसके मन में एक अज्ञात भय समा गया । वह धर-धर काँपने लगा । उसमें कमलपुर के बाबुओ के यहाँ जाने का उत्साह भी नहीं रहा ।...सुबह शोभा मिसर के लड़के ने ठीक ही कहा था ।

उसकी आँखों से आँसू झरने लगे ।

जाते-जाते मोहना डक मार गया । उसके अधिकांश शिष्यों ने ऐसा ही व्यवहार किया है उसके साथ । नाच मीखकर फुर्र से उड़ जाने का बहाना खोजने वाले एक-एक लड़के की बातें उसे याद हैं ।

मोनमा ने तो गानी ही दी थी, ‘गुरुगिरी करना है, चोट्टा !’

रसपतिया आकाश की ओर हाथ उठाकर बोली थी, ‘हे दिनकर ! माच्छी रहना । मिरदंगिया ने फुमलाकर मेरा सर्वनाश किया है । मेरे मन में कभी चोर नहीं था । हे मुरुज भगवान ! इस दसदुआरी कुते का अंग-अंग फूटकर...’

मिरदंगिया ने अपनी टेढ़ी उँगली को हिलाते हुए एक लंबी साँस ली ।... रसपतिया ? जोधन गुरुजी की बेटी रसपतिया ? जिस दिन वह पहले-पहल जोधन की मंडली में शामिल हुआ था—रसपतिया बारहवें में पाँच रख रही थी ।... बान-विधवा रसपतिया पदों का अर्थ समझने लगी थी । काम करते-करते वह गुनगुनाती, ‘नव अनुरागिनी राधा, किछु नहि मानय बाधा ।’...मिरदंगिया मूलगैनी सीखने गया था और गुरुजी ने उसे मृदंग धरा दिया था...आठ वर्ष तक तालीम पाने के बाद जब गुरुजी ने स्वजान पंचकोड़ी से रसपतिया के चुमोना की

बात बलायी तो मिरदंगिया मभी ताल-मात्रा भूल गया। जोधन गुरुजी मे उसने अपनी जात छिपा रखी थी। रमपतिया से उसने झूठा परेम किया था। गुरुजी की मंडली छोड़कर वह रातोंरात भाग गया। उसने गाँव आकर अपनी मंडली बनायी, लड़कों को सिखाया-पढ़ाया और कमाने-खाने लगा। 'लेकिन, वह मूलगन नहीं हो सका कभी। मिरदंगिया ही रहा सब दिन।' जोधन गुरुजी की मृत्यु के बाद, एक बार गुलाबबाग मेले में रमपतिया मे उसकी भेंट हुई थी। रमपतिया उसी से मिलने आयी थी। पंचकोड़ी ने माफ जवाब दे दिया था, 'क्या झूठ-फरेब जोड़ने आयी है? कमलपुर के नंदूबाबू के पास क्यों नहीं जाती, मुझे उल्लू बनाने आयी है। नंदूबाबू का घोड़ा बारह बजे रात को...' चीख उठी थी रमपतिया, 'पाँचू !... चुप रहो !'

उसी रात रसपिरिया बजाते समय उसकी उँगली टेढ़ी हो गयी थी। मृदंग पर जमनिका देकर वह परबेस का ताल बजाने लगा। नटुआ ने डेढ़ मात्रा बेताल होकर प्रवेश किया तो उसका माथा ठनका। परबेस के बाद उसने नटुआ को झिड़की दी, 'ए स्साला ! थप्पड़ों से गाल लाल कर दूँगा।' और रसपिरिया की पहली कड़ी ही टूट गयी। मिरदंगिया ने ताल को संभालने की बहुत चेष्टा की। मृदंग की सूखी चमड़ी जी उठी, दाहिने पूरे पर लावा-फरही फूटने लगे और ताल कटते-कटते उसकी उँगली टेढ़ी हो गयी। झूठी टेढ़ी उँगली। 'हमेशा के लिए पंचकोड़ी की मंडली टूट गयी। धीरे-धीरे इलाके से विद्यापति-नाच ही उठ गया। अब तो कोई विद्यापति की चर्चा भी नहीं करते हैं।' घूप-पानी से परे, पंचकोड़ी का शरीर ठंडी महफिली में ही पनपा था। 'बेकार जिदगी में मृदंग ने बड़ा काम दिया। बेकारी का एकमात्र सहारा—मृदंग !'

एक युग मे वह गले में मृदंग लटकाकर भीख माँग रहा है—घा-तिंग, घा-तिंग !

वह एक आम उठाकर चूसने लगा—लेकिन, लेकिन, 'लेकिन' मोहना को डायन की बात कैसे मालूम हुई ?

उँगली टेढ़ी होने की खबर सुनकर रमपतिया दौड़ी आयी थी, घंटों उँगली को पकड़कर रोती रही थी, 'हे दिनकर, किमने इतनी बड़ी दुश्मनी की ? उसका बुरा हो।' मेरी बात लौटा दो भगवान ! गुस्से में कही हुई बातें। नहीं, नहीं। पाँचू, मैंने कुछ भी नहीं किया। जरूर किसी डायन ने बान मार दिया है।'

मिरदंगिया ने आँखे पोछते हुए डलते हुए सूरज की ओर देखा। 'इस मृदंग को कलेजे से सटाकर रमपतिया ने कितनी रातें काटी हैं !' मिरदंग को उसने अपनी छाती से लगा लिया।

पेड़ की छानो पर बैठी हुई चील ने उड़ते हुए जोड़े से कुछ कहा—टि-टि-टि-टि !

“ए स्पाना !” उमने चील को गाली दी । तंबाकू चुनियाकर मुंह में डाल ली और मृदंग के पूरे पर उँगलियाँ नचाने लगा—धिरनागि, धिरनागि, धिरनागि-धिनता !

पूरी जमनिका वह नहीं बजा सका । बीच में ही ताल टूट गया ।

—अ-कि-हे-ए-ए-हा-आआ-ह-हा !

सामने झरबेरी के जंगल के उस पार किसी ने मुरीली आवाज में, बड़े समारोह के साथ रसप्रिया की पदावली उठायी :

“न-व-वृंदा-वन, न-व-न-व-तरु-ग-न, न-व-नव विकसित फूल...”

मिरदंगिया के सारे शरीर में एक लहर दौड़ गयी । उसकी उँगलियाँ स्वयं ही मृदंग के पूरे पर घिरकने लगी । गाय-बैलों के झुड़ दोपहर की उतरती छाया में आकर जमा होने लगे ।

खेतों में काम करनेवालों ने कहा, “पागल है । जहाँ जी चाहा, बैठकर बजाने लगता है ।”

“बहुत दिन के बाद लौटा है ।”

“हम तो ममझते थे कि कहीं मर-खप गया ।”

रसप्रिया की मुरीली रागिनी ताल पर आकर कट गयी । मिरदंगिया का पागलपन अचानक बढ़ गया । वह उठकर दौड़ा । झरबेरी की झाड़ी के उस पार कौन है ? कौन है यह शुद्ध रसप्रिया गानेवाला ? ... इस जमाने में रसप्रिया का रसिक ? झाड़ी में छिपकर मिरदंगिया ने देखा, मोहना तन्मय होकर दूसरे पद की तैयारी कर रहा है । गुनगुनाहट बढ़ करके उमने गले को माफ़ किया । मोहना के गले में राधा आकर बैठ गयी है ! ... क्या बंदिश है !

“न-दी-बहु नयनक नी ... !

आहो ... पल्लि बहाए ताहि नी ... !”

मोहन बेसुध होकर गा रहा था । मृदंग के बोल पर वह झूम-झूमकर गा रहा था । मिरदंगिया की आँखें उसे एकटक निहार रही थी और उसकी उँगलियाँ फिरकी की तरह नाचने को व्याकुल हो रही थीं ! ... चालीस वर्ष का अधपागल युगों के बाद भावावेश में नाचने लगा । ... रह-रहकर वह अपनी विकृत आवाज में पदों की कड़ी धरता—फोंय-फोंय, सोंय-सोंय !

धिरनागि-धिनता !

“डुहू रस ... म ... य तनु-गुने नहीं ओर ।

लागल डुहूक न भाँगय जो-र ।”

मोहना के आधे काले और आधे लाल होंठों पर नयी मुस्कुराहट दौड़ गयी । पद समाप्त करने हुए वह बोला, “इस्म ! देढ़ी उँगली पर भी इतनी तेजी !”

मोहना हाँफने लगा । उसकी छाती की हड्डियाँ !

“उफ ! मिरदंगिया घम्म से जमीन पर बैठ गया, “कमाल ! कमाल !... किससे सीखे ? कहाँ सीखी तुमने पदावली ? कौन है तुम्हारा गुरु ?”

मोहना ने हँसकर जवाब दिया, “सीखूँगा कहाँ ? माँ तो रोज गाती है।” प्रातकी मुझे बहुत याद है, लेकिन अभी तो उसका समय नहीं।”

“हाँ बेटा ! बेताले के साथ कभी मत गाना-बजाना। जो कुछ भी है, सब चला जायेगा।” समय-क़समय का भी खयाल रखना। लो, अब आम खा लो।”

मोहना त्रेसिन्नक आम लेकर चूसने लगा।

“एक और लो।”

मोहना ने तीन आम खाये और मिरदंगिया के विशेष आग्रह पर दो मुट्ठी मूँदी भी फाँक गया।

“अच्छा, अब एक बात बताओगे मोहना ! तुम्हारे माँ-बाप क्या करते हैं ?”

“बाप नहीं है, अकेली माँ है। बाबू लोगों के घर कुटाई-पिसाई करती है।”

“और तुम नौकरी करते हो ! किसके यहाँ ?”

“कमलपुर के नंदूबाबू के यहाँ।”

“नंदूबाबू के यहाँ ?”

मोहना ने बताया, उसका घर सहरसा में है। तीसरे साल सारा गाँव कोसी मैया के पेट में चला गया। उसकी माँ उसे लेकर अपने ममहर आमी है।” कमलपुर।

“कमलपुर में तुम्हारी माँ के मामू रहते हैं ?”

मिरदंगिया कुछ देर तक चुपचाप सूर्य की ओर देखता रहा। “नंदूबाबू—मोहना—मोहना की माँ !

“झायनवाली बात तुम्हारी माँ कह रही थी ?”

“हाँ।”

“और एक बार सामदेव झा के यहाँ जनेऊ में तुमने गिरधर-गट्टी मंडलीवालों का मिरदंग छीन लिया था।” बेताना बजा रहा था। ठीक है न ?”

मिरदंगिया की खिचड़ी दाढ़ी मानो अचानक सफेद हो गयी। उसने अपने को सम्हालकर पूछा, “तुम्हारे बाप का क्या नाम है ?”

“अजोध्यादाम।”

“अजोध्यादाम ?”

बूढ़ा अजोध्यादास, जिसके मुँह में न बोल, न आँख में लोह। “मंडली में गठरी ढोता था। बिना पैसे का नौकर बेचारा अजोध्यादास !

“बड़ी मयानी है तुम्हारी माँ।” एक लंबी साँस लेकर मिरदंगिया ने अपनी झोली से एक छोटा बटुआ निकाला। लाल-...ने कपड़ों के टुकड़ों को खोलकर कागज की एक पुड़िया निकाली उसने।

मोहना ने पहचान लिया, “लोट ? क्या है, लोट ?”

“हाँ, नोट है।”

“कितने रुपयेवाला है? पँचटकिया। ऐं...दसटकिया? जरा छूने दोगे? कहाँ से लाये?” मोहना एक ही माँस में सब-कुछ पूछ गया, “सब दसटकिया है?”

“हाँ, सब मिलाकर चालीम रुपये हैं।” मिरदंगिया ने एक बार इधर-उधर निगाहें दौड़ायीं; फिर फुमफुमाकर बोला, “मोहना बेटा! फारबिमगंज के बागडर बाबू को देकर बढ़िया दवा लिखा लेना।...खट्टा-मिट्ठा परहेज करना।...गरम पानी जरूर पीना।”

“रुपये मुझे क्यों देते हो?”

“जल्दी रख ले, कोई देख लेगा।”

मोहना ने भी एक बार चारों ओर नजर दौड़ायी। उसके होंठों की कालिख और गहरी हो गयी।

मिरदंगिया बोला, “बीड़ी-तंबाकू भी पीते हो? खबरदार!”

वह उठ खड़ा हुआ।

मोहना ने रुपये ले लिये।

“अच्छी तरह गाँठ में बाँध ले। माँ से कुछ मत कहना।

“और हाँ, यह भीख का पैसा नहीं। बेटा, यह मेरी कमाई के पैसे हैं। अपनी कमाई के...”

मिरदंगिया ने जाने के लिए पाँव बढ़ाया।

“मेरी माँ खेत में घास काट रही है। चलो न!” मोहना ने आप्रह किया।

मिरदंगिया रुक गया। कुछ मोचकर बोला, “नहीं मोहना! तुम्हारे जैसा गुणवान बेटा पाकर तुम्हारी माँ ‘महारानी’ है, मैं महाभिखारी दमदुआरी हूँ। जाबक, फकीर...! दवा से जो पैसे बचें, उनका दूध पीना।”

मोहना की बड़ी-बड़ी आँखें कमलपुर के नंदूबाबू की आँखों जैसी हैं...

“रे मो-ह-ना-रे-हे! बेल कहाँ है रे?”

“तुम्हारी माँ पुकार रही है शायद।”

“हाँ। तुमने कैसे जान लिया?”

“रे मो-ह-ना-रे-हे!”

एक गाय ने मुर-में-मुर मिलाकर अपने बछड़े को बुलाया।

गाय-बैलों के घर लौटने का समय हो गया। मोहना जानता है, माँ बेल हाँककर ला रही होगी। झूठ-मूठ उसे बुला रही है। वह चुप रहा।

“जाओ।” मिरदंगिया ने कहा, “माँ बुला रही है। जाओ।...अब से मैं पदावली नहीं, रमपिरिया नहीं, निरगुन गाऊँगा। देखो, मेरी उँगली शायद मीठी हो रही है। शुद्ध रमपिरिया कोन गा सकता है आजकल?...”

“अरे, चनू मन, चनू मन—गमुरार जइसे हो रामा,

कि आहो रामा,
नैहिरा में अगिया जगायब रे-की...।”

छेतों की पगड़ंडी झरबेरी के जंगल के बीच होकर जाती है। निरगुन गाता हुआ मिरदगिया झरबेरी की झाड़ियों में छिप गया।

“ले। यहीं अकेला खड़ा होकर क्या करता है? कौन बजा रहा था मृदंग रे?” घास का बोझा सिर पर लेकर मोहना की माँ खड़ी है।

“पँचकौड़ी मिरदगिया।”

“ऐं, वह आया है? आया है वह?” उसकी माँ ने बोझ जमीन पर पटकते हुए पूछा।

“मैंने उसके ताल पर रसपिरिया गाया है। कहता था, इतना शुद्ध रसपिरिया कौन गा सकता है आजकल!... उसकी उँगली अब ठीक हो जायेगी।”

माँ ने बीमार मोहना को आह्लाद से अपनी छाती से सटा लिया।

“लेकिन तू तो हमेशा उसकी टोकरी-भर शिकायत करती थी—बेईमान है, गुरु-दरोही है, झूठा है!”

“हूँ रे! वैसे लोगों की संगत ठीक नहीं। खबरदार, जो उसके साथ फिर कभी गया! दसदुआरी जाचकों से हेलमेल करके अपना ही नुकसान होता है।... चस, उठा बोझ!”

मोहना ने बोझ उठाते समय कहा, “जो भी हो, गुनी आदमी के साथ रसपिरिया...।”

“चोप! रसपिरिया का नाम मत ले।”

अजीब है माँ! जब गुस्सायेगी तो बाधिन की तरह और जब खुश होती है तो गाय की तरह हुँकारती आयेगी और छाती से लगा लेगी। तुरत खुश, तुरत नाराज।...

दूर से मृदंग की आवाज आयी—धा-तिंग, धा-तिंग!

मोहना की माँ खेत की ऊबड़-खाबड़ मेड़ पर चल रही थी। ठोकर खाकर गिरते-गिरते बची। घास का बोझ गिरकर खुल गया। मोहना पीछे-पीछे मुँह लटकाकर जा रहा था। बोला, “क्या हुआ, माँ?”

“कुछ नहीं।”

—धा-तिंग, धा-तिंग!

मोहना की माँ खेत की मेड़ पर बैठ गयी। जेठ की शाम से पहले जो पुरबैया चलती है, धीरे-धीरे तेज हो गयी।... मिट्टी की सौधी सुगंध हवा में धीरे-धीरे घुलने लगी।

—धा-तिंग, धा-तिंग!

“मिरदंगिया और कुछ बोलता था, बेटा ?” मोहना की माँ आगे कुछ न बोल सकी ।

“कहता था, तुम्हारे जैसा गुणवान बेटा पाकर तुम्हारी माँ महारानी है, मैं तो दसदुआरी हूँ....”

“झूठा, बेईमान !” मोहना की माँ आँसू पोंछकर बोली, “ऐसे लोगों की संगत कभी मत करना ।”

मोहन चुपचाप खड़ा रहा ।

(1955)

तीसरी कसम, अर्थात् मारे गये गुलफाम

हिरामन गाड़ीवान की पीठ में गुदगुदी लगती है।...

पिछले बीस साल से गाड़ी हाँकता है हिरामन। बँलगाड़ी। सीमा के उस पार मोरंग, राज नेपाल से धान और लकड़ी ढो चुका है। कट्रोल के जमाने में चोर-बाजारी का माल इस पार से उस पार पहुँचाया है। लेकिन कभी तो ऐसी गुदगुदी नहीं लगी पीठ में !...

कंट्रोल का जमाना ! हिरामन कभी भूल सकता है उस जमाने को ! एक बार चार खेप सीमेंट और कपड़े की गाँठों से भरी गाड़ी, जोगबनी से बिराटनगर पहुँचाने के बाद हिरामन का कलेजा पोछता हो गया था। फारबिसगंज का हर चोर-व्यापारी उसको पक्का गाड़ीवान मानता। उसके बँलों की बड़ाई बड़ी गद्दी के बड़े सेठजी खुद करते, अपनी भाषा में...

गाड़ी पकड़ी गई पाँचवीं बार, सीमा के इस पार तराई में।

महाजन का मुनीम उसी की गाड़ी पर गाँठों के बीच चुक्की-मुक्की लगाकर छिपा हुआ था। दारोगा साहब की डेढ़ हाथ लंबी चोरबत्ती की रोशनी कितनी तेज होती है, हिरामन जानता है। एक घंटे के लिए आदमी अंधा हो जाता है, एक छटक भी पड़ जाये आँखों पर ! रोशनी के साथ कड़कती हुई आवाज—ऐ-य ! गाड़ी रोको ! भाले, गोली मार देगे !...

बीसो गाड़ियाँ एक साथ अचानक रुक गयीं। हिरामन ने पहले ही कहा था—यह बीस विषावेगा ! दारोगा साहब उसकी गाड़ी में दुबके हुए मुनीम पर रोशनी डालकर पिशाची हँसी हँसे—हा-हा-हा ! मुड़ीमजी-ई-ई-ई ! ही-ही-ही !...ऐ-य, माला गाड़ीवान, मुंह क्या देखता है रे-ए-ए ! कबल हटाओ इस बोरे के मुंह पर सं ! हाथ की छोटी लाठी से मुनीमजी के पेट में खोचा मारते हुए कहा था—इस बोरे को ! रु-स्ताला ! ..

बहुत पुरानी अखज-अदावत होगी दारोगा साहब और मुनीमजी में। नही तो उतना रुपया कबूलने पर भी पुलिस-दारोगा का मन न डोले भला ! चार हजार

तो गाड़ी पर बैठा-बैठा ही दे रहा था। लाठी से दूसरी बार खोंचा मारा दारोगा ने। पाँच हजार ! फिर खोंचा—उतरो पहले। ...

मुनीम को गाड़ी से नीचे उतारकर दागोगा ने उसकी आँखों पर रेशमी डाल दी। फिर दो सिपाहियों के साथ सड़क के बीस-पच्चीस रस्सी दूर झाड़ी के पास ले गये। गाड़ीवान और गाड़ियों पर पाँच-पाँच बंदूक वाले सिपाहियों का पहरा ! ... हिरामन समझ गया, इस बार निस्तार नहीं... जेल ? हिरामन को जेल का डर नहीं। लेकिन उसके बैल ? न जाने कितने दिनों तक बिना चारा-पानी के सरकारी फाटक में पड़े रहेगे—भूखे-प्यासे। फिर नीलाम हो जायेंगे। भैया-भौजी को वह मुँह नहीं दिखा सकेगा कभी। ... नीलाम की बोली उसके कानों के पास गूँज गयी—एक-दो-तीन ! दारोगा और मुनीम में बात पट नहीं रही थी शायद।

हिरामन की गाड़ी के पास तँनात सिपाही ने अपनी भाषा में दूसरे सिपाही से धीमी आवाज में पूछा—का हो ? मामला गोल होखी का ?—फिर खैनी-तंबाकू देने के बहाने उस सिपाही के पास चला गया। ...

एक-दो-तीन ! तीन-चार गाड़ियों की आड़। हिरामन ने फँसला कर लिया। उसने धीरे से अपने बैलों के गले की रस्सियाँ खोल ली। गाड़ी पर बैठे-बैठे दोनों को जुड़वा बाँध दिया। बैल समझ गये, उन्हें क्या करना है। हिरामन उतरा, जुती हुई गाड़ी में बाँस की टिकटी लगाकर बैलों के कंधों को बेलाग किया। दोनों के कानों के पास गुदगुदी लगा दी और मन-ही-मन बोला—चलो भयन, जान बचेगी तो ऐसी-ऐसी सगड़ गाड़ी बहुत मिलेंगी। ... एक-दो-तीन ! नौ-दो-प्यारह ! ...

गाड़ी की आड़ में सड़क के किनारे दूर तक घनी झाड़ी फँली हुई थी। दम साधकर तीनों प्राणियों ने झाड़ी को पार किया—बेखटके, बेआहट ! फिर एक ले, दो ले—दुलकी चाल ! दोनों बैल सीना तानकर फिर तराई के घने जंगलों में घुस गये। राह सूँघते, नदी-नाला पार करते हुए भागे पूँछ उठाकर। पोछे-पीछे हिरामन। रात-भर भागते रहे ये तीनों जन। ...

घर पहुँचकर दो दिन तक बेसुध पड़ा रहा हिरामन। होश में आते ही उसने कान पकड़कर कमर खाई थी—अब कभी ऐसी चीजों की लदनी नहीं लादेगे। चोरबाजारी का माल ? तोबा-तोबा ! ... पता नहीं, मुनीमजी का क्या हुआ ! भगवान जाने, उसकी सगड़ गाड़ी का क्या हुआ ! असली इस्पाती लोहे की घुरी थी। दोनों पहिये तो नहीं, एक पहिया एकदम नया था। गाड़ी में रंगीन झोरियों के फुंदने बड़े जतन से गूँथ गए थे। ...

दो कसमें खाई है उसने। एक—चोरबाजारी का माल नहीं लादेगे। दूसरी—बाँस। अपने हर भाड़ेदार से वह पहले ही पूछ लेता है—चोरी-चकारी वाली चीज तो नहीं ? और, बाँस ? बाँस लादने के लिए पचाम रुपये भी दे कोई, हिरामन की

गाड़ी नहीं मिलेगी । दूसरे की गाड़ी देखे ।...

बाँस लदी हुई गाड़ी ! गाड़ी के चार हाथ आगे बाँस का अगुआ निकला रहता है और पीछे की ओर चार हाथ पिछ्छा ! काबू के बाहर रहती है गाड़ी हमेशा । मो बेकाबू वाली लदनी और खरँहिया । शहर वाली बात ! तिस पर बाँस का अगुआ पकड़कर चलने वाला भाड़ेदार का महा भकुआ नौकर, लड़की-स्कूल की ओर देखने लगा । बम, मोड़ पर घोड़ागाड़ी से टक्कर हो गयी । जब तक हिरामन बैलों की रस्सी खींचे, तब तक घोड़ागाड़ी की छतरी बाँस के अगुआ में फँस गयी । घोड़ागाड़ी वाले ने तड़ातड़ चाबुक मारते हुए गाली दी थी !...

बाँस की लदनी ही नहीं, हिरामन ने खरँहिया शहर की लदनी भी छोड़ दी । और जब फारमिगंज से मोरंग का भाड़ा ढोना शुरू किया तो गाड़ी ही पार !... कई वर्षों तक हिरामन ने बैलों को आधेदारी पर जोता । आधा भाड़ा गाड़ीवाले का और आधा बैलवाले का । हिस्स ! गाड़ीवानी करो मुपत ! आधेदारी की कमाई से बैलों के ही पेट नहीं भरते । पिछले साल ही उसने अपनी गाड़ी बनवाई है ।

देवी मैया भला करे उस सरकस कपनी के बाघ का । पिछले साल इसी मेले में बाघगाड़ी को ढोने वाले दोनों घोड़े मर गए । चपानगर से फारबिमगज मेला आने के समय सरकस कपनी के प्रिनेजर ने गाड़ीवान पट्टी में ऐलान करके कहा—सौ रुपया भाड़ा मिलेगा !—एक-दो गाड़ीवान राजी हुए । लेकिन, उसके बैल बाघगाड़ी से दस हाथ दूर ही डर से ठिकरने लगे—बाँ-आँ ! फिर रस्सी तुड़ाकर भागे । हिरामन ने अपने बैलों की पीठ सहलाते हुए कहा—देखो भंयन, ऐसा मौका फिर हाथ नहीं आएगा । यही मौका है अपनी गाड़ी बनवाने का । नहीं तो फिर आधेदारी... अरे, पिजड़े में बंद बाघ का क्या डर ? मोरंग की तराई में दहाड़ते हुए बाघों को देख चुके हो । फिर पीठ पर मैं तो हूँ ।...

गाड़ीवानों के दल में तालियाँ पटपटा उठी थी एक साथ । सभी की लाज रख ली हिरामन के बैलों ने । हुमककर आगे बढ़ गये और बाघगाड़ी में जुट गये—एक-एक करके । सिर्फ दाहिने बैल ने जुतने के बाद ढेर-सा पेशाब किया । हिरामन ने दो दिन तक नाक से कपड़े की पट्टी नहीं खोली थी । बड़ी गद्दी के बड़े सेठजी की तरह नकबन्धन लगाये बिना बघाइन गंध बर्दाश्त नहीं कर सकता कोई ।

...बाघगाड़ी की गाड़ीवानी की है हिरामन ने । कभी ऐसी गुदगुदी नहीं लगी पीठ में । आज रह-रहकर उसकी गाड़ी में चंभा का फूल महक उठता है । पीठ में गुदगुदी लगने पर वह अँगोछे से पीठ झाड़ लेता है ।

हिरामन को लगता है, दो वर्ष से चपानगर मेले की भगवती मैया उस पर प्रसन्न हैं । पिछले साल बाघगाड़ी जुट गयी । नकद एक सौ रुपये भाड़े के अनावा बुताद, बाह-बिस्कुट और रास्ते-भर बंदर-पालू और जोकर का तमाशा देखा सो

फोकट में !

और, इस बार यह जनानी सवारी । औरत है या चंपा का फूल ! जब से गाड़ी में बैठी है, गाड़ी मह-मह महक रही है ।

कच्ची सड़क के एक छोटे-से खड्ड में गाड़ी का दाहिना पहिया बेमौके हिच-कोला खा गया । हिरामन की गाड़ी से एक हल्की 'मिस' की आवाज आयी । हिरामन ने दाहिने बेल को दुआली से पीटते हुए कहा—साला ! क्या समझता है, बोरे की लदनी है क्या ?

—अहा ! मारो मत !

अनदेखी औरत की आवाज ने हिरामन को अचरज में डाल दिया । बच्चों की बोसी जैसी महीन, फेनूगिलासी बोली !

मथुरामोहन नौटंकी कंपनी में लैला बनने वाली हीराबाई का नाम किसने नहीं सुना होगा भला ! लेकिन हिरामन की बात ही निराली है । उसने सात साल तक लगातार मेलों की लदनी लादी है, कभी नौटंकी थियेटर या ब्रायस्कोप-सिनेमा नहीं देखा । लैला या हीराबाई का नाम भी उसने नहीं सुना कभी । देखने की क्या बात ! सो मेला दूटने के पंद्रह दिन पहले आधी रात की बेला में काली ओढ़नी में लिपटी औरत को देखकर उसके मन में खटका अवश्य लगा था । बक्स ढोने वाले नौकर ने गाड़ीभाड़ा में मोल-मोलाई करने की कोशिश की तो ओढ़नीवाली ने सिर हिलाकर मना कर दिया । हिरामन ने गाड़ी जोतते हुए नौकर से पूछा—क्यों भैया, कोई चोरी-चकारी का माल-वाल तो नहीं ?—हिरामन को फिर अचरज हुआ । बक्स ढोने वाले आदमी ने हाथ के इशारे से गाड़ी हॉकने को कहा और अँधेरे में गायब हो गया । हिरामन को मेले में तंबाकू बेचने वाली बूढ़ी की काली साड़ी की याद आयी थी । ...

ऐसे में कोई क्या गाड़ी हॉकि !

एक तो पीठ में गुदगुदी लग रही है । दूसरे, रह-रहकर चंपा का फूल खिल जाता है उसकी गाड़ी में । बेलों को डाँटो तो इस-बिम करने लगती है उसकी सवारी । ... उसकी सवारी ! औरत अकेली, तंबाकू बेचने वाली बूढ़ी नहीं ! आवाज सुनने के बाद वह बार-बार मुड़कर टप्पर में एक नजर डाल देता है ; अँगोछे से पीठ झाड़ता है । ... भगवान ही जाने, क्या लिखा है इस बार उसकी किस्मत में ! गाड़ी जब पूरब की ओर मुड़ी, एक टुकड़ा चाँदनी उसकी गाड़ी में समा गया । सवारी की नाक पर एक जुगनू जगमगा उठा । हिरामन को सब-कुछ रहस्यमय अजगुत-अजगुत लग रहा है । सामने चंपानगर से सिधिया गाँव तक फैला हुआ मैदान ! ... कहीं डाकिन-पिशाचिन तो नहीं ?

हिरामन की सवारी ने करवट ली । चाँदनी पूरे मुखड़े पर पड़ी तो हिरामन चीखते-चीखते रुक गया—अरे बाप ! ई तो परी है !

परी की आँखें खुल गयीं। हिरामन ने मामने मड़क की ओर मुंह कर लिया और बैलों को टिटकारी दी। वह जीभ को तालू में मटाकर टि-टि-टि आवाज निकालता है। हिरामन की जीभ न जाने कब से सूखकर लकड़ी जैसी हो गयी थी।

—भैया, तुम्हारा नाम क्या है ?

हू-ब-हू फेनूगिलास ! ... हिरामन के रोम-रोम बज उठे। मुंह से बोली नहीं निकली। उसके दोनों बैल भी कान खड़े करके इस बोली को परखते हैं।

—मेरा नाम ? ... नाम मेरा है, हिरामन !

उसकी सवारी मुस्कुराती है ... मुस्कुराहट में खुशबू है।

—तब तो मोता कहूँगी, भैया नहीं—मेरा नाम भी हीरा है।

—इम्स ! हिरामन को परतीत नहीं, मर्द और औरत के नाम में फर्क होता है।

—हाँ जी, मेरा नाम भी हीराबाई है।

कहाँ हिरामन और कहाँ हीराबाई, बहुत फर्क है !

हिरामन ने अपने बैलों को झिड़की दी—कान चुनियाकर गप सुनने से ही तीस कोम मंजिल कटेगी क्या ? इस बाये नाटे के पेट में जैतानी भरी है।—हिरामन ने बायें बैल को दुआली की हल्की झड़प दी।

—मारो मत; धीरे-धीरे चलने दो। जल्दी क्या है ?

हिरामन के मामने सवाल उपस्थित हुआ, वह क्या कहकर 'गप' करे हीराबाई में ? 'तोहे' कहे या 'अहाँ' ? उसकी भाषा में बड़ों को 'अहाँ' अर्थात् 'आप' कहकर संबोधित किया जाता है। कचराही बोली में दो-चार मवाल-जवाब चल सकता है, दिलखोल गप तो गाँव की बोली में ही की जा सकती है किसी से।

आमिन-कातिक को भोर में छा जाने वाले कुहासे से हिरामन को पुरानी चिढ़ है। बहुत बार वह मड़क भूलकर भटक चुका है। किंतु आज की भोर के इस घने कुहासे में भी वह मगन। नदी के किनारे घने खेतों में फूले हुए धान के पौधों की पबनिया गंध आती है। पर्व-पावन के दिन गाँव में ऐसी ही सुगंध फैली रहती है। उसकी गाड़ी में फिर चपा का फूल खिला। उस फूल में एक परी बैठी है। ... जे भगवती !

हिरामन ने आँख की कनखियों से देखा, उसकी सवारी ... मोता ... हीराबाई की आँखें गुजुर-गुजुर उसको हेर रही है। हीरामन के मन में कोई अजानी रागिनी बज उठी। सारी देह सिरसिरा रही है। वह बोला—बैल को मारते हैं तो आपको बहुत बुरा लगता है ?

हीराबाई ने परख लिया, हिरामन सचमुच हीरा है।

चालीस साल का हट्टा-कट्टा, काला-कलूटा, देहाती नौजवान अपनी गाड़ी और अपने बैलों के सिवाय दुनिया की किसी और बात में विशेष दिलचस्पी नहीं लेता। घर में बड़ा भाई है, खेती करता है। बाल-बच्चेवाला आदमी है। हिरामन भाई से बढ़कर भाभी की इज्जत करता है। भाभी से डरता भी है। हिरामन की भी शादी हुई थी। बचपन में ही गौने के पहले ही दुलहिन मर गई। हिरामन को अपनी दुलहिन का चेहरा अब याद नहीं—दूसरी शादी? दूसरी शादी न करने के अनेक कारण हैं। भाभी की जिद्द : कुमारी लड़की से ही हिरामन की शादी करवायेगी। कुमारी का मतलब हुआ, पाँच-सात साल की लड़की। कौन मानता है सरधा-कानून ? कोई लड़की वाला दोब्याह को अपनी लड़की गरज में पड़ने पर ही दे सकता है। भाभी उसकी तीन-सत्त करके बैठी है, साँ बैठी है। भाभी के आगे भैया की भी नहीं चलती !—अब हिरामन ने तय कर लिया है, शादी नहीं करेगा। कौन बलाय मोल लेने जाये, ब्याह करके फिर गाड़ीवानी क्या करेगा कोई ! और सब-कुछ चाहे छूट जाये, गाड़ीवानी नहीं छोड़ सकता हिरामन।

हीराबाई ने हिरामन के जैसा निश्छल आदमी बहुत कम देखा है। पूछा—आपका घर कौन जिला में पड़ता है ?—कानपुर नाम सुनते ही जो उसकी हँसी छूटी, तो बैल भड़क उठे। हिरामन हँसते समय सिर नीचा कर लेता है। हँसी बंद होने पर उसने कहा—वाह रे कानपुर ! तब तो नाकपुर भी होगा ?—और जब हीराबाई ने कहा कि नाकपुर भी है, तो वह हँसते-हँसते दुहरा हो गया।

—वाह रे दुनिया ! क्या-क्या नाम होता है ! कानपुर, नाकपुर !—हिरामन ने हीराबाई के कान के फूल को गौर से देखा। नाक की नकछवि का नग देखकर सिहर उठा—लहू की बूँद !

हिरामन ने हीराबाई का नाम नहीं सुना कभी। नौटंकी कंपनी की औरत को वह बाईजी नहीं समझता है।—कंपनी में काम करनेवाली औरतों को वह देख चुका है। सरकस कंपनी की मालकिन अपनी दोनों जवान बेटियों के साथ बाघगाड़ी के पास आती थी, बाघ को चारा-पानी देती थी, प्यार भी करती थी खूब। हिरामन के बैलों को भी डबलरोटी-बिस्कुट खिलाया था बड़ी बेटी ने।

हिरामन होशियार है। कुहासा छँटते ही अपनी चादर से टप्पर से परब कर विया—बस, दो घंटा ! उसके बाद रास्ता चलना मुश्किल है। कातिक की सुबह की धूप आप बर्दाश्त न कर सकियेगा। कजरी नदी के किनारे तेगछिया के पास गाड़ी लगा देंगे। दोपहरिया काटकर—

सामने से आती हुई गाड़ी को दूर से ही देखकर वह सतक हो गया। लीक और बैलों पर ध्यान लगाकर बैठ गया। राह काटते हुए गाड़ीवान ने पूछा—मेला टूट रहा है क्या भाई !

हिरामन ने जबाब दिया, वह मेले की बात नहीं जानता। उमकी गाड़ी पर 'विदागी' (नेहर या समुगल जाती हुई लडकी) है। न जाने किस गाँव का नाम बता दिया हिरामन ने।

—छनापुर पचीरा कहाँ है ?

—कही हो, यह लेकर आप क्या करियेगा ?—हिरामन अपनी चतुराई पर हँसा। परदा डाल देने पर भी पीठ में गुदगुदी लगती है।

हिरामन परदे के छेद से देखता है। हीराबाई एक दियागलाई की डिब्बी के बराबर आईने में अपने दौन देख रही है। ...मदनपुर मेले में एक बार बँनों को नन्ही-बिल्ली कौड़ियों की माला खरीद दी थी हिरामन ने। छोटी-छोटी नन्ही-नन्ही कौड़ियों की पीत।

तेगछिया के तीनों पेड़ दूर से ही दिखाई पड़ते हैं। हिरामन ने परदे को जग मरकाते हुए कहा—देखिए, यही है तेगछिया। दो पेड़ जटामासी बड़ हैं और एक ... उम फूल का क्या नाम है ? आपके कुरते पर जैसा फूल छपा हुआ है, वैसा ही। खूब महकता है। दो कोम दूर तक गंध जाती है। उम फूल को खमीरा तंबाकू से गलकर पीते भी है लोग।

—और उम अमगाई की आड़ से कई मकान दिखाई पड़ते हैं, वहाँ कोई गाँव है या मंदिर ?

हिरामन ने बीड़ी मुलगाने के पहले पूछा—बीड़ी पीये ? आपको गंध तो नहीं लगेगी ?—वही है नामलगर ड्योटी। जिम राजा के मेले से हम लोग आ रहे हैं, उमी का दिमाद-गोतिया है। ... जा रे जमाना !

हिरामन ने 'जा रे जमाना' कहकर बात को चाशनी में डाल दिया। हीराबाई ने टणर के परदे को तिरछे खोम दिया। ... हीराबाई की दंत-पंक्ति !

—कौन जमाना ?—ठुड्डी पर हाथ रगड़कर माग्रह बोली।

—नामलगर ड्योटी का जमाना ! क्या था, और क्या से क्या हो गया ?

हिरामन गप रमाने का भेद जानता है। हीराबाई बोली—तुमने देखा था वह जमाना ?

—देखा नहीं, सुना है। ... राज कैमे गया, बड़ी हैफवाली कहानी है। मुनते हैं, घर में देवता ने जन्म ले लिया। कहिए भला, देवता आखिर देवता हैं ! हैं या नहीं ? इंद्रामन छोड़कर भिरतुभुवन में जन्म ले ले तो उमका तेज कैमे सम्हाल सकता है कोई। सूरजमुखी फूल की तरह माये के पाम तेज खिला रहता। लेकिन नजर का फेर, किमी ने नहीं पहचाना। एक बार उपलैन में लाट साहब मय लाटनी के, हवागाडी में आये थे। लाट ने भी नहीं, पहचाना आखिर लाटनी ने। सूरजमुखी तेज देखते ही बोल उठी—ए मैं राजा साहब, मुनो, यह आदमी का बच्चा नहीं है, देवता है।

हिरामन ने नाटनी की बोली की नकल उतारते समय खूब डैम-फैट-लैट किया। हीराबाई दिल खोलकर हँसी। 'हँमते समय उसकी मारी देह दुलकती है।

हीराबाई ने अपनी ओढ़नी ठीक कर ली। तब हिरामन को लगा कि 'लगा कि'

—तब ? उसके बाद क्या हुआ गीता ?

—इसम ! बत्था मुनने का बड़ा सौक है आपको ? 'लेकिन, काला आदमी राजा क्या महाराजा भी हो जाये, रहेगा काला ही। साहेब के जैमा अक्किल कहीं से पायेगा ! हँसकर बात उड़ा दी सभी ने। तब रानी को बार-बार सपना देने लगा देवना ! सेवा नहीं कर सकते तो जाने दो, नहीं रहेंगे तुम्हारे यहीं। इसके बाद देवता का खेल सुरू हुआ। सबसे पहले दोनों दंतार हाथी मरे, फिर घोड़ा, फिर पटपटांग '।

—पटपटांग क्या ?

हिरामन का मन पल-पल में बदल रहा है। मन में सतरंगा छाता धीरे-धीरे खुल रहा है। उसको लगता है 'उसकी गाड़ी पर देवकुल की औरत सवार है। देवता आखिर देवता है।

—पटपटांग ! धन-दौलत, माल-मवेशी सब साफ ! देवता इंद्रासन चला गया।

हीराबाई ने ओझल होते हुए मंदिर के कंगूरे की ओर देखकर लंबी साँस ली।

—लेकिन देवता ने जाते-जाते कहा—इस राज्य में कभी एक छोड़कर दो बेटा नहीं होगा। धन हम अपने साथ ले जा रहे हैं, गुन छोड़ जाते हैं।—देवता के साथ सभी देव-देवी चले गये, मिर्फ सरोसती मैया रह गयी। उसी का मंदिर है।

देशी घोड़ों पर पाट के बोझ लादे हुए बनियों को आते देखकर हिरामन ने टप्पर के परदे को गिरा दिया। वँलों को ललकारकर बिदेशिया नाच का बंझना गीत गाने लगा—जै मैया सरोसती, अरजी करत बानी; हमरा पर होखू सहाई हे मैया; हमरा पर होखू महाई !

घोड़लहे बनियों से हिरामन ने हुलसकर पूछा—क्या भाव पटुआ खरीदते हैं महाजन ?

लंगड़े घोड़े वाले बनिये ने बटगमनी जवाब दिया—नीचे सत्ताइस-अट्ठाइस, ऊपर तीस। जैसा माल वैसा भाव !

जवान बनिये ने पूछा—मेले का क्या हाल-चाल है, भाई ? कौन नौटंकी कंपनी का खेल हो रहा है, रोता कंपनी या मथुरामोहन ?

—मेने का हाल मेनेवाले जानें ! हिरामन ने फिर छत्तापुर पचीरा का नाम लिया।

मूरज दो बाँस ऊपर आ गया था। हिरामन अपने बैलों से बात करने लगा—एक कोम जमीन ! जरा दम बाँधकर चलो। प्याम की बेला हो गयी न ! याद है, उस बार तेगछिया के पास मरकस कंपनी के जोकड़ और बंदर नचाने वाले माहब में झगड़ा हो गया था ! जोकड़वा ठीक बंदर की तरह दाँत किटकिटाकर किकियाने लगा था। ... न जाने किम-किम देस-मुलुक के आदमी आते हैं।

हिरामन ने फिर परदे के छेद से देखा, हीराबाई एक कागज के टुकड़े पर आँख गड़ाकर बैठी है। हिरामन का मन आज हलके मुर में बँधा है। उसको तरह-तरह के गीतों की याद आती है। बीस-पचीस साल पहले, बिदेगिया, बलबाही, छोकरा नाचवाने एक से एक गजल-खेमटा गाते थे। अब तो, भोपा में भोपू-भोपू करके कौन गीत गाते हैं लोग ? जा रे जमाना ! छोकरा नाच के गीत की याद आई हिरामन को :

“मजनवा बैरी हो ग'य हमार ! सजनवा... !

अरे, चिठिया हो तो सब कोई बाँचे; चिठिया हो तो...

हाय ! करमवा, हाय करमवा...

कोई न बाँचे हमारो, सजनवा... हो करमवा..."

गाड़ी की बल्ली पर उँगलियों से ताल देकर गीत को काट दिया हिरामन ने। छोकरा नाच के मनुआँ-नटुवा का मुँह हीराबाई जैसा ही था। ... वहाँ चला गया वह जमाना ? हर महीने गाँव में नाचने वाले आते थे। हिरामन ने छोकरा नाच के चलते अपनी भाभी की न जाने कितनी बोली-ठोली सुनी थी। भाई ने घर से निकल जाने को कहा था।

आज हिरामन पर माँ मरस्वनी महाय है, लगना है। हीराबाई बोली—बाह, कितना बढ़िया गाते हो तुम !

हिरामन का मुँह लाल हो गया। वह मिर नीचा करके हँसने लगा।

आज तेगछिया पर रहने वाले महावीर स्वामी भी सहाय है हिरामन पर। तेगछिया के नीचे एक भी गाड़ी नहीं। हमेशा गाड़ी और गाड़ीवानों की भीड़ लगी रहती है यहाँ। सिर्फ एक साइकिलवाला बँठकर मुस्ता रहा है। महावीर स्वामी को मुमरकर हिरामन ने गाड़ी रोकी। हीराबाई परदा हटाने लगी। हिरामन ने पहली बार आँखों से बात की हीराबाई से—साइकिलवाला इधर ही टकटकी लगाकर देख रहा है।

बैलों को खोलने के पहले बाँस की टिकट्टी उगाकर गाड़ी को टिका दिया। फिर साइकिलवाले की ओर बार-बार घूरने हुए पूछा—कहाँ जाना है ? मेला ? कहीं से आना हो रहा है ? बिमनपुर में ? बम, इतनी ही दूर में थमथमाकर थक

गये ?...जा रे जवानी !

माइकिलबाला दुबला-पतला नौजवान भिनभिनाकर कुछ बोला और बीड़ी सुलगाकर उठ खड़ा हुआ ।

हिरामन दुनिया-भर की निगाह से बचाकर रखना चाहता है हीराबाई को । उसने चारों ओर नज़र दौड़ाकर देख लिया—कहीं कोई गाड़ी या घोड़ा नहीं ।

कजरी नदी की दुबली-पतली धारा तेगछिया के पास आकर पूरब की ओर मुड़ गयी है । हीराबाई पानी में बंठी हुई भ्रमों और उनकी पीठ पर बैठे हुए बगुलों को देखती रही ।

हिरामन बोला—जाइये, घाट पर मुंह-हाथ धो आइये ।

हीराबाई गाड़ी मे नीचे उतरी । हिरामन का कलेजा धड़क उठा । ' ' नहीं, नहीं ! पाँव सीधे हैं, टेढ़े नहीं । लेकिन, तलुआ इतना लाल क्यों है ? हीराबाई घाट की ओर चली गयी : गाँव की बहू-बेटी की तरह मिर नीचा करके, धीरे-धीरे । कौन कहेगा कि कंपनी की औरत है ?...औरत नहीं, लड़की । शायद कुमारी ही है ।

हिरामन टिकटी पर टिकी गाड़ी पर बैठ गया । उसने टप्पर में झाँककर देखा । एक बार इधर-उधर देखकर हीराबाई के तकिये पर हाथ रख दिया । फिर तकिये पर केटुनी डालकर झुक गया, झुकता गया । खुशबू उसकी देह में ममा गयी । तकिये के गिलाफ पर कड़े फूलों को उँगलियों से छूकर उसने सूँघा, हाथ रे हाथ ! इतनी सुगंध ! हिरामन को लगा, एक माथ पाँच चिलम गाँजा फूँककर वह उठा है । हीराबाई के आँखों में उसने अपना मुँह देखा । आँखें उसकी इतनी लाल क्यों हैं ?

हीराबाई लौटकर आयी तो उसने हँसकर कहा—अब आप गाड़ी का पहरा दीजिए, मैं आता हूँ तुरंत ।

हिरामन ने अपनी सफरी झोली से सहेजी हुई गंजी निकाली । गमछा झाड़कर कंधे पर लिया और हाथ में बालटी लटकाकर चला । उसके बेलों ने बारी-बारी से 'हुँक-हुँक' करके कुछ कहा । हिरामन ने जाने-जाते उलटकर कहा—हाँ, हाँ, प्याम सभी को लगी है । लौटकर आता हूँ तो घास दूँगा, बदमासी मत करो !

बेलों ने कान हिलाया ।

नहा-धोकर कब लौटा हिरामन, हीराबाई को नहीं मालूम । कजरी की धारा को देखते-देखते उसकी आँखों में रात की उचटी हुई नींद लौट आयी थी । हिरामन पाम के गाँव से जलपान के लिए दही-चूड़ा-चीनी ले आया है ।

—उठिये, नींद तोड़िए ! दो मुट्ठी जलपान कर लीजिए !

हीराबाई आँख खोलकर अचरज में पड़ गयी । एक हाथ मे मिट्टी के नये

बरतन में दही, केले के पत्ते। हमारे हाथ में बालटी-भर पानी। आँखों में आत्मीयतापूर्ण अनुरोध।

—इतनी चीजें कहाँ से ले आये ?

—इस गाँव की दही नामी है। ...चाहे तो फारबिसगंज जाकर ही पाइयेगा।

हिरामन की देह की गुदगुदी बिना गयी। हीराबाई ने कहा—तुम भी पत्तल बिछाओ। ...क्यों ? तुम नहीं खाओगे तो ममेटकर रख लो अपनी झोली में। मैं भी नहीं खाऊँगी।

—इस्म ! —हिरामन लजाकर बोला, अच्छी बात ! आप वा लीजिए पहले।

—गहने-पीछे क्या ? तुम भी बैठो।

हिरामन का जो जुड़ा गया। हीराबाई ने अपने हाथ में उमका पत्तल बिछा दिया, पानी छोट दिया, चूड़ा निकालकर दिया।—इस्म ! धन्न है, धन्न है !—हिरामन ने देखा—भगवती मैया भोग लगा रही है। लाल आँठों पर गोरम का परम ! ...पहाड़ी तोने का दूध-भात खाने देखा ?

दिन ढल गया।

टप्पर में मोयी हीराबाई और जमीन पर दरी बिछाकर मोए हिरामन की नींद एक ही माथ खुली। मेले की ओर जाने वाली गाड़ियाँ तेगछिया के पास रुकी है। बच्चे कचर-पचर कर रहे है।

हिरामन हड़बड़ाकर उठा। टप्पर के अंदर झाँककर इशारे से कहा—दिन ढल गया।—गाड़ी में बैलों को जोतते समय उसने गाड़ीवानों के सवाल को कोई जवाब नहीं दिया। गाड़ी हाँकने हुए बोला—सिरपुर बाजार के इसपिताल की डागदगनी है। रोगी देखने जा रही है। पाम ही कुड़मागाम।

हीराबाई छत्तापुर पचीरा का नाम भूल गयी। गाड़ी जब कुछ दूर आगे बढ़ आयी तो उसने हँसकर पूछा—पत्तापुर छपीरा !

हँसते-हँसते पेट में बल पड़ गये हिरामन के—पत्तापुर छपीरा ! ही-ही ! वे लोग छत्तापुर पचीरा के ही गाड़ीवान थे, उनसे कैसे कहता ! ही-ही !

हीराबाई मुस्कुराती हुई गाँव की ओर देखने लगी।

सड़क तेगछिया गाँव के बीच से निकलती है। गाँव के बच्चों ने परदेवाली गाड़ी देखी और तालियाँ बजा-बजाकर रटी हुई पक्तियाँ दुहराने लगे :

“लाली-लाली डोलिया में

लाली रे दुलहिनिया

पान खाये...”

हिरामन हँसा। “दुलहिनिया” लाली-माली डोलिया ! दुलहिनिया पान खाती है; दुलहा की पगड़ी में मुँह पोंछती है। “ओ दुलहिनिया, तेगछिया गाँव के बच्चों को याद रखना। लौटती बेर गुड़ का लड्डू लेती अइयो। लाख बरिस तेरा दुलहा बीये !” कितने दिनों का होसला पूरा हुआ है हिरामन का ! ऐसे कितने सपने देखे हैं उसने ! वह अपनी दुलहिन को लेकर लौट रहा है। हर गाँव के बच्चे तालियाँ बजाकर गा रहे हैं। हर आँगन से झाँककर देख रही हैं औरतें। मर्द लोग पूछते हैं, कहाँ की गाड़ी है, कहाँ जायेगी ? उसकी दुलहिन डोली का परदा सरकाकर देखती है। और भी कितने सपने...

गाँव से बाहर निकलकर उसने कनखियों से टप्पर के अंदर देखा, हीराबाई कुछ सोच रही है। हिरामन भी किमी सोच में पड़ गया। थोड़ी देर के बाद वह गुनगुनाने लगा :

“सजन रे झूठ मति बोलो, खुदा के पास जाना है !

नहीं हाथी, नहीं घोड़ा, नहीं गाड़ी—

वहाँ पैदल ही जाना है। सजन रे !...”

हीराबाई ने पूछा—क्यों भीता ? तुम्हारी अपनी बोली में कोई गीत नहीं क्या ?

हिरामन अब बेखटक हीराबाई की आँखों में आँखें डालकर बात करता है। कंपनी की औरत भी ऐसी होती हैं ? सरकम की मालकिन मेम थी। लेकिन हीराबाई ? गाँव की बोली में गीत सुनना चाहती हैं ! वह झुलकर मुस्कुराया—गाँव की बोली आप समझियेगा ?

—हूँ-ऊँ-ऊँ !—हीराबाई ने गर्दन हिलायी। कान के झुमे हिल गये।

हिरामन कुछ देर तक बेलों को हाँकता रहा चुपचाप। फिर बोला—गीत जरूर ही सुनिएगा ? नहीं मानिएगा ?... इस्म ! इतना सौख गाँव का गीत सुनने का है आपको !—तब लीक छोड़नी होगी। चालू रास्ते में कैसे गीत गा सकता है कोई !—हिरामन ने बायें बेल की रस्सी खींचकर दाहिने की लीक से बाहर किया और बोला—हरिपुर होकर नहीं जाएँगे तब।

चालू लीक को काटते देखकर हिरामन की गाड़ी के पीछे वाले गाड़ीवान ने चिल्लाकर पूछा—काहे हो गाड़ीवान, लीक छोड़कर बेलीक कहाँ उधर ?

हिरामन ने हवा में दुआली धुमाते हुए जवाब दिया—कहाँ है बेलीक ? वह सड़क नननपुर तो नहीं जायेगी। फिर अपने-आप बड़बड़ाया—इरा झुलुक के भोगों की यही आवत बुरी है। राह चलते एक सी जिरह करेगे। अरे भाई, तुमको जाना है, जाओ। देहाती भुच्छ सब !

नननपुर की सड़क पर गाड़ी लाकर हिरामन ने बेलों की रस्सी ढीली कर दी। बेलों ने दुलकी चाल छोड़कर कदम चाल पकड़ी।

हीराबाई ने देखा, सचमुच नननपुर की मडक बड़ी सूनी है। हिरामन उसकी आँखों की बोली समझता है—घबड़ाने की बात नहीं। यह सड़क भी फारबिसगंज जायेगी, राह-घाट के लोग बहुत अच्छे हैं। एक घड़ी रात तक हम लोग पहुँच जाएँगे।

हीराबाई को फारबिसगंज पहुँचने की जल्दी नहीं। हिरामन पर उसको इतना भरोसा हो गया है कि डर-भय की कोई बात ही नहीं उठती है मन में। हिरामन ने पहले जी-भर मुस्करा लिया। कौन गीत गाएँ वह? हीराबाई को गीत और कथा दोनों का मोख है—इस्म! महुआ घटवारिन? वह बोला—अच्छा, जब आपको इतना मोख है तो सुनिये महुआ घटवारिन का गीत। इसमें गीत भी है, कथा भी है।

...कितने दिनों के बाद भगवती ने यह होमला भी पूरा कर दिया। जै भगवती!

आज हिरामन अपने मन को खलाश कर लेगा। वह हीराबाई की घमी हुई मुस्कराहट को देखता रहा।

—सुनिये! आज भी परमान नदी में महुआ घटवारिन के कई पुराने घर हैं। इसी मुलुक की थी महुआ। थी तो घटवारिन, लेकिन मौ मनबती में एक थी। उसका बाप दारू-ताड़ी पीकर दिन-रात बेहोम पड़ा रहता। उसकी सौतेली माँ साच्छात राकमनी! बहुत बड़ी नजर-चालाक। रात में गाजा-दारू-अफीम चुराकर बेचने वाले में लेकर तरह-तरह के लोगों में उसकी जान-पहचान थी। सबसे घुट्टी-भर हेल-भेल। महुआ कुमारी थी। लेकिन काम कराने-कराते उसकी हड्डी निकाल दी थी राकमनी ने। जवान हो गयी। कही मादी-व्याह की बात भी नहीं चलायी। एक रात की बात सुनिये।

हिरामन ने धीरे-धीरे गुनगुनाकर गला माफ किया :

“हे-अ-अ मावना-भादवा के-र उमडल नदिया मे-मै-यो-भो-ओ मैयो मे रैन भयावनि हे-ए-ए-ए; तडका-तडके धडके करेज-आ-आ मोरा कि हमहुँ जे बारी मान्ही रे-ए-ए...!”

ओ माँ! सावन-भादों की उमड़ी हुई नदी, भयावनी रात, बिजली कड़कती है, मैं बारी-क्वारी नन्ही बच्ची, मेरा कलेजा धडकता है। अकेली कैसे जाऊँ घाट पर? सो भी एक परदेसी राही-बटोही के पैर में तेल लगाने के लिए। सत माँ ने अपनी बज्जर-किवाड़ी बंद कर ली। आममान में मेघ हड़बड़ा उठे और हर-हराकर बरसा होने लगी। महुआ रोने लगी अपनी गरी माँ की याद करके। आज उसकी माँ रहती तो ऐमे दुरदिन में कलेजे में मटाकर रखती अपनी महुआ बेटो को। मे मइया, इसी दिन के लिए, यही दिखाने के लिए, तुमने कोख में रखा था? महुआ अपनी माँ पर गुस्साई—क्यों वह अकेली मर गयी?—जी-भर

कोसती हुई बोली ।”

हिरामन ने लक्ष्य किया, हीराबाई तकिये पर केहुनी गड़ाकर, गीत में मगन एकटक उसकी ओर देख रही है ।...खोई हुई सूरत कैसी भोली लगती है !

हिरामन ने गले में कँपकँपी पैदा की :

“है-ऊँ-ऊँ रे डाइनियाँ मैयी मोरी-ई-ई, नोनवा चटाई काहे नाहिं

मारलि सारी घर-अ-अ । एहि दिनवाँ खातिर छिनरो घिया

तेंहु पोमलि कि नेनू-दूध उटगन...”

हिरामन ने दम लेते हुए, पूछा—भाखा भी मममती हैं कुछ या खाली गीत ही सुनती हैं ?

हीरा बोली—सममती हूँ । उटगन माने उबटन... जो देह में लगाते हैं ।

हिरामन ने विस्मित होकर कहा—इस्स !...सो रोने-धोने से क्या होय ! सौदागर ने पूरा दाम चुका दिया था महुआ का । बाल पकड़कर घसीटता हुआ नाव पर चढ़ा और माँझी को हुकुम दिया, नाव खोलो, पाल बाँधो ! पालवाली नाव परवाली चिड़िया की तरह उड़ चली । रात-भर महुआ रोती-छटपटाती रही । सौदागर के नौकरों ने बहुत डराया-घमकाया—चुप रहो, नहीं तो उठाकर पानी में फेंक देंगे । वम, महुआ को बात मूमन गयी । भोर का तारा मेघ की आड़ से जरा बाहर आया, फिर छिप गया । झर महुआ भी छाया कूद पड़ी पानी में ।...सौदागर का एक नौकर महुआ को देखते ही मोहित हो गया था । महुआ की पीठ पर वह भी कूदा । उलटी धारा में तैरना खेल नहीं, मो भी भरी भादों की नदी में । महुआ अमल में घटवारिन की बेटी थी । मछली भी भसा सकती है पानी में ! मफरी मछली जैसी फरफराती, पानी चीरती भागी चली जा रही है और उसके पीछे सौदागर का नौकर पुकार-पुकारकर कहता है—महुआ, जरा धमो, तुमको पकड़ने नहीं आ रहा, तुम्हारा माँझी हूँ । ज़िदगी-भर साथ रहेगे हम लोग । लेकिन...”

हिरामन का वद्वत प्रिय गीत है यह । महुआ घटवारिन गाने समय उसके सामने सावन-भादो की नदी उमड़ने लगती है ।—अमावस्या की रात, और घने बादलों में रह-रहकर बिजली चमक उठती है । उमी चमक में लहरों से लड़ती हुई बारी-कुमारी महुआ की झलक उसे मिल जाती है । मफरी मछली की चाल और तेज हो जाती है । उसको लगता है, वह खुद सौदागर का नौकर है । महुआ कोई बात नहीं सुनती । परतीत करती नहीं । उलटकर देखती भी नहीं । और वह थक गया है तैरते-तैरने ।...

इस बार लगता है महुआ ने अपने को पकड़ा दिया । खुद ही पकड़ में आ गयी । उसने महुआ को छू लिया है, पा लिया है, उसकी थकन दूर हो गयी है । पंद्रह-बीस साल तक उमड़ी हुई नदी की उलटी धारा में तैरते हुए उसके मन को

किनारा मिल गया है । आनंद के आँसू कोई रोक नहीं मानते ।...

उसने हीराबाई से अपनी गीली आँखें चुराने की कोशिश की । किंतु हीरा तो उसके मन में बैठी न जाने कब से सब-कुछ देख रही थी । हिरामन ने अपनी काँपती हुई बोली को काबू में लाकर बँलों को झिड़की दी—इस गीत में न जाने क्या है कि सुनते ही दोनों थसथसा जाते हैं । लगता है, सी मन बोझ लाद दिया किसी ने ।

हीराबाई लंबी साँस लेती है । हिरामन के अंग-अंग में उमंग समा जाती है ।

—तुम तो उस्ताद हो, मीता !

—इस्स !

आमिन-कातिक का मुरज दो बाँस दिन रहते ही कुम्हला जाता है । मुरज इवने से पहले ही नननपुर पहुँचना है । हिरामन अपने बँलों को ममझा रहा है—कदम खोलकर और कलेजा बाँधकर चलो ।... ए... छिः-छिः ! बढ़ के भयन ! ले-ले-ले-ए-हे-य !

नननपुर तक वह अपने बँलों को ललकारता रहा । हर ललकार के पहले वह अपने बँलों को बीती हुई बातों की याद दिलाना—याद नही, चौधरी की बेटी की बरात में कितनी गाड़ियाँ थी, मक्को कैसे मात किया था ! हाँ, वही कदम निकालो । ले-ले-ले ! नननपुर से फारबिसगंज तीन कोस ! दो घंटे और !

नननपुर के हाट पर आजकल चाय भी बिकने लगी है । हिरामन अपने लोटे में चाय भरकर ले आया ।... कंपनी की औरत को जानता है । वह सारा दिन, घड़ी-घड़ी भर में चाय पीती रहती है । चाय है या जान !

हीरा हँमते-हँमते लोट-पोट हो रही है—अरे, तुमसे किसने कह दिया कि बवार आदमी को चाय नहीं पीनी चाहिए ?

हिरामन लजा गया । क्या बोले वह !... लाज की बात । लेकिन वह भोग चुका है एक बार । मरकस कंपनी की मेम के हाथ की चाय पीकर उसने देख लिया है । बड़ी गरम तामीर !

—गीजिए गुरुजी !—हीरा हँमी ।

—इस्स !

नननपुर हाट पर दीया-वाती जल चुकी थी । हिरामन ने अपना सफरी लालटेन जलाकर पिछवा में लटका दिया ।... आजकल शहर से पाँच कोस दूर गाँववाले भी अपने को शहर समझने लगे हैं । बिना रोशनी की गाड़ी को पकड़-कर चालान कर देते हैं । बारह बखेड़ा !

—आप मुझे गुरुजी मत कहिये ।

—तुम मेरे उस्ताद हो । हमारे शास्तर में लिखा हुआ है : एक अच्छर

सिखानेवाला भी गुरु और एक राग सिखानेवाला भी उस्ताद !

—इस्म ! सास्तर-पुरान भी जानती है ?...मैंने क्या सिखाया ? मैं क्या...?

हीरा हँसकर गुनगुनाने लगी—हे-अ-अ-अ सावना-भादवा के-र...!

हिरामन अचरज के मारे गूँगा हो गया ।...इस्स ! इतना तेज जेहन ! दू-ब-हू महुआ घटवारिन !

गाड़ी सीताधार की एक मूर्खी धारा की उतराई पर गड़गड़ाकर नीचे की ओर उतरी । हीराबाई ने हिरामन का कंधा धर लिया एक हाथ से । बहुत देर तक हिरामन के कंधे पर उसकी उँगलियाँ पड़ी रही । हिरामन ने नजर फिराकर कंधे पर केंद्रित करने की कोशिश की कई बार । गाड़ी चढ़ाई पर पहुँची तो हीरा की ढीली उँगलियाँ फिर तन गई ।

सामने फारबिसगंज शहर की रोशनी झिलमिल रही है । शहर से कुछ दूर हटकर मेले की रोशनी ।...टप्पर में लटके लालटेन की रोशनी में छाया नाचती है आसपास ।...डबडबाई आँखों से हर रोशनी सूरजमुखी फूल की तरह दिखाई पड़ती है ।

फारबिसगंज तो हिरामन का घर-दुआर है ।

न जाने कितनी बार वह फारबिसगंज आया है । मेले की लदनी लादी है । किसी औरत के साथ ? हाँ, एक बार । उसकी भाभी जिस साल आयी थी गीने में । इसी तरह तिरपाल से गाड़ी को चारों ओर से घेरकर बासा बनाया गया था ।...

हिरामन अपनी गाड़ी को तिरपाल से घेर रहा है, गाड़ीवान पट्टी में । सुबह होते ही रौता नौटंकी कंपनी के मैनेजर से बात करके भरती हो जायेगी हीराबाई । परसों मेला खुल रहा है । इस बार मेले में पालचट्टी खूब जमी है ।...बस, एक रात । आज रात-भर हिरामन की गाड़ी में रहेगी वह ।...हिरामन की गाड़ी में नहीं, घर में !

—कहाँ की गाड़ी है ?...कौन, हिरामन ? किस मेले से ? किस बीज की लदनी है ?

गाँव-समाज के गाड़ीवान, एक-दूसरे को खोजकर, आसपास गाड़ी लगाकर बासा डालते हैं । अपने गाँव के लालमोहर, घुन्नीराम और पलटदास वगैरह गाड़ीवानों के दल को देखकर हिरामन अचकचा गया । उधर पलटदास टप्पर में झकझक भड़का । मानो बाध पर नजर पड़ गयी । हिरामन ने इशारे से सभी को चुप किया । फिर गाड़ी की ओर कनखी मारकर फुसफुसाया—चुप ! कंपनी की

औरत है, नौटंकी कंपनी की ।

—कंपनी की-ई-ई-ई ?

एक नहीं, अब चार हिरामन ! चारों ने अचरज से एक-दूसरे को देखा । ... 'कंपनी' नाम में कितना असर है ! हिरामन ने लक्ष्य किया, तीनों एक साथ सट-कदम हो गये । लालमोहर ने जरा दूर हटकर बतियाने की इच्छा प्रकट की, इशारे से ही । हिरामन ने टप्पर की ओर मुंह करके कहा—होटिल तो नहीं खुला होगा कोई, हलवाई के यहाँ से पक्की ले आवें ?

—हिरामन, जरा इधर सुनो । ... मैं कुछ नहीं खाऊँगी अभी । लो, तुम खा आओ ।

—क्या है, पैसा ? इस्स ! ... पैसा देकर हिरामन ने कभी फारबिसगंज में कच्ची-पक्की नहीं खायी । उसके गाँव के इतने गाड़ीवान हैं किस दिन के लिए ? वह छू नहीं सकता पैसा । उसने होराबाई से कहा—बेकार, मेला-बाजार में हुज्जत मत कीजिये । पैसा रखिये ।—मौका पाकर लालमोहर भी टप्पर के करीब आ गया । उसने सलाम करते हुए कहा—चार आदमी के भात में दो आदमी खुशी से खा सकते हैं । बासा पर भात चढ़ा हुआ है । हे-हें-हें ! हम लोग एकहि गाँव के हैं । गोवा-न रामिन के रहते होटिल और हलवाई के यहाँ खाएगा हिरामन ?

हिरामन ने लालमोहर का हाथ टीप दिया—बेसी भचर-भचर मत बको !

गाड़ी से चार रस्सी दूर जाते-जाते धुन्नीराम ने अपने कुलबुलाते हुए दिल की बात खोल दी—इस्स ! तुम भी खूब हो हिरामन ! उस साल कंपनी का बाघ, इस बार कंपनी की जनाना !

हिरामन ने दबी आवाज में कहा—भाई रे, यह हम लोगों के मुलुक की जनाना नहीं कि लटपट बोली सुनकर भी चुप रह जायें । एक तो पच्छिम की औरत, तिस पर कंपनी की !

धुन्नीराम ने अपनी शका प्रकट की—लेकिन कंपनी में तो सुनते हैं पतुरिया रहती है ।

—धत् !—सभी ने एक साथ उसको दुरदुरा दिया—कैसा आदमी है ! पतुरिया रहेंगी कंपनी में भला ? देखो इसकी बुद्धि ! ... सुना है, देखा तो नहीं है कभी ?

धुन्नीराम ने अपना गलती मान ली । पलटदास को बात सूझी—हिरामन भाई, जनाना जात अकेली रहेंगी गाड़ी पर ? कुछ भी हो, जनाना आखिर जनाना ही है । कोई जरूरत ही पड़ जायें !

यह बात सभी को अच्छी लगी । हिरामन ने कहा—बात ठीक है । पलट, तुम लौट जाओ, गाड़ी के पास ही रहना । और देखो, गपशप जरा होशियारी से करना । हाँ !

हिरामन की देह से अतर-गुलाब की खुशबू निकलती है। हिरामन करमसांड है। उस बार महीनों तक उसकी देह से बघाइन गंध नहीं गयी। लालमोहर ने हिरामन की गमछी सूँघ ली—ए-ह !

हिरामन चलते-चलते रुक गया—क्या करें लालमोहर भाई, जरा कहो तो ! बड़ी जिद्द करती है, कहती है नौटंकी देखना ही होगा।

—फोकट में ही ?... और गाँव नहीं पहुँचेगी यह बात ?

हिरामन बोला—नहीं जी ! एक रात नौटंकी देखकर जिदगी-भर बोली-ठौली कौन सुने ?... देसी मुर्गी, बिलायती चाल !

धुन्नीराम ने पूछा—फोकट में देखने पर भी तुम्हारी भोजाई बात सुनाएगी ?

लालमोहर के बासा के बगल में लकड़ी की दुकान लादकर आये हुए गाड़ी-वानों का बासा है। बासा के मीर-गाड़ीवान मियाँजान बूढ़े ने सफरी गुड़गुड़ी पीते हुए पूछा—क्यों भाई, मीनाबाजार की लदनी लादकर कौन आया है ?

मीनाबाजार ! मीनाबाजार तो पतुरिया पट्टी को कहते हैं। ...क्या बोलता है यह बूढ़ा मियाँ ?... लालमोहर ने हिरामन के कान में फुसफुसाकर कहा—तुम्हारी देह मह-मह महकती है। सच !

लहसनवाँ लालमोहर का नौकर गाड़ीवान है। उम्र में सबसे छोटा है। पहली बार आया है तो क्या ? बाबू-बबुआइनों के यहाँ बचपन से नौकरी कर चुका है। बह रह-रहकर वातावरण में कुछ सूँघता है, नाक सिकोड़कर। हिरामन ने देखा, लहसनवाँ का चेहरा तमतमा गया है। ...कौन आ रहा है धड़धड़ाता हुआ ? कौन, पलटदास ? क्या है ?

पलटदास आकर खड़ा हो गया चुपचाप। उसका मुँह भी तमतमाया हुआ था।

हिरामन ने पूछा—क्या हुआ ? बोलते क्यों नहीं ?

क्या जवाब दे पलटदास ! हिरामन ने उसको चेतावनी दे दी थी, गपशप होशियारी से करना। वह चुपचाप गाड़ी की आसनी पर जाकर बैठ गया, हिरामन की जगह पर। हीराबाई ने पूछा—तुम भी हिरामन के साथ हो ?—पलटदास ने गरदन हिलाकर हामी भरी। हीराबाई फिर लेट गयी। चेहरा-मोहरा और बोली-बानी देख-सुनकर पलटदास का कलेजा काँपने लगा; न जाने क्यों। हाँ ! रामलीला में सिया सुकुमारी इसी तरह थकी लेटी हुई थी। जै ! सियावर रामचंद्र की जै ! ...पलटदास के मन में जै-जैकार होने लगा। वह दास-वैस्नव है, कीर्तनिया है। थकी हुई सीता महारानी के चरण टीपने की इच्छा प्रकट की उसने हाथ की उँगलियों के इशारे से; मानो हारमोनियम की पटरियों पर नचा रहा हो। हीराबाई तमककर बैठ गयी—अरे, पागल है क्या ? जाओ, भागो ! ...

पलटदास को लगा, गुस्साई हुई कंपनी की औरत की आँखों से चिनगारी

निकल रही है—छटक-छटक ! वह भागा !...

पलटदास क्या जवाब दे ! वह मेले से भी भागने का उपाय सोच रहा है । बोला—कुछ नहीं । हमको व्यापारी मिल गया । अभी ही टीशन जाकर माल लावना है । भात में तो अभी देर है । मैं लौट आता हूँ तब तक ।

छाते समय धुन्नीराम और लहसनवाँ ने पलटदास की टोकरी-भर की—छोटा आदमी है । कमीना है । पैसे-पैसे का हिसाब जोड़ता है ।—छाने-पीने के बाद लालमोहर के दल ने अपना बासा तोड़ दिया । धुन्नी और लहसनवाँ गाड़ी जोतकर हिरामन के बासा पर चले, गाड़ी की लीक धरकर । हिरामन ने चलते-चलते रुककर, लालमोहर से कहा—जरा मेरे इस कंधे को सूँघो तो । सूँघकर देखो न ?

लालमोहर ने कंधा सूँघकर आँखें मूँद लीं । मुँह से अस्फुट शब्द निकला—ए-ह !

हिरामन ने कहा—जरा-सा हाथ रखने पर इतनी खुसबू !...समझे !

लालमोहर ने हिरामन का हाथ पकड़ लिया—कंधे पर हाथ रखा था ? सच ?... सुनो हिरामन, नोटकी देखने का ऐसा मौका फिर कभी हाथ नहीं लगेगा । हाँ !

—सुम भी देखोगे ?

लालमोहर की बत्तीसी चौराहे की रोशनी में झिलमिला उठी ।

बासा पर पहुँचकर हिरामन ने देखा, टप्पर के पास खड़ा बतिया रहा है कोई हीराबाई से । धुन्नी और लहसनवाँ ने एक ही साथ कहा—कहाँ रह गये पीछे ? बहुत देर से खोज रही है कंपनी !...

हिरामन ने टप्पर के पास जाकर देखा—अरे, यह तो वही बक्सा ढोने वाला नीकर है, जो चंपानगर मेले में हीराबाई को गाड़ी पर बिठाकर अंधेरे में गायब हो गया था ।

—आ गये, हिरामन ! अच्छी बात, इधर आओ ।...यह लो अपना भाड़ा और यह लो अपनी इच्छना । पच्चीस-पच्चीस, पचास !

हिरामन को जगा किसी ने आसमान से धकेलकर धरती पर गिरा दिया । किसी ने क्यों, इस बक्सा ढोनेवाले आदमी ने ! कहाँ से आ गया ! उसकी जीभ पर आई हुई बात जीभ पर ही रह गई—इस्स ! इच्छना !...वह चुपचाप खड़ा रहा ।

हीराबाई बोली—लो, पकड़ो । और सुनो, कल सुबह रोता कंपनी में आकर मुझे भेंट करना । पास बनवा-दूंगी ।...बोलते क्यों नहीं ?

लालमोहर ने कहा—इलाम-बकसीस दे रही है मालकिन, ले लो हिरामन !

हिरामन ने कटकर लालमोहर की ओर देखा ।...बोलने का जरा भी ढंग

नहीं इस लालमोहर को ?

धुन्नीराम की स्वगतोक्ति सभी ने सुनी, हीराबाई ने भी—गाड़ी-बैल छोड़-कर नौटंकी कैसे देख सकता है कोई गाड़ीवान, मेले में ।

हिरामन ने रुपया लेते हुए कहा—क्या बोलेंगे !—उसने हँसने की चेष्टा की ।—कंपनी की औरत कंपनी में जा रही है । हिरामन का क्या !

बक्सा ढोनेवाला रास्ता दिखाता हुआ आगे बढ़ा—इधर से ।... हीराबाई जाते-जाते रुक गयी । हिरामन के बैलों को संबोधित करके बोली—अच्छा, मैं चली भ्रैयन !

बैलों ने 'भ्रैयन' शब्द पर कान हिलाये ।

—भा-इ-यो, आज रात ! दि रौता संगीत नौटंकी कंपनी के स्टेज पर ! गुल-बदन देखिये, गुलबदन ! आपको यह जानकर खुशी होगी कि मथुरामोहन कंपनी की मशहूर एक्ट्रेस मिस हीरादेवी, जिसकी एक-एक अदा पर हजार जान फिदा हैं, इस बार कंपनी में आ गयी हैं । याद रखिये ! आज की रात ! मिस हीरादेवी गुलबदन...

नौटंकी वालों के इस ऐलान से मेले की हर पट्टी में सरगर्मी फैल रही है ।—“हीराबाई ! मिस हीरादेवी ! लैला, गुलबदन !... फिलिम एक्ट्रेस को मात करती है ।... तेरी बाँकी अदा पर मैं खुद हूँ फिदा, तेरी चाहत की दिलबर बर्बाद क्या करूँ ! यही चाहिश है कि-इ-इ-इ तू मुझको देखा करे, और दिलोजान, मैं तुमको देखा करूँ ! किरं-रं-रं-रं... कड़ड़ड़ड़रं-रं-घन-घन-घन-घड़ाम !”

हर आदमी का दिल नगाड़ा हो गया है ।

लालमोहर दौड़ता-हाँफता बासा पर आया—ऐ, ऐ हिरामन, यहाँ क्या बैठे हो, चलकर देखो कैसा जे-जैकार हो रहा है । मैं बाजा-गाजा, छापी-फाहरम के साथ हीराबाई की जै-जै कर रहा है ।

हिरामन हड़बड़ाकर उठा । लहसनवाँ ने कहा —धुन्नी काका, तुम बासा पर रहो, मैं भी देख आऊँ ।

धुन्नी की बात कोन सुनता है ! तीनों जन नौटंकी कंपनी की ऐलानिया पाटों के पीछे-पीछे चलने लगे । हर नुककड़ पर रुककर, बाजा बंद करके ऐलान किया जाता है ! ऐलान के हर शब्द पर हिरामन पुलक उठता है । हीराबाई का नाम, नाम के साथ अदा-फिदा वगैरा सुनकर उसने लालमोहर की पीठ थपथपा दी—धन्न हैं, धन्न ! हैं या नहीं ?

लालमोहर ने कहा—अब बोलो ! अब भी नौटंकी नहीं देखोगे ? मुबह से ही धुन्नीराम और लालमोहर समझा रहे थे, समझाकर हार चुके थे... कंपनी में जाकर भेंट कर आओ । जाते-जाते पुरसिस कर गयी है । लेकिन हिरामन की बस एक बात—धत्त, कौन भेंट करने जाए ! कंपनी की औरत कंपनी में गई । अब

उससे क्या लेना-देना ! चीन्हेगी भी नहीं !

वह मन ही मन रुठा हुआ था। ऐलान सुनने के बाद उसने लालमोहर से कहा—जल्द देखना चाहिए, क्यों लालमोहर ?

दोनों आपस में सलाह करके रोता कंपनी की ओर चले। खेमे के पास पहुँचकर हिरामन ने लालमोहर को इशारा किया, पूछताछ करने का भार लालमोहर के सिर। लालमोहर कचराही बोलना जानता है। लालमोहर ने एक काले कोट वाले से कहा—बाबू साहेब, जरा सुनिए तो।

काले कोट वाले ने नाक-भौ चढ़ाकर कहा—क्या है ? इधर क्यों ?

लालमोहर की कचराही बोली गड़बड़ा गयी। तेवर देखकर बोला—गुल-गुल ...नहीं-नहीं...बुल-बुल...नहीं...।

हिरामन ने झट से सम्हाल दिया—हीरादेवी किधर रहती हैं, बता सकते हैं ?

उस आदमी की आँखें हठात् लाल हो गयीं। सामने खड़े नेपाली सिपाही को पुकारकर कहा—इन लोगों को क्यों आने दिया इधर ?

हिरामन !... वही फेनूगिलासी आवाज किधर से आयी ? खेमे के परदे को हटाकर हीराबाई ने बुलाया—यहाँ आ जाओ, अदर !...देखो, बहादुर ! इसको पहचान लो। यह मेरा हिरामन है। समझे ?

नेपाली दरबान हिरामन की ओर देखकर जरा मुस्कराया और चला गया। काले कोट वाले से जाकर कहा—हीराबाई का आदमी है। नहीं रोकने बोला !

लालमोहर पान ले आया नेपाली दरबान के लिए—खाया जाये !

—इस्स ! एक नहीं, पाँच पास। चारो अठनियाँ ! बोली कि जब तक मेले में हो, रोज रात मे आकर देख जाना। सबका खयाल रखती है ! बोली कि तुम्हारे और साथी है, सभी के लिए पास ले जाओ। कंपनी की औरतों की बात ही निराली होती है ! है या नहीं ?

लालमोहर ने लाल कागज के टुकड़ों को छूकर देखा—पाम ! वाह रे हिरामन भाई !...लेकिन पाँच पास लेकर क्या जाँगा ? पलटदाम तो फिर पलटकर आया ही नहीं है अभी तक।

हिरामन ने कहा—जाने दो अभाग्य को। तकदीर मे लिखा नहीं।...हाँ, पहले गुरुकसम खानी होगी सभी को, कि गाँव-घर मे यह बात एक पंछी भी न जान पाये।

लालमोहर ने उत्तेजित होकर कहा—कोन साला बोलंगा गाँव मे जाकर ? पलटा ने अगर बदमाशी की तो दूसरी बार से फिर साथ नहीं लाऊंगा।

हिरामन ने अपनी थैली आज हीराबाई के जिम्मे रख दी है। मेले का क्या ठिकाना ! किस्म-किस्म के पाकिटकाट लोग हर माल आते है। अपने साथी-

संगियों का भी क्या भरोसा ! हीराबाई मान गयी । हिरामन की कपड़े की काली थैली को उसने अपने चमड़े के बक्स में बंद कर दिया । बक्स के ऊपर भी कपड़े का खोल और अंदर भी झलमल रेशमी अस्तर ! मन का मान-अभिमान दूर हो गया ।

लालमोहर और धुन्नीराम ने मिलकर हिरामन की बुद्धि की तारीफ की; उसके भाग्य को सराहा बार-बार । उसके भाई और भाभी की निंदा की, दबी जवान से । हिरामन के जैसा हीरा भाई मिला है, इसीलिए ! कोई दूसरा भाई होता तो...

लहसनवाँ का मुँह लटका हुआ है । ऐलान सुनते-सुनते न जाने कहाँ चला गया कि घड़ी-भर साँस होने के बाद लौटा है । लालमोहर ने एक मालिकाना झिड़की दी है, गाली के साथ—सोहदा कहीं का !

धुन्नीराम ने चूल्हे पर खिचड़ी चढ़ाते हुए कहा—पहले यह फैसला कर लो कि गाड़ी के पास कौन रहेगा ?

—रहेगा कौन, यह लहसनवाँ कहाँ जायेगा ?

लहसनवाँ रो पड़ा—हे-ए-ए मालिक, हाथ जोड़ते हैं । एक्को झलक ! बस एक झलक !

हिरामन ने उदारतापूर्वक कहा—अच्छा-अच्छा, एक झलक क्यों, एक घंटा देखना । मैं आ जाऊँगा ।

नोटकी शुरू होने के दो घंटे पहले से ही नगाड़ा बजना शुरू हो जाता है । और नगाड़ा शुरू होते ही लोग पतंगों की तरह टूटने लगते हैं । टिकटघर के पास भीड़ देखकर हिरामन को बड़ी हँसी आई।—लालमोहर, उधर देख, कैंसी धक्कम-धुक्की कर रहे हैं लोग ।

—हिरामन भाय !

—कौन, पलटदास ? कहाँ की लदनी लाद आये ?—लालमोहर ने पराये गाँव के आदमी की तरह पूछा ।

पलटदास ने हाथ मलते हुए माफी माँगी—कसूरवार है; जो सजा दो तुम लोग, सब मजूर है । लेकिन सच्ची बात कहें कि सुकुमारी...

हिरामन के मन का पुरइत नगाड़े के ताल पर विकसित हो चुका है । बोला—देख पलटा, यह मत समझना कि गाँव-घर की जनाना है । देखो, तुम्हारे लिए भी पास दिया है ! पास ले लो अपना, तमामा देखो ।

लालमोहर ने कहा—लेकिन एक शर्त पर पास मिलेगा । बीच-बीच में लहसनवाँ को भी...

पलटदास को कुछ बताने की जरूरत नहीं । वह लहसनवाँ से बातचीत कर आया है अभी ।

लालमोहर ने दूमरी शर्त मामने रखी—गाँव में अगर यह बात मालूम हुई किसी तरह...

—राम-राम !—दाँत से जीभ को काटते हुए कहा पलटदाम ने। पलटदास ने बताया—अठनियाँ फाटक इधर है। फाटक पर खड़े दरबान ने हाथ में पाम लेकर उनके चेहरे को बारी-बारी में देखा। बोला—यह तो पास है। कहीं से मिना ?

अब लालमोहर की कचराही बोली मुने कोई। उसके तेवर देखकर दरबान घबरा गया—मिलेगा कहीं से ? अपनी कंपनी में पूछ लीजिए जाकर। चार ही नहीं, देखिये, एक और है—जब से पाँचवाँ पाम निकालकर दिखाया लालमोहर ने।

एक रुपया वाले फाटक पर नेपाली दरबान खड़ा था। हिरामन ने पुकारकर कहा—ए सिपाही दाजू, मुबह को पहचनवा दिया, और अभी भूल गये !

नेपाली दरबान बोला—हीराबाई का आदमी है सब। जाने दो। पास है तो फिर काहे को रोकना है ?

अठनियाँ दर्जा !

तीनों ने कपड़कर को अंदर में पहली बार देखा। मामने कुर्मी-बेंच वाले दर्जे हैं। परदे पर राम-बन-मामन की तस्वीर है। पलटदास पहचान गया। उसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया—परदे पर अंकित राम, मिया मुकुमारी और लखन लाल की जै हो, जै हो ! पलटदास की आँखें मर आयी।

हिरामन ने कहा—लालमोहर, छापी सभी खड़े हैं या चल रहे हैं ?

लालमोहर अपने बगल में बैठे दर्जकों में जान-पहचान कर चुका है। उसने कहा—खेला अभी परदे के भीतर है। अभी जमिनका दे रहा है, लोग जमाने के लिए।

पलटदास डोलक बजाना जानता है, इसलिए नगाड़े के ताल पर गरदन हिलाता है और दियासलाई पर ताल काटता है। बीड़ी आदान-प्रदान करके हिरामन ने भी एकाध जान-पहचान कर ली। लालमोहर के परिचित आदमी ने चादर से देह ढकते हुए कहा—नाच शुरू होने में अभी देर है, तब तक एक नोट ले ले। ...सब दर्जा से अच्छा अठनियाँ दर्जा। सबसे पीछे, सबसे ऊँची जगह पर है। जमीन पर गरम पुआल ! हे-हे ! कुर्मी-बेंच पर बैठकर इस मर्दों के मौम में तमाशा देखने वाले अभी घुच-घुच कर उठेंगे चाह पीने।

उस आदमी ने अपने संगी से कहा—खेला शुरू होने पर जगा देना। नहीं-नहीं, खेला शुरू होने पर नहीं; हिरिया जब स्टेज पर उतरे, हमको जगा देना।

हिरामन के कलेजे पर जरा आँच लगी—हिरिया ! लटपटिया आदमी मालूम पड़ता है। उसने लालमोहर को आँख के इशारे से कहा—इस आदमी से बतियाने की जरूरत नहीं।

...घन-घन-घन-घड़ाम ! परदा उठ गया। हे-ए, हे-ए, हीराबाई शुरू में ही

उतर गयी स्टेज पर ! कपड़घर खचमखच भर गया है । हिरामन का मुँह अचरज में खुल गया । लालमोहर को न जाने क्यों ऐसी हँसी आ रही है । हीराबाई के गीत के हर पद पर वह हँसता है, बेबजह ।

गुलबदन दरबार लगाकर बैठी है । ऐलान कर रही है : “जो आदमी तब्त हजारा बनाकर ला देगा, मुँहमांगी चीज इनाम में दी जायेगी—अजी, है कोई ऐसा फनकार, तो हो जाये तैयार, बनाकर लाये तब्त हजारा-आ ! किड़ किड़-किरि...!” अलबत्त नाचती है ! क्या गला है ! मालूम है; यह आदमी कहता है कि हीराबाई पान-बीड़ी, मिगरेट-जर्दा कुछ नहीं खाती !...ठीक कहता है । बड़ी नेमवाली रंडी है...कौन कहता है कि रंडी है ! दाँत में मिस्सी कहाँ है ? पीढ़र में दाँत धो लेती होगी । हरगिज नहीं !...कौन आदमी है, बात की बेबात करता है ! कंपनी की औरत को पतुरिया कहता है । तुमको बात क्यों लगी ? कौन है रंडी का भड़वा ? मारो माले को ! मारो ! तेरी...

हो-हल्ले के बीच, हिरामन की आवाज कपड़घर को फाड़ रही है—आओ, एक-एक की गरदन उतार लेगे !

लालमोहर दुआली से पटापट पीटता जा रहा है सामने के लोगों को । पलट-दाम एक आदमी की छाती पर सवार है—माला, मिया मुकुमारी को गाली देता है, मो भी मुमलमान होकर !

धुन्नीगम शुरू से ही चुप था । मारपीट शुरू होते ही वह कपड़घर से निकलकर बाहर भागा ।

काने कोट वाले नोटकी के मैनेजर नेपाली सिपाही के साथ दौड़े आये । दारोगा साहब ने हंटर से पीट-पाट शुरू की । हंटर खाकर लालमोहर तिलमिला उठा । कचराही बोली में भाषण देने लगा—दारोगा साहब, मारते हैं, मारिये । कोई हज़ं नही । लेकिन यह पाम देख लीजिए, एक पास पाकिट में भी है । देख सकते हैं हुज़ूर । टिकट नहीं, पाम ! ...तब हम लोगों के सामने कंपनी की औरत को कोई बुरी बात कहे तो कैसे छोड़ देंगे ?

कंपनी के मैनेजर की समझ में आ गई मारी बात । उसने दारोगा को समझाया ।

—हुज़ूर, मैं समझ गया । यह सारी बदमाशी मधुरामोहन कंपनी वालों की है । तमांगे में झगड़ा खड़ा करके कंपनी को बदनाम...नहीं हुज़ूर, इन लोगों को छोड़ दीजिये, हीराबाई के आदमी हैं । बेचारी की जान खतरे में है । हुज़ूर से कहा था न !

हीराबाई का नाम सुनते ही दारोगा ने तीनों को छोड़ दिया । लेकिन तीनों की दुआली छीन ली गयी । मैनेजर ने तीनों को एक रुपये वाले दरजे में कुर्सी पर बिठाया—आप लोग यहीं बैठिए । पान भिजवा देता हूँ ।

कपड़घर शांत हुआ और हीराबाई स्टेज पर लौट आई ।

मगाड़ा फिर बनघना उठा ।

थोड़ी देर बाद तीनों को एक ही माथ धुन्नीराम का ख्याल हुआ—अरे, धुन्नीराम कहाँ गया ?

—मालिक, ओ मालिक !—लहमनवाँ कपड़धर के बाहर चिल्लाकर पुकार रहा है—ओ लालमोहर मा-लि-क !

लालमोहर ने तार स्वर में जवाब दिया—इधर से, इधर से ! एकटकिया फाटक से । ...मभी दर्शकों ने लालमोहर की ओर मुड़कर देखा । लहसनवाँ को नेपाली सिपाही लालमोहर के पाम ले आया । लालमोहर ने जेब से पास निकालकर दिखा दिया । लहसनवाँ ने आते ही पूछा—मालिक, कौन आदमी क्या बोल रहा था ? बोलिए तो जरा ! चेहरा दिखला दीजिए उसकी एक झलक !

लोगों ने लहमनवाँ की चौड़ी और सपाट छाती देखी । जाड़े के मौसम में भी खाली देह !—चेले-चाटी के साथ हैं ये लोग !

लालमोहर ने लहसनवाँ को शांत किया ।

तीनों-चारों से मत पूछे कोई नौटंकी में क्या देखा ! किस्सा कैसे याद रहे ! हिरामन को लगता था, हीराबाई शुरू से ही उसकी ओर टकटकी लगाकर देख रही है, गा रही है, नाच रही है । लालमोहर को लगता था, हीराबाई उसी की ओर देखती है । वह समझ गयी है, हिरामन से भी ज्यादा पावर वाला आदमी है लालमोहर । पलटदाम किस्सा समझता है । ...किस्सा और क्या होगा, रमन की ही बात । वही राम, वही सीता, वही लखन लला और वही रावन । मिया मुकुमारी को रामजी से छीनने के लिए रावन तरह-तरह के रूप धरकर आता है । राम और सीता भी रूप बदल लेते हैं । वहाँ भी तख्त-हजारा बनाने वाला माली का बेटा राम है । गुलबदन सिया मुकुमारी है । माली के लड़के का दोस्त लखन लला है और मुलतान है रावन । ...धुन्नीराम को बुझार है, तेज ! लहसनवाँ को सबसे अच्छा जोकर का पाट लगा है—“चिरैया तोंहके लेके ना, जइवै नरहट के बजरिया ।” वह उम जोकर से दोस्ती लगाना चाहता है ।—नहीं लगावेगा दोस्ती, जोकर साहब !

हिरामन को एक गीत की आधी कड़ी हाथ लगी है—मारे गये गुलफाम ! कौन था यह गुलफाम ? हीराबाई रोती हुई गा रही थी—अजी हूँ, मारे गये गुलफाम ! टिटिटि...वेचारा गुलफाम !

तीनों की दुआली वापस देते हुए पुलिस के सिपाही ने कहा—लाठी-दुआली लेकर नाच देखने आते हो ।

दूसरे दिन भेले-भर में यह बात फैल गयी—मथुरामोहन कंपनी में भागकर आई है हीराबाई, इसलिए इस बार मथुरामोहन कंपनी नहीं आई है ...उसके गुंडे आये हैं । ...हीराबाई भी कम नहीं । बड़ी खेलाड़ औरत है । तेरह-तेरह देहाती

सँत पाल रही है । 'बाहू मेरी जान' भी कहे तो कोई ! मजान है !

दस दिन । दिन-रात !

दिन-भर भाड़ा डोता हिरामन । काम होते ही नौटंकी का नगाड़ा बजने लगता । नगाड़े की आवाज सुनते ही हीराबाई की पुकार कानों के पास मँडराने लगती—'भैया...मीता...हिरामन...उम्माद...गुरुजी' । हमेशा कोई-न-कोई बाजा उमके मन के कोने में बजता रहता, दिन-भर । कभी हारमोनियम, कभी नगाड़ा, कभी ढोलक और कभी हीराबाई की पंजनी । उन्ही साजों की गत पर हिरामन उठता-बैठता, चलता-फिरता । नौटंकी कंपनी के मैनेजर से लेकर परदा खींचने वाले तक उसको पहचानने है—हीराबाई का आदमी है ।

पलटदास हर रात नौटंकी शुरू होने के समय श्रद्धापूर्वक स्टेज को नमस्कार करता है, हाथ जोड़कर । लालमोहर एक दिन अपनी कचराही बोली सुनाने गया था हीराबाई को । हीराबाई ने पहचाना ही नहीं । तब से उमका दिल छोटा हो गया है । उमका नौकर लहमनवा उमके हाथ में निकल गया है । नौटंकी कंपनी में भर्ती हो गया है । जोकर में उमकी दोस्ती हो गई । दिन-भर पानी भरता है, कपड़े धोता है । कहता है कि गाँव में क्या है जो जाएँगे । लालमोहर उदाम रहता है । धुन्नीराम घर चला गया है, बीमार होकर ।

हिरामन आज सुबह से तीन बार लदनी लादकर स्टेशन आ चुका है । आज न जाने क्यों उमको अपनी भोजाई की याद आ रही है । 'धुन्नीराम ने कुछ कह तो नहीं दिया है बुखार की झोक में । यही कितना अट-पट बक रहा था—गुलबदन, तलत-हजारा ! लहमनवा मोज में है । दिनभर हीराबाई को देखना होगा । कल कह रहा था 'हिरामन मालिक, तुम्हारे अकबान से खूब मोज में हूँ । हीराबाई की साड़ी धोने के बाद कठौने का पानी अतरगुलाब हो जाता है । उमसे अपनी गमछी डुबाकर छोड़ देता हूँ । लो, सूँघोगे ?' हर रात, किमी न किमी के मुँह में सुनता है वह—हीराबाई रडो है । कितने लोगो में लडे वह । बिना देखे ही लोग कैसे कोई बात बोलते हैं । राजा को भी लोग पीठ-पीछे गाली देते हैं । आज वह हीराबाई से मिलकर कहेगा—नौटंकी कंपनी में रहने से बहुत बदनाम करते हैं लोग । मरकम कंपनी में क्यों नहीं काम करती ? मन्बके मामने नाचती है । हिरामन का कलेजा दप-दप जलता रहता है, उस समय । मरकम कंपनी में बाघ को नचायेगी । बाघ के पाम जाने की हिम्मत कौन करेगा ! सुरक्षित रहेगी हीराबाई ! किधर की गाड़ी आ रही है ?

—हिरामन, ए हिरामन भाय !—लालमोहर की बोली सुनकर हिरामन ने गरदन मोड़कर देखा—क्या लादकर लाया है, लालमोहर ?

—तुमको बूढ़ रही है हीराबाई, इशटीशन पर । जा रही है ।—एक ही साँम में सुना गया ।—लालमोहर की गाड़ी पर ही आयी है मेले से ।

—जा रही है ? कहाँ ? लालमोहर, रेलगाड़ी में जा रही है ?

हिरामन ने गाड़ी खोल दी । मालगुदाम के चौकीदार से कहा—भैया, जरा गाड़ी-बैल देखते रहिये । आ रहे हैं ।

—उस्ताद ! ...जनाना मुसाफिरखाने के फाटक के पाम हीराबाई ओढ़नी से मुँह-हाथ ढककर खड़ी थी । थैली बढ़ाती हुई बोली—लो ! हे भगवान ! भेंट हो गयी, चलो, मैं तो उम्मीद खो चुकी थी । तुमसे अब भेंट नहीं हो सकेगी... मैं जा रही हूँ गुरुजी ! ...

बक्सा ढोनेवाला आदमी आज कोट-पतलून पहनकर बाबू साहब बन गया है । मालिको की तरह कुनियों को ठुक्क दे रहा है ।—जनाना दर्जा में बढ़ाना । अच्छा ?

हिरामन हाथ में थैली लेकर चुपचाप खड़ा रहा । कुरते के अंदर से थैली निकालकर दी है हीराबाई ने । चिड़िया की देह की तरह गर्म है थैली !

—गाड़ी आ रही है । बक्सा ढोनेवाले ने मुँह बनाते हुए हीराबाई की ओर देखा । उसके चहरे का भाव स्पष्ट है—इतना ज्यादा क्या है... ?

हीराबाई चंचल हो गयी । बोली—हिरामन, इधर आओ, अंदर । मैं फिर लौटकर जा रही हूँ मथुरामोहन कंपनी में, अपने देश की कंपनी है । ...बनैली मेला आओगे न ?

हीराबाई ने हिरामन के कंधे पर हाथ रखा... इस बार दाहिने कंधे पर । फिर अपनी थैली में रुपया निकालते हुए बोली—एक गरम चादर खरीद लेना । ...

हिरामन की बोली फूटी, इनती देर के बाद—इस्स ! हरदम रुपया-पैसा ! रखिए रुपया ! ...क्या करेंगे चादर ?

हीराबाई का हाथ रुक गया । उसने हिरामन के चेहरे को गौर से देखा । फिर बोली—तुम्हारा जो बहुत छोटा हो गया है । क्यों मीठा ? ...महुआ घट-वारिन को मोटागर ने खरीद जो लिया है गुरुजी ।

गन्ता भर आया हीराबाई का । बक्सा ढोनेवाले ने बाहर से आवाज दी—गाड़ी आ गयी । हिरामन कमरे में बाहर निकल आया । बक्सा ढोनेवाले ने नोटकी के जोकर जैसा मुँह बनाकर कहा—लाटफारम से बाहर भागो । बिना टिकट के पकड़ेगा तो तीन महीने की हवा ...

हिरामन चुपचाप फाटक से बाहर जाकर खड़ा हो गया । ...टीशन की बात, रेलवे का राज ! नहीं तो इस बक्सा ढोनेवाले का मुँह सीधा कर देता हिरामन । ...

हीराबाई ठीक सामने वाली कोठरी में चढ़ी । इस्स ! इतना टान ! गाड़ी में बैठकर भी हिरामन की ओर देख रही है, टुकुर-टुकुर । ...लालमोहर को देखकर

जी बल उठता है, हमेशा पीछे-पीछे, हरदम हिस्सादारी सूझती है ।...

गाड़ी ने सीटी दी । हिरामन को लगा, उसके अंदर से कोई आवाज निकल-कर सीटी के साथ ऊपर की ओर चली गयी—कू-ऊ-ऊ ! इस... !

...छि-ई-ई-छक्क ! गाड़ी हिली । हिरामन ने अपने दाहिने पैर के अंगूठे को बायें पैर की एड़ी से कुचल दिया । कनेजे की धड़कन ठीक हो गयी ।... हीराबाई हाथ की बैंगनी साफी में चेहरा पोछती है । साफी हिलाकर इशारा करती है—अब जाओ ।... आखिरी डब्बा गुजरा, प्लेटफार्म खाली... सब खाली... खोखले... मालगाड़ी के डब्बे ! दुनिया ही खाली हो गयी मानो ! हिरामन अपनी गाड़ी के पास लौट आया ।

हिरामन ने लालमोहर से पूछा—तुम कब तक लौट रहे हो गाँव ?

लालमोहर बोला—अभी गाँव जाकर क्या करेगे ? यही तो भाडा कमाने का मौका है ! हीराबाई चली गयी, मेला अब टूटेगा ।

—अच्छी बात । कोई सवाद देना है घर ?

लालमोहर ने हिरामन को समझाने की कोशिश की । लेकिन हिरामन ने अपनी गाड़ी गाँव की ओर जाने वाली सड़क की ओर मोड़ दी ।... अब मेले में क्या धरा है ? खोखला मेला !

रेलवे लाइन की बगल में बैलगाड़ी की कच्ची सड़क गयी है दूर तक । हिरामन कभी रेल पर नहीं चढ़ा है । उसके मन में फिर पुरानी लालमा झाँकी, रेलगाड़ी पर सवार होकर, गीत गाते हुए जगरनाथ धाम जाने की लालमा... उलटकर अपने खाली टप्पर की ओर देखने की हिम्मत नहीं होती है । पीठ में आज भी गुब्बुदी लगती है । आज भी रह-रहकर चपा का फूल खिल उठता है उसकी गाड़ी में । एक गीत की टूटी कड़ी पर नगाड़े का ताल कट जाता है बार-बार ।...

उमने उलटकर देखा, बोरें भी नहीं, बाँस भी नहीं, बाघ भी नहीं 'परी'... देवी... भीता... हीरादेवी... महुआ घटवारिन—कोई नहीं । मरे हुए मुहूर्तों की नूंगी आवाजें मुखर होना चाहती हैं । हिरामन के होठ हिल रहे हैं । शायद वह तीसरी कसम दे रहा है—कंपनी की औरत की लदनी... !

हिरामन ने हठात् अपने दोनो बैलों को झिडकी दी, दुआली में मारते हुए बोला—रेलवे लाइन की ओर उलट-उलटकर क्या देखते हो ? दोनो बैलों ने कदम खोलकर चाल पकड़ी । हिरामन गुनगुनाने लगा—अजी हाँ, मारे गये गुलफाम... !

(1956)

लाल पान की बेगम

क्यों बिरजू की माँ, नाच देखने नहीं जायेगी क्या ?

बिरजू की माँ शकरकंद उबालकर बैठी मन-ही-मन कुढ़ रही थी अपने आँगन में। सात साल का लड़का बिरजू शकरकंद के बहने तमाचे खाकर आँगन में लोट-लोटकर सारी देह में मिट्टी मल रहा था। चम्पिया के मिर भी चुड़ैल मँडरा रही हैं... आधा आँगन धूप रहते जाँ गयी हैं महुआइन की दुकान छोवा-गुड़ लाने, सो अभी तक नहीं लौटी, दीया-बाती की बेला हो गयी। आये आज लौट के जरा ! बागड़ बकरे की देह में कुकुरमाछी लगी थी, इसलिए बेचारा बागड़ रह-रहकर कूद-फाँद कर रहा था। बिरजू की माँ बागड़ पर मन का गुस्सा उतारने का बहाना ढूँढ़कर निकाल चुकी थी। '...पिछवाड़े की मिर्च की फूली गाछ ! बागड़ के सिवा और किमने कलेबा किया होगा ! बागड़ को मारने के लिए वह मिट्टी का एक छोटा ढेला उठा चुकी थी कि पड़ोमिन मखनी फुआ की पुकार सुनायी पड़ी—क्यों बिरजू की माँ, नाच देखने नहीं जायेगी क्या ?

—बिरजू की माँ के आगे नाच और पीछे पगहिया न हो तब न, फुआ ?

गरम गुस्से में बुझी नुकीली बात फुआ की देह में धँस गयी और बिरजू की माँ ने हाथ के ढेले को पाम ही फेंक दिया... बेचारे बागड़ को कुकुरमाछी परेशान कर रही हैं ! आ हा, आय... आय ! हरं-रं-रं-रं ! आय-आय !

बिरजू ने लेटे ही लेटे बागड़ को एक डंडा लगा दिया। बिरजू की माँ की इच्छा हुई कि जाकर उमी डंडे से बिरजू का भूत भगा दे, किन्तु नीम के पाम खड़ी पनभरनियों की खिलखिलाहट सुनकर रुक गयी। बोली—ठहर, तेरे बप्पा ने बड़ा हथछुट्टा बना दिया है तुझे ! बड़ा हाथ चलता है लोगों पर। ठहर !

मखनी फुआ नीम के पाम झुकी कमर में घड़ा उतारकर पानी भरकर लौटती पनभरनियों में बिरजू की माँ की बहकी हुई बात का इन्माफ करा रही थी—जरा देखो तो इस बिरजू की माँ को ! चार मन पाट (जूट) का पैसा क्या हुआ है, धरती पर पाँव ही नहीं पड़ने ! निमाफ करो ! खुद अपने मुँह में आठ दिन पहले

मे ही गाँव की अनी-गली में बोलती फिरी है, हाँ, इस बार बिरजू के बप्पा ने कहा है, बैलगाड़ी पर बिठाकर बलरामपुर का नाच दिखा लाऊंगा। बैल जब अपने घर है तो हजार गाड़ी मँगनी मिल जायेगी। सो मैंने अभी टोक दिया, नाच देखने वाली सब तो आन-पान कर तैयार हो रही है, रसोई-पानी कर रही है। मेरे मुँह में आग लगे, क्यों मैं टोकने गयी ! मुनती हो, क्या जवाब दिया बिरजू की माँ ने !

मखनी फुआ ने अपने पाँपने मुँह के ओंठों को एक ओर मोड़कर ऐंठती हुई बोली निकाली— अर-र-हाँ-हाँ ! बि-र-र-जू की माँ...या के आगे नाथ और पीछे पगहिया न हो, तब-ना-आ-जा !

जगी की पुतोह बिरजू की माँ में नहीं डरती। वह जरा गला खोलकर कहती है— फुआ-आ ! मरवे मिनलमिटी (सर्वे सेटलमेट) के हाकिम के बासा पर फूलछाप किनारी वाली माड़ी पहन के यदि तू भी भैंटी की भेट चढ़ाती तो तुम्हारे नाम से भी दू-तीन बीघा धनहर जमीन का पर्चा कट जाता ! फिर तुम्हारे घर भी आज दस मन मोना बग पाट होता, जोड़ा बैल खरीदती। फिर आगे नाथ और पीछे सैकड़ो पगहियाँ झूलती !

जगी की पुतोह मंहरजोर है। रेलवे स्टेशन के पास की लड़की है। तीन ही महीने हुए गौने की नयी बूढ़ होकर आयी है और सारे कुर्मा टोली की सभी झगड़ालू सामों से एकाध मोर्चा ले चुकी है। उसका ममुर जगी दागी चोर है, मी किलाभी है। उसका खसम रगी कुर्मा टोली का नामी लठैत। इसीलिए हमेशा सींग खुजाती फिरती है जगी की पुतोह !

बिरजू की माँ के आँगन में जगी की पुतोह की गला-खोल बोली गुल्ल की गोलियों की तरह दनदनाती हुई आयी। बिरजू की माँ ने एक तीखा जवाब खोजकर निकाला, लेकिन धन ममोगकर रह गयी। ...गोबर की ढेरी में कौन ढेला फेंके !

जीभ की झाल को गले में उतारकर बिरजू की माँ ने अपनी बेटी चम्पिया को आवाज दी— अरी चम्पिया-या-या, आज लोटे तो तेरी मूढ़ी मरोड़कर चूल्हे में झोंकती हूँ। दिन-दिन बेचाल होती जाती हूँ। ...गाँव में भी तो अब ठेठर-बैसकोप का गीत गाने वाली पतुगिया पुतोह सब आने लगी है। कहीं बैठके 'बात्रे न मुगलिया' सोख रही होगी ह-र-जा-ई-ई। अरी चम्पि-या-या-या !

जगी की पुतोह ने बिरजू की माँ की बोली का स्वाद लेकर कमर पर घड़े को सँभाला और मटककर बोली— चल दिदिया, चल ! इस मुहल्ले में लाल पान की बेगम बसती है ! नहीं जानती, दोपहर-दिन और चीपहर-रात बिजली की बत्ती भक्-भक् कर जलती है !

भक्-भक् बिजली-बत्ती की बात सुनकर न जाने क्यों सभी खिलखिलाकर

हैंम पड़ीं। फूआ की टूटी हुई दंत-पंक्तियों के बीच से एक मीठी गाली निकली—
शैतान की नानी !

बिरजू की माँ की आँखों पर मानो किसी ने तेज टाच की रोशनी झालकर चौधिया दिया। ...भक्-भक् बिजली-बत्ती ! तीस साल पहले सर्वे कैंप के बाद गाँव की जलन-झाही औरतों ने एक कहानी गढ़ के फँलाई थी, चम्पिया की माँ आँगन में रात-रात-भर बिजली-बत्ती भुकभुकाती थी ! चम्पिया की माँ के आँगन में, नाकवाले जूते की छाप घोड़े की टाप की तरह ! ...जलो, जलो ! और जलो ! चम्पिया की माँ के आँगन में चाँदी जैसे पाट सूखते देखकर जलने वाली सब औरतें खलिहान पर सोनोली धान के बोझों को देखकर बैंगन का भुर्ता हो जायेंगी।

मिट्टी के बरतन से टपकते हुए छोबा-गुड़ को उँगलियों से चाटती हुई चम्पिया आयी और माँ के तमाचे खाकर चीख पड़ी—मुझे क्यों मारती है-ए-ए-ए ? सहुआइन जल्दी मे मोदा नहीं देती हैं-एँ-एँ-एँ-एँ !

—सहुआइन जल्दी मोदा नहीं देती की नानी ! एक सहुआइन की ही दुकान पर मोतो झरते हैं, जो जड़ गाड़कर बैठी हुई थी ! बोल, गले पर लात देकर कल्ला तोड़ दूँगी हरजाई, जो फिर कभी 'बाजे न मुरलिया' गाते सुना ! चाल सीखने जाती है टीशन की छोकरियों से !

बिरजू की माँ ने चुप होकर अपनी आवाज अंदाजी कि उसकी बात जंगी के झोपड़े तक साफ-साफ पहुँच गयी होगी।

बिरजू बीती हुई बातों को भूलकर उठ खड़ा हुआ था और धूल झाड़ते हुए बरतन से टपकते गुड़ को ललचाई निगाह से देखने लगा था। ...दीदी के साथ वह भी दूकान जाना तो दीदी उसे भी गुड़ चटाती, जरूर वह शकरकंद के लोभ में रहा और माँगने पर माँ ने शकरकंद के बदले...

—ए मैया, एक अँगुली गुड़ दे दे ! बिरजू ने तलहथी फँलायी—दे ना मैया, एक रत्ती-भर !

—एक रत्ती क्यों, उठा के बरतन को फेंक आती हूँ पिछवाड़े में; जाके चाटना ! नहीं बनेगी मीठी रोटी ! ...मीठी रोटी खाने का मुँह होता है !—बिरजू की माँ ने उबले शकरकंद का सूप रोती हुई चम्पिया के सामने रखते हुए कहा—बैठ के छिलके उतार, नहीं तो अभी...

दस साल की चम्पिया जानती है, शकरकंद छीलते समय कम से कम बारह बार माँ उसे बाल पकड़कर झकझोरेंगी, छोटी-छोटी खोट निकालकर गालियाँ देगी। ...पाँव फँला के क्यों बैठी है इस तरह, बेलज्जी ! चम्पिया माँ के गुस्से को जानती है।

बिरजू ने इस मौके पर थोड़ी-सी खुशामद करके देखा—मैया, मैं भी बैठकर शकरकंद छीलूँ ?

—नही !—माँ ने झिड़की दी—एक शकरकंद छीलेगा, और तीन पेट में ! जाके सिद्धू की बहू से कहो, एक घंटे के लिए कड़ाही माँगकर ले गयी तो फिर लौटाने का नाम नहीं। जा जल्दी !

मुँह लटकाकर आँगन से निकलते-निकलते बिरजू ने शकरकंद और गुड़ पर निगाह दौड़ायी। चम्पिया ने अपने झबरे केश की ओट से माँ की ओर देखा और नज़र बचाकर चुपके से बिरजू की ओर एक शकरकंद फेंक दिया। ... बिरजू भागा।

—सूरज भगवान डूब गए। दीया-बत्ती की बेला हो गयी। अभी तक गाड़ी...

चम्पिया बीच में ही बोल उठी—कोयरी टोले में किसी ने गाड़ी नहीं दी मँया ! बप्पा बोले, माँ से कहना, ठीक-ठीक करके तैयार रहे। ... मसदहिया टोली के मियाँजान की गाड़ी लाने जा रहा हूँ।

सुनते ही बिरजू की माँ का चेहरा उतर गया। लगा, छाते की कमानी उतर गयी घोड़े से अचानक। कोयरी टोले में किसी ने गाड़ी मँगनी नहीं दी ! तब मिल चुकी गाड़ी ! जब अपने गाँव के लोग की आँख में पानी नहीं तो मसदहिया टोली के मियाँजान की गाड़ी का क्या भरोसा ! न तीन में, न तेरह में ! क्या होगा शकरकंद छीलकर ! रख दे उठा के ! ... यह मर्द नाच दिखायेगा ! बैलगाड़ी पर चढ़ाकर नाच दिखाने ले जायेगा ! चढ़ चुकी बैलगाड़ी पर, देख चुकी जी-भर नाच ... पैदल जाने वाली सब पहुँचकर पुरानी हो चुकी होगी।

बिरजू छोटी कड़ाही सिर पर ओढ़ाकर वापस आया—देख दिदिया, मलेटरी टोपी ! इस पर दस लाठी मारने से भी कुछ नहीं होता।

चम्पिया चुपचाप बैठी रही, कुछ बोली नहीं; जरा-भी मुस्करायी भी नहीं। बिरजू ने समझ लिया, मँया का गुस्मा अभी उतरा नहीं है पूरी तौर से।

मँया के अंदर से बागड़ को बाहर भगाती हुई बिरजू की माँ बड़बड़ाई—कल ही पँचकोड़ी कसाई के हवाले करती हूँ 'राकम तुझे' हर चीज में मुँह लगायेगा ! चम्पिया, बाँध दे बगड़ा को। खोल दे गले की घंटी। हमेशा टुनुर-टुनुर ! मुझे जरा नहीं सुहाता है !

टुनुर-टुनुर सुनते ही बिरजू को मड़क से जाती हुई बैलगाड़ियों की याद हो आई। अभी बबुआन टोले की गाड़ियाँ नाच देखने जा रही थी—मुनुर-मुनुर बैलों की मुनकी, तुमने मु...

—बेसी बक-बक मत करो ! बागड़ के गले से मुनकी खोलती बोली चम्पिया।

—चम्पिया, डान दे चूल्हे में पानी ! बप्पा आवे तो कहना कि अपने उड़न जहाज पर चढ़कर नाच देख आये ! मुझे नाच देखने का मोख नहीं... मुझे जगइयो

मत कोई ! मेरा माया दुख रहा है ।

मर्दया के ओसारे पर बिरजू ने फिसफिसा के पूछा—क्योंकर बिदिया, नाच मे उड़न जहाज भी उड़ेगा ?

चटाई पर कयरी ओढ़कर बैठती हुई चम्पिया ने बिरजू को चुपचाप अपने पास बैठने का इशारा किया, मुफ्त में मार खायेगा बेचारा !

बिरजू ने बहन की कयरी में हिस्सा बाँटते हुए चुक्की-मुक्की लगायी । जाड़े के समय इस तरह घुटने पर हड्डी रखकर चुक्की-मुक्की लगाना सीख चुका है वह । उसने चम्पिया के कान के पास मुँह ले जाकर कहा—हम लोग नाच देखने नहीं जायेंगे ? ... गाँव में एक पंछी भी नहीं है । सब चले गये ।

चम्पिया को अब तिल-भर भी भरोसा नहीं । संझा तारा डूब रहा है । बप्पा अभी तक गाड़ी लेकर नहीं लौटे । ... एक महीना पहले ही मैया कहती थी, बलरामपुर के नाच के दिन मीठी रोटी बनेंगे; चम्पिया छोट की साड़ी पहनेगी; बिरजू पैट पहनेगा, बैलगाड़ी पर चढ़कर ...

चम्पिया की भीगी पलकों पर एक बूँद आँसू आ गया ।

बिरजू का भी दिल भर आया । उसने मन-ही-मन हमली पर रहने वाले जिन बाबा को एक बैंगन कबूला, गाछ का सबसे पहला बैंगन, उसने खुद जिस पौधे को रोपा है ! ... जल्दी से गाड़ी लेकर बप्पा को भेज दो, जिन बाबा !

मर्दया के अंदर बिरजू की माँ चटाई पर पड़ी करबटे ले रही थी । उँह, पहले मे किसी बान का मनसूबा नहीं बाँधना चाहिए किसी को ! भगवान ने मनसूबा तोड़ दिया । उसको सबसे पहले भगवान से पूछना है, यह किस चूक का फल दे रहे हो, मोना बाबा ! अपने जानते उसने किसी देवता-पितर की मान-मनौती बाकी नहीं रखी । सर्वे के समय जमीन के लिए जितनी मनौतियाँ की थीं ... ठीक ही तो ! महाबीरजी का रोट तो बाकी ही है । हाय रे दैव ! ... भूल-चूक माफ करो महाबीर बाबा ! मनौती दूनी करके चड़ायेगी बिरजू की माँ । ...

बिरजू की माँ के मन में रह-रहकर जंगी की पुतोह की बातें चुभती है, भक्-भक् बिजली-बत्ती ! ... चोरी-चकारी करने वाले की बेटी-पुतोह जलेगी नहीं ! पाँच बीघा जमान क्या हासिल की है बिरजू के बप्पा ने, गाँव की भाई-खाँकियों की आँखों में किरकिरी पड़ गयी है । खेत में पाट लगा देखकर गाँव के लोगो की छाती फटने लगी, धरती फोड़कर पाट लगा है; वैशाखी बादलो की तरह उमड़ते आ रहे हैं पाट के पौधे ! तो अलान तो फलान ! इतनी आँखों की धार भला फमल सहे ! जहाँ पंद्रह मन पाट होना चाहिए, सिर्फ दस मन पाट कंटा पर तोल के ओजन हुआ रब्बी भगत के यहाँ । ...

इसमें जलने की क्या बात है भला ! ... बिरजू के बप्पा ने तो पहले ही कुर्मा टोली के एक-एक आदमी को समझा के कहा था—जिदगी-भर मजदूरी करते रह

जाओगे। सर्वे का समय आ रहा है। लाठी कड़ी करो तो दो-चार बीघे जमीन हासिल कर सकते हो।—सो गाँव की किसी पुतखीकी का भतार सर्वे के समय बाबू साहेब के खिलाफ खासा भी नहीं। ... बिरजू के बप्पा को कम सहना पड़ा है। बाबू साहेब गुस्से से सरकस नाच के बाघ की तरह हुमड़ते रह गये। उनका बड़ा बेटा घर में आग लगाने की धमकी देकर गया। ... आखिर बाबू साहेब ने अपने सबसे छोटे लड़के को भेजा। बिरजू की माँ को 'मौसी' कहके पुकारा— यह जमीन बाबूजी ने मेरे नाम से खरीदी थी। मेरी पढ़ाई-लिखाई इसी जमीन की उपज से चलती है।— और भी कितनी बातें। खूब मोहना जानता है, उस्ता जरा-सा लड़का है। जमींदार का बेटा है कि ...

—चम्पिया, बिरजू सो गया क्या? आ जा बिरजू, अंदर। तू भी आ जा, चम्पिया! भला आदमी आये तो एक बार आज!

बिरजू के साथ चम्पिया अंदर चली गयी।

—ढिबरी बुझा दे। ... बप्पा बुलाएँ तो जवाब मत देना। खपच्ची गिरा दे।

भला आदमी रे, भला आदमी! मुंह देखो जरा इस मर्द का! ... बिरजू की माँ दिन-रात मझा न देती रहती तो ले चुके थे जमीन! रोज आकर माथा पकड़ के बैठ जायें—मुझे जमीन नहीं लेनी है बिरजू की माँ, मजुरी ही अच्छी।— जवाब देती थी बिरजू की माँ खूब सोच-समझ के—छोड़ दो, जब तुम्हारा कलेजा ही थिर नहीं होता है तो क्या होगा? जोरू-जमीन जोर के, नहीं तो किसी और के। ...

बिरजू के बाप पर बहुत तेजी से गुस्सा चढ़ता है। बढ़ता ही जाता है। ... बिरजू की माँ का भाग ही खराब है, जो ऐसा गोबरगनेश घरवाला उसे मिला। कौन-मा सोख-मोज दिया है उसके मर्द ने! कोल्हू के बैल की तरह खटकर सारी उम्र काट दी इसके यहाँ, कभी एक पैस की जलेबी भी लाकर दी है उनके खसम ने! ... पाट का दाम भगत के यहाँ से लेकर बाहर-ही-बाहर बैल-हट्टा चले गये। बिरजू की माँ को एक बार नमरी लोट देखने भी नहीं दिया आँख से। ... बैल खरीद लाये। उसी दिन से गाँव में ढिंढोरा पीटने लगे—बिरजू की माँ इस बार बैलगाड़ी पर चढ़कर जायेगी नाच देखने! ... दूसरे की गाड़ी के भरोसे दिखायेगा! ...

अंत में उसे अपने-आप पर क्रोध हो आया। वह खुद भी कुछ कम नहीं! उसकी जीभ में आग लगे। बैलगाड़ी पर चढ़कर नाच देखने की लालमा किस कुसमय में उसके मुँह से निकली थी, भगवान जाने! फिर आज सुबह से दोपहर तक, किसी न किसी बहाने उसने अठारह बार बैलगाड़ी पर नाच देखने जाने की चर्चा छेड़ी है! ... लो, खूब देखो नाच! बाहू रे नाच! कयरी के नीचे

कुशाले का सपना !...कल धीरे पानी भरने के लिए जब जायेगी, पतली जीभ वाली पतुरिया सब हँसती आयेंगी, हँसती जायेंगी ।...सभी जसते हैं उससे; हाँ, भगवान दाढ़ीजार भी !...दो बच्चों की माँ होकर भी वह जस-की-तस है। उसका घरवाला उसकी बात में रहता है। वह बालों में गरी का तेल डालती है। उसकी अपनी जमीन है। है किसी के पास एक घूर जमीन भी अपनी इस गाँव में ! जलेंगे नहीं, तीन बीघे में धान लगा हुआ है, अगहनी। लोगों की बिछड़ीठ से बचे तब तो !

बाहर बैलों की घंटियाँ सुनायी पड़ी। तीनों सतकं हो गये। उत्कण्ठ होकर सुनते रहे।

—अपने ही बैलों की घंटी है, क्यों री, चम्पिया ?

चम्पिया और बिरजू ने प्रायः एक ही साथ कहा—हूँ-ऊँ-ऊँ !

—चुप !—बिरजू की माँ ने फिसफिसाकर कहा—शायद गाड़ी भी है धड़धड़ाती है न ?

—हूँ-ऊँ-ऊँ !—दोनों ने फिर हुँकारी भरी।

—चुप ! गाड़ी नहीं है। तू चुपके से टट्टी में छेद करके देख तो आ चम्पी ! भाग के जा, चुपके-चुपके।

चम्पिया बिल्ली की तरह होले-होले पाँव से टट्टी के छेद से झाँक आयी—हाँ मैया, गाड़ी भी है !

बिरजू हड़बड़ाकर उठ बैठा। उसकी माँ ने उसके हाथ पकड़कर सुला दिया—बोलें मत !

चम्पिया भी गुदड़ी के नीचे घुस गयी।

बाहर बैलगाड़ी खोलने की आवाज हुई। बिरजू के बाप ने बैलों को जोर से डाँटा—हाँ-हाँ ! आ गये घर ! घर आने के लिए छाती फटी जाती थी !

बिरजू की माँ ताड़ गयी, जरूर मलदहिया टोली में गाँजे की चिलम चढ़ रही थी, आवाज तो बड़ी खनखनाती हुई निकल रही है।

—चम्पिया-ह !—बाहर से ही पुकारकर कहा उसके बाप ने—बैलों को घास दे दे, चम्पिया-ह !

अदर से कोई जवाब नहीं आया। चम्पिया के बाप ने आँगन में आकर देखा तो न रोशनी, न चिराग, न चूल्हे में आग ।...बात क्या है ! नाच देखने उतावली होकर, पैदल ही चली गयी क्या...!

बिरजू के गले में घमघमाहट हुई और उसने रोकने की पूरी कोशिश भी की, लेकिन खाँसी जब शुरू हुई तो पूरे पाँच मिनट तक वह खाँसता रहा।

—बिरजू ! बेटा बिरजमोहन !—बिरजू के बाप ने पुचकारकर बुलाया—मैया गुम्मे के मारें मो गयी क्या ?...अरे, अभी तो लोग जा ही रहे हैं।

बिरजू की माँ के मन में आया कि कसकर जवाब दे, नहीं देखना है नाच !
लीटा दो गाड़ी ।

—चम्पिया-ह ! उठती क्यों नहीं ? ले, धान की पंचसीस रख दे । धान की बालियों का छोटा झोआ झोंपड़े के ओसारे पर रखकर उसने कहा—दीया बालो !

बिरजू की माँ उठकर ओसारे पर आयी—डेढ़ पहर रात को गाड़ी लाने की क्या जरूरत थी ? नाच तो अब खत्म हो रहा होगा ।

ढिबरी की रोशनी में धान की बालियों का रंग देखते ही बिरजू की माँ के मन का सब मेल दूर हो गया ।...धानी रंग उसकी आँखों से उतरकर रोम-रोम में घुल गया ।

—नाच अभी शुरू भी नहीं हुआ होगा । अभी-अभी बलरामपुर के बाबू की कंपनी-गाड़ी मोहन होटल बंगला से हाकिम साहब को लाने गयी है । इस साल आखिरी नाच है ।...पंचसीस टट्टी में खोंस दे, अपने खेत का है ।

—अपने खेत का ?—हुलसती हुई बिरजू की माँ ने पूछा—पक गए धान ?

—नहीं, दस दिन में अगहन चढ़ते-चढ़ते लाल होकर झुक जायेंगी सारे खेत की बालियाँ ।...मलदहिया टोली जा रहा था, अपने खेत में धान देखकर आँखें जुड़ा गयीं । सच कहता हूँ, पंचसीस तोड़ते समय उँगलियाँ काँप रही थीं मेरी !

बिरजू ने धान की एक बाली से एक धान लेकर मुँह में डाल लिया और उसकी माँ ने एक हल्की डाँट दी—कैसा लुक्कड़ है तू रे !...इन दुश्मनों के मारे कोई नेम-धरम जो बचे ।

—क्या हुआ, डाँटती क्यों है ?

—नबान्न के पहले ही नया धान जुठा दिया, देखते नहीं ?

—अरे, इन लोगों का सब-कुछ माफ है । चिरई-चुरमुन है ये लोग ! इन दोनों के मुँह में नबान्न के पहले नया अन्न न पड़े !

इसके बाद चम्पिया ने भी धान की बाली से दो धान लेकर दाँतों तले दबाया—ओ मिया ! इतना मीठा चावल ?

—और गमकता भी है न, दिदिया ?—बिरजू ने फिर मुँह में धान लिया ।

—रोटी-पोटी तैयार कर चुकी क्या ?—बिरजू के बाप ने मुस्कराकर पूछा ।

—नहीं !—मानभरे मुर में बोली बिरजू की माँ—जाने का ठीक-ठिकाना नहीं...और रोटी बनती है !

—बाह ! खूब हो तुम लोग !...जिसके पास बैल हैं, उसे गाड़ी मँगनी नहीं मिलेगी भला ? गाड़ीवालों को भी बैल की कभी जरूरत होगी...पूछूंगा तब कोयरी टोला वालों से !—ले, जल्दी से रोटी बना ले ।

—देर नहीं होगी ?

—अरे, टोकरी-भर रोटी तो तू पलक मारते बना लेती है, पाँच रोटियाँ बनाने में कितनी देर लगेगी !

अब बिरजू की माँ के ओठों पर मुस्कराहट खुलकर खेलने लगी। उसने नजर बचाकर देखा, बिरजू का बप्पा उसकी ओर एकटक निहार रहा है।... चम्पिया और बिरजू न होते तो मन की बात हँसकर खोलते देर न लगती। चम्पिया और बिरजू ने एक-दूसरे को देखा और खुशी से उनके बेहरे जगमगा उठे—मैया, बेकार गुस्सा हो रही थी न !

—बम्पी ! जरा धैलसार में खड़ी होकर मखनी फुआ को आवाज दे तो !

—ऐ फुआ-आ !—सुनती हो फुआ-आ ! मैया बुला रही है ।

फुआ ने कोई जवाब सीधे नहीं दिया, किंतु उसकी बड़बड़ाहट स्पष्ट सुनायी पड़ी—हाँ ! अब फुआ को क्यों गुहारती है। सारे टोले में बस एक फुआ ही तो बिना नाथ-पगहिया वाली है ।

—अरी फुआ !—बिरजू की माँ ने हँसकर जवाब दिया—उस समय बुरा मान गयी थी क्या ? नाथ-पगहिया वाले को आकर देखो, दो पहर रात में गाड़ी लेकर आया है ! आ जाओ फुआ, मैं मीठी रोटी पकाना नहीं जानती ।

फुआ काँखती-खाँसती आयी—इसी से घड़ी-पहर दिन रहते ही पूछ रही थी कि नाच देखने जायेगी क्या ? कहती, तो मैं पहले से ही अपनी अँगोठी यहाँ सुलगा जाती ।

बिरजू की माँ ने फुआ को अँगोठी दिखला दी और कहा—घर में अनाज-दाना बगैरह तो कुछ है नहीं । एक बागड़ है और कुछ बरतन-बासन । सो रात-भर के लिए यहाँ तंबाकू रख जाती हूँ । अपना हुक्का ले आयी हो न, फुआ ?

फुआ को तंबाकू मिल जाये, तो रात-भर क्या, पाँच रात बैठकर जाग सकती है । फुआ ने अंधेरे में टटोलकर तंबाकू का अंदाज किया ।... ओ हो ! हाथ खोलकर तंबाकू रखा है बिरजू की माँ ने ! और एक वह है सहुआइन ! राम कहो ! उस रात को अफीम की गोली की तरह मटर-भर तंबाकू रखकर चली गयी गुलाब-बाग मेले और कह गयी कि डिब्बी-भर तंबाकू है ।

बिरजू की माँ चूल्हा सुलगाने लगी । चम्पिया ने शकरकंद को मसलकर गोले बनाये और बिरजू सिर पर कड़ाही ओँधाकर अपने बाप को दिखलाने लगा—मलेटरी टोपी ! इस पर दस लाठी मारने से भी कुछ नहीं होगा ।

सभी ठाढ़कर हँस पड़े ।

बिरजू की माँ हँसकर बोली—ताखे पर तीन-चार मोटे शकरकंद हैं, दे दे बिरजू को चम्पिया, बेचारा शाम से ही...

—बेचारा मत कहो मैया, खूब सचारा है !—अब चम्पिया चहकने लगी—तुम क्या जानो, कयरी के नीचे मुँह क्यों चल रहा था बाबू माहिब का !

—ही-ही-ही !

बिरजू के टूटे दूध के दाँतों की फाँक से बोली निकली—बिलैंक मारटिन में पाँच शकरकंद खा लिया ! हा-हा-हा !

सभी फिर ठठाकर हँस पड़े। बिरजू की माँ ने फुआ का मन रखने के लिए पूछा—एक कनवा गुड़ है। आधा डाल दूँ, फुआ ?

फुआ ने गद्गद होकर कहा—अरी, शकरकंद तो खुद मीठा होता है, उसना क्यों डालेगी !

जब तक दोनों बैस दाना-घास खाकर एक-दूसरे की देह को जीभ से चाटें, बिरजू की माँ तैयार हो गयी। चम्पिया ने छोट की साड़ी पहनी और बिरजू बटन के अभाव में पैंट पर पटमन की डोरी बँधवाने लगा।

बिरजू की माँ ने आँगन से निकल गाँव की ओर कान लगाकर सुनने की चेष्टा की—उहँ, इतनी देर तक भला जाने वाले रुके रहेंगे !

पूणिमा का चाँद सिर पर आ गया है।... बिरजू की माँ ने असली रूपा का मँगटिका पहना है आज, पहली बार। बिरजू के बप्पा को हो क्या गया है, गाड़ी जोसता क्यों नहीं, मुँह की ओर एकटक देख रहा है, मानो नाच की लाल पान की...

गाड़ी पर बैठते ही बिरजू की माँ की देह में एक अजीब गुदगुदी लगने लगी। उसने बाँस की बल्ली को पकड़कर कहा—गाड़ी पर अभी बहुत जगह है।... जरा दाहिनी सड़क से गाड़ी हाँकना।

बैल जब दौड़ने लगे और पहिया जब चूँ-चूँ करके घरघराने लगा तो बिरजू से नहीं रहा गया—उड़न जहाज की तरह उड़ाओ, बप्पा !

गाड़ी जंगी के पिछवाड़े पहुँची।

बिरजू की माँ ने कहा—जरा जंगी से पूछो न, उसकी पुतोह नाच देखने चली गयी क्या ?

गाड़ी रुकते ही जंगी के झोंपड़े से आती हुई राने की आवाज स्पष्ट हो गयी। बिरजू के बप्पा ने पूछा—अरे जंगी भाई, काहे कन्ना-रोहट हो रहा है आँगन में ?

जंगी घूर ताप रहा था, बोला—क्या पूछते हो, रंगी बसरामपुर से लौटा नहीं, पुतोहिया नाच देखने कैसे जायें ! आसरा देखते-देखते उधर गाँव की सभी ओरते चली गई।

—अरी टीशन वाली, तो रौती काहे हँ !—बिरजू की माँ ने पुकारकर कहा—आ जा झट में कपड़ा पहनकर। सारी गाड़ी पड़ी हुई है ! बेचारी !—आ जा जल्दी !

बगल के झोंपड़े से राधे की बंटी सुनरी ने कहा—काकी, गाड़ी में जगह है ?

में भी जाऊंगी।

बाँस की झाड़ी के उस पार लरेना खबास का घर है। उसकी बहू भी नहीं गयी है। गिलट का झुनकी-कड़ा पहनकर झमकती आ रही है।

—आ जा ! जो बाकी रह गयी है, सब आ जायें जल्दी !

जंगी की पुतोहू, लरेना की बीबी और राधे की बेटी सुनरी, तीनों गाड़ी के पाम आयीं।

बेल ने पिछला पैर फेंका। बिरजू के बप्पा ने एक भट्ठी गाली दी—माला ! लताड़ मारकर लँगडा बनायेगा पुतोहू को !

सभी ठठाकर हँस पड़े। बिरजू के बाप ने घूँघट में झुकी दोनों पुतोहूओं को देखा। उसे अपने खेत की झुकी हुई बानियों की याद आ गयी।

जंगी की पुतोहू का गौना तीन ही माम पहले हुआ है। गौने की रंगीन साड़ी में कड़वे तेल और लठवा-मिट्टर की गंध आ रही है। बिरजू की माँ को अपने गौने की याद आयी। उसने कपड़े की गठरी से तीन मीठी रोटियाँ निकालकर कहा—खा ले एक-एक कर। सिमराहा के सरकारी कूप में पानी पी लेना।

गाड़ी के बाहर होकर धान के खेतों के बगल से जाने लगी। चाँदनी, कार्तिक की। खेतों से धान के झरने फूलों की गंध आती है। बाँस की झाड़ी में कहीं दुब्दी की लता फूली है। जंगी की पुतोहू ने एक बीड़ी मुलगाकर बिरजू की माँ की ओर बढ़ायी। बिरजू की माँ को अचानक याद आई, चम्पिया, सुनरी, लरेना की बीबी और जंगी की पुतोहू, ये चारो ही तो गाँव में बँसकोप का गीत गाना जानती हैं। खूब !

गाड़ी की लोक धनखेतों के बीच होकर गयी है। चारो ओर गौने की साड़ी की खसखसाहट जैसी आवाज होती है। बिरजू की माँ के माथे पर मँगटिके पर चाँदनी छटकती है।

अच्छा, अब एक बँसकोप का गीत गा तो चम्पिया ! डरती है काहे ? जहाँ भूल जाओगी, बगल में मास्टरनी बैठी ही है।

दोनों पुतोहूओं ने तो नहीं, किंतु चम्पिया और सुनरी ने खखारकर गला साफ किया।

बिरजू के बाप ने बैलों को ललकारा—चल भैया ! और जरा जोर से ! गा रे चम्पिया, नहीं तो मैं बैलों को धीरे-धीरे चलने को कहूँगा।

जंगी की पुतोहू ने चम्पिया के कान के पास घूँघट ले जाकर कुछ कहा और चम्पिया ने धीमे से शुरू किया—चंदा की चाँदनी...

बिरजू को गाँव में लेकर बैठी उमकी माँ की स्मृति हुई कि वह भी साथ-साथ गीत गाये।

बिरजू की माँ ने जंगी की पुतोहू की ओर देखा, धीरे-धीरे गुनगुना रही

है वह भी। कितनी प्यारी पुतलू है। गीने की साड़ी से एक खास किस्म की गंध निकलती है। ठीक ही तो कहा है उसने ! बिरजू की माँ बेगम है, लाल पान की बेगम है ! यह तो कोई बुरी बात नहीं। हाँ, वह सचमुच लाल पान की बेगम है !

बिरजू की माँ ने अपनी नाक पर दोनों आँखों को केंद्रित करने की चेष्टा करके अपने रूप की झाँकी ली, लाल साड़ी की झिलमिल किनारी, मँगटिका पर चाँद। ... बिरजू की माँ के मन में अब और कोई लालसा नहीं। उसे नींद आ रही है।

(जनवरी, 1957)

नेपथ्य का अभिनेता

यद्यपि उसे पहले भी पचासों बार देख चुका हूँ, किंतु उम दिन देखकर चिहुँक-सा उठा। चकित हो गया। लगा, जैसे बिना मौसम के कोई फूल या फल देख रहा होऊँ। सावन-भादों के किचकिच में, लगातार बारिश में ई कहीं से आ गया ? क्यों ?

मैं ही नहीं, उम देख सभी परिचिन-अपरिचित अकचकाकर रुक जाते हैं। कोई-कोई उमके टेबुल के निकट जाकर कुछ पूछ भी लेता है और मैं यह भी देखता हूँ कि वह घोर अनाटकीय ढंग से छोटा-सा उत्तर दे देता है। मुझे यह समझने में कोई गलती नहीं हुई कि लोग उसे फारविसगंज की इस छोटी-सी चाय की दुकान की एक बाँहवाली कुरसी पर बैठा देखकर क्यों कुछ देर के लिए अकचकाकर रह जाते हैं।

मैंने मन-ही-मन अटकल लगायी—प्रायः तीस-इकतीस वर्ष पहले, इस व्यक्ति को पहले-पहल देखा था—सन् उन्नीस सौ उनतीस में। उसी साल पहले-पहल गुलाबबाग मेला में इतना सटकर हवाई जहाज देखा था कि वह सन्-ईस्वी अभी तक झक-झक मन में याद है। सन् उन्नीस सौ उनतीस में मैं आठ-नौ वर्ष का था। उसी वर्ष गुलाबबाग मेला में कलकत्ता की मशहूर थियेटर कंपनी आयी थी और लोगों की अपार भीड़ जमा हुई थी—तिल घरने की भी जगह नहीं थी। मंच पर ही गाड़ी आती-जाती थी—इंजिन सहित, पुक्का फाड़ती, धुआँ उगलती हुई और लाल-पीली रोशनी में अनेक परियाँ नाचती हुई... एह !

जीवन में पहले-पहल थियेटर देखकर कितना उत्तेजित हो गया था—आज भी वह दिन अभी तक मन में है। कितना आश्चर्यजनक !

किंतु जब स्कूल खुला, तो सहपाठी बकुल बनर्जी ने मेरे मन को छोटा कर दिया था। यद्यपि वह भी उन दिनों आठ-नौ वर्ष का ही था, किंतु बहुत ही तेज, जन्मजात आर्ट क्रिटिक। उसके कथनानुसार, इस नकली कंपनी में पिछले साल नागेश्वरबाग मेला में आयी असली कंपनी के निकाले हुए सब लोग थे। किंतु बकुल मुझे उदास देखकर बोला था—‘तब भी एक बात है इस कंपनी में—जिस मानुष

मे रेसवे पोर्टर का पार्ट किया हाई, वह नागेमरबाग मेला में आया हुआ कंपनी में भी वही पार्ट करता था, यानी बेटिंग रूम में सोये हुए लड़िका को मारता था, छूरा से... उसको तो नकली नेही कहने सोकते ।’

बाजि भी मेरे मन में उस समय की सभी बातें हैं... गुलाबबाग मेला... पंजाब मेल का रेसवे पोर्टर... लड़के का खून... बकुल की बातें...

करीब चार या पाँच वर्ष उपरांत सिद्देश्वर मेला में आयी हुई उमाकांत झा कंपनी में इस व्यक्ति को पुनः देखा था। बित्त्वमंगल नाटक में चिताबायी की बज्रसिस में भोबिया के बाबाजी के भेष में—‘काया का पिजरा डोले रे, साँस का पंछी बोले’ गाता हुआ बड़ा ही सुरगर कंठ था। गुलाबबागवाली कंपनी में लड़के की हत्या करनेवाला, माने हत्यारे का पार्ट करनेवाला, बाबाजी के गेरुआ वस्त्र में। अपनी बोली वह अधिक देर तक नहीं छुपा सका—मैं भट्ट से तुरत पहचान गया। किंतु जब वह पारसी नौटंकी के एक दृश्य में कवित्त पढ़ रहा था—मृदग कहै धिक है, धिक है... मंजरी कहै किनको-किनको!... तब हाथ नचाय के गणिका कहती—इनको-इनको-इनको-इनको!... उस समय मुझे तनिक भी शंका नहीं रह गयी। खूब फरिछा कर पहचान गया था बाबाजी को—वही था, जो गुलाबबाग मेला कंपनी में, बेटिंग रूम में सूतल लड़के के छूरा भोकने के पहले काँपते हाथ और बरबराते छुरे को देख, पागल जैसा बड़बड़ा उठा था—‘क्यों मेरे हाथ! तू क्यों बरबरा रहा है! तू तो केवल अपने मालिक का हुक्म अदा कर रहा है। मत काँप मेरे खंजर... वक्त बरबाद मत कर! शिकार... सोया है चादर तानकर! ले, तू भी अपना काम कर!’ बस कि डुग्गी पर बड़ी जोर से चोट पड़ी थी, सभी हड़बड़ा गये थे—यह सब-कुछ मेरे मन में है।

उसके बाद फिर तीसरी बार—आद्याप्रसाद की नाटक कंपनी के ‘श्रीमती मंजरी’ खेल में अंगरेज जज का भेष बनाकर टेबुल पर हथौड़ा ठोककर शांति स्थापित करता हुआ यह व्यक्ति बोला था—‘वेल मोजरीबाई! हम टुमको सिडी-मटी मोजरी का खेताब डेटा हाइ। आज से टुमको मिडीमटी मोजरी बोलेंगा। हम बोलेंगा, साब बोलेंगा, समझा?’ और इस दृश्य के उपरांत कुछेक क्षणों में वही गीत गाता हुआ स्टेज पर आया था—‘काया का पिजड़ा डोले रे’—अपनी उमी पुरानी तर्ज में।

मुझे इसे पहचानने में कहीं गलती नहीं हुई। सब जगह उसे चीन्ह गया।

वह दुकान की कुरसी पर बैठा था अवश्य, पर था अन्यमनस्क, उदाम, उखड़ा

हुआ, अपने में खोया हुआ। बादलों की झड़ी वह बहुत देर से एकटक देख रहा था। वह... वह... हत्यारा पोटर, बाबाजी... अंगरेज जज... उपदेशक... सिपाही... डाकू... अंधा... फकीर... तथा आदि, आदि, आदि—सब एक ही व्यक्ति... एक ही व्यक्ति !

इतने समय के बाद मेरी नजर उसकी पहनी हुई बुशर्ट पर पड़ी। कार्टून की छाप मिट रही थी, मूल जम रही थी। नयी डिजाइन की टूटी चप्पल। वह उच्चकर गंभीर दृष्टि से चायवाले की ओर ताकते हुए बोला, “एक इधर भी...” उसकी बोली सुनकर यह समझने में रत्ती-भर भी भ्रम नहीं रहा कि जो हत्यारा पोटर, या दहलानेवाला भयंकर डाकू, या रोबीला अंगरेज जज, या शांत उपदेशक आदि का पार्ट करता था, अब बूढ़ा हो गया है।

याद आया—फारबिसगंज मेले की एक थियेटर कंपनी के कुछ ऐक्टरों के पीछे बहुत देर से घूम रहा था। एक पान की दुकान पर सब खड़े हुए, पीछे मैं भी खड़ा हुआ। मूढ़ मूढ़ में काफी लोग थे। लैला, मजनू और फरहाद, राजा, डकैत के हाथ से राजकुमारी को छुड़ानेवाला राजकुमार और प्रयोजन पड़ने पर जल्लाद बननेवाला और सबके साथ यह ‘काया का पिजड़ा’ गानेवाला। मुझे पीछे खड़ा देखकर यह बोला था, ‘क्यों वे छोकरे, इस तरह क्यों घूम रहा है पीछे-पीछे ? पाकेट मारेगा क्या ?’

उम छोटी अवस्था में भी मेरा मन समझ गया था कि आत्मममान पर आघात पड़ा है। अहं जाग गया। कड़ाका उत्तर दिया, ‘आपके पाकेट में है ही क्या, जो कोई मारेगा ?’

‘क्यों ?’ वह अप्रतिभ होकर बोला था, ‘तू यह कैसे जानता है कि मेरा पाकेट खाली है ?’

यद्यपि उन दिनों मैं अपने स्कूल की सबसे ऊपर की क्लाम में पढ़ता था और मास्टर साहब के आदेशानुसार प्रत्येक अपरिचित से अंगरेजी में ही बात करने का अभ्यासी हो चुका था, किंतु फिर भी मैंने खड़ी बोली में ही उत्तर दिया, ‘क्यों रात जो भीख माँग रहे थे—दाता तेरा भला हो !’

सब ठठाकर हँस उठे थे और बोले थे, ‘छोकरा तेज है !’

अब मुझे अंगरेजी झाड़नी पड़ी थी, ‘यू सी मिस्टर—रेलवे पोटर-ऐक्टर-डोट से मी छोकरा, आई एम मैट्रिक स्टूडेंट, यू नो ?’

इतनी पुरानी बात याद आने से मेरे होंठों पर हँसी फैल गयी। प्रश्न उठा मन में कि अभी यह किस कंपनी में काम करता है ? क्या अब भी यह उसी तरह रोबीला डायलाग बोलता है ? वैसे ही वॉटरगहम में लड़के पर खंजर चलाता है,

वैसा ही...वैसा ही...

मेरा ध्यान भंग हुआ। उसकी चाय खत्म हो गयी थी। वह मेरी टेबुल से सट-कर खड़ा हो गया था। पूछा, "आप मुझे पहचानते हो सेठ?"

उसकी बांह पकड़कर बैठते हुए बोला, "मैं सेठ नहीं हूँ। खालिस आदमी हूँ। कहिए, आजकल किस कंपनी में हैं? इस बेमौसम में आपको इस इलाके में देख-कर मुझे काफी आश्चर्य हो रहा है।"

"साहेब, अब कहाँ की कंपनी और कैसा थियेटर! सबको फिलम खा गया।" उसने हँसने की निरर्थक चेष्टा की।

"आपने कितनी कंपनियों में काम किया है?"

"साहेब, पंद्रा।" लगा, जैसे उसके मन में सब-कुछ सँजोकर रखा हुआ हो। निमिष मात्र के उपरांत मेरी ओर शून्य दृष्टि से ताकता हुआ बोला, "नौ साल की उम्र में पहली बार स्टेज पर उतरा था—क्रिशन के रोल में।"

मुझे अनुभव हुआ कि मेरे सामने बीते युग का एक शेपांक बैठा है, पारसी थियेटर का एक टूटा हुआ अभिनेता। सिगरेट बढ़ाते हुए पूछा, "तो आजकल क्या करते हैं आप?"

वह एक क्षण चुपचाप मेरी ओर ताकता रहा, फिर सिगरेट मुलगाता हुआ बोला, "क्या करूँगा साहब! वह जो किसी शायर ने कहा है कि इश्क ने कर दिया निकम्मा..." उसने हँसने का असफल अभिनय किया, "दस साल बाद इस इलाके में आया हूँ। क्या नाम बताया लोगों ने—मिथिला देश। साहेब, इस इलाके में नाटक के काफी शौकीन लोग हैं...जाने को तो फिल्म में भी गया। पर जी नहीं लगा।" इतना कहकर कनखी में एक बार इधर-उधर ताककर, फिर दयनीय दृष्टि से मेरी ओर देखता हुआ धीमे स्वर में बोला, "माहेब, एकसक्यूज मी, फॉर लास्ट टू डेज आई एम हंगरी, बेरी हंगरी। माँगने को हिम्मत नहीं होती किसी से..."

उसका यह अंगरेजी डायलॉग घोर अनाटकीय था। मैं कुछ कहने को ही था कि चेहरे पर आज्ञा मानने का भाव प्रदर्शित करता हुआ गिड़गिड़ाने के स्वर में बोल उठा. "हुकुम हो तो कुछ पेश करूँ...अब तो यही एक सहारा बचा है, झामे के पुराने शौकीन मिलते हैं, सुना देता हूँ, जी हलका हो जाता है और कुछ..." वह अपने अपूर्ण वाक्य को छोड़, कोने में रखी अपनी अटैची कूदकर ले आया। एक काली लुंगी बाहर कर मुँह झाँप लिया। फिर लुंगी का परदा उठाया, तलवार कट मुँहवाला एक विचित्र चेहरा बाहर आया। मद्धिम स्वर में वह बोला, "यह एक उदास-निराश नौजवान प्रेमी का डायलॉग है।" एक बार वह खबसा, पुनः

बोलना शुरू किया, “जालिम चपला ! यह क्या किया ! तुमने मेरे दिल के हजार टुकड़े कर दिए ! जालिम ! तूने यह क्या कर डाला, क्या कर डाला, चपला...” चपला... चली गयी तू चपला । चली गयी तू मुझे तड़पता छोड़कर...” इसके बाद हिचकियाँ लेते हुए उसने जो संवाद बोला, वह मैं नहीं कह सकूंगा ।

दुकान में लोगो की भीड़ लग गयी थी । चारों किनारों में लोग झुक-झुककर देख रहे थे । सबके चेहरों पर एक विचित्रता और कुतूहल का भाव था । किंतु सभी चुप, स्तब्ध ! बाहर बादल रह-रहकर गरज उठता था । उसने पुनः अपने चेहरे पर लुंगी का परदा गिरा लिया, मानो अपने को ग्रीनरूम में ले गया हो । इस बार बड़ी-बड़ी मूँछवाला सरदार बनकर बाहर आया । परदा उठा, वह ग जा, “क्यों बे बदकार ! बता, कहाँ है राजकुमार ? कहाँ है, मक्काग की औलाद...”

हठात् इस जोशीले संवाद की उठा-पटक में नकली दाँत का सेट छिटककर मुँह से बाहर आ गया ।

इसी क्रम में उसने दर्जनों मुखड़े बनाये, कितने ही प्रकार के रास-संवाद सुनाये और अंत में टोपी को भिक्षा-पात्र बनाकर लोगो की ओर ताककर बोला, “दाता, तेरा लाख-लाख भला हो, आना-दो आना... दो पैसे ही सही...”

मेरा पैर धरती से स्पर्श कर गया । जंमे कहीं थोड़ी चोट लगी हो, एक झटका लगा हो । व्यक्ति अपनी कला के जादू से कितने वर्ष पीछे धकेल दिया गया था । मैं पुनः वर्तमान में लौट आया । देखा, बकुल बनर्जी मेरी ओर एकटक ताक रहा है—थोड़ा-थोड़ा किनारे से मुमकराता हुआ ।

बकुल उसे जोर से पूछ बैठा, “क्यों ऐक्टर मोशाय, काल इतना मेहनत से चोन्दा कर दिया, सो सब एक ही रात में भट्टी में फूँक दिया ? बाहरे मोशाय !”

जन्मजात आर्ट-क्रिटिक मेरा सहपाठी बकुल बनर्जी आज भी कला और कलाकार को पहचानने का धंधा उमी प्रकार करता है । सब दिन एक जैसा ही रहा वह ! मेरी ओर ताकता हुआ बकुल बोला, “तू भी इसका बात में फँस गये मुझसे काल यह कह रहा था—फॉर टू डेज आई एम हंगरी...”

नहीं जानता क्यों, मुझे उस वक्त बकुल की यह बात अच्छी नहीं लगी । उसे चुप रहने का इशारा किया और फुसफुसाकर पूछा, “बकुल, इसकी डोलती हुई काया के पिंजड़े में जो पंछी बोल रहा है, उसकी बोली को सुनकर तुमको कुछ नहीं लगा ? ठीक-ठाक बताना !”

बकुल जैसे अवाक् रह गया हो । निमिष-मात्र स्तब्ध रहा, फिर धीरे से बोला, “कुछ नहीं लागता, तो काल्ह ठाँ सारा दिन क्यों इसके साथ भीख माँगता, चोन्दा तो भीख ही हुई ।” उसने एक निश्वास छोड़ा, फिर कहने लगा, “क्या बतायें,

कैसा लगा ? लगा... तुम्हारे अबका अन्य मित्रगणों के साथ भागकर रात-भर चियेटर देखने गया हूँ, होस्टल से।'

मैंने कहा, "हाँ बकुल, मुझे भी कुछ ऐसा ही लगा।"

इसी बीच वृद्ध ऐक्टर ने अपने दूसरे, पुराने प्रसिद्ध गीत की पहली पंक्ति आरंभ कर दी थी :

"सुबह हो गयी निकल गये तारे—

मुझे छोड़ो चलो मेरे प्यारे !"

हठात् पुनः हम लोगों के मन में मेला का मौसम जगमग करने लगा।

[मैबिली से अनुबाव : भारत यायावर]

टेबुल

मिस दुर्बा दास !

अब सिर्फ मिस दुर्बा दास नहीं। मिस दुर्बा दास, असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर; कांटीनेंटल कॉस्मेटिक्स एंड ड्रग्स लि० कलकत्ता-बंबई-दिल्ली-पटना। ब्रांच पटना।

ब्रांच ऑफिस के हर सेक्शन में पिछले सात दिनों से बस एक ही चर्चा; चर्चा का एक ही विषय—दुर्बा दास का भाग्य। डिस्पेंच क्लर्क होकर कंपनी में आयी। फिर, हेडक्लर्क और आठ वर्षों के बाद असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर का यह नया पद !

कंटीन की सीढ़ी के पास बैठा जमादार अभिलाखराम सुना रहा है नये बंरा मिरामदाम को, “मिस साहेब को हम देखा है, जब मिस साहेब फिराक पहनती थी। बहुत बड़े हिसाबी बंगाली बाबू की बेटी है मिस साहेब। एक दिन झाड़ू देने नहीं जाओ, बस एक दिन की मजूरी तुम्हारी जरूर कटेगी। कहते, हराम का पैसा खाकर हड्डी क्यों गलाना चाहते हो ?”

माली बोला, “तो, खानदानी कजूस कहो मिस साहेब को। कल मेजर बाग से गुलाब खरीदकर, दुहरा गुलदस्ता बनाया बड़े जतन से। घर पर दे आया—खुशी-खुशी। सो, गुलदस्ता हाथ में लेकर चुटकी-भर हँसके छुट्टी।” सबके सब बिलेकंप्रिस गुलाब थे।”

सिंगमरराम जनरल सेक्शन का पियन दूर से ही मुस्कराता आ रहा है। उसने समझ लिया है, गप मिस साहेब के बारे में ही हो रही है। आते ही बोला, “आज आफिसो कंप्लेंट हो गइल, अगले। आज तखतीओ लटक जायी—नेम पिलेट।”

“तब तो आज से तुम्हारे डिपाट में नहीं बैठेगी ?”

“यही बैठेवाला भी आ गइलन।” बंबई से, बाड़ा बाबू।”

सिंगसर कंटीन की ओर बढ़ा तो पियन यूनियन का चंदा उगाहनेवाले पियन जगवतीप्रमाद ने रोककर कहा, “ए नेम पिलेट-कंप्लेट ! किधर ?” डिपाट में

चाहूँ भी देगी मिस साहेब या जै-जै मियाराम ?”

सिंगेसर हँसकर बोला, “ऊ गुड़ नहीं जो मंक्खी खाये । न केकरो खात देखलीं—ना केकरो के खिलावत देखलीं—आज ले ।”

सचमुच, मिस दुर्बा को किसी ने खाते-खिलाते नहीं देखा कभी ।

जनरल सेक्शन—जहाँ दुर्बा दास बैठती थी—आज सूना-सूना लगता है । कोने में बैठती थी मिस दुर्बा, हेडक्लर्क । लगता था, एक बड़ा सजा-धजा टेबुल-लेप जल रहा हो । आठ साल तक वह टेबुल-लेप—दुर्बा दास का रूपदीप—समान रौशनी लेकर हॉल के कोने में जलता रहा—दस से पाँच तक । कभी-कभी मात बजे शाम तक ।

दिन-भर में सिर्फ दो-तीन बार उसका कॉलिंग बेल बजता, दो बार पानी पीती । लंच के समय पाउडर की डिब्बियाँ जैसे टिफिन-बक्स से एक लीली बिस्कुट निकालकर कुतर लेती । बोलती बहुत कम । मुस्कराती रहती, हर घड़ी । कहते हैं, इसी अब्धूत मुस्कराहट के पीछे दुर्बा की सफलताओं का रहस्य छिपा हुआ है । सेक्शन में देश के कोने-कोने से—एक-से-एक घाघ बाबू आये । जिसने दुर्बा की इस मुस्कराहट का गलत अर्थ लगाया—वह गया । त्रिपाठी, सिन्हा, लंगड़ा मुखर्जी—सभी ने एक ही गलती की, क्रमशः ।

नगीनाप्रसाद को बेवजह बात करते समय लेजर के पन्ने उलटने की आदत है और बगैर जीभ से उँगलियों को गीली किये दो पेज से अधिक नहीं उलट सकता । मिस दुर्बा ने लिखकर गंदी आदत को छोड़ने की चेतावनी दी थी ।

आज नगीनाप्रसाद अतिरिक्त उत्साह के साथ अनर्गल बातें कर रहा है और उसकी उँगलियाँ—मशीन की तरह—हर दो पन्ने के बाद जीभ से जा चिपकती हैं, “चपाक् ! चट-चट ! ! चपाक् ! क्यों भाई, बड़ा बाबू बड़े साहेब के कमरे में है, क्यों ?”

ट्रांसपोर्ट क्लर्क सेन बोला, “अच्छा भाई । हम तो हिंदी का लिंगऊंग नहीं जानता कुछ !” बताव तो ई मिस दाम को आइमिन छोटा साहेब को क्या बोलेगा ? बड़ा साहेब छोटा मेम तो नहीं बोलने सकता ।”

सभी हँसे ।

मिस दुर्बा दाम, हेडक्लर्क ने एक ट्रांसपोर्ट के सेन का हिमाब चेक कर कहा, “हिमाब गलत है ।” सेन ने सारा दिन बैठकर हिमाब किया—करवाया । पेट्रोल के कूपनों से लेकर आटोमोबाइल-गैराज के बिलों को दुहराकर देखा । साढ़े चार बजे जो हिमाब पेश किया सेन ने—उस पर मरसरी निगाह डालकर ही मिस दुर्बा दास ने—विशुद्ध बकिमचंद्रीय बँगला में कहा था, “आपनि दया कैरिया आपनार ब्रह्म तालुने छागधुत्त अनुलेपन करुन—प्रत्यह !”

1. कृपा करके प्राप प्रपनी खोपडी में रोज बकरी के घी की मालिश करें ।

पर्चेज सेक्शन के झा ने अधजली सिगरेट को मुलगाकर कहा, “ई जुल्मे है कि ?”

“क्या जुल्म है ?”

“यही कि जनाना जात राज करे और मरद जात... हमारे यहाँ एक कहनी है कि—जे घर भोगी कैल घरबार—से घर बूझू बंटाढार।”

मेन बोला, “भा बेटा, भानुसिध का पंदावली बोलता है। एँ ?”

सभी बाबू जी खोलकर हँसे। आज नये बड़े बाबू के ज्वायन करने का दिन है। स्वागत के मूड में है।

“बड़े बाबू अभी तक बड़े साहब के चेंबर में है या छोटे ?”

चापलूम गुलमन मेहता की त्रण-जर्जर सावली मूरत पर लाली दीड़ी। अवमर पर बोलने के लिए वह कोई अप्रचलित अंग्रेजी शब्द ढूँढ़ रहा था, शायद। किंतु कुछ बोल नहीं सका। बड़े बाबू—नये बड़े बाबू अनुरंजन गुप्ता दफ्तर में आ गये—बड़े साहब के चेंबर से।

मेहता ने आगे बढ़कर स्वागत-नमस्कार किया। सहकर्मियों से उनकी सिनियोरिटी के क्रम में परिचय-पात करवाया।

सदा देर से दफ्तर आनेवाले, किंतु सदा-मर्वंदा सभी के काम आनेवाले बिदा महाराज आज भी देरी से आये। मिस दास ने भी कभी जवाब-तलब नहीं किया बिदा महाराज से। ब्राह्मण, बूढ़ा... बिदा महाराज के घर आज ही सौभाग्य से पूजा थी—तिलकुट ले आये हैं। बड़े बाबू ने श्रद्धापूर्वक प्रसाद ग्रहण किया। बिदा महाराज धन्य हो गये।

बिदा महाराज अब अपनी पुरानी मँझली दीदी, नयी असिस्टेंट ब्राच मैनेजर—मिम दुर्बा दास के नये कमरे में गये।

दुर्बा को तिलकुट बहुत पसंद है। गया जोन में रिप्रेजेंटेटिव मानम कुमारजी हर साल तीन बार तिलकुट की टोकरी ले आते हैं।

गुलमन मेहता मिस दुर्बा दास के चेबर में आया। सबसे पहले हिंदी में नेम प्लेट बनाने के लिए धन्यवाद दिया। मानो हिंदी का एकमात्र रक्षक इस सीसीएंडी (काटिनेंटल कॉस्मेटिक्स एंड ड्रग्स) में अकेला वही है। दुर्बा ने झुकी नजरों से मेहता को देखा।

मेहता ने अब नेम प्लेट की तारीफ की, “बहुत बढ़िया बना है।”

“क्या बढ़िया है ? नाम ही गलत लिखा है।”

“एँ ?” मेहता ने चेबर से बाहर निकलकर नेम प्लेट को फिर पढ़ा, “कहाँ, क्या गलती है—गलती तो कोई नहीं दिखलाई पड़ रही।”

“दुर्बा नहीं, मेरा नाम है—दुर्बा।”

मेहता ने इस गलती पर अपना मुँह सकुचित करके कोट के बटनहोल जैसा

बना लिया, “ओ-ओ-ओ !... खैर, पेट काट देने से काम चल जायगा ।”

मेहता ने अब मिस दुर्बा के नये और विशाल टेबुल की प्रशंसा की, “ग्रेड है ।”

दुर्बा को हठात् कुछ स्मरण हुआ ।... टेबुल ? “नया हेडक्लर्क आ गया वफ़्तर ? कहाँ बैठा है ?”

मेहता बोला, “और कहाँ बैठेंगे ? जहाँ आप बैठती थी ।”

दुर्बा अचानक इस तरह गंभीर हो गयी तो मेहता कान खुजलाने लगा । फिर शनैः-शनैः चेंबर से बाहर निकल गया... राम जाने क्या बात हुई ।

“क्रिग-क्रिग-क्रिग...”

“हूँ । जी-जी । हाँ । येस्सर । अभी आ रही हूँ ।”

“ट्रि !... बिसनूसिध ?... तुम्हीं को मेरे मत्थे मढ़ा गया है ? सुनो—पंचेंज सेक्शन के झा से बोलो—बड़ा साहब बुलाता...”

दुर्बा दास भी बड़े साहब के चेंबर में गयी । फिर तुरंत वापस हुई । अभ्यास-वक्त उसके पंर जनरल सेक्शन की ओर बढ़े । किंतु, बिसनूसिध की विस्फारित दंतपंक्ति को देखकर मुड़ी—अपने चेंबर की ओर ।

दुर्बा दास की इस असामयिक और अभावनीय उन्नति से बिसनूसिध अत्यधिक प्रसन्न है । रूप कहते हैं इसको कि देखिए तो देखते रह जाइए, मुदा न रूप घटे, न आँख हटे । इसको कहते हैं जनाना का खपसूरती । भगवान ने बिसनूसिध की प्रार्थना सुन ली है—मनोकामना ! अब सेवा करने का औसर मिला है—इतने दिनों के बाद ।

दुर्बा अपने चेंबर में आयी ।

“जैहू ! कुछ अच्छा नहीं लगता । नये फर्नीचरों की गंध, बार्निश की गंध दुर्बा को अच्छी लगती है । किंतु आज क्यों नहीं अच्छी लग रही ? उबकायी क्यों आ रही है ? उसके दोनों हाथ रह-रहकर भटक जाते हैं, मानो । झाबर नये डंग का है, इम मेज का ? नया टेबुल ? ठीक है । यही... यह टेबुल नहीं पसंद है दुर्बा को ।

अपने दोनों हाथों को दोनों ओर टेबुल पर पसारती है, दुर्बा । मानो आलिंगन कर रही हो । टेबुल का । उसने धीरे से टेबुल के काँच पर—टाप ग्लास पर—अपना दाहिना गाल रखा । तड़प उठी, मानो बिजली छू गयी ।—नहीं, नहीं ! नहीं चलेगा । लेकिन ?...

...आठ साल से जिस टेबुल पर काम करती आयी है, उसके सिवा और किसी टेबुल के पास बैठने की इच्छा नहीं होती । लगता है, पराये के सामने बैठी हूँ ।... असंभव !

“ट्रि !”

“हजोर ?”

“बिसनूसिध, मेहता बाबू को...।”

मेहता कान खुजलाता हुआ फुर्ती से आया, “जी ?”

“मिस्टर मेहता ! बड़ा बाबू...नये बाबू...हेडक्लर्क आ गया दफ्तर ?... काम कर रहा है टेबुल पर ?”

“टेबुल पर काम ? जी हाँ । ...जी नहीं । अभी तो सिगेमर को बुलाकर हथौड़े मे टेबुल की कोई कांटी ठोकवा...?”

“क्या-या-या ? कांटी ?”

मेहता का व्रण-व्रचित मुखमंडल कंटकित हो गया लगा, अचरज से बोला, “जी हाँ । कांटी माने...कील ।”

दुर्बा मिहर उठी दाँत पर दाँत रखकर—“सि-ई-ई !” किंतु उसने तुरंत अपने को संभाल लिया, “ठीक है, आप जाइए !”

...जाइए ? मेहता मानो किसी अन्य दुर्बा दास को देख रहा है । ऐसी चंचल, इतनी उतावली तो आज तक कभी नहीं दिखी दुर्बा दास ? कील ! कांटी ! !... गुलसन मेहता क मन में रह-रहकर कांटी गड़ने लगी—ऐसा क्यों ?

मेहता चला गया ।

...क्या किया जाये ? वह टेबुल दुर्बा को चाहिए, आज चाहिए, अभी चाहिए, उसके सिवा वह एक क्षण चैन से नहीं बैठ सकती । ...नहीं, नहीं, नहीं ! कुछ नहीं हो सकेगा उसके द्वारा । मेमो पर दस्तखत तक नहीं । और, उधर वह गुप्ता—आते ही आते कील क्यों ठोकना शुरू किया टेबुल मे ? पता नहीं किधर कील ठोक रहा था ? सी-ई-ई ! शायद जिस कांटी को उमने जानबूझकर आधा ही ठोकवाया था—चिटों की नत्थी टाँगने के लिए—उसे तो नहीं ? भगवान जाने ! किंतु यह अन्याय ही नहीं, अपराध है । ...क्राइम । उसने क्यों ऐसा किया ?

‘द्रि !’

“हजोर ?”

बिसनूसिध ने नये बड़े बाबू को मिस दाम साहब का सलाम दिया ।

लगा, इसी क्षण की प्रतीक्षा मे—इस प्रकार की राह देख रहे थे सभी । बड़ा बाबू अनुरंजन गुप्ता भी । सभी ने एक-दूसरे को देखा ।

मेहता धीरे से उठकर बड़े बाबू के पास गया । धीरे से गुनगुनाकर बोला, “ई टेबुल बड़-सुगनिया है, बड़ा बाबू !”

मेहता जब आत्मवीर्यता-भरी बोली बोलता है, तो पहली पंक्ति मगही मे अवश्य बोलेवा । उसने पूछा, “सर ! मकान तो मिल गया । या...? ठीक है, किसी

तरह की कोई भी असुविधा हो—मेहता को याद कीजिए। हमारा कर्ज है, सर। हमारा जन्म इसी सहर में—सिटी-एरिया में हुआ है। जो ही-ही-ही ! !”

बड़ा बाबू, अर्थात् अनुरजन गुप्ता हॉल से बाहर चला गया तो सेन ने पूछा, “अच्छा भाय मेटा ! तुम भी खूब है भाय। कभी बोलता है, हियाँ पर जन्म हुआ है हमारा। उस दिन बड़ा साब को बोला—हुंआ पांजाब में चाँदनी-ना-चानी चौक में हुआ। तुम्हारा जन्म केतना जागा में हुआ भाय मेटा ?”

हाल में एक सम्मिलित हँसी गूँजी। किंतु मेहता ने सदा की भाँति सेन की चोट का ही खूब मोड़ दिया, “समझूँ र माई डियर फैंड्स—कहीं न कहीं कोई कील जरूर बड़ रही है। ... मालूम तो सभी को है कि पिछले साल कसकसा में—एक ही साब ट्रेनिंग में थे, दोनों। मिस्टर ए० गुप्ता एड मिस दुर्गा दास। एक सफलीभूत होकर ‘एबीएम’ हो गयी—दूसरा बड़ा का बड़ा बाबू ही रहा—पोर हाइलैंडर नौजवान, आबर न्यू हेडक्वार्टर्स !”

मेहता के इस लेक्चर के बाद दफ्तर के कामकाज में लोगों ने अपने को डुबाने की चेष्टा शुरू की। नये बड़े बाबू की निगाह में आज ही न बड़ जाये कोई—इसलिए कृत्रिम मनोयोगपूर्वक काम चालू हुआ।

टाइपराइटरों की गति, कॉलिंग-बेल की पुकार, बराबों को खोलने और बंद करने की आवाजें—सारे वातावरण में एक बनावड, एक मिला-बड, कपट !

“सिग्रेसर ! ... कहीं भाई ? जरा पानी पिलाओ !”

सिग्रेसर सब समझता है। बहुत-बहुत बाबुओं को उसने पानी पिलाया है, आज तक। असल प्यास, नकल प्यास और नजर प्यास—सभी प्यास को वह पहचानता है। जहाँ एक बाबू ने पानी माँगा, सभी बाबुओं की आत्मा मानो प्यास से ऐँठने लगती है।

“सिग्रेसर ! कहीं चला जाता है ? किसी ने कहीं भेजा है ?”

सिग्रेसर बड़बड़ाता हुआ भाया, “हजुर। पानी छूके फँसबा हम ना छूएब। भीयस हाथे कीनो कागज ना धरब ! ... मिस साहब बहुत बिगड़ेसी ... !”

महीने के अंतिम सप्ताह में कई बाबुओं को सिग्रेसर से कर्ज लेने की जरूरत पड़ जाती है, इस-याँच। इसलिए सिग्रेसर की झस्झाहट पर कोई ध्यान नहीं देते, जाबड। उसके विरुद्ध बक्तव्य अंग्रेजी में हो या किसी अन्य भारतीय भाषा में—वह समझ लेता है। अपनी भाषा ठेठ भोजपुरी के अलावा कोई भाषा सीखने-बोलने की उसकी इच्छा ही नहीं हुई। चाहे बंगाल के बगर्जी बाबू बोलें अथवा मराठा बोलें साहब से बातचीत करे, सिग्रेसर ‘जातानी-खातानी’ ही बोलता है।

मेहता के मन में काँटी खुच-खुच चुभती है—क्या बात है ? वह और बैठ नहीं रह सकता। ... एक रेलवे रसीद के बारे में पूछने योग्य प्रश्न गड़ रहा है

वह। ...मिल गया मवाल उमको। वह फायल लेकर 'एबीएम' के चेंबर में पूछने हुए घुस गया, "मे आई कमिनसा..."

किंतु मिस दुर्बा दास ने पदोचित गंभीरतापूर्वक कहा, "बाद में आईए।"

...मेहता ने देखा—नये बड़े बाबू के ओंठों पर एक अद्भुत मुस्कराहट अंकित है। और दुर्बा दाम के चेहरे पर एक अभूतपूर्व हलचल। ...मन में कील दो-तीन बार लगातार गड़ी, मेहता के ! ! वह फिर अनिच्छापूर्वक चेंबर से बाहर निकल आया।

तब, मिस दास ने पुनः बार्तालाप प्रारंभ किया।

"आपको घर मिल गया ? अच्छा। गुड लक, यह बहुत बड़ा प्रॉब्लेम है पटना का..."

"हर जगह यही हालत है। मेरे एक परिचित यहाँ रेलवे में है—उन्हीं की कृपा से एक अच्छा घर मिल गया है। ...चिरैयाटीड़ पुल के पार।" अनुरंजन ने बताया।

मिस दाम के अंदर बहुत देर तक सघर्ष छिड़ा रहा। सामने बैठे युवक से यह उसकी पहली मुलाकात नहीं। एक ही साथ ट्रेनिंग में थी पिछले साल। ...अनुरंजन के नोट्स आज भी उसके पाम है। ...फिर, वह पचीस पृष्ठ का व्यक्तिगत निबंध—ट्रेनिंग से मने क्या प्राप्त किया—सरम रोचक साहित्यिक ढंग से लिखने की शतं थी। उसने अनुरंजन से अनुनय किया था। ...टी सेंटर में बैठकर चाय पी है। आमने-सामने बैठकर।—स्टार में शंभूमित्रा का 'रक्त करवी' देख चुकी है, अगल-बगल बैठकर। दक्षिणेश्वर, बेलुड—। नहीं, उन स्मृतियों को पोंछ देना होगा। चॉक से अंकित भूत क्षणों को 'परिष्कार' कर देना होगा—मन-पटल से। मन, एक काला बोर्ड !

अनुरंजन गुप्ता ने बहुत पहले ही अपने को संयत कर लिया है। यहाँ आने से पूर्व ही वह आँधी-तूफान झेल चुका है। उसने समझौता कर लिया है। बोर्ड ने असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर के काबिल नहीं समझा, उसका दुर्भाग्य ! वह क्या करे ? किंतु तुरंत पटना ट्रामफर-आर्डर पाकर वह उद्विग्न अवश्य हुआ था। मन-प्राण से काम करने की अच्छी सजा उसे मिली... उसने ग्रहण किया। वह दूढ़ होकर अपना कर्तव्य करेगा। ...

किंतु, अभी-अभी कुछ क्षण पूर्व उसका मन फिर उगमगा गया था... नमस्कार का मित्रकता हुआ प्रतिनमस्कार, हाथ उठाने का ढंग, आँखों की असाधारण नम-नीयता—सब-कुछ देख-मुनकर उसने समझ लिया था, मिस दाम के मन में कुछ हो रहा है। उसने कुर्सी से उठने का उपक्रम किया।

दुर्बा बोली, "सुनिए ! मैंने बुलाया था....।"

अनुरंजन फिर कुर्सी पर स्थिर होकर बैठ गया। कुछ क्षण चुप रहने के बाद अनुरंजन ने पूछा, "जी ! कहिए ?"

"वह टेबुल...आइ मिन...वह टेबुल जिस पर फिलहाल आप बैठे हैं...वहाँ फल तक मैं बैठती थी...वह...वह....।"

"जी। वह ? क्या है उस टेबुल में ?"

"वह मेरा टेबुल है...."

"आपका पर्सनल ?"

"जी नहीं। मैंने उस पर आठ साल तक बैठकर काम किया है।"

अनुरंजन ने कहा, "जी, मालूम है। किंतु मुझे कुर्सी नयी दी गयी है।"

दुर्बा गंभीर हो गयी। अनुरंजन का यह कथन अश्लील-सा लगा।...कुर्सी बदलन की बात क्यों बोला ? उसने अब मन के सारे संकोच को दूर कर दिया। बोली, "वह टेबुल मुझे...यहाँ...मेरे चेंबर में भेज दीजिए।"

"यहाँ भेज दूँगा ?...और यह टेबुल वहाँ जायगा ? लेकिन, वहाँ इतनी जगह कहाँ है ?"

"नहीं। यह टेबुल भी यहीं रहेगा। वह भी।"

"तो, मैं वहाँ किस टेबुल पर...?"

अधीरतापूर्वक दुर्बा दास बोली, "मैं स्टोर बाबू को बुलाती हूँ। आपको नया टेबुल मिलेगा।"

अनुरंजन ने बिना कुछ सोचे-समझे जवाब दिया, "ठीक है। नया टेबुल आ जाये पहले...."

"पहले-पीछे क्या ? अभी भेज दीजिए।"

दुर्बा दाम फिर सोच में डूब गयी। अनुरंजन ने उसके गालों पर रंगों की इतनी शीघ्रता से चढ़ते-उतरते नहीं देखा था। न स्टार में, न ट्राम में, न बेलुड में—कहीं नहीं !

अनुरंजन उठा। दुर्बा दास का ध्यान भंग हुआ। मानो, अपने-आप से तर्क करती हुई बड़बड़ाई, "उसके बिना मुझसे कोई काम नहीं होगा...किस्सुई हूँ मैं ना आमार दारा।"

अनुरंजन अपने असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर के चेंबर से बाहर निकल आया।

अपने जेनरल सेक्शन में घुसते ही उसे लगा—सेक्शन के हर टेबुल के पास, मानव काया में अड़ित अक्षिभौलकों में कौतूहल, जिज्ञासा और अचरज, मिलजुल-कर झिलमिल रहे हैं। छोटी-छोटी बल्ब जैसी दस जोड़ी जलती हुई जालें !

ट्रॉमपोर्ट विभाग का हुलाल मेन—जिमे दफ्तर के महकमीं ट्रॉमपोर्टमेन कहने हैं—‘मुराद’ मिगरेट पीता है। बड़े बाबू को ऑफर करता हुआ बोला मेन, “सार ! डिबिजन ऑफ वर्क का फॉर्मला हो गया क्या ?”

अनुरंजन ‘मुराद’ मिगरेट का स्वाद लेने लगा, कोई जवाब नहीं मिला सेन को।

सभी जलती आँखों ने बड़े बाबू के चेहरे पर आने-जाने वाले भावों को परखने की चेष्टा की—अपने-अपने कोण से।

बिदा महाराज ने पनडव्वा बढ़ाया... बड़ा बाबू पान खाते वक्त सिगरेट नहीं पीते।

गुलसन मेहता ने तुरंत तार्ईद की, “बहुत अच्छा करते हैं, सर ! पान खाते वक्त मिगरेट पीनेवाले की मिगरेट की थूथनी अजीब... लाल-सी... अजीब...”

“...कि—हजोर !”

“क्या नाम है तुम्हारा ?”

मिगेसर के माथ सभी बाबुओं ने दुहराया, “सिगेसरराम।”

“देखो, सिगेसरराम ! यह टेबुल जायगा—एबीएम—माने मिस दास साहेब के चेंबर में :”

बाबुओं की मंडली एक स्वर में बोली, “मिस दाम साहेब के चेंबर में ? क्यों-यों-यों ?”

सबसे बाद में सिगेसर ने पूछा, “से काहे हजूर ?”

“वह कहती है...”

“क्या कहनी है सर ?” मेहता अब अपनी कुर्सी पर चुपचाप बैठा कैसे रह सकता है ? “क्यों सर ? आप वहीं बैठियेगा ?”

अनुरंजन की भूकुटी तनिक बंकिम हुई। मेहता ने समझ लिया। वह बोला, “ओ ! मैं समझ गया सर !”

अनुरंजन ने समझाया, “इसमें समझने-बुझने की कोई बड़ी बात नहीं। वह किमी दूसरे टेबुल पर काम नहीं कर सकती।”

“तो, दे दें अपना बड़ा टेबुल ?”

“वह भी नहीं देगी। दोनों टेबुल रखेगी।”

“स्टोर में नया टेबुल कहाँ से आवेगा ?”

“जरा स्टोर डायल करो, भा !”

मेहता स्टोर-क्लर्क से पूछता है, “हाँ, वनर्जी दादा, मुनिए। स्टोर में कोई सेक्रेटेरिएट टेबुल... टेबुल नया कोई है ? ए ? है ? ...दिल्ली छोड़िए दादा ! बड़ा बाबू के लिए। नहीं ?”

मेहता के चेहरे पर खुजलाइट हुई—किसी ग्रन में।

मेन ने हँसकर पूछा, “क्या बोला बनर्जी दादा ?”

“पगलू हैं यह बनर्जी दादा भी। कह रहे थे कि अभी जीवन का पेड़ कटा-बेसा, चिरायी-फड़ायी होगी, तब जाकर टेबुल होता है। गाछ में फलता नहीं। हूँ !”

“क्रिग-क्रिग-क्रिग...!”

“यः, गुप्ता बोल रहा हूँ। जी? फिर मैं किस टेबुल पर? स्टोर में नहीं है। अजीब बात है। काम तो मुझे भी करना है। जी? लेकिन, मैं बड़े साहब से क्यों कहूँ? आप ही कहें।...आइ बोट...बि...खट !”

टेलीफोन वार्ता-काल सभी बाबुओं के मुखड़े पर उत्तेजना और प्रसन्नता की लहरें दौड़ती रहीं। इसके बाद प्रत्येक बाबू ने अपने मन और मुँह के उपयुक्त मुद्रा बनायी।

विदा महाराज कहते हैं, “टेबुल में क्या है ऐसा?”

मेहता ने ऐसा मुँह बनाया मानो दुर्बा दास ने उसे छड़ी से पीटा है, अभी-अभी। सेन बोला, “साला काठ का चीज का बास्ते इतना दरद और नानुस का बास्ते कुछ नैही—भीतर में?”

अनुरंजन चुप रहा। नगीनाप्रसाद की आदत पर उसकी दृष्टि गयी। पुष्प उलटते-उलटते जीभ से उंगलियाँ चिपकीं। नगीनाप्रसाद पन्नों को उलटते-उलटते बोला, “बहुत-बहुत स्वार्थी जीव देखा है। लेकिन ऐसा नहीं...चपाक खट।”

बनर्जी दादा—स्टोर बाबू ने आकर नये बड़े बाबू से परिचय किया। बोला, “देखिए, आप हमारे बड़े बाबू हैं। सबर उमेर में हम आपसे बड़ा है। टेबुल आप हरगिज मत दीजिए साहब।”

“बहुत छोटे हृदय की है।”

“दिल में दया-माया का नाम नहीं।”

“किसी की नौकरी खाते समय भी ऐसी ही हँसी उसके चेहरे पर रहती है।”

“आखिर, आदमियत भी कोई चीज है।”

“भगवान ने औरत बना के क्यों भेजा इसे?”

“जुल्मे है कि! एतना रूप मुफ्ते चला गया।”

अनुरंजन मुन रहा है, एक-एक मंतव्य। किंतु कोई दुर्बा के चरित्र पर उँगली नहीं उठाता। निष्ठुर, हृदयहीन, स्वार्थी सब-कुछ कह रहे हैं लोग। लेकिन किसी ने यह नहीं कहा कि रूप-यौवन देकर उसने उन्नति खरीदी है। उँहूँ! कोई नहीं कह सकता।

मेहता बोला, “ऐसी जिद तो नहीं करनी चाहिए। अच्छा, भेट मि सी...।”

मेहता दफ्तर से बाहर निकला। झा ने सेन के कान में कहा, "सासा चला अब 'गो-बिटविणी' करने।"

सेन ने आँख टीपकर संकेत किया, "बेटा, देखना खेला। खेला तो अभी आरंभ हुआ।"

मेहता लौट आया। दुर्बा दास को इतना उत्तेजित कभी नहीं देखा मेहता ने। किसी ने भी नहीं। रूप-पूजक बिसनूसिंघ पियन ने भी नहीं।

बिसनूसिंघ पिछले सात साल से मिस दास की बिना पैसे की गुलामी करने का अवसर ढूँढ़ रहा था। भगवान ने इतने दिनों के बाद नजर फेरी। आज ही वह निवेदन करना चाहता था कि घर पर भी उससे काम लिया जाये। बिल्कुल काम करेगा बिसनूसिंघ। पैर में जूती भी पहना देगा। लेकिन, आज तो ऐसा मन उछाट है मिस साहेब का कि एक पल चैन से बैठती ही नहीं।

बिदा महाराज बड़े साहब से पूछने गये कि इस पूर्णिमा की रात में भी पूजा कराने के लिए कोई पुरोहित चाहिए क्या? बड़े साहब मिस दाम से कह रहे थे, "नहीं। यह कैसी लड़कपन-भरी बातें करती हैं, आप? आप दो-दो टेबुल रखें और... आखिर, वह कहाँ काम करेगा? आखिर उस टेबुल में क्या है?"

मिस दुर्बा अनुनय-भरे स्वर में बोली, "सर, वह टेबुल तो मुझे चाहिए ही। चाहे जैसे भी मिले। मैं नया टेबुल दे रही हूँ अपना।"

तब बड़े साहब ने बात बदल दी, "उहँ! वह टेबुल एबीएम के लिए है। हेडक्लर्क को नहीं दिया जा सकता। और आप देने-लेने वाली कोन होती हैं?"

बड़े साहब ने जानबूझकर स्वर कड़ा किया।

"सर, तब मैं कोई काम नहीं कर सकूंगी।"

बड़े साहब के चेहरे पर अब झुंझलाहट स्पष्ट हो गयी।

इसके पहले कभी दुर्बा दास ने ऐसी झिड़की नहीं सुनी थी—किसी भी बड़े साहब की। और न देखी थी ऐसी झुंझलाहट। वह बोली, "सर, सेंटिमेंटल कहिए या पागलपन। मैं किसी को उस टेबुल पर नहीं बैठने दूंगी। नहीं..."

बड़े साहब 'घर बैठे मनोविज्ञान का पीड़ित बनिए' सीरीज के स्थायी ग्राहक हैं। मिस दास की बातों में कोई मनोवैज्ञानिक उलझन है—जहर। बोले, "मिस दास, मेरी बुद्धि में कोई बात नहीं आ रही। मान लो, तुम्हारा ट्रामफर हो गया कलकत्ता। तो क्या कलकत्ता ले जाओगी ठोकर...?"

"जी? चारूंगी अवश्य।"

"और मान लो..."

"नौकरी नहीं रहे? तब कंपनी से अनुरोध करूंगी कि यह टेबुल मेरे हाथ

बेच दे।”

“टेरिबल !...ठीक है, आप जाइए। मैं हेडक्लर्क को बुलाता हूँ।”

बड़े साहब से अनुरंजन ने पूछा, “आप ही बतलाइए, मैं क्या करूँ?”

बड़े साहब ने मिस दास से फोन पर कहा, “आप व्यर्थ में छोटी-सी बात को लेकर एक समस्या पैदा कर रही हैं। आज नये पद का काम ही बसेड़ों से शुरू कर रही हैं आप।”

अनुरंजन गुप्ता को बिसनूसिध ने फिर सलाम लाकर दिया—मिस दुर्बा दास का।

इस बार अनुरंजन ने दुर्बा दास के सुंदर चेहरे पर अबला नारी की बेबसी देखी। बकी, कुड़ी, अस्त-व्यस्त कपड़े, सरकी हुई साड़ी—सामने से। अनुरंजन को याद आयी—दक्षिणेश्वर और बेलुड़ से लौटते समय दुर्बा इसी तरह बकी-कुड़ी थी।

“मिस्टर गुप्ता !”

“हुकम।”

“हुकम नहीं। आप वह टेबुल मुझे दे दें।”

जनरल सेक्शन में एक बाबू ने तलहटी पर उँगली घुमाकर कहा, “लगा है लकड़पेंच।”

मेहता ने स्टोर बाबू—बनर्जी दादा से फोना-फोनी की, “हाँ, दादा। आप वही बात बोलिए कि शीशम का पेड़ कटेगा...”

सभी बाबू प्रसन्न हैं...क्राइसिस. प्राब्लेम अपनी जगह पर जस के तस और घड़ी की सुई आगे बढ़ती गयी—एक, दो, तीन, चार, पाँच !!

दूमरे दिन सभी ने अचरज से सुना, मिस दास अचानक बीमार हो गयी है। एक सप्ताह की छुट्टी के लिए आवेदन-पत्र भेजा है, उसने।

पाँच ही दिनों में अनुरंजन ने अपने दफ्तर के प्रत्येक जीव को थोड़ा-बहुत पहचान लिया है। एक से एक कामचोर पड़े हुए हैं यहाँ। परले मिरे का चापलूस गुलसन मेहता, जिसे पोलसन मेहता कहते हैं।

जो भी हो, मिस दास काम करना जानती हैं। काम से उसे प्रीत भी है। जिस फाइल में हाथ लगाती है, वह अर्ईने की तरह साफ। कहीं कोई भूल-चूक नहीं, उलझन नहीं। लेकिन टेबुल के लिए उसकी जिद? क्या कहा जाये इसको! आखिर बात तो होगी कोई?

मेहता ने कहा, “सर, मैं जानता हूँ कारण।”

अनुरंजन ने पूछा, “क्या कारण है?”

मेहता अनुरंजन के पास गया। फिर मद्धिम आवाज में बोला, “मिस दास की छाती पर—ठीक कॉलरबोन के नीचे—एक रुपया-भर मोल—दाद का चकता है। टेबुल के इस कोने से वह समय-असमय खुजलाती...”।”

“मेहता साहब ! आप अपने ‘एबीएम’ के संबंध में ऐसी बे-बात की बात मेरे सामने न बोलें तो अच्छा।”

सर्वांगसुंदरी दुर्बा की देह में दाद ? घेत, उसने मेहता को अच्छी तरह पहचाना है। दुनिया-भर की बान कोई इसमें पूछे।... सेन ने कल कहा, “एक दिन बड़ा साब बोला—मेटा ! गाधा कैसा माफिक बोलता है ? बास—मेटा झट से आँकू-आँकू बोलने लगा। बलिहारी बाबा मेटा। तुम्हारी जुड़ी आई भूभारत में नहीं।”

ऐसे अवसरों पर मेहता सड़ी मछली, भूखा बंगाली और पांता भात आदि कहकर सेन को काटने की चेष्टा करता है।

उस दिन दफ्तर के बाद मेहता दौड़ा गया मिस दुर्बा के डेरे पर। दुर्बा बाहर लॉन में उदास बैठी थी। मेहता पाजी कुत्ते के डर से फाटक के अंदर नहीं गया। बाहर से ही उसने दुर्बा को संवाद दिया, “आज डी० डी० टी० पाउडर और गेमेक्सन—दोनों मिलाकर टेबुल को डिसइंफेक्ट किया गया है।”

डीडीटी-ई-ई-ई ! लगा, अचेत हो गयी दुर्बा दास संवाद सुनकर।

सातवें दिन मालूम हुआ, मिस दास ने और भी चार दिन की छुट्टी बढ़ाने के लिए आवेदन-पत्र भेजा है।...

अनुरंजन गुप्ता ने—बड़े साहब के आदेशानुसार—असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर के जिम्मे नियमानुसार दिये जानेवाले कामों का एक लेखा-जोखा तैयार किया। मिस दास की अनुपस्थिति में उसने कुछ काम भी कर दिया है।

उस दिन फिर टेबुल की चर्चा छिड़ी।

सेन ने पूछा, “टेबुल पुलिंग है क्या ?... इसी बास्ते ! हा-हा-हा-हा !”

मिस दास की बढ़ायी हुई छुट्टी भी कटी एक-एक कर तीन दिन।

उस दिन दफ्तर से लौटकर अनुरंजन ने कहा, “माँ, मैं जल्दी से नहा लूँ। चलो, आज तुमको आश्रम दिखाता लाऊँ वहाँ का—रामकृष्ण आश्रम। प्रवचन है किशो स्वामीजी का वहाँ आज।”

अनुरंजन बाथरूम से निकला। माँ ने सूचना दी, “एक महिला मिलने आयी है।”

“महिला ?” अनुरंजन अचरज से देखता ही रह गया—अरे, यह तो दुर्बा

दास है। माँ कहती है, महिला ! आधुनिक बाहू-कट ज्वाउज और काजीबरम या—बरम साड़ी का यह मैच—अखबारों में रोज प्रकाशित होने वाली अंत-कंबुकी कंपनी की उस महिला की छाया—क्या हो गया है आज दुर्बा दास को ?

“नमस्कार !... अब कैसा है आपका जी, क्या हुआ था ?”

दुर्बा चुप रही। अनुरंजन की माँ दो प्याली चाय दे गयी। अनुरंजन ने परिचय करवाया, “माँ, आप ही हमारे एबीएम—मिस दुर्बा दास ! और... मेरी माँ !”

माँ रसोई में चली गयी।

“रसोई आपकी माँ स्वयं पकाती हैं, अभी भी ?”

“जी, मेरा सौभाग्य ! माँ के हाथ का...”

“जी नहीं। इस माने में मैं भी सौभाग्यशालिनी हूँ।”

“आप हर माने में सौभाग्यवती है।”

अनुरंजन ने पहचाना, यह कलकत्तावाली दुर्बा दास ही है। परिधान-प्रसाधन तनिक उग्र है। यही फर्क।

“तब ? कैसा लग रहा है पटना ?”

“अच्छी जगह है।”

“खाक अच्छी है। कलक... बंबई से भी अच्छी ?”

कलकत्ता कहते समय आँखें आतंकित क्यों हुई, दुर्बा की ? फिर कुछ क्षणों की चुप्पी।

“तो कल आप दफ्तर आ रही हैं न ?”

“कल ?” सपने से जगी दुर्बा मानो, “कल ? मेरा आना आप पर... तुम पर निर्भर है।”

“मुझ पर ?”

“हाँ।... तुम पर। अनुरंजन बाबू, तुम पर। मैंने कहा न, उस टेबुल पर किसी का बैठना मुझे सह्य नहीं होगा। उसके बिना... जानते हो ? इस बीच हर रात मैंने सपने में टेबुल को देखा। देखा, वह टेबुल मुझे मिल गया है। फिर छीन लिया गया है। बहुत बड़ा युद्ध हो गया—मार-काट। दंगे।... टेबुल में आग लगा दी गयी है। मेरा टेबुल जल रहा है, धू-धू कर।... कितने सपने ऐसे ही भयावने।”

“मिस दास, सभी को अचरज हो रहा है...”

“सो मैं जानती हूँ। मैं सभी का कौतूहल मिटाने को बाध्य नहीं हूँ। तुमसे कहूँ—कोई स्त्री किसी अन्य पुरुष के पास पाँव फँलाकर, हाथ पसारकर, जी खोलकर बैठ सकती है भला ? बोलो।”

अनुरंजन का मुँह न जाने क्यों विकृत हो गया, किंचित् !

दुर्बा अनुनय-भरे स्वर में बोली, “गुप्ता, तुम तो ऐसे नहीं बे ? इतने निष्ठुर तुम हुए कि डी० डी० टी० छिड़कने में भी तुम्हारी आत्मा कुठित नहीं हुई ? तुम जोर-जोर से दराजों को खोलते, बंद करते हो ? सेन उस पर घुस्सा मारता है ? तुमने कील ठोक दी ? क्यों ? क्यों गुप्ता ?”

अनुरंजन ने देखा, बातें करते समय दुर्बा की मदमाती आँखें और भी मधु ढालती हैं। उँगलियाँ छंदबद्ध गति से नाचती हैं।

दुर्बा उठी। खिड़की पर गयी। नाक झाड़कर नासा-रंध्रों का ‘परिष्कार’ किया। हठात्, कलकत्तेवाली दुर्बा लौट आयी। कलकत्तेवाली दुर्बा, जो डकार ले, दाँत से नाखून कुतरे अथवा नाक की सर्दी झाड़े, मुँह विकृत करके भयभीत हो—प्रत्येक अवस्था में सुंदरी ही दीखती है। ‘‘नब-नब रूपे देखि तोमाय क्षणे-क्षणे ! !

“तुम...।”

अनुरंजन ने सचेत करने के सुर में कहा, “क्षमा करें मिस दास। आप मुझे ‘तुम’ कहती हैं। किंतु मैं आपको तुम नहीं कह सकता।”

“मैं-तुम ? मैं तुमको ‘तुम’ कहती हूँ ? ‘‘नहीं-नहीं, मैं तुमको अब ‘आप’ ही कहूँगी। हुआ न ? तुम भी ‘तुम’ कहो न ? क्यों नहीं कह सकते ? सिलि...। मुनो गुप्ता, टेबुल की समस्या पर मोच-विचार किया है मैंने—सात दिनों तक। बड़े साहब का कहना है—नया टेबुल तुमको नहीं दिया जा सकता। ‘‘देखो, गुप्ता। बस, एक रास्ता है। मुझे उम्मीद है, तुम अब जिद नहीं पकड़ोगे।”

“जिद ? मैंने पकड़ी है मिस दास ?”

“क्यों ? सिर्फ दुर्बा नहीं कह सकते ? अच्छी बात। अब तुमने नाहीं की तो मैं समझूँगी। तुम चाहते हो मैं नौकरी छोड़ दूँ। इतने बड़े परिवार का सारा बोझ मेरे ही सिर है। मालूम है तुमको ? नौकरी छोड़ने पर भी—उस टेबुल के बिना कैसे जी सकूँगी मैं ?”

“मिस दास, आप मुझे बताइये, आपने क्या सोचा है ?”

“नहीं। पहले वचन दो, तुम मानोगे ?”

“ठीक, इसी तरह दुर्बा ने पिछले साल वचन लिया था, ‘बोलो, मेरी सहायता करोगे न ?’ अनुरंजन ने पहले ही दे दिया वचन, “मानूँगा। कहिए।”

“सच ? देखो, काम का जो सिलसिला है, तुमको अधिक समय मेरे चेंबर में ही रहना पड़ेगा। याद है, तुम्हीं ने तो कहा था कि यह नया स्कीम ‘एबीएम’ वाला क्या है—सीनियर हेडक्लर्क माने असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर। तो, क्यों न तुम मेरे चेंबर में ही बैठते ? बात यह है कि टेबुल मेरे चेंबर में रहेगा, मेरी आँखों के सामने रहेगा तो तुम जोर-जोर से दराजों को खोल-बंद नहीं करोगे। हर्षादे से कील नहीं ठोकोगे। मेरी उपस्थिति में कम-से-कम...।”

अनुरंजन ने पहले ही वचन दे दिया था। दुर्बा को विश्वास नहीं हुआ, किंतु उसने बार-बार पूछा, “बोलो, तुमको कोई एतराज है? सच? कल फिर मुकर तो नहीं जाओगे? किसी की बात में पड़कर ‘नट’ तो नहीं जाओगे? वह गुलसन मेहता बड़ा पाजी जीव है। बोलो...”

अंतिम वाक्य कहते समय दुर्बा ने अनुरंजन का हाथ पकड़ लिया, “बोलो।”

अनुरंजन की माँ ने पूछा, “अब तो आश्रम नहीं जा सकोगे भैया। पीढ़ी डाल दूँ चौके में?”

दुर्बा असंख्य धन्यवाद देने की मुद्रा में बोली, “तो मैं चली अभी। हैं? कल इस बजे के पहले ही आओ न! बड़े साहब साढ़े नौ बजे ही आ जाते हैं।...” बाद में सभी आ जायेंगे तो फिर टेबुल खींच-तान...”

“नमस्कार।”

अनुरंजन को लगा, दुर्बा उसे चाबुक से पीटकर चली गयी, सपाक्! सपाक्!

दूसरे दिन दुर्बा नौ बजकर पच्चीस मिनट पर ही दफ्तर आ गयी।

बड़े साहब की गाड़ी साढ़े नौ बजे पोर्टिको में आकर लगी। दुर्बा ने आगे बढ़कर नमस्कार किया।

“कहिए मिस दास, अब कैसी हैं?”

“अब ठीक है सर।” उत्फुल्ल दुर्बा बोली।

साहब अवाक् हुए मन-ही-मन। प्रकट रूप से मुस्कराते रहे।

दुर्बा बड़े साहब के साथ उनके चेंबर में गयी। बड़े साहब का पियन जब तक चेंबर में रहा, वह चुप रही। उसके बाहर जाने के बाद दुर्बा ने साहब के मूड को परखने की चेष्टा की। फिर निवेदन करने लगी, “सर! टेबुल की समस्या...”

बड़े साहब उबल पड़े, “सुनो भाई, मिस दास। मैं अब इस समस्या या प्राब्लेम के बारे में एक शब्द नहीं सुनना चाहता। आप लोग टेबुल-कुर्सी के लिए बच्चों की लड़ाई करेंगे तो मुझे बाध्य होकर जोएम को लिखना पड़ेगा।...” फनी।”

“नहीं सर, अब कोई प्राब्लेम ही नहीं। सब तय हो गया।”

दुर्बा ने समस्या का हल विस्तारपूर्वक सुझाया। उसने यह भी कहा कि कल शाम को अनुरंजन के डेरे पर जाकर अनुरंजन को मना आयी है।

बड़े साहब ने इस फार्मूले पर सोचा, ठीक है। देखा जाये, कहीं तक बीर... यह अनुरंजन गुप्ता—हेड आफिसर से लेकर—बोर्ड के सभी सदस्य—जिसकी तारीफ में पुल बाँध चुके हैं, यही है वह कर्मठ पुरुष? रीढ़हीन प्राणी?... ठीक है, छधर जनरल सेक्शन में मेहता को अवसर मिलेगा... डोसालय मेहता। हैंडी एंड

हेल्यफुल मेहता और इस सुपुरुष अनुरजन में क्या फर्क...? "ठीक है। किंतु गुप्ता को यदि कोई एतराज हो?"

"उसे क्या एतराज होगा? सर, वह आ ही रहा है।"

दस बजे के पहले ही दुर्बा दास अपना प्रिय टेबुल ले आयी अपने चेंबर में। टेबुल लाते समय वह कुलियों के साथ थी—कहीं ठेस न लग जाये। आखिर कहीं तक बचावे कोई? काँच का तो नहीं टेबुल। जरा-सी ठेस लगी, चीख उठी दुर्बा दास।

चेंबर के एक हिस्से में टेबुल को प्रतिष्ठित किया गया। बिसनूसिंघ जोर-जोर से झाड़न मारकर धूल झाड़ने लगा। चिल्ला उठी दुर्बा दास, "ए—ए—जगली! इस तरह जोर-जोर से क्यों मारता है? लाओ डस्टर।"

दुर्बा ने अपने हाथों टेबुल की धूल को झाड़ा—होले-होले। "हाय रे! एक पखवाड़े में ही तुम्हारी यह दुर्दशा? ह", अब जाकर जान में जान आयी है। मैंने समझा था, अब नहीं पाऊँगी तुमको। लाल रोशनाई गिरी कैसे?

टेबुल झाड़-पोंछकर उमने घड़ी देखी। दस बज रहे हैं। गुप्ता आता ही होगा। उमने दरवाजे की ओर देखा, हैडलूम के पर्दे पर भरत नाट्य नृत्य की मुद्रा में खड़ी औरतों की पाँति। उसने दोनों बाँहों को दोनों ओर पसारकर सदा की भाँति टेबुल के टाप-ग्लास पर अपना एक गाल रखा...ओ हो! एक पखवारे के बाद यह स्पर्श-सुख...मी-ई-ई...फिर दूसरा गाल...सी-ई-ई...रोम-रोम पुलक रहे। पुलक...

"कि। हजोर!"

बिसनूसिंघ अंदर आया। दुर्बा ने झटपट अपने को सँभाला, "कुछ नहीं, बाहर जाओ। कॉलिंग बेल आप ही बज उठा कैसे?"

बड़े साहब ने देखा—पर्दे के उस पार दो पाँव। अनुरंजन गुप्ता आ रहा है। साहब ने एक मोटा फाइल खोलकर अपने को डाल दिया।

अनुरंजन आकर खड़ा रहा। बड़े साहब का ध्यान भंग नहीं हुआ, "सर, क्या मैं बैठ सकता हूँ—थोड़ी देर?"

"उं? हूँ। बैठो। क्या है?"

आवेदन-पत्र। एक नहीं, दो?

"क्या है?" एक में डेढ़ महीने की छुट्टी की प्रार्थना...माँ प्रयाग जायेगी कल्पवास करने...एकलौता बेटा है वह। इसलिए साथ जाना आवश्यक...दूसरा आवेदन-पत्र है कि...पटने का जलवायु स्वास्थ्य के प्रतिकूल...उसे या तो स्लेड ऑफिस कलकत्ता भेज दिया जाये या फिर बंबई। अन्यथा...अन्यथा...। यह आवेदन-पत्र ही त्याग-पत्र।

"देखो गुप्ता, भावार्थ में..."

“नहीं सर, मैंने बहुत मोच-ममझकर देख लिया है। मेरी माँ भी नहीं चाहती।”

बड़े साहब ने आवेदन-पत्र की भाषा और अनुरंजन के चेहरे पर अंकित भाव को पढ़कर समझ लिया, यह सच कहता है। इमने बहुत मोच-ममझकर फैमला किया है।...लोग झूठ नहीं कहने थे। अनुरंजन गुप्ता...

अनुरंजन ने आज की छुट्टी माँगी—मोखिक। मिस गयी।

हर सेक्शन में यह खबर फैली—फैलती गई।

एक साथ बीस टाइपराइटरों की खटपटाहट बंद हो गयी।

सभी बाबुओं ने एक ही माय पानी माँगा, “पानी !”

“आ ?”

“वही हुआ—जो मिस दास चाहती थी।”

“त्रियाचरित्रम्...”

“गजब...अजब...औरत ?”

“गुप्ता साहब चले गये ?”

दुर्बा को भी खबर मिली।

कुछ देर तक सन्न रह गयी। उसके चेहरे का रंग उड़ गया। मुफेद मुख-मंडल।...त्याग-पत्र ? छुट्टी ? वह आया नहीं यहाँ ? लेकिन, उसने तो बचन दिया था ?

उसके चेहरे पर तुरंत लाली लौट आयी। वह अपनी कुर्सी छोड़कर उठी। अपने प्रिय टेबुल के पास गयी। कुर्सी पर बैठी। ओठों पर अंकित मुस्कराहट खिलती गयी।...त्याग-पत्र दे या चूल्हे में जाये मूर्ख अनुरंजन गुप्ता...मेरा धरम बच गया...मेरी इज्जत बच गयी...तुम मेरे ही रहे... मेरे ही ! काँटा दूर हुआ ! आह...!!

टेबुल के टाप-ग्लास पर अपने गालों को नगरी-बारी रखती, स्पर्श-मुख से सिहरती—सिसकती दुर्बा खिलखिलायी—जाको आपर सत्य सनेह...हँ-हँ-हँ... सी-ई-ई-ई !!

मेहता इस अवसर पर कई अप्रचलित अंग्रेजी शब्द ढूँढ़कर ले आया था, बघाई देने के लिए। वह चेंबर में घुसा। आ—उसने देखा, मिस दुर्बा दास एबी-एम, टेबुल पर बाँह पसार, काँच पर गाल रखकर, खिलखिला रही है या रो रही है ! आँखों में आँसू हैं और ओठों पर यह कैसी हँसी ? यह कैसा मुख पा रही है मिस दुर्बा दास ? यह कैसा मुख-दुःख ? यह क्या है...?

मेहता को लगा, किसी अश्लील दृश्य के सामने वह खड़ा है। मूक-वर्ति।—नहीं, यह दृश्य देखने योग्य नहीं।

कस्बे की लड़की

"लल्लन काका ! दादाजी कह गये हैं कि लल्लन काका से कहना कि सरोज फुआ के साथ....।"

लल्लन काका अर्थात् प्रियव्रत ने अपनी भतीजी बंदना उर्फ बूदी को मझिम आवाज में डाँट बतायी, "जा-जा ! मालूम है जो कह गये है।"

बूदी अप्रतिभ हुई किंतु उसके ओठों पर बंकिम-दुष्टता अंकित रही और लल्लन काका की मझिम झिड़की की कोई परवाह किये बगैर अब दादाजी की आज्ञा सुनाने लगी, "दादीजी कहती हैं कि सरोज फुआ नहा रही हैं। लल्लन काका से कहो, जल्दी तैयार होकर नाश्ता कर लें। सरोज फुआ को बहुत जगह जाना है। और रिक्शावाला....।"

'जा-जा !' प्रियव्रत पूर्ववत् पाह्य पीता रहा।

बूदी आँगन में लौटी तो उसने मुँह में पेंसिल डालकर लल्लन काका की नकल करते हुए सुना दिया दादी को, "जा-जा !"

दादी अचार-पापड़ के मर्तबानों को धूप में डाल रही थी। बड़बड़ायी, "सभी कामचोर हैं।" बूदी ने सबिनय-सदुलार निवेदन के सुर में कहा, "दादी-ई-ई ! एक हरे मिर्च का अ-चा-र....।"

"जा-जा, बड़ी पतली जीभ है तेरी।"

बूदी का मुँह लटक गया। दादी ने मर्तबान से एक हरी मिर्च निकालकर देते हुए कहा, "जा, भगेलू से कह, सामनेवाली दूकान से....।"

बूदी दाँत से मिर्च को काटती सिसियायी, "सि-ई-ई ! सारी सुबह मैं छिधर-उधर करती रहूँगी तो स्कूल कब जाऊँगी ? छिधर जाओ, उधर ही जा-जा ! जा-जा !! सरोज फुआ बापरूम से बाहर ही नहीं होतीं। मैं कब नहाऊँगी, कब खाऊँगी...यह लो, आ गयी गाड़ी स्कूल की !"

प्रियव्रत सुबह से लनिक झुंझलाया हुआ है। रात जैसी गर्मी हजारीबाग में कभी नहीं पड़ी। नींद नहीं आयी रात-भर। हालाँकि परिवार के और लोग

हल्की ऊनी चादर डालकर सोये थे। प्रियव्रत की माँ बाहरों महीने रजाई ओढ़ती है। हल्की-फुल्की रजाई गर्मियों में और भारी सेदियों में। '...और उनींची रात की प्रतिक्रिया दूसरे दिन सुबह बाथरूम में हो शुन्य होती है। दाढ़ी कई स्थान पर कट गयी है। कनपटी के पास मोठा-मोठा दर्द है। वह सुन चुका है। बाबूजी का हुक्म, 'लल्लन से कहना, सरोज को जहाँ-जहाँ जाना है, ले जाय। बेचारी अकेली कहाँ-कहाँ जायेगी?' हुँह '...सरोजदी देहात से अकेली पंद्रह-पंद्रह स्टेशन रेल-यात्रा करके यहाँ सकुशल आ सकती है तो शहर में ही कौन दिन-दहाड़े डाके पड़ते हैं कि सरोजदी के साथ एक सशस्त्र अर्दली जाय?—पुरुष माने सशस्त्र!...' और सरोजदी का रूप भी इतना मारामक नहीं।'

प्रियव्रत सुबह से ही सरोजदी के संबंध में सोच रहा है। सरोजदी! बाबूजी के एक मुफसिनल के मुवैकिकल मित्र की बेटी! एकदम देहातिन नहीं कह सकते सरोजदी को। मैट्रिक पास करके गाँव के स्कूल में पढ़ाती है। स्कूल के काम से ही आयी हैं। इसके पहले भी बहुत बार आयी हैं। मिडिल की परीक्षा देने आयी थीं। सरोजदी के बाबूजी भी साथ आये थे। मैट्रिक का इम्तहान देने आयीं, अकेली। अकेली नहीं, दूर के एक चाचा पहुँचा गये थे। सरोजदी के पिता की मृत्यु उसी साल हुई थी। लेकिन सरोजदी के पिता ही क्यों, सरोजदी भी जब आयीं, कभी खाली हाथ नहीं आयीं। धी, शहद, महीन चाबल, दही-मपीत—सब विशुद्ध। जब से देख रहा है प्रियव्रत, सरोजदी ऐसी ही हैं। सदा से...

प्रियव्रत सोच रहा है, कैसा अन्याय है? एक ओर सरोजदी है जो इतनी चीजें, इतने प्यार से लेकर आती हैं और दूसरे ही दिन भाईजी और भाभीजी का मुँह लटक जाता है। तीसरे दिन माँ भी उखड़ी हुई बातें करने लगती है जनसे। भाभी चुपके-चुपके मुँह बनाकर कहेंगी, "इतने जोर से खुराटा लेती है सरोज। घंटों बाथरूम बंद रखती है, सरोज 'आज 'उनके' प्राइवेट रूम में चली गयी सरोज। वे अपने दोस्तों के साथ ड्रिंक कर रहे थे और यह भैयाजी-भैयाजी कहकर क्या-क्या रोने-गाने लगी।" भाभी बहुत स्वार्थी हैं। लेकिन, दूसरी ओर भाभी की आध दर्जन बहनें या भाईजी के साले की सहेलियाँ खाली हाथ आती हैं। बिना मक्खन के रोटी नहीं खाती हैं और भाईजी की गाड़ी का इंजन हमेशा गर्म रहता है उन दिनों—बोकारो, कोनार, तिलैया, रामगढ़, रांची... सरोजदी ने कभी नहीं कहा कि बिना कार के मैं एक कदम नहीं चल सकती। क्या सरोजदी के मन में भाईजी की गाड़ी पर चढ़ने की वासना नहीं हुई होगी? कौन जाने!...

सरोजदी साबली नहीं, काली हैं। कद मँडोला है। मोटी नहीं, देह दुहरी है। संभवतः किसी र्लैंड की गड़बड़ी के कारण उनकी बोली में तनिक मृगेपन का सुर मिला हुआ है। चलते समय हुर डेग पर अस्वाभाविक ढंग से जोर देती हैं और प्रसन्न होकर हँसते समय मुँह से लार टपक पड़ती है, यदा-कदा। ओठ

सदा भीगे रहते हैं।

प्रियव्रत को याद है, मंदिर की परीक्षा देने आयी थीं सरोजदी। बाबूजी का मुहर्निर इब्राहिम रोज टमटम पर साथ जाता था। फिर, चार बजे जाकर ले आता था। उस बार भाभी ने झूठ-मूठ सरोजदी पर आरोप लगाया था। बूदी के गले की सोने की 'सिकरी' भाभी के बक्स से ही निकली थी।

सरोजदी बायरूम से बाहर आ गयीं, नहा-धोकर। "लल्लन बाबू!" प्रियव्रत ने अब अपने से सीधा सवाल किया, "क्यों लल्लन बाबू, भाईजी की किसी साली या भाईजी के साले की किसी साली के साथ एक रिकशे पर, शहर घूमने में तुमको कभी कोई एतराज होता?"

अंदर आँगन में भी भगेलू से कुछ कह रही है, "क्या भगेलू जायेगा सरोजदी के साथ?"

भाभी कहती हैं, "तो क्या हुआ? रिकशा के पायदान पर बैठेगा भगेलू।"

बाबूजी बाहर से आ गये।

साथ में है एक दूसरे वृद्ध—देवधर के अंजनी बाबू वकील। बाबूजी अब नियमानुसार अपने पुत्रो को निदा से शुरू करेंगे, और हर बेटे की तारीफ तनिक तफसील से अंत में करेंगे, "हाँ, बड़ा देवव्रत—मन्नन—इंटर नेशनल टुबाको में है। बोला, 'सरकारी नौकरी नहीं करेंगे, चाहे सरकार अपनी हो या बिरानी।'...नहीं करोगे तो मत करो। साली, सरकारी नौकरी में धरा ही क्या है, अब! मंजला लल्लन—प्रियव्रत—एम० ए० करके तीन साल से बैठा है। वह भी सरकारी नौकरी नहीं करेगा। हाँ, हाँ, आपने ठीक पहचाना है, वही प्रियव्रत! कविता ही लिखता है और सबसे छोटा दहन—सत्यव्रत भागकर नेबी में चला गया। चिट्ठी आयी तो मैंने भी कहा, 'डूबने दो कम्बख्त को। नेबी में जाय या एयरफोर्स में।' लिख दिया, 'मेरा लड़का सबकी राजी-खुशी से नेबी में भर्ती हो रहा है।' और क्या करे? इस साल ट्रेनिंग खत्म करके अफसर हो जायेगा।...भगेलू! कहाँ जा रहा है भगेलू? लल्लन कहाँ गया? सरोज के साथ भगेलू क्यों जायेगा? मैं जाऊँगा।"

प्रियव्रत धड़फड़ाकर उठा, 'अब एक सप्ताह घर की शांति गयी। दिन-रात बड़बड़ाते रहेगे। ब्लडप्रेसर बढ़ेगा। डॉक्टर बिनय आयेगे, फिर दोनों मिलकर घर-भर के लोगों की दुर्गंत कर डालेंगे।' अंदर जाकर बोला, 'किसने कहा कि मैं नहीं जा रहा हूँ?'

कमरे में कपड़े बदलती हुई सरोज ने कहा, "लल्लन को छुट्टी नहीं है त भगेलू ही चले न!"

माँ बोली, "नहीं सरोज, लल्लन तैयार है।"

सरोज कमरे से बाहर आयी। चप्पलों को बेतरतीबी से खिसकाती हुई। भीगे

ओठों पर मूकजनोचित मुस्कराहट छायी हुई... गिलगिलाती मुस्कराहट !

रिक्शावाले की दृष्टि और मद मुस्कराहट को परखता है प्रियव्रत। वह रिक्शे में मिकुड़कर, एक किनारे जा बैठा। मरोज पास आकर बैठी। सरोजदी कोई सस्ता किंतु चालू पाउडर लगाती है, शायद। केश में कोई आयुर्वेदिक तेल डालती है क्या? साड़ी तो हैडलूम की है। एक बार प्रियव्रत की भाभी कह रही थी—सरोज का ब्लाउज मर्दों के मौम में भी बगल से भीग जाता है। अभी तो भीगा हुआ नहीं है? नहीं, भाभी अधिक नहीं, तनिक निष्ठुर भी है।...

रिक्शाचालक ने पहला प्रश्न किया, "भेममाहब, रांची से आयी है क्या?" प्रियव्रत उसे डाँटना चाहता था, लेकिन इसके पहले ही सरोज बोल पड़ी, "नहीं भैया! मैं हँमुआ से आयी हूँ। शिक्षक-संघ का दफ्तर देखा है?"

"कीचक संघ तो..."

"मुझे मालूम है।" प्रियव्रत ने कहा, "चलो, मदनबाड़ी रोड।"

प्रियव्रत का घर शहर में तीन मील दूर है। तीन पहाड़ी के पाम, इस गाँव में प्रियव्रत के पिता ने जब घर बनवाया था तो लोग हँमते थे—वकील साहब जंगल में बस रहे हैं। आज, इस गाँव में बसने के लिए शहर के लोग, जमीन की ढाक बोलकर भी जमीन नहीं पा रहे हैं।

सरोज अपनी देह को भरसक संकुचित करती हुई बाँली, "तल्लनजी! ठीक से बैठो, आराम से..."

गाड़ी कुछ दूर आगे चढ़ी तो सरोज ने यहाँ की सड़कों पर अपना मतव्य प्रकट किया, "हजारीबाग की सड़कों से मुझे बड़ी चिढ़ होती है। दस कदम पर चढ़ाई और दस कदम पर उतराई। हजारीबाग की सब चीजें मुझे अच्छी लगती हैं, इन सड़कों को छोड़कर।"

प्रियव्रत ने बात को मोड़ने के लिए पूछा, "कहाँ-कहाँ जाना है आपको?"

सरोज ने कहा, "पहले शिक्षक-संघ के दफ्तर में, फिर शिवयोगी बाबू के यहाँ होते हुए स्कूल इंस्पेक्टर साहब के डेरे पर।"

प्रियव्रत ने पूछा, "यह शिवयोगी बाबू कौन हैं?"

प्रियव्रत ने लक्ष्य किया, सरोजदी हर बार बोलने के पहले एक अस्फुट हँसी हँसती है।

"हँहँ! शिवयोगी बाबू हैं हमारे हँमुआ रेलवे स्टेशन के स्टेशनमास्टर के दामाद। हर बार स्टेशनमास्टर साहब मेरे हाथ कुछ-न-कुछ भेजते हैं। इस बार नाती के लिए 'जंतर' बनवाकर भेजा है।"

सामने चढ़ाई थी। यहाँ सभी रिक्शावाले रिक्शे से उतरकर गाड़ी खींचते

हैं। लेकिन इस रिकशावाले ने दोनों को उतर जाने के लिए कहा, “बिना उतरे ई दु-बु मन, ढाई-ढाई मन का लहास ?”

प्रियव्रत को अपना गुस्सा उतारने का मौका मिला। पैसा चुकाते हुए बोला, “तुम जा सकते हो। लेकिन फिर कभी कोरागाँव की ओर कोई सवारी लेकर मत आना। समझे ?”

दोनों उतर पड़े। अभी तुरत दूसरा रिकशा मिल जायेगा।

मंजरे हुए आम और जामुन के युग्म-पेड़ के नीचे वे जा खड़े हुए। यहाँ के लोग कहते हैं—जुड़मा गाढ़ ! झड़ती हुई मंजरियों के कई छोटे, जामुन के कुछ फूल सरोज के सिर पर झरे। कवि प्रियव्रत को पिछले साल रेडियो से सुने हुए एक लोकगीत की याद आयी—जिमकी पक्तियाँ याद नहीं, अर्थ है—‘ओ गोरी ! तू आज रात फिर किसी कारण—मंजरे हुए आम के तले जाकर खड़ी हुई थी—निश्चय ही। तेरे बालों के लट जटा गये हैं। मंजरी का मधु चू-चूकर तंर सिर पर गिरा है। ओ गोरी ! तू आज रात फिर किसी महुए के तले जाकर खड़ी थी—तेरे बालों से महुए के दारू की बास आती है। मेरी आँखें झपक रही हैं—मति या गयी हैं—तेरा जूड़ा कैसे बाँधूँ ?’

सरोज बोली, “हँह, ललनजी ! मैंने तुमको बेकार कष्ट दिया।”

राँची-रोड पर एक बग्योगाड़ी दिखायी पड़ी। प्रियव्रत ने पूछा, “घोडागाड़ी पर चढ़ियेगा ?” सरोज के कंठ से मिफं ‘हँह’ निकला। प्रियव्रत ने बग्योवाले को आवाज दी।

घोर श्यामवर्ण, मँझोली दुहरी सरोज मुफेद साड़ी और मुफेद ब्लाउज में सभी का ध्यान आकर्षित करती है। घड़ी की पट्टी भी मुफेद, चप्पल के फीते भी। घोड़ागाड़ीवाले ने गौर से सरोज को ही देखा। प्रियव्रत को वह पहचानता है।

बग्यो पर आमने-सामने बैठने की जगह थी। किन्तु सरोज जिस तरह रिकशे पर बैठी थी, उसी तरह प्रियव्रत से सटकर बैठी। इस तरह सटकर बैठने की कोई जरूरत नहीं थी। जगह काफी चौड़ी थी। सरोज बोली, “इस चढ़ाई-उतराई के समय मेरी जान निकल जाती है। लगता है, सब खाय़ा-पिया निकल जायेगा। हँह !”

हर चढ़ाई-उतराई पर सरोज ने तमाशा किया। उतराई के समय प्रियव्रत की एक कलाई जोर से पकड़कर आँख मूँदे हेमती-खिलखिलाती रही। प्रियव्रत को लाज आयी।

शिक्षक-संघ के दफ्तर में जिम अधिकारी से मिलना था, सरोज की उससे फाटक पर ही भेट हो गयी। काम भी हो गया—अगली मीटिंग के बारे में पूछना था। अधिकारी महोदय बार-बार प्रियव्रत की ओर देखते ही रहे। फिर बोले,

“आप प्रियव्रतजी हैं न ?” जी हाँ, सुनकर भी अधिकारी महोदय का कोतूहल कम नहीं हुआ, शायद ।

“चलो सरोजदी ! शिक्षक-संघवाला काम तो शिक्षक-संघ के बाहर ही हो गया ।” गाड़ी पर जानबूझकर दूसरी ओर बैठते हुए प्रियव्रत बोला और सरोज पहले तो मामनेवाली गद्दी पर बैठी । फिर उठकर प्रियव्रत के पास जाकर, उससे सटकर बैठी । सरोज ने चलती हुई गाड़ी में प्रियव्रत से दबी हुई आवाज में कहा, “लल्लनजी, तुम साथ थे, इसलिए जल्दी छुट्टी मिल गयी । नहीं तो, यह रामनिहोरा प्रसाद मुझे बेकार बैठाकर तरह-तरह की बातें करता । शादी-व्याह की बात पूछनेवाला यह कौन होता है, भला ? बोलो तो ? और बातें करते समय बातें करो—यह, रह-रहकर पीठ पर थप्पड़ मारने की और बाल पकड़कर खींचने की जैसी भद्दी आदत ? अपने काकाजी भी तो बाबूजी के दोस्त थे । कभी ऐसा नहीं करते । बोलो तो लल्लनजी, क्या यह ठीक है ?”

प्रियव्रत को हँसी आयी । वह पूछना चाहता था, क्यों नहीं ठीक है सरोजदी ? लेकिन वह कुछ बोला नहीं । हँसता रहा । सरोज कुछ धन बाहर की ओर देखती रही । फिर, दबी आवाज में ही बोली, “अच्छा लल्लनजी, तुम नौकरी करोगे तो तुम भी गाड़ी रखोगे न ?”

“यदि गाड़ी रखने लायक नौकरी मिली...।”

“हँह, तुमको भला गाड़ी रखने लायक नौकरी नहीं मिलेगी ?”

प्रियव्रत चौका ।...तो सरोजदी का मुखड़ा भी कभी-कभी सुंदर दिखता है ? सरोजदी जब भाव-शून्य दृष्टि से उसको देखती है, सुंदर लगती है । उसने पूछा “क्यों सरोजदी ?”

सरोजदी इग बार मुस्करायी नहीं । और भी दबी आवाज में बोली, “तुम सुंदर हो । जिममें रूप और गुण दोनों हों, उसी को ऊँची नौकरी मिलती है ।”

प्रियव्रत का चेहरा लाल हो गया । उसने कहा, “यह किसने कहा है तुमसे ?”

“रामभाई ने । रामभाई कहते थे, व्यक्तित्व के बिना विद्वत्ता कुछ नहीं । यदि व्यक्तित्व होता तो रामभाई भी...।”

हजारीबाग चौक पर हमेशा की तरह भीड़ थी । गाड़ीवान ने पूछा, “भैयाजी ! मायाजी बोल रही थी, चौक पर कुछ खरीदना है ।” सरोज भूल गयी थी कि उसे कुछ खरीदना है । स्कूल की लड़कियों ने कापी-किताब, पेसिल लाने के लिए पैसे दिये हैं । सरोज झोले से डायरी निकालकर पढ़ने लगी—यशोदा—तीन कापी रूल की हुई, दो बर्गर रूल । जगमती—भारतवर्ष का भूगोल, साहित्यदर्पण, छोटी नीलू—एक दर्जन जल छवि !...

सरोज हमेशा जिस दुकान से मामान खरीदती है उसी दुकान में जायेगी। पाम ही प्रियव्रत के मित्र, हिमाशु की दुकान थी। उसने कहा भी, "सरोजदी, इस दुकान में..." लेकिन सरोज ने उधर नजर उठाकर देखा भी नहीं।

दुकानदार-छोकरा राखालचंद्र उर्फ याबला ने सरोज को देखकर एक विचित्र मुखमुद्रा बनायी और अभद्रतापूर्व आँखें नचाकर पूछा, "कहिए, कहिए। बहोत दिन बाद..." प्रियव्रत पर दृष्टि पड़ते ही याबलाराम अवाक् हो गया। तुरंत भद्र हो गया उसका चेहरा। सरोज डायरी खोलकर धीमी आवाज में पढ़ती गयी और प्रियव्रत जोर-जोर से दुहराना गया।

दुकान से बाहर निकलकर सरोज बोली, "इस बार तुम साथ थे, इसलिए उसने मुझे मीठी गोलियाँ नहीं दी। नहीं तो जबर्दस्ती दर्जनों मीठी गोलियाँ झोले में डाल देता और जिद्द करके एक गोली दुकान में ही बैठकर चूमने को कहता। चाहे एक चीज लो या दम, एक घटा अटकावेगा यह लड़का।" बेईमान नहीं, लेकिन..."

सामने 'विवेकानंद मिष्ठान भंडार' में बैठकर चाय पीते हुए लोगो ने आँखें फाड़-फाड़कर सरोज और प्रियव्रत की ओर देखना शुरू किया। सरोज बोली, "विवेकानंद का कालोजाम नामी है। है न ? हँह ! " सरोज के पैर लड़खड़ाये। प्रियव्रत ने पूछा, "कालाजाम खाओगी सरोजदी ?"

"हँह ! तुम नहीं खाओगे ?"

विवेकानंद मिष्ठान भंडार में कई मिनटो तक 'कालोजाम, कालोजाम' का गुंजन होता रहा। डी० वी० सी० के शगाली कर्मचारियों के दल में कानाफूसी शुरू हुई, "कालाजामेर मगे चमचम।" एक ने ढाका की बोली में कहा, "एबार छाणे (अर्थात् देशे) एड्डा कार्दीनी व्यार हुददे—नामडा काकहोसिनी !... काम-हँमिनी ! कालोजाम !!"

प्रियव्रत ने सब ममझा। अच्छा हुआ, सरोजदी ने कुछ नहीं समझा। स्वाद ले-लेकर कालाजाम का रस जब प्लेट में जीभ लगाकर चाटने लगी तो प्रियव्रत ने पूछा, "और मँगाऊँ कालाजाम ?"

"हँह ! पेट फट जायगा जो।"

सरोज के इस जवाब से प्रियव्रत को फिर लाज आयी।

किंतु, इस बार गाड़ी में वह प्रियव्रत के सामने बैठी, "चलो बटम बाजार !"

प्रियव्रत ने देखा, सरोजदी डकार लेने समय और भी असुंदर हो जाती हैं, उनके गीले ओठ और भी गिलगिले हो जाते हैं। डकार लेने के बाद सरोज ने बताया, "रामभाई को भी कालाजाम पसंद है बहुत।"

गाड़ी बटम बाजार की ओर मुड़ी। फिर उतराई ? सरोज उठ खड़ी हुई और टलमलाकर प्रियव्रत पर गिर पड़ी। "तुम भी गाड़ी से बाहर गिर पड़ते

छिटककर...हँह !!”

हठात् सरोज ने फिर मद्धिम आवाज में पूछा, “अच्छा लत्तनजी ! मैं बहुत काली हूँ ?” याने मुझसे भी ज्यादा काली होती है या नहीं...।

प्रियव्रत ने समझा, पूरा प्रश्न भी नहीं पूछ सकीं सरोजजी । क्योंकि प्रियव्रत का चेहरा भ्रूचरज और लाज में अजीब-सा हो गया था । सरोज ने फिर पूछा, “मैं बहुत मोटी हूँ ? हँह !”

प्रियव्रत को तुरत जवाब मुझा, “मोटी नहीं ।...देहात में स्वास्थ्य जरा अच्छा रहता ही है ।”

सरोज बोली, “रामभाई तो कहते हैं कि तुम्हारा तन काला है, पर मन कासा नहीं—सादा है ।”

प्रियव्रत ने इस बार सरोज के रामभाई पर विशेष ध्यान दिया...रामभाई ने कहा है, व्यक्तित्व के बिना...रामभाई को कालाजाम प्रिय है...रामभाई कहते हैं कि तुम्हारा तन...। प्रियव्रत ने रामभाई के बारे में कुछ नहीं पूछा, किन्तु...

शिवयोगी बाबू के घर पहली बार नहीं आयी है सरोज । लेकिन कभी तो इतनी खातिरदारी नहीं हुई ?... हँह ! सारे परिवार के लोगों ने मिलकर दोपहर के भोजन और विश्राम के लिए हार्दिक आग्रह किया तो सरोज प्रियव्रत का मुँह देखकर कुछ देर तक सिर्फ हँह-हँह करती, हँसती रही । प्रियव्रत ने बग़ीचाने को विदा किया ।

साढ़े तीन बजे चाय पिलाकर, शिवयोगी बाबू के परिवारवालों ने छुट्टी दी । स्कूल इंस्पेक्टर से प्रियव्रत के बड़े भाई माहव की मित्रता है । इसलिए तय हुआ कि वहाँ का काम भाईजी करवा देंगे । सरोज मान गयी ।

प्रियव्रत ने पूछा, “और कोई काम बाकी तो नहीं रहा ?”

सरोज उदाम हो गयी अचानक । बोली, “नहीं लत्तनजी !”

“तो अब घर चलें ?”

“चलो ।”

पुलिस-ट्रेनिंग-कॉलेज के पास एक सड़क, उत्तर की ओर केनाडी, पहाड़ी नेशनल पार्क जाने के लिए निकली है । सरोज ने माइन बोर्ड पढ़कर दुहराया, “नेशनल पार्क जाने का रास्ता ।...नेशनल ! हँह !! नेशनल पार्क में क्या है लत्तनजी ?”

प्रियव्रत के मुँह में नेशनल पार्क का वर्णन सुनकर सरोज उत्तेजित हो गयी । फिर तुरत उदास होकर बोली, “नहीं, लत्तनजी ! अब मैं ज्यादा परेशान नहीं करूँगी तुमको । तुम्हारा दिन का मोना खराब किया मैंने ।”

दिखायी पड़ना है। चलोगी ऊपर?"

"नहीं लल्लनजी, मुझे डर लगता है।"

"तो चलो, तुमको अपनी जगह दिखाऊँ।"

केनाड़ी पहाड़ी की तलहटी में बिखरा वनखंड केनाल और बड़ी-बड़ी चट्टानों के इर्द-गिर्द पुटुस फूल की झाड़ियाँ। केनाल के किनारे कदब के पेड़ पर—ठीक एक घंटे बाद छोटे-छोटे पंछियों का घनघोर कलरव शुरू होगा—घंटो होता रहेगा! इन्हीं चट्टानों के उम पार प्रियव्रत रोज बैठता है।

"यही है मेरी जगह। मैं इसी पन्थर पर बैठता हूँ, रोज।"

"हँह! बैठे-बैठे क्या करने हो?"

इस प्रश्न का कोई उत्तर देना आवश्यक नहीं समझा प्रियव्रत ने। "बैठी मरोजदी! मैं तुमको एक मजे का खेल दिखाऊँ।"

प्रियव्रत पुटुस की एक फूली डाँची तोड़ लाया। फूल और पत्तों को नोचकर एक छड़ी बनायी उमने, "इधर देखो मरोजदी!"

मरोज ने देखा—गामने की धरती पर लज्जनी लता पमरी हुई है, कुछ दूर तक। लगता है—एक गलीचा...हँह...लज्जावती, लाजवंती, लज्जनी, छुईमुई, "अरे-रे लल्लनजी! यह क्या कर रहे हो? हँह!"

प्रियव्रत रोज इसी तरह इन मजीव लताओं को छेड़ता है, आकर। पुटुस की डाल की छड़ी में पहले एक क्राम बनाना है। छड़ी छुआता जाता है, पत्तियाँ झुंदनी जाती है। अंत में, अधायुध छड़ी चलाकर सबको मुला देता है।

मरोज प्रियव्रत के इस खिलवाड़ को अचरज में देखनी रही। जब प्रियव्रत ने सभी पत्तियों को मुला दिया तो मरोज ने एक लंबी साँस ली। बोली, "लल्लनजी, तुम ठीक कहते हो। यहाँ आकर आदमी जानवर हो जाता है, कभी कभी। हँह!"

प्रियव्रत हँसा। वह अपनी जगह पर जा बैठा। उत्तर आकाश का बादल क्रमशः काला होकर झुकता जा रहा है। हवा गुम है! भाभी ठीक ही कहती थी। मरोज का ब्लाउज भीग गया है—बाँह के नीचे अर्द्धवृत्ताकार।

मरोज प्रियव्रत के पाम आकर बैठ गयी, "एक बात बनाऊँ लल्लनजी?"

बिजली चमकी। मरोज के गोल ओंठों पर भी बिजली चमकी, मानो। प्रियव्रत अवाक् होकर देखता रहा। मरोज तो इस तरह लाज से गड़ने कभी नहीं देखा प्रियव्रत ने।

मरोज कुछ बोल रही थी, लेकिन राल टपक पड़ी तो चुप हो गयी। फिर पुटुस के नन्हें फूलों को नाखून में खोटकर दाँत से चबाने लगी।

क्षण-भर दोनों मौन रहे ।

“किम सोच में पड़ गयीं सरोजदी ?” प्रियव्रत ने सरोज की देह छूकर मानो जगाया, “सरोजदी, अब चलो, लौटें । पानी बरसेगा ।”

सरोज हँसी, “पानी बरसे ! हँह ! हम रुई नहीं हैं ! लल्लनजी, यह क्या कर रहे हो ? लल्लन...पगला...बचपन की आदत...हँह...ठीक इसी तरह गोदी में मिर रखकर...इसी तरह मेरी छाती से सिर रगड़ने थे तुम...मैंने रामभाई से भी कहा है...हँह...हँह...तुम अभी भी पाँच साल के शिशु हो...लल्लनजी...तुम जानवर हो...जानवर...हँह...हँह...कवि...एम० ए०...सुंदर-सुपुरुष तुम...इतने प्यारे...इतने प्यारे तुम...तुमको हँह...मैं जानवर नहीं बनने दूँगी...मैं ही जानवर हो गयी हूँ...लल्लनजी, मुझे माफ करो...इस कृपा बहन पर दया करो...मुझे लज्जी लता की तरह मत रोदो...!”

प्रियव्रत ने ध्यानमग्ना नारी-मूर्ति को फिर छूकर जगाया, “सरोजदी, तुम किस सोच में पड़ गयीं यहाँ आकर?...चलो, घर चले ।”

सरोज मानो नींद से जगी, “हँह !...नहीं लल्लनजी, यहाँ आकर आदमी कभी-कभी देवता भी हो जाता है ! देवता भी...”

प्रियव्रत को लगा, सरोजदी अचानक सर्वांग-सुंदरी हो गयी है । वह फिर अपनी जगह पर आ बैठा ।

हवा का झोंका आया । मेघ बरसने लगा । दोनों दो चट्टानों पर बैठे भीगते रहे । प्रियव्रत फिर उठा । सरोज के पाम गया । हाथ पकड़कर उठाया, “चलो ।”

दोनों भीगते हुए जंगल पार कर सड़क पर आये । सरोज बोली, “अब मेरा हाथ छोड़ दो, लल्लनजी !...अब मैं कभी हजारीबाग नहीं आऊँगी ।...राम-भाई मुझे नहीं आने देंगे अब ।”

सरोज सड़क पर लड़खड़ायी । प्रियव्रत ने फिर हाथ पकड़ लिया । सरोज कुछ नहीं बोली । फिर दो बार हँह-हँह करके चुप हो गयी ।

हाथ का जस और बाक का सत्त

इस बार तीन साल के बाद गाँव लौटा ।

स्टेशन के पाम, वट्री भगत के पिछवाड़े में खड़े बूढ़े गूलर के पेड़ की दुर्गति देखकर ममझ गया—पिछले कई महीने में इलाके में कोई भीषण शिशु-रोग फैला हुआ है और जगू पंसारी जीवित है ।... गूलर के तने पर खाल नहीं, समझो (गाँव का) अच्छा हाल नहीं । गूलर का दूध और बाकल (वस्कल) उस अनाथ शिशु-रोग की एकमात्र रामबाण दवा है—आज भी ।... जगू पंसारी आज भी चुनौती-भरे मुँह में कहता हो—सिविल सरजंट हो चाहे टैनबनरजी डॉक्टर, इस रोग का नाम ही नहीं जानता कोई । दवा क्या करेगा ?...

गाड़ीवान ने पूछा, "क्यों कुमुमलाल ! जगू पंसारी जिंदा है ?"

कुमुमलाल ने मुर खीचकर एक शब्द में जवाब दिया है, "है-ए-ए-ए !" जिमका अर्थ हुआ—हाँ, किन्नी तरह जी रहा है । होंठों में दबे खैनी-तंबाकू को धूककर उसने अपने वक्तव्य को स्पष्ट किया, "जिंदा तो है, लेकिन समझिए कि मुर्दा होकर जी रहा है ।"

"बीमार है ? क्या हुआ है ?"

कुमुमलाल ने बैलों को एक भट्ठी गाली दी । फिर बोला, "होगा क्या ?"

कुमुमलाल ने मुस्कुराने की चेष्टा की, "पिछले साल मति भरम गयी, ममझिए । इस वृद्धाप में एक 'जवान तड़तड़' पहाड़िन को घर में बैठा लिया । तब से, दवा-दारू और हाट-वाजार सब बंद । दिन-भर आँगन में बैठकर पहाड़िन से लीला... भला कहिए, बूढ़ा आदमी गावेगा कि मेरा मन डोले कि मेरा तन डोले ।"

तीन साल के बाद गाँव लौट रहा हूँ । कुमुमलाल गाड़ीवान इन तीन वर्षों में मूक से वाचाल हो गया है—यह तो स्टेशन पर ही समझ गया था । अब समझा कि कुमुमलाल वाचाल ही नहीं, रमदार गप्पी भी हो गया है । मुझे अचरज हुआ तो कुमुमलाल के उन्हाह में वृद्धि हुई, जगू-प्रसंग फिर शुरू हुआ, "बेटे से लड़ाई-

झगड़ा, मार-फसाद, पर-पंचायत, बाँट-बखरा...रोज बखेड़ा ! प्राजिज होकर बेटा रसिकलाल भिन्न हो गया। अब तो, दवा-दारू, हाट-बाजार, सब-कुछ रसिकलाल ही करता है। सो हाथ में जस है रसिकलाल के। बाप से बीस निकलेगा—उन्नीस नहीं।... इस बार खूब कमाया है। रुपया पीटकर ढेर कर दिया। पक्का मकान बनवा रहा है।”

“हाथ से निकल चुक कुसुमलाल के बेटे को रसिकलाल ने ही यमदूतों के हाथ में छुड़ाया है, कार्तिक महीने में। वह रसिकलाल को धन्वन्तरी का अवतार मानता है। माने। मेरी भी जान जगू पंसारी की बसारी की बचायी हुई है। और मैं भी मानता हूँ कि जगू की कई जड़ी-बूटियों में कई संजीवनी बूटी भी हैं। संजीवनी बूटी न भी हो, उसी जाति की (गुप की) कोई बूटी उसके पास जरूर है। लेकिन, कुसुमलाल तुला हुआ है, बेटे को ‘बीस’ और बाप को ‘अट्टारह’ साबित करने के लिए। जगू पंसारी की निंदावली शुरू की, “सुनते हैं कि जवान बनने की सबसे कीमती जड़ी—जितनी उसकी मोली में थी...माने, दस बूटों के खुराक...एक ही साध खा गया। जाड़े की रात में भी तीन बार नहाना शुरू किया जगू बूढ़े ने !...जी नहीं, पहले ऐसा नहीं था। लड़के का गौना हुआ, नयी दुलहिन घर में आयी। इसके बाद से ही उसको न जाने क्या हो गया। दूसरे ही महीने में न जाने कहाँ से एक जवान-तड़तड़...”

कुसुमलाल जगू की पहाड़िन स्त्री के बारे में जब बोलता है, ‘जवान-तड़तड़’ विशेषण लगाना नहीं भूलता। ‘रसिकलाल की नयी दुसहन भी जवान है। सिगार-पटार भी करती है। करना ही चाहिए, लेकिन...”

“लेकिन क्या ?”

“लेकिन इस बूढ़े ने तो कमाल कर दिया। रसिकलाल को बहुरिया एक दिन जालीदार कुर्ता पहनकर नाच देखने गयी—बायस्कोप का। दूसरे ही दिन जगू बूढ़े ने अपनी जवान पहाड़िन को ‘इसपिरिगवाला मेमकाट कुर्ता’ पहनाकर घर से निकाला कि देखनेवालों की आँखें...”

कुसुमलाल जिस बात को ‘हाइलाइट’ करना चाहता है, उसे अधूरी छोड़ देता है। मुझे पूछना ही पड़ा, “क्यों, क्या हुआ ? देखनेवालों की आँखें फूटी-उठी तो नहीं ?”

कुसुमलाल ने मुझे कनखियों से पूछा : उसने चुप होने के पहले एक पंक्ति की मोटी निंदा की, “अब न उसके हाथ में जस है और न बाक में सत्त। सब पहाड़िन ने खींच लिया।”

हाथ का जस, बाक का सत्त !

जगू के ‘जस’ और ‘सत्त’ की सैकड़ों कहानियाँ प्रचलित हैं। तीस-चालीस वर्षों से जगू के ‘जस’ और ‘सत्त’ के बारे में कहानियाँ सुनी जाती है। संभव है,

अधिकांश कहानियाँ खुद जगू की गढ़ी हुई हों। छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी अचरज-भरी कहानियाँ...गोदान के बाद जगू आया और रोगी की नाड़ी पर हाथ रखकर बोला, कौन कहता है कि दम टूट गया? बस, एक पुड़िया दवा दिया कि बूढ़ा उठकर बैठ गया।...कसबा-शहर की मशहूर जमींदारिन को बुढ़ापे में सभी दाँत फिर से उग आये। भुने हुए चने की शौकीन बूढ़ी जमींदारिन, अस्सी साल की उम्र में पत्थर के दाँत में भिस्मी लगाती है।

चालीस साल पहले की बात !

जब दूर देहातों में—मौ रोग की कोई एक पेटेंट दवा के सिवा कोई अंग्रेजी दवा नहीं पहुँची थी। इलाके में पीलिया रोग जोर-शोर से फैला था। औकाद-बालों ने शहर से बड़े डॉक्टरों को बुलाकर देखा—इस रोग की कोई दवा डॉक्टरों के पास नहीं।...कोई अंग्रेजी दवा बनी ही नहीं है।

...सारे इलाके में एक पीली प्रेतनी नाच रही थी। रोज दो-तीन आदमी टूटते। बच्चे आध दर्जन से डेढ़ दर्जन तक। खेलता-कूदता, भोला-भाला बालक हठात्त बुखार में चीख उठता। फिर सारी दुनिया पीली...हल्दी की ढेरी...रक्तहीन देह...हल्दी में रंगी हुई लाशें !! दिन-रात गाँव के आसपास चील-काग, कुत्ते-सियार लड़ते रहते।

ऐसे ही दुर्दिन में गाँव की गलियों में एक अजीब आवाज में किमी ने हाँक लगायी — ति-वा-आ-आ-री-ई-ई ... बँद-बँद-बँद-अ-अ-द-वा-आ-आ-ई-ई-लेजा, लेजा !!

लोगों ने झाँककर देखा—पीली पगड़ी बाँधकर आगे-आगे तिवाँरी अर्थात् वैद्य और कंधे पर बहंगी ढोता-हुआ उमका चाकर। हाँक चाकर ही लगाता था। औरतों से रोगों के बारे में पूछताछ और दर-दस्तूर भी बही करता।

उसी दिन सारे मौजा में कानों-कान फैल गयी बात—पीलिया कहो या पियरी चाहे हल्दिया पिशाच—चुटकी बजाकर इस रोग को उड़ा देनेवाला बँद आ गया है।

नवटोली गाँव में तिवारी बँद ने अपना डेरा डाला।

उमका चाकर जगू, दिन-भर बैठकर जड़ी-बूटी कूटता और रह-रहकर रोगियों की भीड़ पर अभयवाणी की वर्षा करता, “पीलिया कहो या पियरी या हल्दिया पिशाच...अंग्रेज लोग क्या बनावेंगे इसकी दवा। पीलिया का नाम मुनते ही उनके चेहरे पीले पड़ जाते हैं...बँदजी को हिमालय पर्वत से लौटते हुए साधू ने जड़ी बता दी थी। इसलिए, इस रोग की दवा का पैसा नहीं लेते। सिर्फ प्रनामी लेते हैं, धर्मशाला के लिए। गुरु का वचन ! यथाशक्ति तथा भक्ति !!

शक्ति के अनुसार भक्ति दिखलायी सिमराहा के माहूकार ने। एकलौते बेटे को पीलिया के पंजे से छुड़ाने के लिए मोहन साहूकार ने ‘प्रनामी’ में पाँच सौ

रुपये की धैली घमा दी। नवटोली गाँव का नाम ही बदल गया। गाँव का नाम मशहूर हुआ हल्दिया। अर्थात् जहाँ हल्दिया यानी पियरी जैसे भीषण रोग को चुटकी बजाकर उड़ा देनेवाला बैद आया है। हल्दिया बैद ! हल्दिया गाँव !

...कि पंद्रहवें दिन तिवारी बैद को सूरज की रोगनी पीली दिखलायी पड़ी, दोपहर की धूप भी पीली। तिवारी बैद ने समझ लिया—पीली प्रेतनी ही है। बीसवें दिन अपने चतुर चाकर जग्गू की सेवा और दवा के बावजूद पियराकर गिर पड़े बैदजी। ... लाल टेसू देह बैद की अमलतास के फूलों के ढेर जैसी...

आसपास के बीसो गाँव में मन्नाटा छा गया—‘अब ? अब क्या होगा भगवान ?’

‘घबराने की बात नहीं।’ बैद के चाकर ने कहा, ‘आठ साल की उम्र से ही बैद की बहंगी बेकार नहीं ढोयी है। पीलिया कहो या पियरी, चाहे जोड़िस...’।

हजारों भयभीत प्राण फिर मुस्कराये, ‘मच ?...’ हाँ, बैद का चाकर बैद से बीस ही है, उन्नीस नहीं। चुटकी बजाने की भी जरूरत नहीं। उंगली उठाकर रोगी की ओर इशारा करता है, रोग छू-मतर...’।

अपने सद्यःस्वर्गीय गुरु के प्रति भक्ति-भरी वाणी बोलने के बाद बैद का चाकर जग्गू अपनी आवाज को तनिक मद्धिम करके कहता, ‘भाई ! नीयत ही सब-कुछ है। गुरु का हुकुम या कि धरमशाले के खाते में एक सौ रुपया पूरते ही फौरन कुटिया के पते पर मनिआडार कर देना—सीधे हरदुआर। निन्नानबे रुपये तक अपने पास रख सकते हो।...सो गफलत कहिये या नीयत चाहे भाबी प्रालब्ध...पीलिया कहिये या भगवान की मार !’

बैद का चाकर जग्गू ! चाकर नहीं, अब सोलह आना बैद !!

गुरु से भी तेज, जग्गू बैद ! साल-भर में, सारे इलाके से पीलिया को जड़-मूल से उखाड़कर फेंका जग्गू ने। उसने प्रतिज्ञा की थी—‘या तो मैं ही यहाँ जड़ जमाऊँगा या यह पापिन पीलिया ही।’ जरूर मनीआर्डर ठीक समय पर—निन्नानबे के बाद सौ होते ही—भेजता होगा, कुटिया के पते पर—हरदुआर !

पीलिया समाप्त होने ही जग्गू ने ऐलान किया, ‘सिर्फ पीलिया ही नहीं, सभी असाध्य रोगों की दवा चला सकता हूँ।’ लोगों ने देखा, जग्गू सचमुच अपने गुरु से भी ज्यादा सच्चा है। जो कहता है, कर दिखाता है।...बुखार में खट्टा दही और भात, पथ्य खिलाता है। इमली की चटनी भी।

दवा और जड़ी-बूटी के अलावा जग्गू की छोटी-मोटी कहानियों का प्रभाव रोगियों पर अधिक पड़ता था शायद। दवा कूटते-छोटते रोगी की नाड़ी देखते समय भी उसकी कहानी बद नहीं होती। रोग-जाँच करते वक्त वह अपनी कहानी की मोटी-मोटी बातें ही सुनाता। जाँच के बाद कोई चमत्कारपूर्ण कथा।

यथा : तंबाकू के मशहूर व्यापारी को डेढ़ लाख रुपये का घाटा लगा। उसने

सोचा कि इस जान को अब देह के पिजड़े में बंद करके रखना बेकार है। दोनों पैर में 'महिषा-दादा'। महिषा-दादा कहो या इकजिमा, बात एक ही है। इसी इकजिमा के कारण डेढ़ लाख का घ.टा। और इकजिमा को अंग्रेज लोग असाध्य मानते हैं। किसी ने मेरा नाम बता दिया। '...जाकर देखिये, परसों से कीर्तन करवाने का जोगाड़ लगा रहा है। मिठाई बँटेगी। सिर्फ चार दिनों में साला इकजिमा, भूसी की तरह देह से झड़ गया। जाकर देख सकते हैं।'...

ऐसी कहानियों के प्रसंग में जग्गू पटने के प्रसिद्ध डॉक्टर टी० एन० बनर्जी साहेब का नाम दो-तीन बार अवश्य लेता—एक बार की बात है...

पुरानी खाँसी से परीशान बूढ़ी की कुकुर-खाँसी, इस कहानी की प्रथम पक्ति को झुनकर ही रुक जाती। जग्गू अपने सफरी हुक़े पर चिलम रखकर कुछ देर गुड़गुड़ाता रहता। फिर—एक बार की बात है। परसा राज के मनिजर के दामाद का पेशाब अटक गया। '...बंदजी से चार महीने की छूट्टी लेकर मैं भी परसा गया था। परसा में मेरा ससुराल है।'...मनिजर साहेब के दामाद के पेशाब अटकने की बात तुरत गजट में छापी हो गयी। मनिजर की नौकरानी रिश्ते में मेरी साली लगती थी। मैंने मनिजर की नौकरानी से कहा कि गजट-छापी में भला पेशाब होगा? जाओ, कुत्थी का पानी पिलाओ। नौकरानी बोली मनिजरानी से, मनिजरानी बोली जाकर डॉक्टर से तो, 'सिविल सरजट' बोला कि नहीं, जब तक पटने से टैनबनर्जी साहेब डॉक्टर नहीं आते है, दवा नया एक बूंद पानी भी नहीं चलेगा किसी का। '...लो भाई, आने दो टैनबनर्जी साहेब को। हम भी दर्शन कर लेंगे।'...डॉक्टर है टैनबनर्जी! सो डॉक्टर पर एक डॉक्टर, समझिए कि होल इंडिया से भी बाहर जिनका 'जस' फैला हुआ है। ऐसे डॉक्टर का दर्शन भी दुर्लभ है। '...सो, हवाई जहाज गिनगिनाता हुआ उतरा परसा पोला-मैदान में। हवाई जहाज से उतरे टैनबनर्जी साहेब।'...हरदम हँसते रहते हैं टैनबनर्जी डॉक्टर। क्या डॉक्टर है बाबा। मोटर से हवेली में आये। रोगी की नाड़ी पर हाथ रख दिया। पेट को टटोलकर देखा और चिल्लाये—कुलुथ! जल्दी से कुलुथ का पानी पिलाओ। तुरत...

सो, मनिजरानी तो पहले से ही पानी में कुत्थी डालकर बैठो थी। हाँ, मनिजरानी इसके पहले मुससे, पच्चीस साल पुराना मिरदद मड़वा चुकी थी। तुरत चम्मच से कुत्थी का पानी पिलाया।...

जग्गू की ऐसी कहानियाँ प्रायः 'डबल क्लाइमेक्म' वाली होती।

'...सो, पहला चम्मच ही पिया कि टोटा जो फूटा—तो फिर बिछावन, चादर, गजट-कागज-अखबार और कपड़ा-लत्ता सब ज-त्ता-म-य!! लगा, कटिहार-टीशन की पानी की कलटेरी खुल गयी हि-हि-हि-हि!!

खाँसी से जरजर पोपली बूढ़ी के ओठों पर मलज्ज मुस्कुराहट खिल पड़ती।

हँसी की फुलझड़ी छूटती जवान लड़कियों के कंठ में। बच्चे हँसते-हँसते वेहाल!!
बूढ़ी की खाँसी से परीशान, परिवार के लोग उम रात को गहरी नींद से सोते।

रोग को छुड़ाने के लिए, रोगियों के दुःख-दर्द को दूर करने के लिए जगू अपने अनेक गुणों का प्रयोग करता—आवश्यकतानुसार। टोटका, तत्र-मंत्र, झाड़-फूंक, मुष्टियोग। किंतु, प्रत्येक गुण के प्रयोग के पूर्व तत्संबंधी कम-से-कम आध दजंन कहानियाँ वह जरूर सुना डालता!

कहानियाँ, रोग-परीक्षा, निदान, टोटके और मुष्टियोग की दो श्रेणियाँ थी। एक भद्र और दूसरी अभद्र। '...अभद्र रोगों में भद्र टोटके से क्या हो? कहानियाँ वह रुचि को परखकर ही सुनाया करता। यो, प्रत्येक कहानी में 'ग्राम्य-रस' कुछ ज्यादा ही डालता था वह।

कमर-दर्द से पीड़ित रोगी रविवार की पहली भोर में उठकर किसी ताड़ के पेड़ की अँकवार में भरकर आर्लिंगन-आदर करे। दर्द तुरत फुर-र-र! '...शर्त है, कोई देखे नहीं, कोई टोके नहीं।

गलफुल्ली (मसम!) से ग्रसित व्यक्ति माँहूड के पेड़ के पास बैठकर 'दियाघरी' से पहले, पुक्का फाड़कर रोये। बँलून जैसे गाल तुरत 'चुपस' कर बटुआ जैसा हो जायेगा।

कुछ टोटके कान में ही फुसफुसाकर बताये जा सकते हैं। '...अभद्र रोग का कोई अभद्र टोटका!

पंद्रह साल पहले, स्टेशन पर मलेरिया सेटर खुला।

सरकारी डॉक्टर-कम्पाउंडरों के अलावा और भी कई डाक्टर (हेमो और एलो) आकर गाँव में बसे। फिर, प्रतिभावान 'अच्छर-कट्टु' लड़क भी थे कई, जो मिडिल पास-फेल करने के बाद घर बैठे डाक्टरों की पास कर—लाठी के हाथ डाक्टरों चला रहे थे। '...क्वैक!

जगू 'क्वैक' का अर्थ किसी जानकार में पूछकर जान चुका था।

इसलिए, जब सरकारी डॉक्टर और कम्पाउंडरों ने आपस में बातें करते समय जगू को 'क्वैक' कहा तो उसने तुरत विरोध किया था—नहीं हुआ! गुरु की दया से जो कुछ मेरे पास है, वह गुरुमुख से ही मिला है—क्वैक नहीं कहिए—डाक्टर बाबू!

इतने डॉक्टर और कम्पाउंडरों के आगमन से जगू की 'प्रेक्टिस' में कोई अंतर नहीं आया। लोगों ने देखा, डॉक्टरों की घरवालियाँ भी अपने बच्चों की अथवा अपनी दवा जगू से ही करवाती है।

हाट के दिन, हाट के चौरस्ते पर चट्टी लगाकर, कपड़े की सैकड़ों छोटी-बड़ी रंगी-बदरंगी झोलियों को वह सजाता—प्रतीक्षा करते हुए लोग उसकी चट्टी के चारों ओर जमा हो जाते। देखते-देखते भीड़ बढ़ जाती। ‘‘‘‘‘किंतु, हाट के भीड़-भड़के में भी नाड़ी देखने में जग्गू पंसारी कभी नहीं गड़बड़ाया।

हाट में तुरत जाँच, तुरत नुस्खा !

हाट में उसकी कहानी-कला तो नहीं, शब्द-प्रयोग की एक अभिनव चातुरी काम करती, उसकी। ‘‘‘

कोई हाथ दिखला रहा है। दूसरा पथ्य के बारे में पूछ रहा है। तीसरा घूँघट के अंदर से ही नकिया-नकियाकर धारा-प्रवाह कुछ सुनाती जा रही है। जग्गू सबकी सुन रहा है—गुन रहा है। कभी नहीं गड़बड़ाया है। सभी को सही दवा और वाजिब सलाह देता जा रहा है—पेट ? गंदा ? एँ ? ठीक है न ? भूख ? भूख मंदा ? है न ? मुँह कड़वा और पेशाब कड़क ? है न ? ‘‘‘ ? काढ़ा-कुटकी-चिरंता घोर में। समझे ? और, जीरा, कासा नून, बुकनी दही-बोल में ‘‘‘चार आने की कुटकी-चिरंता। बढ़ाइये हाथ ! ‘‘‘

‘‘‘बहिनजी ! हाँ—दिन-रात माया भारी ? है न ? हर पहीने बीमारी ! एँ ? है न ? आँख के आगे उड़े जुगनू—कान के पास हमेशा घुनघुन ? है न ? ‘‘‘अशोक के बाकल का काढ़ा, बकरी का दूध गाढ़ा ‘‘‘यह तुलिया किसका है भाई—लीजिए नीला पोषा—अदरक के साथ काला मोषा ! पुराना शहद, काली गाय का गोत !!

गाँव पहुँचकर देखा, कुसुमलाल ही नहीं, जग्गू पंसारी की निषा करते समय हर आदमी रस-भरी बातें बोलने लगता है। हाथ के ‘जस’ और बाक के ‘सत’ को लोगों ने मानो अपनी आँखों से देखा हो—एक जोड़ी चिड़िया की तरह फुर्र में उड़ गयी : ‘‘‘अब क्या है जग्गू के पास ?

सबसे अचरज की बात ! रसिकलाल ही सारे इलाके के रस-भरी कहानियाँ—अपने बाप की—सुनाता फिरता है—-रोज नयी कहानी !

रसिकलाल को देखकर मैं दंग रह गया। वह अपने को डॉक्टर रसिकलाल कहना-सुनना पसंद करता है। पेटेंट दवाओं की एजेंसी उसने ली है। साइनबोर्ड पर लिखा हुआ है—‘हजारों रोग की एक दवा ‘रामबिंदु’—डॉक्टर रसिकलाल, मोकाम हल्दिया के पास भी मिलता है।’

कहानियाँ रसिकलाल भी सुनाता है। किंतु, उसकी कहानी एकदम आधुनिक होती है। अंग्रेजी शब्दों से वह अपनी कहानी को बीच-बीच में बधायता रहता है—स्टेशनमास्टर माहब की बड़ी लड़की रात में सपने में खराब ‘ड्रीम’ देखकर डर जाती। ‘ड्रीम’ देखती—स्टेशन का ‘सिगल’ कभी ‘डीन’ और कभी ‘अप’ हो जाता है। मूखकर काँटा हो गयी थी। स्टेशनमास्टर ने नहीं, बताया स्टेशन-

मास्टर की घरवाली ने। मो, एक ऐमा टोटका बता दिया कि फिर काहे को मपने में खराब-खराब ड्रीम देखेगी और काहे को साला सिगल फिर अप और डीन होगा।

कहानी सुननेवालों को जब और भी कुछ सुनना होता तो कोई 'लेकिन युक्त बात' में उसको उकसा देते—लेकिन, जगू तो कहता है कि रसिक ठोढ़ा-साँप का मतर भी नहीं जानता। झूठ-मूठ लोगों को ठगता फिरता है।

रसिकलाल तब बार-बार सिगरेट सुलगाता और बाँटता है। घुआँ फेकता हुआ अपने बाप को एक भट्ठी गाली देता है। फिर एक अश्लील कहानी अपने बाप को शुरू कर देता है—कल रात की बात क्या बतावे? ओमारे पर उलंग होकर...

सभी कीर्ति-कथाओं को सुनने के बाद ऐमा लगा कि जगू अब पूरा पशु हो गया है। गाँववालों की बातों में यह भी मानूम हुआ कि कोई ऐसी व्यवस्था हो रही है—गुप्त रूप में—कि जगू को अपनी झोली-झडी लेकर इस गाँव से भागना पड़ेगा अब। ... घिना दिया इस बूढ़े ने?

चालीम माल पहले आकर जड जमानेवाला जगू कहाँ जायेगा? अपना गाँव? जब इकलौता बेटा ही अपना नहीं हुआ तो गाँववाले तो उसे पहचानेंगे भी नहीं। चालीम माल पहले तिम गाँव को छोड़कर आया—वहाँ अब क्या धरा होगा?

मैं जगू में मिलना चाहता था। बच्चों के लिए एक बोलत 'हींग पाचक' बनवाकर शहर ले जाना है।

जगू की झोपड़ी के पाम ही उमके लडके की हवेली बन रही है। रसिकलाल ने नमस्कार करके स्वागत किया, "आइए।"

किंतु, मैंने जानबूझकर उसमें पूछा, "तुम्हारे बाबूजी कहाँ हैं? मुझे जगू बंद में काम है।"

रसिकलाल अप्रतिभ हुआ। उमने झोपड़ी की ओर उंगली उठाकर कहा, "जाइए, अग्रेजी बायस्कोप का खेला हो रहा होगा। देखिए..."

रसिकलाल अपनी बात पर आप ही हँसा।

जगू की झोपड़ी मेरी जानी-पहचानी थी। दरवाजे पर ऐमा सन्नाटा कभी नहीं देखा। जहाँ हमेशा मेला लगा रहता था—वहाँ...??

जगू ने मेरी खामी सुनकर मुझे पहचाना।

दरवाज पर पहुँचकर मैंने पुकारा, "लाल बाबू है क्या?" और अदर में जवाब मिला, "आइए, आइए। अदर ही आ जाइए।"

जगू की पहाड़िन पर पहली नजर पड़ी—अदर आँगन में पैर रखते ही। जगू दहलीज में खाट पर बंठा हुआ था। पहाड़िन को देखकर ही समझ गया—कुसुमलाल 'तड़तड़-जवान' क्यों कहता है।

जगू ने कहानी शुरू की :

“देखा, पुगना कथाकार मरा नहीं है। किस तरह उसके पुत्र ने नादानी की, कैसे जगू ने माफ किया ! फिर, गौना के बाद किस तरह बुरा व्यवहार करने लगे दोनों। यहाँ तक कि इस बुढ़ीती में कलंक भी लगा दिया।—मेरे गुरु ने कहा था—‘बेटा हो या स्त्री, जब तक ‘गुण’ रखने के काबिल नहीं हो जायें, उनके हाथों में कुछ नहीं देना।’ सच कहा था गुरु ने।” सो, अभी दिया ही कहाँ या कुछ मैंने। कहिए भला, शीशी की दवा चलती है। ऊपर है भगवान ! सब देखते है। जो थोड़ा-बहुत हाथ में है वह भी नहीं रहेगा।”

मैंने टोक दिया, “लेकिन, दवा-दारू और हाट-बाजार बद करके इस तरह दिन-रात आँगन में बैठे रहने से तो ‘गुण’ आपके हाथ में भी नहीं रहेगा। लोग तरह-तरह की बात कर रहे है।”

जगू के चेहरे पर एक चमक फैल गयी। उसके नथुने फड़के।

पहाड़िन खरल में कोई दवा कूट रही थी—ओमारे पर। वह शुरू से ही भाव-जून्य दृष्टि से मेरी ओर देख लेती थी। इस बार उमने जगू की ओर देखा। जगू चुप था। पहाड़िन का दवा कूटना रुक गया। वह उठी और जगू के पास आकर पहाड़िन में ही बोली, “इस भले आदमी को क्या लेना है ? नहीं लेना-देना है कुछ... घर जाने को कहिए। यहाँ क्या है ? मेला है ?”

पहाड़िन अब जगू की गजी खोपड़ी में तेल लगाने लगी।

जगू बोला, “गाँववालों की बात पर आपने भी परतीत कर ली ?” आप बहुत दिनों के बाद गाँव आये है ! तो सुनिये !

“मेरे हाथ का गुण मेरे मरने के बाद भी मेरे हाथ में रहेगा।” और उसके बाद भी मेरे खानदान में—मेरी ही औलाद के हाथ में गुण रहेगा। मेरे बेटे का नाम होल इडिया से बाहर...”

मैंने कहा, “लेकिन रसिकलाल तो...”

इस बार जगू तड़प उठा, “उसका नाम मत लीजिए बाबू साहेब ! वह मेरा बेटा नहीं। सचमुच मरा बेटा नहीं।”

“तब आपने जो कहा कि...”

“क्या कहा ?”

जगू आवश में आ गया, “रसिकलालवा पहले अपनी कागवध्या स्त्री का तो इलाज कर ! बाबू साहेब, मैं धरती पर तीन लकीर खींचकर कहना हूँ कि नाक रगड़कर धरती में मर जायेगा... वह, उसकी बीबी के कोख में चूहा भी नहीं निकलेगा।”

“देखिए, वह आखिर लड़का ही है, आपका ?”

“फिर वही बात ? वह मेरा बेटा नहीं। मेरा बेटा तो...”

जगू ने तेल लगाती हुई पहाड़िन का आँचल उठाकर, हाथ से पेट छूकर

दिखलाते हुए कहा, "मेरा बेटा यहाँ है। यहाँ..."।"

मैं गुँगा हो गया, अचानक। पहाड़िन पूर्ववत् जगू के सिर में तेल लगाती रही। उसके चेहरे पर किसी तरह का परिवर्तन नहीं। न लजाई, न गुस्साई।

"लोग कहते हैं कि जगू के हाथ में अब 'जस' नहीं। देखेंगे, लोग देखेंगे..." मेरी इस कांछी को फारबिसगंज मिल के बदमाश मजदूरों ने लगातार चार साल तक अपने कच्चे में रखा। तरह-तरह की अंग्रेजी दवा खिलाकर इसकी बच्चादानी को बेकार बना दिया था। "...मेरे पाम जब आयी तो, पहले मैंने सोचा कि रशेलिन की तरह रहेगी ! लेकिन, बाबू साहेब—यह औरत, औरत नहीं—साक्षात् सती है। सो, जब रसिकलाल ने अपनी नीयत बिगाड़ी—मैंने सोचा, अब नहीं..."।"

मैंने लक्ष्य किया, जगू का स्वास्थ्य पहले से अच्छा है।

"बाबू साहेब, पाँच महीने तक सिर्फ इसका कोख 'मुद्द' किया मैंने। आप तो जानते ही हैं कि मैं सब रोगों की दवा चलाता था लेकिन कोख और कोखदानी की गड़बड़ीवाले केस को साफ जवाब दे देता था। क्योंकि गुरु का कहना था कि बच्चा देना विधाता के हाथ में है। जो बंद विधाता के इस काम में टाँग अड़ाता है—विधाता उसमें एक दिन पूछते हैं। सो, जब परेम हो गया तो फिर क्या जात, क्या पात। ...बाबू साहेब, मालों ने इसकी दूह-दूहकर देह ढीला कर दिया था। सो कोख मुद्द करने के बाद इसकी ढबरढीली देह का इलाज किया। ...बोलिये तो कांछी की क्या उमर होगी ! देह का गढ़न ऐसी देख रहे हैं न, सब दवा खाने के बाद हुआ है..."।"

जगू रुका। मैं घबराया। पेट दिखलाने के बाद अब कहीं..."?

मैं बोला, "हींग पाचक तैयार है?"

"बाबू साहेब, पाचक-वाचक नहीं। आजकल मैं वह सब मामूली दवा बनाने में बेकार समय बर्बाद नहीं करता। ...सो, जब कांछी का कोख मुद्द हुआ—एक-दोन पियोर हो गया, तब मैंने गुरु का नाम लेकर कांछी को घर में बैठा लिया। सिर्फ हाथ के 'जस' और बाक के 'सत्त' को अपने खानदान में रखने के लिए ! ...आप तो जानते ही हैं कि बीजू आम से बढ़कर होता कलम आम ! मगर, कलम लगाया बहुत कठिन काम है। ..."

मैं उत्तर चाहता था। क्योंकि, जगू की पहाड़िन उसकी खल्वाट खोपड़ी पर तेल मालिश करने के बाद—कमर की ओर हाथ बढ़ा रही थी। ...झोलंगी-खटिया रह-रहकर चरमरा उठती थी और पहाड़िन हर बार 'अइयो' कहकर जगू से कहती, "पुग्यो?"

"सो, बाबू साहेब ! जब मैंने सबकुछ मुद्द करके कांछी को घर में बैठा लिया, तब ...तब उम हारामजादे ने क्या किया, जानते हैं ? ...मैं फारबिसगंज गया था और माले ने फिर 'अमुद्द' कर दिया। ...जो हाँ, रसिकलाल ने। मैं घर आया

तो कांछी बोली—फिर असुद्ध....!”

अब मैं उठ खड़ा हुआ ।...मैं सिर से पैर तक असुद्ध होता जा रहा था ।

“बाबू साहेब, सुनते जाइये ।...कांछी के पेट में जो बच्चा है, वह आपके गाँव का, समाज का, होल इंडिया का नाम रखेगा ।...इसलिए, कांछी ने जिस दिन सुबह-सुबह उठकर कैं किया—उसी दिन से मैं दिन-रात घर में रहता हूँ । कहीं नहीं जाता । कैसे जाऊँ ? छै महीने तक ‘बबुआ’ पर किसी को छाया नहीं पड़ने दूंगा । अभी तो दो महीने का ही है । क्यों कांछी, आज सिमुलाकद खायी है, तो ? तुमको कुछ खयाल नहीं कि बेचारा बबुआ....?”

जग्गू ने फिर कांछी के पेट पर पड़ा हुआ आँचल उठाया, “देखते है बाबू साहेब, इसको कहते हैं हाथ का जस ! रसिकललबा की बीवी कहाँ पायेगी ?”

मैं आँगन से बाहर निकल आया ।

तँबे एकला चलो रे

...बात शुरू होगी उसके जन्म से ही, सात साल पहले से ।

यद्यपि उसने पुरुष होकर एक पर्व के दिन जन्म लिया था...पर, उसके भूमिष्ठ होने के बाद उसे देखकर लोगों के मुँह विकृत हुए, नाक संकुचित हुई, अमंगल-वचन निकले—सभी के विकृत मुँह से ।

उसका जन्म भी जन्माष्टमी की रात में हुआ था, इसलिए मैंने परिवार के लोगों को सुनाकर बार-बार कहा—इसका नाम श्रीकृष्ण रख दो ।

लोगों को लगा, मैं जले पर नून छिड़क रहा हूँ । गँवार पत्नी मुँह बिदकाकर बोली, “ऐ-हे ! ई मुआ...करकुटे-काले का नाम होगा किसन महाराज ?”

सभी हँसे । मेरा प्रस्तावित नाम हँसी में उड़ गया । पत्नी का दिया फूहड़ और अपभ्रंश नाम चल गया—किसन महाराज !

किसन महाराज के जन्म से मैं—परिवार के अन्य सदस्यों की तरह—निराश नहीं हुआ था । घोर श्यामवर्ण, घुंघराले बालों वाला शिशु । कितना प्यारा !...
च:-च: !!

और, दूसरी ओर उसकी छठी के पहले से ही लोगों ने भविष्यवाणी शुरू कर दी—भादों में जन्म हुआ है । कहीं आसिन में कसके झड़ी-बदरी लदी तो किसन जी दो दिन में ही द्वारिकापूरी सिघारेंगे, नंगे पाँव ।...छि:-छि: ! किसी बच्चे के बारे में, किसी भी शिशु के संबंध में ऐसी बातें ‘राक्षसगण’ वाला आदमी ही कर सकता है ।

छठी की रात में परिवार वालों ने अपने ‘बथान’ के इतिहास पर आँसू बहाया, माँ षष्ठी से प्रार्थना की, परिवार की बड़ी-बूढ़ी ने—‘जै मैया छठी ! मानुस को दो बेटा, पसु को बेटे ।...ले जा मैया पाड़ा, दे जा मैया पाड़ा ।...ले जा; माने उठा लो, बलिदान लो । बथान में बेटा-बच्चा कभी मत दो !

आज हमारे परिवार के बथान पर मात्र दो भैंसें हैं । कोसी-कछार पर बसने-वाले बारहो-बरन के किसान, जमींदार भैंस पालते हैं । जिसके बथान पर तीन

कौड़ी भैंसे न हों, उमे दगिन्द्र ममझा जाता था—आज से दस वर्ष पूर्व तक। अब इतनी भैंसे वे ही पोमते हैं जिनका दूध-घी के सिवा और कोई कारोबार नहीं। किंतु बथान छोटा हो या बड़ा, ग्वाले का हो अथवा किसान का, पाड़े का जन्म सभी अवस्था में मनहूस माना जाता है।

मुझे इस बात की विशेष प्रसन्नता थी कि उसका जन्म मेरी ही दुःख-भरी पुकार पर हुआ था—‘‘इसकी खुराक का अधिकांश क्षीर मुझे ही मिलेगा; दही, जिसकी दुधिन में इस दुर्बल शरीर के लिए बहुत बड़ी आवश्यकता थी। दूध-दही हमारे गाँव में भी दुर्लभ पदार्थ हो चुका है और बैदजी ने केने की रोटी के माथ सिर्फ दही खाने को कहा है। दही नहीं मिले, मट्ठा में भी काम चल सकता है। किंतु खबरदार ! न एक ‘रावा’ ममक का, न एक दाना चीनी का’’।

‘‘मुझे ऐसा लगा था, मेरे कष्ट को दूर करने के लिये ही उसने ठीक समय जन्म ग्रहण किया है। अब इस माटी की काया में—जो सभी तीर्थों से बढ़कर है—फिर से जान आयेगी। अब धर्म बच जायेगा ! आसिन की झड़ी-बदरी अथवा माँ पछी इसे उठा भी ले, मेरे ‘दधि-कदलीकल्प’ में कोई बाधा नहीं पड़ेगी।

‘‘ऊँयें ! किसन महाराज बथान पर बोले।

गाँव में उन दिनों अकेला मैं ही ऐसा मर्द-पुरुष था जो दिन-भर अपनी खाट पर लेटा टुकुर-टुकुर देखता रहता। भदई-फसल कटनी के दिन थे, लोग खेतों में ही रहते थे दिन-भर। उधर, बथान पर किसन महाराज को छोड़कर दूसरा वेटा-बच्चा नहीं। उसकी माँ-मौसी भी खेतों में ही रहती।

किसन महाराज को कोए तंग करते, मुझे मखियाँ। ‘‘बेचारा शुभ दिन में घरती पर आया और जन्म से ही अपमान और लांछना सह रहा है ! पाड़ी होती तो गले में कौड़ियों की माला के साथ एक टुनटुनी भी पड़ी होती। कोई आँख के कीचड़ पोंछ जाती, हवेली से बाहर निकलकर। कोई बड़ी जतन से दूध में जड़ी घिसकर पिलाती—चुचकारकर। घर की बड़ी-बूढ़ी सदा तीर-धनुष लेकर बथान को अगोरती। उड़ने वाले हर परेबा-पंछी को कौआ समझकर हाँकती—हा-स्-स !

‘‘ऊँ-यें-ऐं-ऐं ! किसन महाराज ने दुखी होकर पुकारा।

याद है, खड़ाऊँ पहनकर कीचड़-गोबर की गिलगिली ढेरी को पार करके मैं बथान पर गया। अचरज से वह मेरी ओर ताकता रह गया था—कुछ देर तक मैंने पूछा था—क्या है महाराज ? कोए तंग कर रहे हैं ?

वह उठ खड़ा हुआ। मैंने उसके घुंघराले बालों को सहलाना शुरू किया। देखा, कई कुकुरमाछियों ने कान के पास अड़ा बना लिया है। एक जोक न जाने कब से खून पीकर गोल हो गयी थी।

उसे सूखी जमीन पर ले आया। उसका डगमग करके चलना—‘‘ठुभकि-

ठुमकि प्रभु चलहि पराई !

धाव पर चूना लगा दिया। आँख के कीचड़ को मिगुनी के पत्ते से पोंछा। कीचड़ ही नहीं, उमकी आँखों से आँसू भी चूँ रहे थे।

अपने चौपाल के पास, ठीक अपनी खाट के सामने खूँटे से उसे बाँध दिया। स्थान-परिवर्तन से अथवा मेरा माहचर्य पाकर वह प्रसन्न हुआ था, रह-रहकर नाचने की चेष्टा करता।

उस दिन मैंने उसके सबध में बहुत देर तक सोचा था। '...आसिन की जान-लेवा झपमी से उबर भी जाये, पुरुष होने का पाप जीवन-भर भोगना पड़ेगा। तीन-चार गाल के बाद ही किसी मेले में बेच दिया जायेंगा। पूरब मुलुक से आये हुए व्यापारियों के दल का कोई 'लबाना' (पाड़ा खरीदने वाला) इसके पुट्टे पर हाथ रखकर परीक्षा करेगा—अभी तो एकदम बच्चा है। हल में लगने काबिल नहीं... लेबोना, एटा लेबोना।

शायद, हर बान में 'लेबोना, लेबोना' सुनकर ही लोगों ने इन व्यापारियों को 'लबाना' कहना शुरू किया। '...लेबोना, लबाना !

उसी दिन किमन महाराज से मैंने अपनी भी तुलना की थी—बेकाम का आदमी, बीमार आदमी, परिवार का बोझ। किसन महाराज को बेचकर परिवार-वालों को माठ-मत्तर रुपये प्राप्त हो जायेंगे। मुझे मुफ्त में भी नहीं लेगा कोई। '...पेट का रोगी चिड़चिड़ा क्यों हो जाता है, यह मैं जानता हूँ।

शाम होने के पहले ही परिवार का सर्वकनिष्ठ सदस्य पाठशाला से बही-बस्ता लटकाकर लौटा और अचरज से ठिठककर हमें देखने लगा। मैंने झिड़की दी थी—इस तरह उल्लू की तरह आँखें गोल कर क्या देखता है ?

उसे दिखलाकर मैंने पाड़े के मुँह के पास अपना मुँह लाकर चुचकार दिया—
चु:-नु: !! ईश्या अथवा आश्चर्य के मारे आदमी के उस पिट्टी बच्चे ने मेरी ओर घृणा-भरी दृष्टि से देखा। फिर धरती पर झूकता हुआ आँगन की ओर भागा—
'राम ! राम !! तोबा, तोबा ! बाबूजी निरधिन डोम भेल—पाड़ा'क घुषनी में चुम्मा लेल... !'

अपनी हँसी को ओठों से समेटती-सिकोड़ती मेरी गँवारिन फिर आयी—'ऐ-ऐ ! किसन महाराज तो आज दालान पर बँधे हैं !'

'बँधे हैं माने ? आज से यह यहीं बँधेगा। इसी जगह !'

'मालूम है, दूध-पीते पाड़ा का गोबर ठीक... 'ही-ही-ही-ही !'

पेचिस से पीड़ित व्यक्ति की पत्नी को इस तरह दाँत निपोड़कर नहीं हँसना चाहिए—कौन समझाये !

'और तुम्हारे बच्चे तो मलयागिर चंदन ही गोबर करते हैं !'

उसकी हँसी और भी जहरीली हो गयी। जाते-जाते चोट कर गयी—'इह !

वही जो कहा है न कि दुबला काहे तो 'टिडिम' के मारे। मैं समझती हूँ—यह रीस। इनके सामने न हाथ से गिरे नून, न पात से गिरे चून ! सो, रीस कीजिये चाहे खीस, गुस्माइये या पगलाइये। बैदजी ने कहा है, चाय की एक बूंद नहीं।'

बैदजी ने मीठी बोली सुनाना भी मना किया है, शायद... मीठी बोली एक बूंद नहीं...हूँ !

शाम तक सभी लोग खेत-खलिहान, पानी-मैदान में वापस आये। प्रत्येक व्यक्ति ने पाड़े को पलानी में बँधा देखकर अचरज प्रकट किया, विरोध किया। इधर मेरे मन में गाँठ-पर-गाँठ पड़ती गयी—वज्र गाँठ।... पाड़ा यही बँधेगा।

थोड़ी देर के बाद ही बयान की महिषी आयी। हुँकरती-डिंकरती बयान पर गयी—पाड़ कहाँ-आँ-आँ ? किसन महाराज ने पलानी से जवाब दिया—मैं यहाँ-आँ-आँ !

पाड़े की माँ को सबसे अधिक अचरज हुआ था।

आज विस्तारपूर्वक उसके संबंध में कहने का अवसर है। सात साल के युवक किसन महाराज के कृत्यों के लिये मुझे अपराधी प्रमाणित करने की चष्टा की जा रही है। मुझे जवाब तलब किया गया है...।

जानता हूँ, कचहरी में ऐसे बयान आजादी की लड़ाई के दिनों क्रांतिकारी लोग ही देते थे, जिन्हें तत्कालीन हाकिम न पढ़ते थे, न सुनते थे। किंतु आपके संबंध में मशहूर हो चुका है कि आप किसी भी मुकदमे की राई-रत्नी तक पढ़ते हैं, सुनते हैं। इसलिए, साहम करके इतना लंबा-चोड़ा बयान तैयार किया है।

तो यह हुई किसन महाराज के बचपन की कहानी।

संक्षेप में कहने पर भी इतना कहना आवश्यक है कि दिन-रात मेरे साथ रहने के कारण वह मेरी हर बात को समझने लगा, और मैं हो गया उसकी भाषा का पंडित।

आसिन में आठ दिनों तक झपसी लदी रही, उस बार। पाड़ा दिनभर कूदता-फलाँगता रहा, आठों दिन। उसकी कृपा से मेरे असाध्य रोग में आशातीत सुधार हुआ।... दही खाने से चिड़चिड़ापन भी दूर हो जाता है।

बैदजी ने सुबह-शाम अगहनी घान के खेतों के आमपास टहलने की सलाह लिख भेजी। कहना नहीं होगा, पाड़ा भी मेरे साथ वायु-सेवन करने जाता—नित्य। एहि भाँति... बालकांड समाप्त।

पेट का रोग दूर हुआ, किंतु पेट की चिंता बढ़ गयी।

जिस दिन गाँव छोड़कर शहर जा रहा था, पाड़ा बैलगाड़ी के पीछे बहुत दूर तक आया था।... "जा किसन, लौट जा अब !" मेरी बोली कंठ में अटक गयी थी।

मेरी अनुपस्थिति में पाड़े को कोई कष्ट न हो, परिवार वाले उसे बेच न

दे—पत्नी को प्रत्येक पत्र में याद दिलाता। जब परिवार के एक सदस्य ने जिम् पकड़ ली तो मेरी पत्नी ने निखवाया—‘कन्हाई बाबू दिन-रात पाड़े की ही करने है। कहते है, लोगो की फमल ‘नुकमान’ करता है। कौन दिन-रात उलहना मुने।’ बोल रहा थे कि गाँव का ही मकदूम मियाँ नब्बे रुपया दे रहा है। मैं कहती हूँ, भेज दीजिये कन्हाई बाबू को उनका हिस्सा पैंतालीस रुपया। कलेजा फटा जा रहा है उनका...’

रुपए नहीं भेजे। चार दिन की छुट्टी लेकर गाँव आया। गाँव पहुँचकर देखा, जो माँचा था ठीक वही हुआ है। पाड़ा बेच दिया गया है।

मकदूम मियाँ के बथान पर माँटी रस्मी में जकड़े हुए किमन महाराज को देखकर मेरा रोम-रोम कंपने लगा। उसको बस में लाने के लिए मकदूम ने उसे बरहमी में पीटा था। सारी देह में साटी के दाग...लंबे-लंबे पड़े थे।

एक सौ दम रुपए नकद लेकर मकदूम ने पाड़ा छोड़ा।

उसी बार, गाँव के पाँच पचो के बीच रह आया, “यह पाड़ा आज से सबका हुआ—गांव का, इलाके का।”

उस बार, चार दिन तक पाड़े में ही मन की बातें कीं। पत्नी बोली, “कन्हाई बाबू ने रुपए गिनकर मकदूम के हाथ में पाड़े की रस्सी थमा दी, लेकिन पाड़ा रस्मी तुड़ाकर आँगन भाग आया, मेरे पाम। मैं रमोईघर में थी। वहाँ पहुँचकर डिकरने लगा।...एह! आँख से लोर झहर-झहर झर रहे थे...आँचल में छिपाने की कोशिश कर रहा हो, मानो।”

इसके बाद की कहानियाँ मैंने भी सुनी है।

जब-जब गाँव आया, एक-न-एक कहानी सुनी पाड़े की। अलौकिक कहिये या असाधारण, कहते हैं पाड़े में कई विशेष गुण प्रकट हुए, क्रमशः।

सूधा तो वह ऐसा निकला कि गाँव-भर के दच्चे उसकी पीठ पर सवारी करते। किंतु, बड़े-बूढ़े आदत से लाचार होकर, कभी गाली देकर बात करते तो पाड़े के नयुने से फोंम-फोंस आवाज निकलने लगती।

उजड़्ड रामबुहारन बिना गाली के कोई बात बोल ही नहीं सकता। एक बार उसने कहा, “सरवा पाड़ा...” बस, सरवा सुनते ही किसन महाराज पैर से खुर्रि काढने लगा। एक टोकरी धूल उड़ाकर रामबुहारन की आँखों में झोंक दिया। •

मकदूम मियाँ के मन में लोभ-मोह दूर नहीं हुआ था, हालाँकि उस पर नजर पड़ते ही पाड़ा अगिया-बैताल हो जाता। मकदूम हमारे टोले का रास्ता ही भूल गया था, किंतु दिन-रात पाड़े के लोभ में वह तरह-तरह की बातें सोचता। उसने अपने दूर गाँव के एक यगाना से परामर्श किया। मुस्तंड मवेशी-चोर यगाना उसको बोला, “लोठे की सिकड़ी और दाँत वाले नाथ से तो शेर भी धर-धर काँपता है। और यह कमबख्त भैंस का पाड़ा?”

एक रात को वे आये, चुपचाप पाड़े की चोगी कग्ने—मकदूम, अमगर ।

ऐसा लगता है, किसन महाराज ने धूल उड़ाकर उन्हें सचेत करने की चेष्टा की होगी—पहले । जब अमगर ने भाला फेंककर पुट्टे पर घाव कर दिया तब उमने निरुपाय होकर सीधे हमला बोल दिया होगा । बारी-बारी से चट्टेकर उमने मकदूम और असगर के हाथ-पैर तोड़े थे ।

इस घटना के बाद ही उमने गाँव की चौकीदागी शुरू की होगी । वह कब से रात में पहरा देना है, किसी को नहीं मालूम । तनुकमाह के पिछवाड़े से किमी की चीख मुनायी पड़ी, एक रात । तनुकमाह के परिवार वाले जंग, किंतु साहम नहीं हुआ पिछवाड़े की ओर जाने का । चीख-पुकार क्रमशः बढ़ती गयी—“बचाइये हो गाँव के लोग...अरे बाप, मर गये !” लोग हा-हू करते दौड़े आये । देखा, तनुकसाह के पिछवाड़े में एक आदमी लहलुहान पड़ा कराह रहा है और पास खड़ा किसन महाराज रह-रहकर हुँथा मारना है । “चोर ने ही पाड़े की कहानी बतायी । जब वह गाँव में घुम रहा था, पाड़े ने उमे अचरज से देखा था । फिर जैसे ही सेंघ लगाना शुरू किया, न जाने किधर से आकर पाड़े ने उमे हुँथियाना शुरू किया ।

तनुकसाह के साथ गाँववालों ने भी एक स्वर में उसे ‘देवहा’ पाड़ा कहकर उसकी पूजा की—सींगों में घी लगाकर, मिर पर अक्षत-दूब डालकर । “कच्चा केला उसका प्रिय फल है, मेरी पत्नी ने बताया था । इसलिए तनुकमाह ने दो दर्जन कच्चे केले खिलाये थे किसन महाराज को ।

लेकिन दो दर्जन केले खिलाकर उमको नीति-भ्रष्ट नहीं कर सका तनुकसाह । एक दिन सुबह उठकर तनुकमाह ने हाय-हाय कर पंचगुहार की, “पाड़े ने दो बीघे तंबाकू को रौंदकर समापत्तन कर दिया । दो मौ रुपए का माल मेरा—हाय रे हाय !”

गाँव के किसी पंच ने हमदर्दी नहीं दिखलायी । बच्चे-बच्चे के मुँह से निकला, “ठीक किया है । जैसी करनी...” परमों ही बेचारे अजबलाल दाम के मवेसी की कुरकी करवायी है, तनुकमाह ने । बेईमानी से तीन सौ रुपये का चिट्ठा बनाया । फिर नालिस करके “चुपचाप ‘डिगरी’ करवा ली थी । “अच्छा किया है पाड़े ने ।”

दूसरे दिन भरी दोपहरी में तनुकसाह ने चिल्लाना शुरू किया, “देखो, देखो हो लोगो—पाड़ा पगला गया हो-ओ-ओ !”

गाँव-भर के लोगों ने तमाशा देखा—तनुकसाह के चार बीने में फूली-फुसायी सरमों रौंद रहा है पाड़ा; उन्मत्त होकर खेत में दौड़ रहा है इस छोर से उम छोर तक । “पीली चदरी चित्थी-चित्थी हो रही है, मानो ।

तनुकमाह चुपचाप देखता रहा । उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला ।

उसी शाम को उमने अजबलाल दास से 'डिगरी' की मफाई कर ली—अमन तीस रुपये लेकर। सूद भी नहीं लिया—एक पैसा...।

संतोखी ततमा की बेवा मुसम्मात दिन-भर किमानों के घर में धान-चावल कूटती-छांटती। तीमरे पहर दौड़ी जाती दो मील दूर टेमन की गुदरी पर—हल्दी और हरी मिर्च बेचने। लौटती बेर कभी-कभी गुदरी पर ही दीया-बाती जल जाती। संतोखी की बेवा पाड़े को पुकारती हुई पगडंडी पकड़ती। पाड़े के लिए वह रोज एक छीमी कच्चा केला खरीदकर लाती थी। पाड़े के प्रति उमकी भक्ति के पीछे है एक अंधकार की घटना। संतोखी की बेवा ने मेरी पत्नी को सुनाया है :

गाँव के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति की नजर में संतोखी की बेवा बहुत दिन से नाच रही थी।

एक दिन घात में बैठे—पाट के खेत में...।

गुनगुन करती, अपने-आप न जाने किससे झगड़ती-बडबड़ाती संतोखी की बेवा खेत के पास आयी। भले आदमी ने अचानक हमला नहीं किया, हालाँकि उनकी अवस्था उस समय जानवर से भी बदतर थी...।

बाजापता प्रेम-निवेदन से प्रारंभ किया बाबू साहेब ने।

तीन आने की हल्दी बेचकर, इकल्ली का नून लेकर लौटती हुई संतोखी की बेवा दस रुपये का नोट देखकर काँप उठी थी।...लगा, बाबू साहेब के पाकिट से साँप निकला, फन काड़े हुए। लेकिन वह चीख नहीं सकी, चिल्ला भी नहीं सकी, क्योंकि बाबू साहेब पैर पर गिर पड़े...।

'छिः-छिः, उठिए बाबू साहेब !'

ठीक, इसी समय पता नहीं किधर से पाड़ा आकर हाजिर।

पाड़े को देखते ही गाँव के नरपुंगव की पु-शक्ति समाप्त हो गयी।

'...सच कहती हूँ मालकिन, उस दिन किसन महाराज नहीं आ जाता तो मैं डूब चुकी थी,' संतोखी की बेवा ने मेरी पत्नी के कानों में फिसफिसाकर कहा था।

किसन महाराज रघुबर महतो के कूप का पानी छोड़ और किसी गड्ढे-तालाब में मुँह नहीं रोपता। ठीक दोपहर को रघुबर महतो के कूप के पास जाकर खड़ा हो जाता। बूढ़ा रघुबर महतो अपने हाथ से पानी भरकर पिलाता था—नियम-पूर्वक। रघुबर महतो के 'कच्चा-मीठा' आम के दो पेड़ हैं। आम के मौसम में—टिकोला लगते ही पेड़ों के नीचे मचान गाड़कर बैठता बूढ़ा, दिन-रात। पिछले साल बूढ़ा बीमार पड़ा। दिन-भर उसकी बेटी बतसिया ने पहरा किया। किंतु रात में ? रात में कौन पहरा करेगा ?

रघुबर महतो का कहना है, "सूरज डूबने के पहले ही पाड़े ने पेड़ के पास आकर डेरा डाल दिया। फिर दूसरे दिन सुबह जब बतासो पेड़ के पाम गयी तो

उठा। ‘‘पाड़ा नहीं, देव है देव !’’

अब अंतिम कहानी। मेरी देखी-सुनी।

बिहार विधानसभा में, जमीन-हूदबंदी के सवाल पर विचार होना अभी भी बाकी है। लेकिन, जिस दिन यह प्रस्ताव मदन में पेश हुआ उससे दो माह पहले से ही छोटे-बड़े किसानों के मन में पाप समा गया। जिले में किसान और गरीब बँटाईदारों में कई जगह गुत्थमगुत्थी भी हो गयी—यह तो किसी से छिपा नहीं है।

मुझे भी चिट्ठी गयी, गाँव में। ‘‘जमीन-जायदाद में मेरा भी हिस्सा है, इसलिए मुझे स्वयं इस झंझट के समय उपस्थित रहना चाहिए। पत्नी ने लिखा—‘कन्हाई बाबू कहते हैं कि भैया के कारण ही पंचायत-बदोबस्त के समय पचास बीघे जमीन चली गयी—मुफ्त में। दान-ख़रात करनी हो...अपने हिस्से की जमीन करें...’

गाँव पहुँचते ही मुझे गुप्त सूचना दी, छोटे भाई कन्हाई बाबू ने, ‘‘इस बार बँटाई करने वाले फमल काटकर न ले जायें—सभी बड़े किसान चिंतित हैं। एक चुटकी धान नहीं देगे बाँटकर वे, सुना है। इसलिए हम लोगों ने, माने आसपास के कई छोटे-बड़े किसानों ने मिलकर गुप्त परामर्श करके यह तय किया है...। नहीं-नहीं। मैं ऐसा मूर्ख नहीं—छतिओना के शिवशंकर सिंह को चोट पर चढ़ाया है, सबसे पहले। तय हुआ है कि शिवशंकर अपने किसानों की फसल कटवाकर ले जायेंगे—अपने खलिहान पर। इसके बाद हम भी अपने बँटाईदारों से कहेंगे, जब दीगर गाँव का किसान फमल काटकर अपने खलिहान पर ले गया तो हम क्यों तुम्हारे खलिहान पर फमल जाने दें?...आप मेहरबानी करके चुप रहिएगा इस बार, नहीं तो...’’

मैंने पूछा, ‘‘यदि बँटाईदार लोग अपने-आप ही—राजी-खुशी से—फसल हमारे खलिहान पर ले आयें तो?’’

कन्हाई बाबू तुनककर बोले, ‘‘देखिये भैया, आप फिर इस बार सबको फेरे में डालियेगा, लगता है। भला वे क्यों लायेंगे?’’

मैंने तर्क छोड़ा नहीं, ‘‘क्या आपमें से, मुलह से कोई रास्ता नहीं निकल सकता?...मान लो, यह तय किया जाये कि न किसान अपने खलिहान पर ले जायें और न बँटाईदार। गाँव से बाहर एक ‘पंचायती खलिहान’ बने...!’’

कन्हाई बाबू चिढ़कर आँगन की ओर चले गये। जाते समय कुछ बोले नहीं, किंतु उनकी मुद्रा बोली—‘आपके जैसा मूर्ख कहीं नहीं देखा।’

मेरी पत्नी आँगन से मुँह लटकाकर आयी। उसकी दलील सुनकर मैं चुप हो गया, ‘‘जब जगह-जमीन ही नहीं रहेगी तो बाल-बच्चे खायेंगे क्या? कन्हाई बाबू कहते हैं कि अखबार की नौकरी भी कोई नौकरी है? सुनते हैं, पिनसिल भी नहीं

मिलता । आपके पैरों पड़ती हैं, आप चुप रहिए ।”

चुप रहा मैं पाँच दिन तक ।...अखबार की नौकरी भी कोई नौकरी है ?

पाँचवें दिन अभिसंधि के अनुसार छतिऔना के किसान शिवशंकर सिंह हरवे-हथियार, लुटेरे जन-मजदूरों और लठैतों के साथ जमीन पर आ घमके ।

गाँव के सभी बँटाईदार अवाक् हो गये—यह क्या ? अचानक कौन नया कानून पास हो गया ? अँधेरे है ! जुलूम है !

मुझे लगा, अचानक कुत्सित रोग मधुमेह का शिकार हो गया मैं ।

एक-एक कर सभी गरीब बँटाईदार हमारे दरवाजे पर आये—दौड़ते, रोते-चिल्लाते । मैंने देखा, कन्हाई बाबू निर्विकार भाव से पान में चूना लगा रहे हैं । पान मुँह में डालकर गंभीर हो गये, “हमे क्या कहने आये हो ?”

“आप लोग चलकर शिवशंकर बाबू से पूछिए कि...।”

“ऊँह !”

इसके बाद अभागे बँटाईदारों ने मेरी ओर देखा । बेकारी के समय मैंने भी गरीबों की गलियों का झंडा ढोया था । संभवतः मेरी खादी की धोती को देखकर ही उन्हें मुझ पर भरोसा हुआ था । मेरे पाम गिडगिड़ाने लगे, “लाल बाबू !... यही उचित है ? साल-भर से खेती में बाल-बच्चे, औरत-मर्द मिलकर हमने फमल लगाया...और आज...आप लोगों के रहते...।”

लाल बाबू चुप रहे—अपने पसीजते हुए दिल को मन-ही-मन पत्थर बनाने की चेष्टा में व्यस्त । आँखें मूँद ली लाल बाबू ने ।...बहुत मुश्किल से बोले—
“मैं क्या करूँ ? मैं क्या कर सकता हूँ ? मेरे हाथ में क्या है ?...अखबार की नौकरी भी कोई नौकरी है ? पुलिस का सिपाही होता तो मेरी वरदी का प्रभाव पड़ सकता था ।”

हाय छोड़कर वे चले गये ।

बँटाईदारों के टोले में कुहराम शुरू हुआ । औरते छाती पीटने लगी । बच्चे बिलखने लगे । कुत्ते रोने लगे ।

उधर खेतों में लुटेरे जन-मजदूरों और लठैतों की सम्मिलित जय-ध्वनि हुई—
हो हो हो हो—हो हो हो हो !!

मेरे स्नायुमंडल पर प्रतिक्रिया शुरू हुई । ऐसे अवसरों पर मेरा शरीर कांपने लगता है—मलेरिया बुखार चढ़ते समय जैसी कँपकँपी होती है, वैसी ही ।

...बाबू रे-ए-ए ! हे-ए-ए, अब क्या खाओगे रे-ए-ए ?

...माई-ई-ई ! कलेजे पर हँसुआ चला-आ-आ !

...बास-बच्चे मर जायेंगे !

...हाय ! हाय !!

...हो हो हो हो—हो हो हो हो !!

कोन बीड़ी जा रही है ? नंगी औरत—पगली औरत ? एकदम नंगी ? नाच रही है—लूट ले । लूट ले—रे दुश्मनवाँ लूट ले !...

कौओं का काँव-काँव ? अथवा मैं ही पगला गया ?

...लाल बाबू ! आप देवता हैं । ...काँव-काँव !

लाल बाबू... ! आप राक्षस हैं । ...काँव-काँव !!

लाल बाबू ? लाल बाबू ? काँव-काँव !!

...लाल बाबू ! जरा खेत पर चलिये ।

मैं क्या कर सकता हूँ ? मैं...मैं... !

कोन है ? शिवशंकर सिंह का छोटा भाई देवशंकर सिंह ? मुझे क्यों बुलाने आया है ? मैं कहीं नहीं जा सकता । मुझे बहुत बुरा रोग है । मैं एक डग भी नहीं चल सकता । मैं नशे में चूर हूँ । मैं जानवर हूँ । मुझे कोई क्यों बुलायेगा ?

“...लाल बाबू !” देवशंकर ने कड़ककर मुझे होश में लाने की चेष्टा की । बोला, “आप अपने पाड़े को पुकार लीजिए । वहाँ खेत में...”

क्या ! खेत में पाड़ा ? अर्थात् ! किमन महाराज पहुँच गये हैं धर्मक्षेत्र में, कुरुक्षेत्र में ? ऐ ! तब फिर क्या—जिधर कृष्ण...उधर विजय !

“लाल बाबू ! जल्दी चलिए ।”

“भैया ! जाइए न । पुकार लीजिए पाड़े को ।”

मेरी कोंकणी रुक गयी हठात् । मेरी घुटती हुई उत्तेजना को रास्ता मिला, “मैं क्यों जाऊँ ? पाड़ा मेरा नहीं, सारे गाँव के लोगों का है । मैं क्यों पुकारने जाऊँ ? मैं किसी का नौकर नहीं; न तुम्हारा, न तुम्हारे शिवशंकर सिंह का ।”

देवशंकर चला गया । नगी औरत रोती-भागती चली गयी । कन्हाई बाबू भी चले गये ।

खेत में फिर हो-हो की आवाज आयी । मैंने उत्कर्ण होकर सुना—इस बार जयकार अथवा हर्ष-ध्वनि नहीं । ...धर्मक्षेत्र से, कुरुक्षेत्र में, किमन महाराज को भगाने के लिए हल्ला किया जा रहा है—हुस्स ! होय-होय !

...मारो । मारो अ-रे-रे-रे-रे !

...बुई ! बुईम ! अँह-अँह—हुस्स !

...भाग रे-ए-ए ! हो हो हो हो !

शोरगुल बढ़ता गया । अब किमन महाराज अगले पैरों से खुरी काटकर धूल उड़ा रहा होगा ।

...अभ्रुगैम !

...मारो ! मारो ! हो हो हो हो !

...टूटाय ! टूटाय !!

झूठा फायर ? अथवा...अथवा ?

...भागो ! भागो !!

द्रष्टा !

आह ! इस बार झूठा फायर नहीं ।

मैं दौड़ा ।

खेत पर पहुँचते-पहुँचते किसन महाराज का रथ दूर जा चुका था । परिवर्त-क्रिया के झोंके पर उमकी देह थरथरा रही थी, रह-रहकर पैर झटक रहे थे ।... किसन रे !

मेरे किसन ने किमी की जान नहीं ली । वह गरीबों के हक की रक्षा कर रहा था । ईंट-पत्थरों की मार खाकर भी धूल उड़ाता रहा, सिर्फ । चेतावनी देता रहा । फिर लाठी चली । वह अहिंसक रहा । सींगों से डराना, धूल उड़ाना, डिमा नहीं । तीर और भालों से घायल हुआ—देह छलनी हो गयी । तब उसने दो लुटेरे लठैतों के हाथ-पैर तोड़े पटककर । शिवशंकर ने झूठे फायर किये, किंतु देवशंकर ने गोली दाग दी—कलेजे पर ! गोली खाकर भी उसने किसी की हत्या नहीं की । मरत-मरते उसने शिवशंकर और देवशंकर को घायल ही किया । वह जान ले सकता था ।...अतः मे गाँव की ओर भागा । भागा नहीं । यह निश्चय ही मेरे पाम आ रहा था । मेरी पत्नी के आँचल में मुह छिपाकर सोने के लिए... रघुबर महतो के कूप का पानी पीने के लिए...सतोखी की बेवा के हाथ से केला खाने के लिए...मेरे बेटे के हाथ से फरही-गुड़ खाने के लिए...!

कुछ दूर आया...डगमगाया...गिरा !

मैंने उसके कान के पाम मुँह लाकर पुकारा, "किसन रे ! हाय-हाय, मैंने तुझे पहले ही क्यों न पुकार लिया...लेकिन मैं जानता हूँ—तुम आज मेरे पुकारने पर भी नहीं आते ।...तुम धर्मयुद्ध में कैसे मुँह मोड़ सकते थे...?"

अब मैं पुलिस द्वारा लगाये गये आरोप के जवाब दूँ—अतः मैं !

पुलिस की रपट है—मैंने गाँव में अशांति फैलायी है ।

उत्तर में निवेदन है—गाँव में सर्वत्र शांति विराज रही है—पवित्र शांति । गाँव के छोटे-बड़े किसानों ने अपने बँटाईदारों में कह दिया—जहाँ जी में आये ले जाओ फसल काटकर । शिवशंकर को उसका हिस्सा भदई धान मिल चुका है । कन्हाई बाबू की फसल बँटाईदारों ने कन्हाई बाबू के खलिहान पर ही रखी ।...कहीं भी किमी किस्म की अशांति नहीं ।

किसन की मृत्यु के बाद कुछ लोग उत्तेजित हुए थे, अवश्य । किंतु रामधुन मुनकर वे शांत हो गये । रात-भर उमकी लाश को घेरकर 'निरगुन' गाये गये ।

मुबह को धूमधाम में मारी दी गयी। उमकी समाधि पर आम्रपत्र के दम गाँवों के लोगो ने आँसू में गीली मिट्टी दी, बागी-बागी में श्रौतों ने अच्छा पसाकर समाधि पर छाया की। धूप-दीप और शस्त्रध्वनि... श्रान्ति नहीं फैलानी।

घटना की खबर शहर पहुँची। खेतिहर मजदूर मध के मंत्रीजी आये, किमान सभा और कांग्रेस के कार्यकर्ता भी आये। दरोगा माहव आये। कौन-कौन आये, कौन गये, मुझे कुछ नहीं मालूम। किमान की मृत्यु के बाद में ही मेरी बोली बदली। आँखें बंद थीं...

समाधि देने के समय एकत्रित लोगों ने बाग-बाग जय-ध्वनि की थी। सभी अपने-को दोषी समझ रहे थे। किमान के बिना सभी अपने-को अगहाय अनुभव कर रहे थे, इसलिए कभी-कभी सम्मिलित रुदन भी करने थे—हाय-हाय कर।... किंतु इससे भी शांति भग नहीं हुई...

पुलिस रपट में कहा गया है—गरमागरम भाषण दिय गये। लोगों को उभाड़ने के लिए, हिंसात्मक कार्रवाई करने के लिए प्रार्थनाकारी गीत गाय गये!

जहाँ तक मुझे याद है, भाषण किसी पेशेवर नेता ने नहीं दिया था। गांव के एक भावुक विद्यार्थी ने अपनी टूटी-फूटी भाषा में तुलनाकर कुछ कहा था, जरूर। लेकिन वह कोई गरम बात नहीं थी। उसने कहा, 'जब आदमी का दुःख को आदमी ने नहीं समझा, किसन महाराज ने पण होकर भी आदमी का काम किया। आदमी का काम नहीं, देवता का। उसने अपनी जान देकर साबित कर दिया कि हम जानवर से भी गये-बीते हैं...'।

और, मेरे टोले की बपा ने, अपनी तीनों बहनों के साथ मिलकर विषयकवि का प्रसिद्ध गीत गाया—'यदि तोर डाक सुन केउ न आये'।

दरोगा माहव ने लिखा है—समाधि पर लाल झंडे गाड़े गये ह।

इस बात पर, इस विषाद-भरे क्षण में भी मुझे हँसी आ रही है। गांव में किसी भी देवस्थल पर लाल-मालू का झंडा फहराया जाता है। हनुमानजी का झंडा हो, चाहे माँ चडिका का—रंग लाल ही होता है...

[मुझे आश्चर्य तो तब हुआ—जब कि आपने उनकी इस रपट के आधार पर यह बवाल किया—आपके नाम 'लाल बाबू' का 'लाल' किसी 'राजनैतिक लाल' का संकेत है क्या? मैं आपके विनोदप्रिय मिजाज की मजाहना करता हूँ।]

किमान महाराज की समाधि पर गड़े झंडे भी चाल है—स्वीकार करता हूँ।

गांव के दण्डी ने झंडों पर पांडे की आर्तुन बनान की चष्टा की है, मफेद कपड़े से। मुझे लगता है कि दरोगा माहव ने झंडों में आकत किमान महाराज के सींगों को हँसिया समझा... पंर को हल... पूछ को चक्र... मुह को हथोड़ा...

दोप उनकी दृष्टि का है।

(जनवरी, 1962)

अच्छे आदमी

उजागिर ने दोनो बड़ी केतलियों को ताजे चूल्हे पर चढ़ाकर सामने—पूरब की ओर देखा। ‘‘‘रात से ही ‘अदरालछत्तर’ (आर्द्रा नक्षत्र) चढ़ा है। मूरज उगा है या नहीं, पता नहीं चलता। बादल हल्की पुरबंया के झोंके पर उमड़े आ रहे हैं। दूर फुहिया वर्षा में पेड़ की पत्तियाँ छिप रही हैं। सामने—खुला हुआ विशाल मैदान हरियाली पर बध्नी हुई—पिच रोड। नयी सड़क !

उजागिर का जी न जाने क्यों, अचानक हल्का हो गया। मन में रात-भर उम ‘पसिजर’ की बोली चुभ रही थी—खच-खच !—तुम तो मुंह देखकर चाय में चीनी डालते ही हो, उधर पकौड़ी में भी हाथ-सफाई का खेला होता है। किमी को ‘हरियर मिरिच’ (हरी मिर्च) और अदरख के टुकड़े डालकर कुरमुरी पकौड़ी दी जाती है और किमी को सड़े प्याज और बासी बेसन की।

‘‘‘जरूर वह पसिजर जोगवनी या फारबिसगंज से दारू पीकर चला होगा।’
ऐसा मुंहफट्ट पसिजर उजागिर ने कभी नहीं देखा था।

उजागिर ने फिर मैदान की ओर देखा।

मैदान का दाहिना हिस्सा फुहिया वर्षा में ढक-छिप रहा है। सरकारी जंगल विभाग के नये बाँम के बन में हजारो पताके उड़ रहे हैं, मानो बाँस के नये पौधो की नयी ‘कंचियो’ के हरे पताके—कास के सफेद गलीचे—सब ढक गये। दो ही साल के बाद यह बाँम का जंगल ‘बिजूबन-बिजूखंड’ हो जायेगा !

उजागिर का घर, गाँव के सबसे दक्षिण छोर पर ऊँची जगह पर है। मामने बहुत दूर तक ढालू जमीन है। कोसी की मारी हुई जमीन कोमी की सून्नी और बालू से भरी धारा तक, ऊबड़-खाबड़ है। कटिहार में जोगवनी तक पक्की सड़क पिछले साल ही बनकर तैयार हुई है—खुली है। जब, पहली बार कागजवाला नक्शा धरती पर अंकित हुआ, तो लगा कि उजागिर के घर तक आने के लिए ही सड़क इधर आयी है। उजागिर के घर को छूकर फिर दाहिनी ओर मुड़ गयी है।

उजागिर ने देखा ‘‘‘लेटी हुई धरती के गले में चंद्रहार की तरह पड़ी—

पिच रोड !

एक केतली का पानी गनगना उठा ।

फिर दूसरी केतली का भी ।

उजागिर की आँखों में 'प्रदीपकुमार की माय' के गले में पड़ी चंद्रहार की झलक लगी । "आज प्रदीपकुमार की माय इतनी सुस्त क्यों है ? केतलियों में चाय का पानी खोल रहा है । अभी तक न वेसन का गमला खनखनाया और न कड़ाही-कलछी ही । आखिर बात क्या है ?

उजागिर ने अपने तीन वर्ष के एकलौते बेटे को पुकारा, "क्या हो प्रदीप-कुमार ! बबुआ ! माथ से कहो, सादा गाड़ी के आने का समय हो गया । इधर हमारे 'डिपाट' का सब काम 'फिनिम' है ।"

अदर में कोई आवाज नहीं आयी ।

उजागिर ने अपने 'डिपाट' पर निगाह डाली । उजागिर का विभाग—चाय डिपाट—कप, तश्तरी, गिलास, छन्ना, चम्मच, चाय, दूध—सब । सब ठीक है । लेकिन आखिर बात क्या है ?

उजागिर का घर, इम इलाके का 'गैरमरकारी बस पड़ाव' है । करीब, बीस-पच्चीस गाँव के लोग यही आकर चढ़ते, उतरते हैं बसों में । दक्षिण कटिहार से आनेवाली बस अररिया कोर्ट से डेढ़ घंटे में और उत्तर जोगबनी-फारबिसगंज से चलनेवाली गाड़ी को एक से सवा घंटे तक लग जाता है । इसलिए उजागिर के घर और दूकान के सामने दस-पंद्रह मिनट रुकती है ।

इस 'लाइन' (मड़क) में उजागिर की दूकान के पकीड़े और चाय का खूब नाम हो गया है । सादा, खाकी और लाल गाड़ियों के ड्राइवर-कंडक्टर, पसिजर, क्लिनर, सभी तारीफ करत हैं ।

प्रदीपकुमार की माय आयी ।

नहायी-धोयी प्रदीपकुमार की माय को देखकर उजागिर का हल्का जी और भी गुदगुदा उठा । गिलास में गर्म पानी डालते हुए वह मुस्कराया । प्रदीपकुमार की माय भी तनिक मुस्करायी । मानो, मन की बात को वह मन में अब नहीं रख सका । बोल पड़ा, "अब रेडियो फिट कराना जरूरी है !"

कल तक उजागिर की समझ में, दूकान में एक दीवालघड़ी फिट करना जरूरी था । आज अचानक रेडियो की जरूरत सुनकर प्रदीपकुमार की माय को अचरज हुआ । वह अकचकायी ।

उजागिर बोला, "रेडियो में एक ही बात नहीं, तीन-तीन बात हैं । मन हो तो गाना सुनो, मन हो तो खबर सुनो और जानना हो तो टैम भी मालूम कर लो ।"

प्रदीपकुमार की माय ने कड़ाही चढ़ा दी ।

अंगन में आँखें मलता हुआ प्रदीपकुमार निकला। उजागिर ने प्यार से बुलाया, "इधर आओ बाबू !...बबुआ !"

हर रोज, पहले तीन गिलास...सबसे पहले प्रदीपकुमार को, फिर प्रदीपकुमार की माय को और तब खुद !...प्रदीपकुमार दिन-भर में पाँच गिलास चाय पीता है !

बसों में चढ़नेवाले 'कचहरिया-पसिजर' एक-एक कर आने लगे। बँलगाड़ी पर कोई नयी दुर्लभ है क्या ? सावन-भादों में नहर जा रही है। यह सायकिल वाला आकर फिर तंग करेगा। यह मायकिन रखने की जिम्मेवारी अब उजागिर अपने ऊपर नहीं ले सकता। ताला लगाने पर भी नहीं।

पहली बोहनी की किमनपुर के बाबू ने, चार आने के पकौड़े और दो गिलास चाय। दूध-चीनी बराबर-बराबर, गिलास जरा बढ़िया में धोकर।

प्रदीपकुमार की माय ने घूँघट के अंदर से ही देखा—किमनपुर के बाबू की नजर उसकी कलाई से लेकर बाँह तक गुदी हुई मछलियों पर है। कई जोड़ी मछलियाँ ! चुलबुला रही है।

प्रदीपकुमार की माय ने बाँह की मछलियों को आँचल खीचकर ढक लिया। किमनपुर के बाबू ने कहा, "पकौड़े तनि और खरे-कुरमुरे..."

छनीटा में छने पकौड़ों को फिर से खोलते हुए तेल में डाल दिया प्रदीपकुमार की माय ने।

गीली पुरवाई के झोके में गर्म पकौड़ों की सौधो-मलोंनी सुगंध गाँव में धीरे-धीरे फैलने लगी।

...पकौड़े ! चाह ! चाय ! चहा !

गाँव का बूढ़ा संतोखीसिध रोज इसी समय आता है।...रोज, 'नित्तम' दिन, टैम बँधा हुआ है, यही। यदि बोहनी नहीं हुई तो परम संतोपपूर्वक प्रतीक्षा करता है। बोहनी हुई कि उसकी चुटकी बजी, 'जै मिरि सिताराम !'

आज बोहनी होने के बाद भी संतोखीसिध की ओर ध्यान नहीं दिया उजागिर ने। संतोखीसिध ऐसे अवसरों पर कोई गप शुरू कर देता है। गप निश्चय ही किसी चोरी-डकँती अथवा 'घरघुस्सी' की होगी। घरघुस्सी में पकड़े गये चोर को 'चमचोर' कहते हैं।

आज संतोखीसिध ने, पास के गाँव में हुई चमचोरी में पकड़े गये किसी चमचोर की कहानी शुरू की।

संतोखीसिध को इस इलाके के सभी नामी-गरामी लोग जानते हैं। जाति-वालों ने मिलकर बूढ़े संतोखीसिध को बहिष्कृत कर दिया है। जाति का हुक्का-पानी छूटे, मगर संतोखीसिध उजागिर की दूकान की चाय और पकौड़ों को नहीं छोड़ सकता। और अब तो पकौड़े-चाय खा-पीकर ही वह सारा दिन रहता है।

न आगे नाथ, न पीछे पगहा। संतोखीसिंघ रिटायर्ड दफादार है। बहुत-बहुत 'इसपी' और दरोगा के मातहन काम कर चुका है वह। जब कहीं कोई नयी घटना नहीं घटती है तब संतोखीसिंघ कोई पुरानी कहानी, बिना किसी प्रसंग के ही शुरू कर बेता है।

कितु आज की कहानी, टटकी है, जो कल रात को ही घटी है।

किसनपुर के बाबू ने, हरी मिर्च की कड़ुवाहट पर 'सी-सी' करते हुए इस बात की पुष्टि की, "हाँ, इसीलिए रात में उधर हल्ला-गुल्ला हो रहा था, क्यों? ... सी-सी!"

मामले को गाँव के पंचों ने मिलकर 'रफा-दफा' कर दिया है, संतोखीसिंघ को यह खबर भी मिल चुकी है। मुद्दई, बेचारी साधोसाह की बेवा, क्या कर सकती है? पाँच पंच की बात से बाहर कैसे जाये बेचारी!

प्रदीपकुमार की माय ने पकौड़ा नहीं दिया।

उजागिर ने चाय का गिलास बढ़ाते हुए कहा, "संतोखी काका, पकौड़े गाड़ी जाने के बाद।"

"तो क्यों?" संतोखीसिंघ ने नकद पैसा देकर खानेवाले खरे गाहक की तरह खनखनाकर पूछा।

प्रदीपकुमार की माय ने धूँघट के अंदर से ही उजागिर को इशारे से कुछ कहा। केले के पत्ते पर गर्म पकौड़ा लाकर सामने रख दिया उजागिर ने। इधर कई दिनों से संतोखीसिंघ इसी तरह तेवर चढ़ाकर बातें करने लगा है।

संतोखीसिंघ ने किसनपुर के बाबू से कहा, "रासो बाबू, यह समुरी मड़क जब से चालू हुई है—चोरी-चुहाड़ी और भी बढ़ गयी है। पहले तो साला गाँव के आसपास के ही चोर-डकैत चोरी-डकैती करते थे। अब तो मानहारी घाट का चोर साला जोगबनी आकर चोरी कर जाता है—रातोंरात—बेदाग!"

किसनपुर के बाबू ने विरोध किया, "इसमें सड़क का क्या कसूर? बिना सड़क खुले ही कलकत्ता के लोग कटिहार में पाकिट मारते हैं।"

किसनपुर के बाबू को मालूम है, सड़क बनते समय इलाके में कई सड़क-विरोधी आंदोलन हुए थे। लोगों को उभाड़ने के लिए आंदोलन के नेताओं ने इस बात को प्रमुख प्रचार-अस्त्र बनाया था—सड़क खुलते ही कलकत्ता पाकिटमार से लेकर पटनिया ठग दिन-दहाड़े गाँवों में घुसकर उतपात मचावेंगे।

किसनपुर के बाबू ने अपनी कलाई पर बँधी घड़ी देखी, फिर कान के पास लाकर सुना—बस लेट है या घड़ी बंद है?

उजागिर बोला, "दोनों तरफ की गाड़ी आज लेट है। रात में जोगबनी की ओर जोर की बरखा हुई है।"

संतोखी बोला, "पूरब भी हुई है।"

उजागिर को चोरी-डकैती की कहानी जरा भी नहीं अच्छी लगती। तिम पर आज चमचोरी का किस्सा !

उजागिर ने चमचोरी-प्रसंग को अच्छी तरह बदलने के लिए बात की छोर अपने हाथ में ले ली, “पूर्व-पच्छिम, उत्तर-दक्खिन सब तरफ पानी बरसा है। मिर्फ अपने इलाके में...”

मंतोखीमिध ने बीच में ही काट दिया, “अरे ! इस इलाके में क्या पानी होगा साला, दिन-दहाड़े चमचोरी जहाँ होता है, वहाँ पानी बरमेगा ! बज्जर गिरेगा—हडहड़िया बज्जर !”

बादल मचमुच गरजा। प्रदीपकुमार की माय घूँघट के नीचे हँसी। “बादल नहीं, बस की आवाज !”

प्रदीपकुमार की माय को पिछले साल की बरसात की याद आयी। वर्षा में पकौड़े और चाय की बिस्त्री बढ़ जाती है। छाता-धोती बंधक रखकर भी आदमी पकौड़ी खाकर चाय पीता है।

किमनपुर के बाबू ने धैरे से, ‘प्लास्टिक पेपर’ के बड़े धैरे से, बाटर प्रूफ निकाला। मलेरिया विभाग के दवा छिड़कनेवाले से बहुत परंवी के बाद यह, बरमाती मिली है। झमाझम पानी पड़े, मुदा कपड़े का एक सूत भी नहीं भीगता।

किमनपुर के बाबू ने उठते-उठते उजागिर को सलाह दी, ‘इधर, चार हाथ और बढ़ाकर बैठने की जगह बनाकर छवा क्यों नहीं देते ?”

प्रदीपकुमार की माय ने बाँह के ऊपर माड़ी खींचकर उजागिर से कुछ कहा। किमनपुर के बाबू की आँखों में गुदी हुई मछलियाँ फिर चुलबुलाने लगी।

उजागिर ने कहा, “रासोबाबू ! एक गाड़ी बाँस के बिना सब काम रुका हुआ है। आपके दरबार में एक दिन ‘इस्दुआ’ लेकर...”

किमनपुर के बाबू ने देखा, घूँघट से एक जोड़ी आँखें भी कुछ कह रही हैं। बोले, “अच्छी बात है। एक दिन आना। एक गाड़ी क्यों, दो गाड़ी बाँस मिल जायेगा।”

उजागिर ने दाँत निपोड़कर प्रदीपकुमार की माय की ओर देखा। प्रदीपकुमार की माय ने आँखों में ही बात की, “मैंने कहा था न, रासोबाबू अच्छे आदमी हैं।”

संतोखीसिध बोला, “एक गाड़ी घास क्यों नहीं माँगी तुमने ! आज रासो-बाबू का दिल ‘दरियाव’ हो गया है।”

वर्षा शुरू हुई। दोनों ओर से बस आयी। एक ही साथ। “पकौड़ी। चाय। पैसे। नये पैसे।

उजागिर को आज बात करने की फुरसत नहीं।

“एक पत्तल पकौड़ी, बिना मिर्च की।”

प्रदीपकुमार की माय ने घूँघट के नीचे से ही कुछ कहा। वह आज बिना मिर्च

की पकौड़ी जग से किमी गाहक के लिए नहीं बना सकेगी ।

“लाल गाड़ी के ड्राइवर जी मांगते हैं ।”

प्रदीपकुमार की माय बिना मिचंवाला बेमन फँटने लगी ।

लाल गाड़ी का ड्राइवर अच्छा आदमी है । मनिहारी घाट में जहाज से उतरने वाले यात्रियों को भी वह उजागिर की दूकान की पकौड़ी और चाय की तारीफ सुनाकर फाँस लाता है—‘भाई, रास्ते में कहीं चाय पीना और पैसा फँकना बराबर है । चाय, नाश्ता चलकर रहिकपुर में कीजियेगा । एक बार चखकर देखियेगा, तो फिर कभी नहीं भूलियेगा । गर्मागर्म चाय और कुरमुरे पकौड़े !’

लाल गाड़ी का ड्राइवर ऐसी जगह पर गाड़ी लगाता है, जहाँ से प्रदीपकुमार की माय की आँखें, तिरछी निगाह से देखने पर टकरा जाती हैं ।

गाड़ी में बैठे हुए यात्रियों की नजर दूकान के सामनेवाले हिस्से पर ही पड़ती है । जिधर प्रदीपकुमार की माय बैठती है, उधर बाँस की ‘मन्ननी’ की टट्टी लगी हुई है—छोटी-सी, आड़ में बँठी हुई प्रदीपकुमार की माय का सिर्फ हाथ दिखलायी पड़ता है । पकौड़े ढालती हुई अंगुलियाँ । छनोटे से पकौड़े निकालकर बर्तन में रखते समय काँच की चूड़ियाँ मीठे सुर में बज उठती हैं ।

उजागिर को इधर-उधर देखने की छुट्टी कहाँ ?

गिलास, चीनी, पानी, पत्ती, चम्मच, पैसा, गाहक !

पत्तल पकौड़ा लेते समय एक बार वह प्रदीपकुमार की माय की ओर जरूर देख लेता है, “देखिए भाई, हल्ला-गुल्ला नहीं । शांती से—शांती !”

दोनों गाड़ियाँ आकर चली गयीं ।

प्रदीपकुमार की माय उठकर अंदर गयी । उजागिर रेजगारियों का हिसाब करने लगा ।

संतोषीसिंघ को एक गिलास चाय और चाहिए । जोरों की बारिश शुरू हुई । उजागिर ने कहा, “पानी गरम होने दीजिए ।”

उजागिर ने लड़कपन से ही चाय बनाने का काम किया है ।

कमलदह के जमींदार की इयोड़ी में हर काम के लिए अलग-अलग नौकर-चाकर थे—चाय बनानेवाला, चिलम सुलगानेवाला, तेलमालिश करनेवाला, भंग घोटनेवाला ।

कमलदह के जमींदार की जमींदारी चली गयी, लेकिन उजागिर के हाथ का ‘इलम’ हाथ में ही रह गया । इसी ‘इलम’ ने उसकी मनोकामना पूरी की । घर में लक्ष्मी आयी—!

रहिकपुर गाँव की अपनी बपीती जमीन पर घर बनाकर एक ‘रूपवाली’

घरनी लाने की लालसा उसके मन में बचपन में ही घर बनाकर बैठी थी। कमल-दह के छोटे बाबू की दुलहिन जैसी घरवाली मिल जाये, तो उजागिर सारी उम्र मिर्फ 'रूप' पीकर रह सकता है।

रूपवाली दुलहिन !

बालूवाली जमीन का कूप और गाँव की लड़की का रूप—दोनों बराबर। बालूवाली जमीन के कूप का पानी 'कचनठंडा' होता है। एक घूँट पीकर ही आत्मा जुड़ा जाये। गाँव की लड़की का रूप, एक बार निहारकर नींद आ जाती है, आँखों में। लेकिन, बलुवाही कूप दो साल में ही 'भथ' जाता है। गाँव का रूप साल लौटने ही 'ढल' जाता है।

उजागिर ने भागलपुर, दरभंगा और पटना जैसे शहरों में घूम-घूमकर नौकरी की। कहीं रूप की झलक नहीं मिली। सब नकली—कच्ची कली कचनार जैसी ऊपर से... इसको भला रूप कहते हैं ?

शहर में वह रुपये की गठरी ले आया। मन की झोली उसकी खाली ही रही।

गाँव के 'घटक-दलालों' ने उजागिर को ठगकर बहुत पैसा खाया। बिरादरी के पंचों ने पान-मुपारी के नाम पर पचासो रुपये 'झीट' लिये—रूपवाली घरनी नहीं मिली।

किंतु उजागिर निराश नहीं हुआ। कमलदह की छोटी दुलहिन ने एक दिन कहा था, 'उजागिर, चाय पिलाकर तुम इंद्रामन की परी को भी 'फुसला' कर मुट्ठी में कर सकते हो !'

उजागिर ने छोटी दुलहिन की बात याद की और एक दिन घर से निकल पड़ा—कहीं चाय की दूकान पर नौकरी भी मिल जाये, वह करने को तैयार है।

उजागिर उस (शुभ) दिन को कभी भूल सकता है भला !

कुरसेला स्टेशन पर उतरकर वह बहुत देर तक बैठा रहा।

खीरा खरीदकर खाते समय उसको बचपन के एक खेल की याद आयी थी। बच्चे खीरे-ककड़ी के बीज को अँगुलियों में दबाकर कहते, 'फलाने की शादी किधर होगी ? बीज छिटकर जिस ओर गिरे—उधर ही, उसी दिशा में।'

उजागिर ने खीरे के एक बीज को अँगुलियों में दबाकर मन ही मन में कहा था, 'बीज जिस ओर छिटकेगा, मेरी होनेवाली रूपवती दुलहिन उधर ही होगी।'

बीज उत्तर की ओर छिटका और बिना कुछ सोचे-विचारे वह कुरसेला से रानीगंज जानेवाली बस पर जा बैठा था।

कंडक्टर ने पूछा, 'कहाँ जायेगा ?'

उजागिर क्या जवाब दे ? न जाने यह गाड़ी कहाँ-कहाँ जाती है। तब तक बगल के यात्री ने बिरोली का टिकट माँगा और उजागिर ने भी बिरोली तक का

टिकट कटा लिया ।

गाड़ी बिरोली पहुँचकर पकौड़ीवाली सहुआइन की दूकान के सामने रुकी । बिरोली में उतरनेवाले उतर गये । उजागिर बैठा रहा । बिरोली गाँव में उतरकर वह क्या करेगा ? वह आँखें मूँदकर कुछ सोच रहा था कि कंडक्टर ने उसको ठेल-कर जगाया, 'ए, बिरोली आ गया । उतरो ।'

उजागिर ने अपनी झोली सँभाली । अनिच्छापूर्वक उतरा ।

वस से उतरे हुए लोग पकौड़ीवाली दूकान पर थोड़ी देर रुके और जलपान करके चले गये । उजागिर चुपचाप बगल में एक मोढ़े पर बैठा रहा । बूढ़ी सहुआइन ने पकौड़ी की कड़ाही उतारकर उजागिर से पूछा, 'कहाँ जाना है ?'

उजागिर ने कुनमुनाकर जवाब दिया, 'कहीं नहीं । एक आने की पकौड़ी हम को भी चाहिए ।'

बूढ़ी झुंझलायी, 'इतनी देर से मुँह मीकर बैठे रहे । अब कड़ाही उतारने के बाद, एक आने की पकौड़ी ! अब पकौड़ी नहीं, बैंगनी खाना है, तो बोलो, चढ़ाऊँ कड़ाही ?... अरी ओ सितिया ! कब तक बैठकर बैंगन काटेगी ! एँ ? दे जा, जितना हुआ है । गाहक बैठा हुआ है यहाँ ।'

झोपड़े के अंदर से उमी अंदाज से पतली आवाज में जवाब आया, 'कल से मैं काना-कुवड़ा बैंगन नहीं काटूंगी । एक-एक बैंगन में पाँच-पाँच पिल्लू ।'

बूढ़ी ने सितिया नाम की लड़की को 'बैंगन लगाकर' एक भद्दी-सी गाली दी।

सितिया मूँप में बैंगन के टुकड़े लेकर आयी, 'मैं रोज तुमसे कहती हूँ मौसी, परदेसी जातरी के सामने गाली मत बका करो ।'

उजागिर सितिया उर्फ सीता का रूप देखकर पसीने से तर-बतर हो गया था । एक-एक बैंगन में पाँच-पाँच पिल्लू और बैंगन-भरी गाली सुनकर उसको मतली आ रही थी, सो सीता को देखने के बाद ही दूर हो गयी । '...यही है रूप ! यही है रूप !

उमने गला साफ किया, 'माताराम ! एक आने की बैंगनी नहीं, चार आने की ।'

बूढ़ी बोली, 'ऊँ ! ई आदमी का मन रह-रहकर बदलता है । जो बोलना हो, एक ही बार क्यों नहीं बोलते ?'

उजागिर चुप रहा । किंतु गाहक का पक्ष लेकर बोली सीता, 'एक बार बोलो, चाहे हजार बार—तू इस तरह गाहक से बात-बात पर 'रगड़' करेगी तो एक पाई की बैंगनी भी नहीं बिकेगी ।'

बूढ़ी कड़ाही में बैंगनी ढालती हुई बोली, 'बड़ी आयी है 'भतार' का पच्छ लेने !'

जब बूढ़ी और जवान जीभों की 'बतकुट्टी' जोर पकड़ने लगी, तो उजागिर ने

मर्दानगी दिखलायी, 'छिः-छिः, आप लोग इस तरह बेवजह लड़ियेगा तो रखिए अपनी बैंगनी ! ऐसी बैंगनी कौन खाये ?'

सीता बोली, 'लो, मुनती है ? अब छानो बैठकर चार आने की बैंगनी । देखूँ कौन खाता है ?'

बूढ़ी बोली, 'नहीं खायेगा, तो पैसे दे जायेगा ।'

सीता ने उजागिर को पहली बार नजर उठाकर देखा और मुंह की बात मुंह में रखकर अंदर चली गयी ।

उजागिर बैठकर सोचता रहा, 'चार आने की बैंगनी वह खा सकेगा ? यह चंगेरी-भर बैंगनी !'

बूढ़ी सहुआइन ने फिर पुकारा, 'अरी, ओ सितिया ! पत्तल कहाँ है ? बैंगनी तेरे कपाल पर परोसूँ ?'

उजागिर बैंगनी खाने लगा । तब बूढ़ी ने नरम मुर मे कहा, 'भैया, बुरा मत मानना । मुंहजली सितिया सीधी बात कभी मुनती ही नहीं । ठहरो, मैं पानी ला दूँ ।'

बूढ़ी क उठने के पहले ही सितिया पानी दे गयी, 'मैं जानती हूँ । अब गाडी आने का समय हुआ तो, तू कोई न कोई बहाना बनाकर चूल्हे के पाम से उठेगी ही । कड़ाही उठाकर सडक पर फेंक दूंगी । हाँ !'

बूढ़ी बैठ गयी फिर । वह कोई भद्दी गाली जीभ पर चढ़ा रही थी कि उजागिर ने टोक दिया, 'यहाँ एक चाह की दूकान खूब चलेगी, माताराम !'

सहुआइन ने पोपले मुंह को तनिक विकृत करके पूछा, 'क्या चलेगी खूब ?'

'चाह की दूकान ।'

'कौन खोलेगा ?'

'कोई भी खोले, चलेगी खूब ।'

बूढ़ी अब कुढ़कर बोली, 'आग लगे चाह की दूकान में । एक पकौड़ी के चूल्हे में ही मेरी हड्डी जलकर 'छार' हो रही है ।'

सीता ने इस बार फिर उजागिर को देखा । चाह की दूकान की बात सुनकर ही उसने ऐसी निगाह से 'हेरा' है । उजागिर बोला, 'चाह में अठगुना नफा है । चार आने के माल में दो रुपये मुनाफा !'

'दो रुपये !' बूढ़ी मौसी और जवान सीता ने एक ही साथ अचरज-भरे स्वर में कहा, 'दो रुपये ?'

बूढ़ी कुछ क्षण चुप रहने के बाद बोली, 'रहने दो, बाबा, मुनाफा । यहाँ चाह कौन पियेगा ?'

सीता ने कहा, 'मिलने पर सभी पियेगा ।'

उजागिर बोला, 'वाजिब बात ।'

बूढ़ी ने छनौटा चमकाकर पृष्ठा, 'मैं पूछती हूँ, चाह बनायेगा कौन, तेरा भतार ? ए ?'

सीता ने इग बार जवाबी गाली दी, 'मेरा नहीं, तेरा !'

आश्चर्य ! गाली सुनकर पोपली बूढ़ी हँस पड़ी। सीता भी हँसी और उजागिर का कलेजा जोर से घड़कने लगा। कुछ देर तक चुप रहने के बाद उसने तौलकर बात शुरू की, 'हाँ, चाह की दूकान तो मर्द-पुरुष ही चला सकता है।'

बूढ़ी ने लंबी साँस ली। सीता फिर आँगन के अंदर चली गयी।

उजागिर बहुत देर तक बूढ़ी मौसी को विस्तारपूर्वक चाय की दूकान की योजना के संबंध में सम्मत्ता रहा।

दूसरी गाड़ी के लौटने के पहले ही उजागिर ने बूढ़ी को अपनी मीठी बोली से मोह लिया, 'माताराम ! आप लोगों की मर्जी हो तो मैं आज ही जाकर सामान ले आऊँ।'

'तुम्हारा घर कहाँ है ?'

'रहिकपुर।'

'कौन जात ? ... अरे, तब तो बिरादरी के ही निकले।'

बात पक्की हो गयी।

उजागिर कुरसेला बाजार आया और चाय की दूकान का सारा सामान खरीदकर रात की गाड़ी से ही वापस लौटा। बूढ़ी ने कहा, 'अरे, तुम सचमुच लौट आये ? मैं तो समझ रही थी कि कोई लुच्चा-लबड़ा आकर ऊन का दून हाँककर चला गया।'

अंदर सीता ने झिड़की दी, 'मौसी, तू बूढ़ी हुई, लेकिन आदमी को पहचानना नहीं आया।'

चाय की दूकान का सामान देखकर बूढ़ी और जवान आँखें अचरज से बड़ी हो गयीं, 'इतना सामान लगता है चाह की दूकान में ?'

रात में सीता ने अपने हाथ से भात-दाल परोसकर खिलाया था—पहली बार। पुरानी बातें याद करके आज भी उजागिर की देह सुड़सुड़ाने लगती है। सीता की बोली, सीता की हँसी। सीता का चलना-फिरना। दिन-रात उजागिर मानो सपनों की दुनिया में ही रहता था—रूप पीकर जीता था।

चाय की दूकान खुली और चल निकली।

गाँव-भर में बात फैल गयी, 'बूढ़ी सहुआइन का एक रिश्तेदार आया है। चाय की दूकान खोले है। अब पियो घर बैठे—चाह गरमागरम !'

बस के ड्राइवर, कंडक्टर, पैसेंजर, क्लीनर ने एक स्वर से प्रशंसा की, 'अलबत्त चाह बनाता है जवान ! चलेगी दूकान।'

लेकिन, चाय की दूकान छः महीने भी नहीं चल सकी। पाँचवें महीने में ही

सीता ने उजागिर को उकसाया, 'क्यों ? तुम्हारा कलेजा इतना छोटा है ? बूढ़ी मे माफ-माफ कहने क्यों नहीं ?'

'यदि बूढ़ी 'नकार' जाये ?'

'बला से । पहले कहके देखो ।'

'यदि कहे 'घरजमाई' रहना पड़ेगा ?'

'अभी मान लेना । बाद में फिर...'

बूढ़ी मौसी आँख में कम देखनी थी और कान में जरा कम सुनती थी । किन्तु बिना कुछ देखे-सुने ही वह सब-कुछ समझ चुकी थी । इसलिए जिम दिन उजागिर ने हकला-तुतलाकर प्रस्ताव किया था, बूढ़ी ने एक भद्दी गाली दी थी, 'सौ बार सतुअन और भतार के आगे दतुअन । अब बाकी ही क्या रहा है ?... छुतहर-कलस में अब कौन पड़ित-पुरोहित वेद-मंतर पढ़ेगा ?... खूब पियो गरमागरम चाह ।'

बूढ़ी सहुआइन अपनी पकीड़ी की दूकान पर बैठी आज भी गालियाँ दे रही होगी, 'उस मिठवचना ने आते ही चाह पिलाकर इस मुई को मुट्ठी में कर लिया ।... दिन रात खुमुर-फुमुर मैं नहीं देख सकती थी । जवाब दे दिया, तुम लोग अपना गस्ता देखो ।'

और, इसी को कहते हैं 'तिरिया के भाग से मिले - १ !'

सीता नहीं, लक्ष्मी !

रानीगंज से कुरसेला जानेवाली बस पर सवार होकर, रूपवाली दुलहिन को साथ लेकर उजागिर गाँव लौट आया । लौटकर उसने सुना, 'इधर भी नयी सड़क खुलने वाली है । बहुत जल्दी ही !'

सचमुच, लक्ष्मी है प्रदीपकुमार की माय !

बनने वाली नयी सड़क के ठेकेदार ने उजागिर की झोंपड़ी में ही डेरा डाला था ।

गाँव के लोगो ने घुमा-फिराकर उजागिर को समझाया, 'घर में जवान और खूबसूरत बहू और बाहर 'पलानी' में परदेसी का बासा, अच्छी बात नहीं ।'

संतोषीसिध जब मिलता, दिन-दहाड़े 'चमचोरी' की कोई कहानी सुनाना नहीं भूलता । उजागिर घर लौटकर अपनी रूपवती को निहारने हुए कहता, 'जानती हो, गाँव के लोग क्या कहते हैं ?'

'गाँव के लोगों की बात सुनोगे या ठेकेदारजी की ? ठेकेदारजी कहते हैं, सड़क जब खुलेगी, चाह और पकीड़ी की दूकान तब खोलना । अभी इतने 'जन-मजूरे' काम कर रहे हैं । अभी चावल-दाल की दूकान खोल दो । मजदूरो को

उधार खिलाओ और हफ्ता के बाद एक का डेढ़ बसूलो । यही मीका है ।'

'मच ? और यदि उधार खाकर भाग जायें सभी—तब ?'

'भागकर कहाँ जायेंगे ? उनकी चुटिया तो ठेकेदारजी के हाथ में है ।'

'मच ? तुम ठीक कहती हो बिरोलीवाली । ठेकेदार साहब सचमुच बहुत अच्छे आदमी हैं ।'

'ए ? तुम मुझे बिरोलीवाली क्यों कहते हो ? मुझे अच्छा नहीं लगता ।'

'तब क्या कहूँ ?' उजागिर खिलखिलाकर हँसता, 'ओ ! अब मैं भी ठेकेदार साहब का दिया हुआ नाम ही कहूँगा, रेशमबहू । ठेकेदार साहब सचमुच बहुत अच्छे आदमी हैं ।'

गाँव के आपारा नौजवानों ने उजागिर को चिढ़ाने के लिए एक बोली निकाली, 'ठेकेदार साहब सचमुच अच्छे आदमी हैं ।'

अच्छे आदमी को अच्छा आदमी नहीं कहे, तो क्या कहे ? गाँव के लोग जलते हैं । उजागिर की बहू रूपवती है । मुलच्छनवाली है । है किसी की बहू ऐसी, गाँव में, जिसके आने ही गाँव में नयी मड़क खुल गयी, इलाके में ? चावल-दाल की छोटी-सी दूकान खोलकर, पाँच ही महीने में दस बीघे जमीन किसने खरीदी है ? लोग तो जलेंगे ही । ठेकेदार साहब अंग्रेजी में चिट्ठी लिखते हैं । है कोई अंग्रेजिया इस गाँव में ? रेशमबहू ठीक ही कहती है—काम ऐसा करो कि 'देख पड़ोसी जल मरे ।'

बबुआ का जब जन्म हुआ, तो ठेकेदार साहब ने चमड़े की थैली से पचीस रुपये निकालकर मुँह-दिखायी दी थी । छठी की रात में, खुशी के मारे रात-भर बैठकर गमन बाँचते रहे । और यह प्रदीपकुमार नाम भी उन्हीं का रखा हुआ है । गाँव के दुःखमोचन पंडित ने तो बम, पतामू नाम रख दिया था । भला, पतामू भी कोई नाम है !

पता नहीं ठेकेदार साहब आजकल किम इलाके में हैं । कहीं भी रहें, आदमी अच्छे हैं । प्रदीपकुमार की माय आज भी हर महीने याद करती है । बोले थे कि बीच-बीच में आकर प्रदीपकुमार को देख जायेंगे ।

उस दिन छितनू का रमडोलवा बेटा कह रहा था कि प्रदीपकुमार का मुँह ठीक ठेकेदार साहब जैसा है । पागल है साला !

लाल गाड़ी के ड्राइवरजी भी बहुत भले आदमी हैं । रोज कहते, 'देखो, उजागिर भाई, चूल्हे के पाम बैठने-बैठने प्रदीपकुमार की माय का रंग बादामी हो गया है । देह में गमकीआ पीडर लगाने से रंग ठीक रहेगा ।' और दूसरे ही दिन एक डिब्बा पीडर खरीदते आये—पुरनिया साहा कंपनी से । ऐसा भला आदमी, इस गाँव में क्या, इस इलाके में भी खोजने पर न मिलेगा ।

यह नये दारोगा साहब भी हीरा आदमी हैं । कह रहे थे, इसपी साहब तुम्हारे

पकौड़े की खूब तारीफ करते हैं। और, जोगबनी के लाला के बेटे की जीभ तो नाम से ही 'पनिया' जाती है। बारह बजे रात में, गाड़ी पर दारोगा साहेब के साथ आता है और चुराकर पकौड़े खाता है। बंणव लाला, जिसके चौके में प्याज नहीं चढ़ता है कभी, वह उजागिर की दूकान में बैठकर कंसे खा सकता है प्याजवाले पकौड़े ? प्रदीपकुमार की माय कहती है, लाला का बेटा एकदम गी जैसा सीधा है। जरा दुबला-पतला है, इसलिए पकौड़े के साथ चाह नहीं, अंग्रेजी दारू पीता है। उस रात को प्रदीपकुमार की माय की देह में दर्द था साँझ से ही। दारोगा साहेब ने कहा—एक गिलास ले आओ। एक घूंट पीते ही सब दर्द छूमंतर हो जायेगा। सचमुच ! हुआ भी वही। साँझ से ही कुहरती हुई प्रदीपकुमार की माय टनटनाकर बोल उठी और लाला के बेटे से मुँहा-मुँही गप करने लगी। लक्ष्मी है प्रदीपकुमार की माय !

तीन बजेवाली गाड़ी आ रही है।

'कहाँ हो, बबुआ ! माय से कहो कि तिनबज्जी गाड़ी आ रही है। मेरे बिपाट का सब काम रेंट है।'

"बबुआ ! प्रदीपकुमार ! माय कहाँ ?"

प्रदीपकुमार मुबह की मीठी नींद में सोया हुआ था। उजागिर चुपचाप बैठकर बीड़ी पीने लगा। आज इतना सबेरे ही प्रदीपकुमार की माय कहाँ गयी है ? तबीयत खराब है क्या ? नहीं, लाल गाड़ी के ड्राइवरजी ठीक ही कहते हैं—जान है तो जहान है। प्रदीपकुमार की माय दिन-भर चूल्हे के पास बंठी रहती है, यह ठीक नहीं। पकौड़ी बनाने के लिए, सुगनी की माय को मजदूरी देकर रखना होगा।

उजागिर बैठा रहा। जब भुसकुवा तारा डूब गया और उजाला हुआ और प्रदीपकुमार की माय कोठरी में नहीं आयी, तो वह बाहर निकला। बाहर बर्तन-बासन सब बिखरे पड़े हैं। दोनों लोटे भी हैं। तब कहाँ गयी ?

उजागिर ने कोठरी में आकर देखा—पेटो खुली पड़ी हुई है—रेशमी साड़ी और रेशमी बिलौज क्या हुआ ? लगा, धरती अचानक घूमने लगी। उसने बिल्लाकर अपने बेटे को जगाया, "बेटा ! बबुआ !! प्रदीपकुमार—माय कहाँ ?"

प्रदीपकुमार उठकर जोर-जोर से रोने लगा, "मैया कहाँ आँसू आँसू ?"

प्रदीपकुमार को चुप कराने के लिए उजागिर ने अपने को संभाला। फिर बोला, "बेटा, माय गंगा तीर का मेला गयी है। दोपहर की बरबज्जी (बारह बजे वाली) गाड़ी में आवेगी।"

उमने अपने मन को भी समझाया, 'कहाँ जायेगी ? कही काम से ही गयी होगी।'

मुबह की गाड़ियों के आने का समय हुआ । संतोखीसिध ठीक समय पर ही आया । उसने आते ही टोका, “आज पकोड़ी का चूल्हा नहीं मुलगा है ?”

उजागिर ने जवाब दिया, “प्रदीपकुमार की माय की मौसी का संवाद आया कि वह लबेजान है । इसलिए रात की गाड़ी से ही चली गयी ।”

प्रदीपकुमार ने कहा कि, “मैया गंगा-तीर का मेला गयी है ।”

संतोखीसिध ने पुराने दफादारी की तरह जिरह करते हुए पूछा, “रात में तो सादा गाड़ी लौटी नहीं । फिर किस गाड़ी में गयी ?”

उजागिर ने आज बिना ‘बोहनी’ हुए ही सतोखीसिध को चाय का बड़ा गिलास दिया । सतोखीसिध ने चाय पीते हुए कहा, “जमाना बहुत खराब है । जनाना जात अकेली बाहर जाये...।”

दोनों ओर से गाड़ियाँ आयी । उजागिर ने लाल गाड़ी की ओर देखा... नया ड्राइवर ? “लाल गाड़ी के ड्राइवरजी कहाँ गये ?” “छुट्टी में ?” “कितने दिन की छुट्टी ?” “आज पकोड़े नहीं, सिर्फ चाह मिलेगी, भैया !”

दोपहर के बाद उजागिर ने दूकान बंद कर दी ।

उसका दिन अंदर ही अंदर टूटने लगता । तब वह जोर-जोर से रोना चाहता । लेकिन प्रदीपकुमार का मुँह देखकर वह अपने को संभाल लेता । वही रोने लगेगा, तो बच्चे की क्या दुर्दशा होगी !

“बप्पा ! बरवज्जी गाड़ी आ रही है ।”

प्रदीपकुमार की माय नहीं आयी । “बेटा, अभी नहीं आयी तो ‘तिनबज्जी’ गाड़ी से आवेगी ।”

“बप्पा ! तिनबज्जी गाड़ी आ रही है ।”

“नहीं आयी ।”

इस बार बाप-बेटा मिलकर आँगन में रोने लगे । जब प्रदीपकुमार हिचकियाँ लेते हुए दाँत पर दाँत बैठाकर घिघियाते लगा, तब उजागिर को होश हुआ । उसने आँसू पोछकर कहा, “रात की गाड़ी में जरूर आवेगी । तुम्हारे लिए बिस्कुट लावेगी ।...खिलौने !”

प्रदीपकुमार की माय रात की गाड़ी से ही आयी ।

“आ गयी, मैया ! मैया आ गयी ।”

प्रदीपकुमार जोर-जोर से रोने लगा । उजागिर भी रोने लगा, “कहाँ चली गयी थीं तुम, प्रदीपकुमार की माय-य-य ?”

“लो, लो, क्या हो गया है तुम दोनों को ?”

“कहाँ गयी थी ? किस गाड़ी में गयी ?”

“काम में गयी थी, पुरैनिया । गाड़ी में नहीं, ट्रक में गयी थी ।”

‘कहकर जाती ।’

“काम के पहले, बात कही नहीं जाती।”

प्रदीपकुमार खिलौना पाकर खुश हो गया। उसी माँ ने गठरी से बिस्कुट का डिब्बा निकाला। उजागिर चुपचाप, अपलक दृष्टि में देखता रहा—कितने दिनों के बाद प्रदीपकुमार की माय ने रेशमी साड़ी पहनी है।...रूप जरा भी मलिन नहीं हुआ है। कौन कहता है कि गाँव का रूप साल लौटते ही ढल जाता है।

अब, प्रदीपकुमार की माय ने आँचल की खूंट में कागज का एक टुकड़ा निकालकर दिखलाते हुए कहा, “बोलो तो क्या है?”

उजागिर ने लालटेन की रोशनी में कागज को उलट-पलटकर देखा, “भगवान जानें क्या है! बोलो न, क्या है? देखने में तो मरकारी कागज जैसा लगता है।”

प्रदीपकुमार की माय हँसी, “ठीक ही पहचाना है तुमने। मरकारी कागज ही है।...परमिट।”

“परमिट? किस चीज की परमिट?”

“मीमेंट, कोयला और लोहे के छड की।”

“क्या व रेशमी परमिट?”

प्रदीपकुमार की माय बोल उठी, “गाँव के दुश्मनों को जरा और भी अच्छी तरह जलाऊँगी।”

“जलायेंगी! मानें? ओ-हो, समझा। पक्का घर है? मच कहना हूँ, प्रदीप-कुमार की माय, तुम धन्य हो। अच्छा किया तुमने जो मुझसे पहले ही नहीं कहा। इतनी बड़ी बात मेर पेट में हरगिज नहीं पचती। मच कहता हूँ, मैं पागल हो जाऊँगा। मच, तुम लछमी हो—माच्छात्!”

“मैं क्या किया? मच लाल गाड़ी के ड्राइवरजी की मेहरबानी है। हाकिम कं किरानी से उनकी दोस्ती है।...और जानते हो—इसी परमिट में घर बनाने का बाधा रुपया भी निकलेगा।”

“तो कैसे?”

“देखना, आन दो लालाजी के बेटे को।”

“मच? हद है! हद है! कल मानें सताखीमिघ को पाँच गिलास चाय बोहनी में पहले ही पिनाऊँगा।...अब तुमको क्या कहें, प्रदीपकुमार की माय?”

“रेशमबहू।”

“हि हि हि हि!”

उजागिर कंधे की नीब पड़ गयो। एक बाँम में पुराना झाड़ बाँधकर गाड़ दिया गया—बुरी नजर को काटने के लिए। गाँव के लोग मन-हो-मन जल-धुनकर

खाक होने लगें ।

कितु इधर कई दिनों से उजागिर का मन भी अदर-ही-अदर सुलग रहा है । न जाने क्यों ? परमिट का कागज लालाजी के बेटे को देकर, ईंट-सीमेंट-सोहा लिया गया । ठीक है । लालाजी के बेटे ने परमिट लेते समय प्रदीप की माय की अँगुलियाँ टीप दी थीं । इसमें भी कोई हर्ज नहीं । दारोगाजी ने उस दिन दारू के झोक में कबूतरी कह दिया । मरकारी आदमी का सात खून माफ है । लाल गाड़ी के ड्राइवरजी ने होली के दिन गाल पर अबीर लगा दिया । होली की बात ! फिर ड्राइवरजी भले आदमी है । लेकिन...

केतली का खोलता हुआ पानी टोटी से गिरने लगा । प्रदीपकुमार की माय ने कहा, “लो, लो । तुम्हारा ध्यान कहाँ है ? होश में हो या...?”

उजागिर बोला, “खूब होश में हूँ ।”

उसने केतली उतार दी । मकान बनानेवाला यह छुछुंदर-मुंहा राज-मिस्तरी बिना कहे-सुने आँगन के अंदर क्यों गया ? जाने के पहले प्रदीपकुमार की माय को उस तरह आँख की मटकी क्यों मार गया ? प्रदीपकुमार की माय उस तरह हँसी क्यों ? उठकर आँगन में गयी क्यों ?

उजागिर का मन घुएँ से भर गया मानो ।

उसने पुकारा, “बबुआ ! बेटा प्रदीपकुमार !”

प्रदीपकुमार आया । उसका मुँह भी तमतमाया हुआ है । उजागिर ने धीरे से पूछा, “बबुआ, माय कहाँ है ? क्या कर रही है ?”

प्रदीपकुमार बोला, “बप्पा, मिस्तरी बड़ा बदमाश है । हमको पतासू कहता है ।”

उजागिर गुस्सा से वपदपा उठा । उस छुछुंदर-मुंहा की इतनी हिम्मत ! मेरे बेटे को, प्रदीपकुमार को पतासू कहेगा ?

वह उठकर दहलीज के पास गया । आँगन में धुन-धुन करके क्या प्राइविट बात हो रही है ? आमने-सामने बैठकर ? मिस्तरी माला इम तरह जाँघ के कपड़े हटाकर क्यों बैठा है ?

उजागिर के सिर पर अँगीठी जलने लगी मानो, वह आँगन में जाकर गरजा, “मिस्तरी ! दीवाल की गँघाई यही हो रही है क्या ?”

मिस्तरी अप्रतिभ होकर उठा । हँसती हुई प्रदीपकुमार की माय भी चौक पड़ी । उजागिर ने धड़ाम से दहलीज का दरवाजा बंद कर दिया ।

प्रदीपकुमार की माय उजागिर की आँखें देखकर डर गयी । उजागिर ओठ को दाँतों से भीचता हुआ उसके पाम गया । फिर धीरे से बोला, “तू कुत्ती है ! कुत्ती ! कुतिया !”

प्रदीपकुमार की माय ने आवाज ऊँची करके कहा, “क्या हो गया है तुमको ?”

उजागिर चुपचाप अपनी कोठरी में चला गया। अंदर में ही उसने पुकारा,
“बंटा ! प्रदीपकुमार ! यहाँ आओ।”

प्रदीपकुमार अपने बाप के पास चला गया। बाहर, दूकान में चूल्हे सुलगते
रहे।

गाड़ियाँ आयी। झाड़वरो ने हॉर्न बजा-बजाकर पुकारा। संतोषीमिष ने
आवाज दी। आँगन से कोई जवाब नहीं मिला। किमी ने कहा, “भाई अब पक्का
मकान बनवा रहा है। दूकान पर क्यों बैठेगा?”

गाड़ियाँ आती, रुकती, हॉर्न देती, फिर चली जाती।

दिन-भर उजागिर घर से नहीं निकला। प्रदीपकुमार भी दम साधकर बाप
के बगल में पड़ा रहा। प्रदीपकुमार की माय ओसारे पर बैठी गुन-गुन सुर में,
धीरे-धीरे रोती रही।

साँझ हुई। उजागिर उठा और प्रदीपकुमार की माय के पास जाकर बोला,
“उम छुछुंदर-नुहे मिस्तरी के साथ जाती क्यों नहीं, हरामजादी ! निकल जा मेरे
आँगन से।”

प्रदीपकुमार का माय बोली, “इतनी तेजी है तो कल में तुम्ही देखो जन-
मजदूरो को। पक्का घर बनवाना खेन...”

“जहन्नुम में जाये माली तेरा पक्का घर !”

“और दूकान पर हजारों लोगों के मामले...?”

“आग लगे तेरी दूकान में।”

उजागिर बाहर गया और लात मारकर दोनों चूल्हों को तोड़-फोड़ आया।
दहलीज का दरवाजा बंद करते हुए बोला, “निकल जा, पिछवाड़े की राह चुप-
चाप। नहीं तो आज खून कर डालूँगा।”

अब प्रदीपकुमार रोने लगा। उजागिर उसको गोद में लेकर अपनी कोठरी
में चला गया। प्रदीपकुमार की माय ओसारे पर ही बैठी रही। प्रदीपकुमार
रोते-रोते सो गया।

साँझ बीती। रात आयी। मडक पर एक ट्रैक्टर भडभड़ाता हुआ चला गया।
उजागिर ने बाहर निकलकर देखा, प्रदीपकुमार की माय ओसारे पर ही लेट
गयी है।

उजागिर दब पाँव उसके पास गया। “...जाकर मिस्तरी की खटिया पर क्यों
नहीं सोती ? नखरा पमागकर यहाँ जमीन पर क्यों मोयी है ?”

उजागिर ने धक्का दिया, “उठ माली ! तिरिया-चरित्तर कही और जाकर
दिखला।”

प्रदीपकुमार की माय उठकर बैठ गयी और दोनों हाथों में उजागिर का पाँव
पकड़कर बोली, “प्रदीप के बाबू ! तुम्हारे पैर पड़नी हैं। मरा गला घोटकर मार

डालो !...मार डालो मुझे !”

उजागिर ने दोनों हाथों से उसकी गर्दन को झपटकर पकड़ा। लंबे बाल छितरा गये, खुलकर, “हाँ, मार डालूंगा।”

“मार डालो। मैं जीना नहीं चाहती।”

“मार डालूंगा, गला टीपकर। हरामजादी !”

“मारो। प्रदीप के बा...! आ...आक !”

“बोल, कल से तू अग्न के बाहर पैर रखेगी ?”

“नहीं रखूंगी।”

“किसी से हँसेगी-बोलेगी नहीं। बोल !”

...“नहीं।”

“मिस्तरी से ?”

...“नहीं।”

“दारोगा से ?”

...“नहीं।”

“उम लाला के बेटे से ?”

...“नहीं।”

“लाल गाड़ी के ड्राइवर से ?”

...“नहीं ! नहीं ! नहीं !...प्रदीप के बाबू-उ-उ !...”

प्रदीप की माय उजागिर की छाती से मुँह सटाकर बिलबुने लगी। उमे लगा, विवाह के बाद आज पहली बार वह अपने घरवाले के साथ—अपने पुरुष के साथ मुहागरात मना रही है।...अंग-अंग से मिहरन...लहरे...तूफान...प्रदीप के बाबू, मुझे मार...डा...लो...मार...डालो !!

सड़क से एक ट्रक हड़बड़ाती हुई गुजर गयी।

संवदिया

हरगोबिन को अचरज हुआ—तो, आज भी किमी को संवदिया की जरूरत पड़ सकती है ! इस जमाने में, जबकि गाँव-गाँव में डाकघर खुल गये हैं, संवदिया के मार्फत संवाद क्यों भेजना कोई ? आज तो आदमी घर बैठे ही लंका तक खबर भेज सकता है और वहाँ का कुशल-संवाद भेज सकता है । फिर उसकी बुलाहट क्यों हुई ?

हरगोबिन बड़ी हवेली की टूटी ड्योढ़ी पार कर अंदर गया । सदा की भाँति उसने वातावरण को सूँघकर संवाद का अंदाज लगाया । '...निश्चय कोई गुप्त समाचार ले जाना है । चाँद-मूरज को भी नहीं मालूम हो । परेवा-पंछी तक न जाने ।

“पाँव लागी बड़ी बहुरिया !”

बड़ी हवेली की बड़ी बहुरिया ने हरगोबिन को पीढ़ी दी और आँख के इशारे से कुछ देर चुपचाप बैठने को कहा । बड़ी हवेली अब नाममात्र को ही बड़ी हवेली है । जहाँ दिन-रात नौकर-नौकरानियों और जन-मजदूरों की भीड़ लगी रहती थी, वहाँ आज हवेली की बड़ी बहुरिया अपने हाथ से सूप में अनाज लेकर झटक रही है । इन हाथों में सिर्फ मेहँदी लगाकर ही गाँव की नाइन परिवार पालती थी । कहाँ गये वे दिन ? हरगोबिन ने लंबी साँस ली ।

बड़े भैया के मरने के बाद ही जैसे सब खेल खत्म हो गया । तीनों भाइयों ने आपस में लड़ाई-झगड़ा शुरू किया । रैंपतो ने जमीन पर दावे करके दखल किया, फिर तीनों भाई गाँव छोड़कर शहर में जा बसे, रह गयी बड़ी बहुरिया—कहाँ जाती बेचारी ! भगवान् भले आदमी को ही कष्ट देते हैं । नहीं तो एक घंटे की बीमारी में बड़े भैया क्यों मरते ? ...बड़ी बहुरिया की देह से जेवर खींच-छीनकर बँटवारे की लीला हुई थी । हरगोबिन ने देखी है अपनी आँखों से द्रौपदी-चीर-हरण लीला ! बनारसी साड़ी को तीन टुकड़े करके बँटवारा किया था, निर्दय भाइयों ने । बेचारी बड़ी बहुरिया !

गाँव की मोदिआइन बूढ़ी न जाने कब से आँगन में बैठकर बड़बड़ा रही थी, “उधार का सौदा खाने में बड़ा मीठा लगता है और दाम देते समय मोदिआइन की बात कड़वी लगती है। मैं आज दाम लेकर ही उठूंगी।”

बड़ी बहुरिया ने कोई जवाब नहीं दिया।

हरगोबिन ने फिर लबी साँस ली। जब तक यह मोदिआइन आँगन से नहीं टलती, बड़ी बहुरिया हरगोबिन से कुछ नहीं बोलेगी। वह अब चुप नहीं रह सका, “मोदिआइन काकी, बाकी-बकाया वसूलने का यह काबुली-कायदा तो तुमने खूब सीखा है।”

‘काबुली-कायदा’ सुनते ही मोदिआइन तमककर खड़ी हो गयी, “चुप रह मुंह-झोसे ! निमोछिये....!”

“क्या करूँ काकी, भगवान् ने मूँछ-दाढ़ी दी नहीं, न काबुली आगा साहब की तरह गुलजार दाढ़ी....!”

“फिर काबुल का नाम लिया तो जीभ पकड़कर खीच लूँगी।”

हरगोबिन ने जीभ बाहर निकालकर दिखलायी। अर्थात्—खीच ले।

...पाँच साल पहले गुल मुहम्मद आगा उधार कपड़ा लगाने के लिए गाँव में आता था और मोदिआइन के ओसारे पर दूकान लगाकर बैठता था। आगा कपड़ा देते समय बहुत मीठा बोलता और वसूली के समय जोर-जुल्म से एक का दो वसूलता। एक बार कई उधार लेनवालों ने मिलकर काबुली की ऐमी मरम्मत कर दी कि फिर लोटकर गाँव में नहीं आया। लेकिन इसके बाद ही दुखनी मोदिआइन लाल मोदिआइन हो गयी। ...काबुली क्या, काबुली बादाम के नाम से भी चिढ़ने लगी मोदिआइन। गाँव के नाचनेवालों ने नाच में काबुली का स्वागत किया था। ‘तुम अमूरा मुलुक जायेगा मोदिआइन ? अम काबुली बादाम-पिस्ता-अकरोट किलायगा....!’

मोदिआइन बड़बड़ाती, गाली दती हुई चली गयी तो बड़ी बहुरिया ने हरगोबिन से कहा, “हरगोबिन भाई, तुमको एक सवाद ले जाना है। आज ही। बोलो, जाओगे न ?”

“कहाँ ?”

“भेरी माँ के पास।”

हरगोबिन बड़ी बहुरिया की छलछलायी आँखों में डूब गया, “कहिए, क्या सवाद है ?”

सवाद सुनाते समय बड़ी बहुरिया सिमकने लगी। हरगोबिन की आँखें भी भर आयी। ... बड़ी हवेली की लक्ष्मी को पहली बार उस तरह सिमकते दखा है हरगोबिन ने। वह बोला, “बड़ी बहुरिया, दिल का कड़ा काजिये।”

“और कितना कड़ा करूँ दिल ? ... माँ से कहना, मैं भाई-भाभियों की नौकरी

करके पेट पालूंगी। बच्चों की जूठन खाकर एक कोने में पड़ी रहूँगी, लेकिन यहाँ अब नहीं... अब नहीं रह सकूँगी।... कहना, यदि माँ मुझे यहाँ से नहीं ले जायेगी तो मैं किसी दिन गले में घड़ा बाँधकर पोखरे में डूब मरूँगी।... बथुआ-साग खाकर कब तक जीऊँ ? किसलिए... किसके लिए ?”

हरगोबिन का रोम-रोम कलपने लगा। देवर-देवरानियाँ भी कितने बेदरद हैं ! ठीक अगहनी धान के समय बाल-बच्चों को लेकर शहर में आयेंगे। दस-पंद्रह दिनों में कर्ज-उधार की ढेरी लगाकर, वापस जाते समय दो-दो मन के हिसाब से चावल-चूड़ा ले जायेंगे। फिर आम के मौसम में आकर हाजिर। कच्चा-पक्का आम तोड़कर बोरियों में बंद करके चले जायेंगे। फिर उलटकर कभी नहीं देखते... राक्षस हैं सब !

बड़ी बहुरिया आंचल के खूंट से पाँच रुपये का एक गंदा नोट निकालकर बोली, “पूरा राह-खर्च भी नहीं जुटा सकी। आने का खर्चा माँ से माँग लेना। उम्मीद है, भैया तुम्हारे साथ ही आवेंगे।”

हरगोबिन बोला, “बड़ी बहुरिया, राह-खर्च देने की जरूरत नहीं। मैं इंतजाम कर लूँगा।”

“तुम कहाँ से इंतजाम करोगे ?”

“मैं आज दस बजे की गाड़ी से ही जा रहा हूँ।”

बड़ी बहुरिया हाथ में नोट लेकर चुपचाप, भावशून्य दृष्टि से हरगोबिन को देखती रही। हरगोबिन हवेली से बाहर आ गया। उमने सुना, बड़ी बहुरिया कह रही थी, “मैं तुम्हारी राह देख रही हूँ।”

संवदिया !... अर्थात् संदेशवाहक !

हरगोबिन संवदिया !... संवाद पहुँचाने का काम सभी नहीं कर सकते। आदमी भगवान् के घर से ही संवदिया बनकर आता है। संवाद के प्रत्येक शब्द को याद रखना, ज़िम मुर और रवर में संवाद सुनाया गया है, ठीक उसी ढंग से जाकर सुनाना महज काम नहीं। गाँव के लोगों की गलत धारणा है कि निठल्ला, काम-चोर और पेटू आदमी ही संवदिया का काम करता है। न आगे नाथ, न पीछे पगहा। बिना मजदूरी लिये ही जो गाँव-गाँव संवाद पहुँचावे, उसको और क्या कहेंगे !... औरतों का गुलाम। जरा-सी मीठी बोली सुनकर ही नशे में आ जाये, ऐसे मर्द को भी भला मर्द कहेंगे ? किंतु, गाँव में कौन ऐसा है, ज़िमके घर की माँ-बहू-बेटी का संवाद हरगोबिन ने नहीं पहुँचाया है।... लेकिन ऐसा संवाद पहली बार ले जा रहा है वह।

गाड़ी पर सवार होते ही हरगोबिन को पुःने दिनों और संवादों की याद आने लगी। एक करुण गीत की भूली हुई कड़ी फिर उसके कानों के पास गूँजने लगी।

‘पैवा पड़ू दाही घळू’...

हमारो संवाद ले ले जाहु रे संवदिया-या-या !...

बड़ी बहुरिया के संवाद का प्रत्येक शब्द उसके मन में काँटे की तरह चुभ रहा है—किसके भरोसे यहाँ रहूँगी ? एक नौकर या, वह भी कल भाग गया। गाय छूँटे से बैँधी भूखी-प्यासी हिकर रही है। मैं किसके लिए इतना दुःख झेलूँ ?

हरगोबिन ने अपने पास बैठे हुए एक यात्री से पूछा, “क्यों भाई साहेब, याना बिहपुर में डाकगाड़ी रुकती है या नहीं ?”

यात्री ने मानो कुढ़कर कहा, “याना बिहपुर में सभी गाड़ियाँ रुकती है।”

हरगोबिन ने भीप लिया, यह आदमी चिड़चिड़े स्वभाव का है, इससे कोई बातचीत नहीं जमेगी। वह फिर बड़ी बहुरिया के संवाद को मन-ही-मन दुहराने लगा...लेकिन, संवाद सुनाते समय वह अपने कलेजे को कैसे संभाल सकेगा ! बड़ी बहुरिया संवाद कहते समय जहाँ-जहाँ रोयी है, वहाँ भी रोयेगा !

कटिहार जंक्शन पहुँचकर उमने देखा, पंद्रह-बीस साल में बहुत कुछ बदल गया है। अब स्टेशन पर उतरकर किसी से कुछ पूछने की कोई जरूरत नहीं। गाड़ी पहुँची और तुरंत भोंपे से आवाज अपने-आप निकलने लगी—याना बिहपुर, खगड़िया और बरोनी जाने वाले यात्री तीन नंबर प्लेटफार्म पर चले जायें। गाड़ी लगी हुई है।

हरगोबिन प्रमत्न हुआ—कटिहार पहुँचने के बाद ही मालूम होता है कि सचमुच सुराज हुआ है। इसके पहले कटिहार पहुँचकर किस गाड़ी में चढ़ें और किधर जायें, इस पूछनाछ में ही कितनी बार उसकी गाड़ी छूट गयी है।

गाड़ी बदलने के बाद फिर बड़ी बहुरिया का करुण मुखड़ा उसकी आँखों के सामने उभर गया—‘हरगोबिन भाई, माँ से कहना, भगवान् ने आँखें फेर ली, लेकिन मेरी माँ तो है...किमलिए...किसलिए...मैं बयुआ-साग खाकर कब तक जीऊँ ?’

याना बिहपुर स्टेशन पर जब गाड़ी पहुँची तो हरगोबिन का जी भारी हो गया। इसके पहले भी कई भला-बुरा संवाद लेकर वह इस गाँव में आया है, कभी ऐसा नहीं हुआ। उसके पैर गाँव की ओर बढ़ ही नहीं रहे थे। इसी पगडंडी में बड़ी बहुरिया अपने पैके लौट आवेगी। गाँव छोड़ कर चली जावेगी। फिर कभी नहीं जावेगी !

हरगोबिन का मन कलपने लगा—तब गाँव में क्या रह जायेगा ? गाँव की लक्ष्मी ही गाँव छोड़कर चली आवेगी !...किम मुँह ने वह ऐसा संवाद सुनायेगा ? कैसे कहेगा कि बड़ी बहुरिया बयुआ-साग खाकर गुजर कर गयी है।...सुननेवाले हरगोबिन के गाँव का नाम लेकर यूँकेंगे—कैसा गाँव है, जहाँ लक्ष्मी जैसी बहुरिया दुःख भाग रही है !

अनिच्छापूर्वक हरगोबिन ने गाँव में प्रवेश किया ।

हरगोबिन को देखते ही गाँव के लोगों ने पहचान लिया—जलालगढ़ गाँव का संबधिया आया है !...न जाने क्या सवाद लेकर आया है !

“राम-राम भाई ! कहो, कुशल समाचार ठीक है न ?”

“राम-राम भैयाजी । भगवान् की दया से आनंदी है ।”

“उधर पानी-बूंदी पड़ा है ?”

बड़ी बहुरिया के बड़े भाई ने पहले हरगोबिन को नहीं पहचाना । हरगोबिन ने अपना परिचय दिया, तो उन्होंने सबसे पहले अपनी बहून का समाचार पूछा, “दीदी कैसी है ?”

“भगवान् की दया से सब राजी-खुशी है ।”

मुंह-हाथ धोने के बाद हरगोबिन की बुलाहट आँगन में हुई । अब हरगोबिन कांपने लगा । उसका कलेजा धड़कने लगा...ऐसा तो कभी नहीं हुआ ?...बड़ी बहुरिया की छलछलायी हुई आँखें ! सिसकियों से भरा हुआ मवाद ! उसने बड़ी बहुरिया की बूढ़ी माता को पाँव लागी की ।

बूढ़ी माता ने पूछा, “कहो बेटा, क्या समाचार है ?”

“मायजी, आपके आशीर्वाद से सब ठीक हैं ।”

“कोई सवाद ?”

“एँ ?...मवाद ?...जी, सवाद तो कोई नहीं । मैं कल सिरसिया गाँव आया था, तो सोचा कि एक बार चलकर आप लोगों का दर्शन कर लूं ।”

बूढ़ी माता हरगोबिन की बात सुनकर कुछ उदास-सी हो गयी, “तो तुम कोई सवाद लेकर नहीं आये हो ?”

“जी नहीं, कोई मवाद नहीं ।...ऐसे बड़ी बहुरिया ने कहा है कि यदि छुट्टी हुई तो दशहरा के समय गंगाजी के मेलों में आकर माँ में भेंट-मुलाकात कर जाऊँगी ।” बूढ़ी माता चुप रही । हरगोबिन बोला, “छुट्टी कैसे मिले ! सारी गृहस्थी बड़ी बहुरिया के ऊपर ही है ।”

बूढ़ी माता बोली, “मैं तो बबुआ से कह रही थी कि जाकर दीदी को लिवा लाओ, यही रहेगी । वहाँ अब क्या रह गया है ? जमीन-जायदाद तो सब चली ही गयी । तीनों देवर अब शहर में जाकर बस गये हैं । कोई खोज-खबर भी नहीं लेते । मेरी बेटी अकेली...।”

“नहीं मायजी ! जमीन-जायदाद अभी भी कुछ कम नहीं । जो है, वही बहुत है । टूट भी गयी है, तो आखिर बड़ी हवेली ही है । ‘सवांग’ नहीं है, यह बात ठीक है ! मगर, बड़ी बहुरिया का तो मारा गाँव ही परिवार है । हमारे गाँव की लक्ष्मी है बड़ी बहुरिया ।... गाँव की लक्ष्मी गाँव को छोड़कर शहर कैसे जायेगी ? यों, देवर लोग हर बार आकर ले जाने की जिद करते हैं ।”

बूढ़ी माता ने अपने हाथ हरगोबिन को जलपान लाकर दिया, “पहले थोड़ा जलपान कर लो, बबुआ।”

जलपान करते समय हरगोबिन को लगा, बड़ी बहुरिया दालान पर बैठी उसकी राह देख रही है—भूखी-प्यासी...। रात में भोजन करते समय भी बड़ी बहुरिया मानो सामने आकर बैठ गयी...कर्ज-उधार अब कोई देते नहीं।...एक पेट तो कुत्ता भी पालता है। लेकिन मैं?...माँ से कहना...!!

हरगोबिन ने थाली की ओर देखा—दाल-भात, तीन किरम की भाजी, धो, पापड़, अचार।...बड़ी बहुरिया बबुआ-साग उबालकर खा रही होगी।

बूढ़ी माता ने कहा, “क्यों बबुआ, खाते क्यों नहीं?”

“मायजी, पेट भर जलपान जो कर लिया है।”

“अरे, जवान आदमी तो पाँच बार जलपान करके भी एक थाल भात खाता है।”

हरगोबिन ने कुछ नहीं खाया। खाया नहीं गया।

संवदिया डटकर खाता है और ‘अफर’ कर सोता है, किंतु हरगोबिन को नींद नहीं आ रही है।...यह उसने क्या किया? क्या कर दिया? वह किसलिए आया था? वह झूठ क्यों बोला?...नहीं, नहीं, सुबह उठते ही वह बूढ़ी माता को बड़ी बहुरिया का सही संवाद सुना देगा—अक्षर-अक्षर : ‘मायजी, आपकी इकलौती बेटी बहुत कष्ट में है। आज ही किसी को भेजकर बुलवा लीजिये। नहीं तो वह मचमुच कुछ कर बैठेगी। आखिर, किसके लिए वह इतना सहेगी!...बड़ी बहुरिया ने कहा है, भाभी के बच्चों की जूठन खाकर वह एक कोने में पड़ी रहेगी...!’

रात-भर हरगोबिन को नींद नहीं आयी।

आँखों के सामने बड़ी बहुरिया बैठी रही—सिसकती, आँसू पोछती हुई। सुबह उठकर उमने दिल को कड़ा किया। वह संवदिया है। उसका काम है सही-सही संवाद पहुँचाना। वह बड़ी बहुरिया का संवाद सुनाने के लिए बूढ़ी माता के पाम जा बैठा। बूढ़ी माता ने पूछा, “क्या है, बबुआ? कुछ कहोगे?”

“मायजी, मुझे इसी गाड़ी से वापस जाना होगा। कई दिन हो गये।”

“अरे, इतनी जल्दी क्या है! एकाध दिन रहकर मेहमानी कर लो।”

“नहीं, मायजी। इस बार आज्ञा दीजिए। दशहरा में मैं भी बड़ी बहुरिया के साथ आऊँगा। दब डटकर पंद्रह दिनों तक मेहमानी करूँगा।”

बूढ़ी माता बोली, “ऐसी जल्दी थी तो आगे ही क्यों? सोचा था, बिटिया के लिए दही-चूड़ा भेजूँगी। सो दही तो नहीं हो सकेगा आज। थोड़ा चूड़ा है बामप्ती घान का, लेने जाओ।”

चूड़ा की पोटली बगल में लेकर हरगोबिन आँगन से निकला तो बड़ी बहुरिया

के बड़े भाई ने पूछा, “क्यों भाई, राह-खर्च तो है ?”

हरगोबिन बोला, “भैयाजी, आगकी दुआ से किसी बात की कमी नहीं।”

स्टेशन पर पहुँचकर हरगोबिन ने हिमाब किया। उसके पास जितने पैसे हैं, उससे कटिहार तक का टिकट ही वह खरीद सकेगा। और यदि चौअन्नी नकली माबित हुई तो सैमापुर तक ही।... बिना टिकट के वह एक स्टेशन भी नहीं जा सकेगा। डर के भारे उमकी देह का अधा खून सूख जायेगा।

गाड़ी में बैठने ही उसकी हालत अजीब हो गयी। वह कहाँ आया था ? क्या करके जा रहा है ? बड़ी बहुरिया को क्या जवाब देगा ?

यदि गाड़ी में निरगुन गानेवाला सूरदाम नहीं आता, तो न जाने उमकी क्या हालत होती ! सूरदाम के गीतों को सुनकर उमका जी स्थिर हुआ, थोड़ा—

“कि आहो रामा !

नैहरा को मुख सपन भयो अब,

देश पिया को डोलिया चली-ई-ई-ई,

भाई रोओ मति, यही करम की गति...!!

सूरदाम चला गया तो उमके मन में ब्रेठी हुई बड़ी बहुरिया फिर रोने लगी—
किमके लिए इतना दुःख मूँ ?

पाँच नजे भोर में वह कटिहार स्टेशन पहुँचा।

भोमें से आवाज आ रही थी—बैरगाही, कुमिवार और जलालगढ़ जानेवाले यात्री एक नंबर प्लेटफार्म पर चले जायें।

हरगोबिन को जलालगढ़ जाना है, किंतु वह एक नंबर प्लेटफार्म पर कैसे जायेगा ? उमके पास तो कटिहार तक का ही टिकट है। ‘जलालगढ़ ! बीस कोम !’ बड़ी बहुरिया राह देख रही होगी।... बीस कोम की मंजिल भी कोई दूर की मंजिल है ? वह पैदल ही जायेगा।

हरगोबिन महावीर-विश्रम-बजरगी का नाम लेकर पैदल ही चल पड़ा। दस कोम तक वह मानो ‘बाई’ के झोक पर रहा। कस्बा-शहर पहुँचकर उमने पेट-भर पानी पी लिया। पोटली में नाक लगाकर उमने सूँघा—अहा ! बाममती धान का चूड़ा है। माँ की मौगात—बेटी के लिए। नहीं, वह इससे एक मुट्ठी भी नहीं खा सकेगा... किंतु, वह क्या जवाब देगा बड़ी बहुरिया को ?

उमके पैर लडखड़ाये।... उन्हें, अभी वह कुछ नहीं सोचेगा। अभी मिफाँ चयना है। जल्दी पहुँचना है, गाँव।... बड़ी बहुरिया की डबडबायी हुई आँखें उमको गाँव की ओर खींच रही थी—मैं बैठी राह ताकती रहूँगी।...

पन्द्रह कोम में माँ से कहना, अब नहीं रह पाऊँगी। मोनह... सत्रह... अठारह... जलालगढ़ स्टेशन का मिगनल दिखलायी पड़ना है... गाँव का ताडमिर ऊँचा करके उमकी चाल को देख रहा है। उगी ताड के नीचे बड़ी हवेली के दालान पर चुप-

बाप टकटकी लगाकर राह देख रही है बड़ी बहुरिया—भूखी-व्यासी : 'हमरो संवाद ले जाहु रे संबदिया-या-या-!!'

लेकिन, यह कहाँ चला आया हरगोबिन ? यह कौन गाँव है ? पहली सान्न में ही अमावस्या का अँधकार ! किस राह से वह किधर जा रहा है ? ...नदी है ! कहाँ से आ गयी नदी ? नदी नहीं, खेत है । ...ये झोंपड़े हैं या हाथियों का झुंड ? ताड़ का पेड़ किधर गया ? वह राह भूलकर न जाने कहाँ भटक गया ...इस गाँव में आदमी नहीं रहते क्या ? ...कहीं कोई रोशनी नहीं, किससे पूछे ? ...कहाँ, वह रोशनी है या आँखें ? वह खड़ा है वा चल रहा है ? वह गाड़ी में है या घरती पर—?

"हरगोबिन भाई, आ गये ?" बड़ी बहुरिया की बोली, या कटिहार स्टेशन का भोंपा बोल रहा है ?

"हरगोबिन भाई, क्या हुआ तुमको ...?"

"बड़ी बहुरिया ?"

हरगोबिन ने हाथ से टटोलकर देखा, वह बिछावन पर लेटा हुआ है । सामने बैठी छाया को छूकर बोला, "बड़ी बहुरिया ?"

"हरगोबिन भाई, अब जी कैसा है ? ...लो, एक घूंट दूध और पी लो । ...मुंह खोलो ...हाँ ...पी जाओ । पीओ !"

हरगोबिन होश में आया । ...बड़ी बहुरिया दूध पिला रही है ?

उसने धीरे से हाथ बढ़ाकर बड़ी बहुरिया का पैर पकड़ लिया, "बड़ी बहुरिया ! ...मुझे माफ करो । मैं तुम्हारा संताद नहीं कह सका । ...तुम गाँव छोड़कर मत जाओ । तुमको कोई कष्ट नहीं होने दूँगा । मैं तुम्हारा घेठा ! बड़ी बहुरिया, तुम मेरी माँ, मारे गाँव की नाँ हो ! मैं अब निठुला बैठ नहीं रहूँगा । तुम्हारा सब काम करूँगा । ...बोली, लड़ी माँ, तुम ...तुम गाँव छोड़कर चली तो नहीं जाओगी ? बोलो ...!!"

बड़ी बहुरिया गर्म दूध में एक मुट्ठी बासमती चूड़ा डालकर मसकने लगी । ...संवाद भेजने के बाद मे ही वह अपनी गलती पर पछता रही थी ।

एक श्रावणी दोपहरी की धूप

शादी के बाद फिर 'मेम' में कौन रहता है ! किंतु, पंकज ने मेम के साथ अपने 'मेम-मित्रों' को भी छोड़ दिया । ... दुनिया-भर के लफंगों का अड्डा !

इतना ही नहीं, पिछले साल तक उसने बहुत बार निश्चय किया था—यदि छोटे माहब की भट्टी दिल्लगी बंद नहीं हुई तो वह 'मेरी एंड मेरी' कंपनी की नौकरी भी छोड़ देगा । एक मिनट भी देरी से पहुँचने पर अभद्र छोटे माहब को मौका मिल जाता—'क्यों दाम ? 'मॉर्निंग प्रो' में जाना हुआ था ?

इसके बाद महकमियो की दबी हुई विपत्ती हैसी !

एक रेलवे-रमीद की गडबडी पर छोटे माहब ने कहा था—गलती माने ? यदि तुम्हारे मिनेमा के टिकट के नंबरों में ऐसी ही गलती हो जाये, तब ? ... 'माल कही और 'आर-आर' कहीं ?

मिनेमा ? अमल में मिनेमा-हॉल से ही पूर्वागम-पर्व शुरू हुआ था—पंकज-झरना के प्रेम का । झरना अपनी माँ और बहनों के साथ आयी थी । पंकज ने, प्रथम-परिचय के दिन दस पैकेट टनटन-भाजा के खरीदे थे । छोटे माहब को उसके महकमियो ने टनटन-भाजा की भी बात बता दी थी । इसीलिए, छोटे माहब कॉनिंग-ब्रेन को 'टनटन-भाजा' कहने लगें ।

पंकज ने ठीक ही समझा था, शादी के बाद सभी उससे ईर्ष्या करने लगे थे । और, छोटे माहब की मोटी बीबी को पंकज ने देखा था । वंदो वेडोल औरत का स्वामी और कैसी बातें करेगा, भला ? कई बार पंकज के जी में हुआ था, फाड़ल पटककर साफ-साफ कह दे—मुझे आप मिनेमा का 'गिटकीपर' कहते हैं ? जनाब, आप 'गोलकीपर' है ।

किंतु, ब्रेकारी का जिसे कड़वा अनुभव हो, वह लगती हुई नौकरी को क्षणिक आवेग में आकर नहीं ठुकरा सकता । उसने सोच-विचारकर देखा था—आदमी को महिष्णु होना चाहिए । ... क्यों न वह अपना उपनाम 'महिष्णु' रख ले । नाम का कुछ प्रभाव स्वभाव पर निश्चय ही पड़ता होगा ।

झरना ने भी यही कहा था, 'पंकज नाम का प्रभाव तुम्हारे तन-मन पर ऐसा पड़ा है कि...!'

वक्तव्य अधूरा छोड़कर झरना ने पंकज के कंधे पर अपना सिर रख दिया था, 'क्या सभी 'लव-मैरेज' करने वालों के नाम ऐसे ही सुंदर होते हैं?'

'छोड़ो भी, नाम में क्या रखा हुआ है।'

अपने दपत्तर में अकेला पंकज ही है, जिसने इस प्रेमहीन संसार में आकर 'लव-मैरेज' किया है ! उसकी स्त्री झरना अपूर्व सुंदरी है। सितार बजाती थी, गीत गाती थी। शादी के बाद फिर कौन लड़की सितार बजाती है और गीत गाती है !

शादी के पहले, मेस में कई दिनों तक 'प्रेम-परिणय' पर बेकार की बहस चली थी। अवधेश की बात रह-रहकर आज भी याद आती है, पंकज को —लव-मैरेज करने वालों को यदि मौका मिले, तो सारा जीवन 'लव' और 'मैरेज' करने में ही गुजार दें।

तो, अवधेश के कहने का अर्थ हुआ, यदि झरना को शादी के बाद भी मौका मिले तो वह किसी को 'लव' करना शुरू कर देगी ? असंभव !

मेस के सभी मित्र उसमे जलते थे। एक साथ बैठकर किसी तालाब में 'बंसी' से मछली फँमानेवालों के बीच, किसी साथी को बड़ी मछली मिल जाय तो ऐसा ही होता है।

विवाह के पहले पंकज को भी संदेह था कि इस आर्यावत्त में अब सती-साध्वी नारी जन्म ही नहीं लेती। सगे, भ्रम दूर हुआ—शादी के बाद। सीता और सावित्री के साथ-साथ झरना का नाम स्वयं ही निकल पड़ता, पंकज के मुँह से।

इसी बात पर जगन से उसकी लड़ाई हो गयी थी और पंकज को मेस छोड़ने का एक दहाना मिल गया था। जगन नीच है। नीच आदमी और कैसी बात करेगा भला ! मुँह बिदकाकर बोला था, 'जी हाँ साहब। सभी अपनी स्त्री को सीता-सावित्री ही समझने है। दुनिया के आश्चर्यों में, एक महान् आश्चर्य की बात यह भी है।'

जगन ने इसी सिलसिले में मुहल्ला-मुहर्रमबाग के किसी रमणीमोहन का नाम लिया था, 'मुहर्रमबाग की कौन ऐसी कुमारी लड़की है जो रमणीमोहन की गाड़ी पर चढ़कर मनेर-हाक-बंगलों में पिकनिक करने नहीं गयी होगी। लड़कियाँ उसे 'गाड़ीवाला दादा' कहती हैं।'

पंकज ने उसी रात को, जरा घुसा-फिराकर 'गाड़ीवाला दादा' के विषय में पूछ लिया था, 'यह 'गाड़ीवाला दादा' कौन हैं तुम्हारे मुहल्ले में?'

झरना का नेहरा इस नाम को सुनकर जरा उतर गया था। पंकज के दिल की धड़कन तेज हो गयी थी। झरना ने सप्रतिभ होकर स्वीकार किया था, 'हाँ,

गाड़ीवाला दादा है। सुना है, बहुत 'लूज कॅरेक्टर' है उसका। डोरे तो उसने मुझ पर भी डाले थे, जरूर। मगर, क्या मजाल जो कभी मुंह से कुछ बोले !'

पंकज के गालों का ताप अचानक तेज हो गया था। बहुत देर तक झरना को बहु-बंधन में बाँधकर, सिर्फ एक ही बात बार-बार दुहराता रहा, 'तुम सती हो, तुम सती हो !'

मेम छोड़ने के बाद, पंकज दो महीने तक समुराल में ही रहा। यो, झरना उसे रोज याद दिलाती—घर-घर का पता लगा कहीं ?

पंकज को यह बात बड़ी भली लगती—झरना को अपने पति का अपने मके में अधिक दिन रहना पसंद नहीं। झरना की माँ रोज कहना नहीं भूलती कि पड़ोस के लोग पंकज को 'घरजमाई' समझते हैं।

झरना को माँ की बात से दुःख हुआ था। उस दिन जरा रुखाई में वह बोली थी, 'यदि घर नहीं मिले तो आज फिर यहाँ लौटकर मत आना। मैं सबकुछ सह सकती हूँ, किंतु पति का अपमान...'।

पंकज ने झरना की पीठ पर होले-होले हाथ फेरकर शांत किया था, 'आज जैसे भी हों, जहाँ भी मिले, घर ठीक करके ही लौटूँगा।'।

'घर क्यों नहीं मिलेगा ? 'घरनों' होनी चाहिए माय में।'

पंकज को घर मिल गया। झरना को लेकर अपना घर-संसार बसाने के लिए मखनियाकुआँ की कुरुरगली में आया तो झरना ने कहा, 'शहर में घर लेते समय मुहल्ले का भी ख्याल रखना चाहिए।'।

झरना ने गली में पैर रखते ही नाक-भी निकोड़कर कहा था, 'भले लोगों की गली नहीं यह।'।

मखनियाकुआँ मुहल्ले को दोष नहीं देता है, पंकज। किंतु, कुरुरगली में वे एक महीना से अधिक नहीं रह सके। घर के सामने का हलवाई इड़-भारी असभ्य निकला। झरना ने बताया कि दोपहर को वह अपने दोनों जंघों को उधारकर खिड़की के सामने बैठता है और रह-रहकर खिड़की की ओर देखकर किसी मिठाई का नाम लेकर बेवजह पुकारता है—रसगुल्ला है—रसगुल्ला !!

हलवाई की देखा-देखी फलवाले का आशारा लडका हाथ में संतरा लेकर चिल्लाता रहता है—चार आने जोड़ा, जोड़मजोड़ा—मीठा कंबला !!

झरना ने बताया कि इस गली की औरतें भी वैसी ही हैं।

मखनियाकुआँ से कुनकुनसिंघ लेन, कुनकुनसिंघ लेन में बिहारी-मावगली और अंत में पिछले साल नालारोड पर घर बदलकर आ बसा है पंकज। झरना को वह इलाका भी पसंद नहीं। किंतु, पंकज ने फिर घर की समस्या पर, झरना के कुनमुनाने के बावजूद कभी ध्यान नहीं दिया—'मुहल्ला अच्छा हो, पड़ोसी अच्छे हों, गली के कुत्ते रात में शोर न मचायें, ऐसा घर कहाँ मिलेगा शहर में ? झरना

कुछ नहीं सोचती ?

सिर्फ घर की समस्या पर ही नहीं—इधर कुछ दिनों से पंकज ने झरना द्वारा उठायी गयी सभी समस्याओं को टालना शुरू किया है ।

आज दफ्तर आने के पहले जब झरना ने ग्वाले के देर से आने की शिकायत की तो पंकज तनिक चिढ़ गया—बड़े-बड़े अफसरों के घर में एकाध दिन देर-सबेर से दूध पहुँचता है ।

पति की रुखाई को परखकर झरना चुप रही ।

ऑफिस आने के पहले, मुँह में पान का बीड़ा डालने के बाद, पंकज अपनी पत्नी को हल्के ओठों से चूमता आया है । अब यह क्रिया यंत्रबत् होती है । इधर कई महीने से पंकज सोच रहा है, झरना को किसी दंत-विशेषज्ञ के पास ले जायेगा । पायरिया का शिकार हो गयी है, निश्चय ही ।

आज झरना लजाकर पूछ रही थी, “इस बार सरकारी फार्म का दूधिया भुट्टा नहीं आया है बाजार में ?”

“ध्यान नहीं दिया है । आज देखूँगा । मिलेगा तो...”

“नही-नही । मैंने यों ही पूछा ।”

पति के जाने के बाद झरना कुछ क्षण खड़ी देखती रही । टिफिन की झोली से ‘खट-खट’ आवाज क्यों आती है ? डब्बा खुला हुआ तो नहीं रह गया ?

वह एक बार फिर नहाने के घर में घुसी । देह धोकर बाहर आयी । मिट्टर पहनते समय आईने में अपने चेहरे को ध्यानपूर्वक देखा ! उँगली से जरा-सा स्नो छूकर गाल पर मल लिया । छाती पर ‘घमोरी’ के दाने निकल आये हैं । पाउडर छिड़कने के पहले उसने अँगिया खोल ली । “यहाँ कौन देखने आता है ?

किंतु, झरना के अंदर कहीं कुछ मुलग रहा है । ज्वाला शांत नहीं हो रही । भोजन करने बैठी तो कुछ रुचा ही नहीं । जबरदस्ती दो-चार ग्रास मुँह में डालकर उठ गयी ।

दोपहर को उसे सोने की आदत है । गर्मियों में वह फर्श पर शीतलपाटी बिछाकर—नंगे बदन सोती है । शीतलपाटी की छाप उसकी गोरी देह पर पाँच बजे तक उभरी रहती है । मछली के काँटे जैसा दाग ।

शीतलपाटी पर सेटते ही उसे पंकज की रुखी और झुंझलाहट-भरी बातों की याद आयी । “क्या हो गया है आजकल ? हर बात पर चिढ़ जाता है । हमेशा मुँह लटका रहता है । बोली में कोई रस नहीं । डर के मारे झरना आजकल कुछ पूछने का साहस नहीं करती ।

पहले, ऑफिस से लौटने के बाद, कम-से-कम पंद्रह मिनट तक इस तरह अंक-

बार में जकड़े रहने थे मानो मुद्दत की खोयी हुई चीज भिनी हो। हर बात का जवाब चुनन से देते थे। दिन-भर परिश्रम करने के बावजूद, रात में देर तक जग रहे, जगाए रहते। अब तो बिस्तर पर पड़ते ही कुंभकरन की नींद उतर आती है, आँखों में। और, खुराटे की आवाज इधर इतनी कर्कश हो गयी है कि झरना सो नहीं पाती है।

उम दिन पड़ोसी के गुडे लड़के ने झरना को फिर छेड़ा। लेकिन, पति ने कहा—कौन क्या कहता है, क्या बोलता है, क्या देखता है, क्यों देखता है; आदमी इन बातों पर ध्यान देने लगे तो उमका जीना मुश्किल हो जाये। तीन साल से बस इन्हीं छोटी बातों को लेकर कम-से-कम पचाम आदमी में लड़ाई मोल ले चुका है।

पिछले माल तक झरना को गली की ओर खुलने वाली खिड़की के पास खड़ी देखकर पकज बड़बड़ाने लगता था—जब जानती हो कि गली में हुरामियों का अड्डा है तो खिड़की के पास उस तरह खड़ी क्यों होती हो?

और, अब? अब इतका कहना है कि आजकल की मफल गृहिणियाँ ग्वाल, धोबी और फेरीवाले के सामने जानबूझकर ब्लाउज के एक-दो बटन खोलकर, चीजों का दर-भाव करती है। 'छिः-छिः', कितना गदा हो गया है इस आदमी का मन!

किंतु, बात सच है।

एक दिन झरना एक फेरीवाले में पुराने कपड़े के बदले काँच के बर्तन ले रही थी। फेरीवाला लोढा शुरू से ही रट लगाय हुए था—मायजी, खादी कपड़ा नहीं लेगे। मो, न जाने कैसे झरना की छार्टी में सामन की साड़ी जरा सरक गयी। फिर, झरना ने खादी कपड़े की गुदड़ी-चिपड़ी की गठरी सामने रख दी। लाड़े के मुह से विरोध का एक शब्द भी नहीं निकला।

दूध लत समय जब से अनजान में ग्वाल की उंगली जरा छू जाती है—दूध में पानी का मिलावट कम हो गयी है।

झरना को आज नींद नहीं आयेगी। उसने सामन की खिड़की खोल दी। वह जानती थी, ठीक इसी समय पीली कोठी की मुडेर पर एक रोगी युवक नीम की छांव में आ बैठा होगा। खिड़की खुली रह या बंद, उसका नजर इधर ही टेंगी रहती है।

झरना न उसे देखकर भी नहीं देखने का भाव दिखलाया। वह फिर शीतल-पाटा पर आकर सो गयी। इस बार उसने अस्त-व्यस्त साड़ी को समेटकर एक किनारे कर दिया। सिर्फ पटीकांट पहनकर लेटी रही और कर्नाखियों से छत पर बंठे रोगी युवक को देखने लगी। अब उमका मन रोने का बहाना ढूँढ़ने लगा। 'इनके लिए, अपने पतिदेव पकज के लिए, वह दान-भात जैसी चीज हो गयी है। किंतु,

भरना की एक झलक पाने के लिए अब भी लोग टकटकी लगाकर बैठे रहते हैं। यह पड़ोसी का गुडा लड़का जो अभी जोर-जोर से गीत गा रहा है, वह किसी और को सुनाने के लिए नहीं। भरना समझती है !

करवट लेते समय वह बड़बड़ायी—हाय रे पुरुष की जाति ! अच्छा, वह भुट्टा लावेगा तो ? नहीं, कभी नहीं। आकर कहेगा—दिखायी नहीं पड़ा कहीं बाजार में फार्म का भुट्टा।

भरना की जीभ पनिया गयी। भुट्टे की सौघी गंध...नीबू...हरी मिचं !!

अचानक कुछ सुनकर वह चौक पड़ी—अरे ! यह तो गाड़ीवाला दादा की गाड़ी का हॉर्न है ?

वह उठ बैठी। साड़ी पहनते समय उसने लक्ष्य किया, रोगी युवक का चेहरा तमतमा गया है। तेज ज्वर चढ़ गया है, मानो।...है, सच ! यह तो गाड़ीवाला दादा की ही गाड़ी है। बिना कुछ सोचे ही उसने खिड़की से पुकार दिया—दादा ! नारी-कंठ की पुकार दादा नहीं सुने, भला !

—अरे तुम ? इस भुहल्ले में कब मे हो ?

—माँ कौसी है ?

—तो, माँ की खोज-खबर अब तक लेती हो ?

—माँ से कहियेगा कि...

गाड़ीवाला दादा ने कहा—मैं सञ्जीवाग से तुरत लौट रहा हूँ।

अब भरना क्या करे ? तीन-साढ़े तीन वर्षों के बाद अचानक उसे आज क्या हो गया ? शादी के बाद, राह चलते कई बार गाड़ीवाला दादा पर उसकी दृष्टि पड़ी और हर बार नजर चुराकर, मुँह फेरकर उसने अपनी जान बचायी है। इस आदमी का कोई भरोसा नहीं। भरना को पुष्पा की बात याद है। पुष्पा अपने पति के साथ सिनेमा गयी थी। गाड़ीवाला दादा ने देखते ही कहा—क्यों पुष्पा, पुराने दिनों को भूल गया हो, सो तो ठीक किया है तुमने। किंतु, पुरानी जान-पहचान के लोगों को देखकर भी नहीं पहचानोगी, ऐसी उम्मीद तुमसे नहीं थी।

पुष्पा कह रही थी, उसके पति ने इस बात को लेकर पुष्पा को जीवन-भर खोचा दिया। मरते समय भी कह गया—तुम्हारे तो बहुत लोग हैं, पुरानी जान-पहचान के—पुराने मित्र !

अब ? वह तो आवेगा क्या, आ ही रहा होगा। आवेगा तो आवेगा। अच्छा होगा। भरना मन-ही-मन लड़ने लगी—वह आज जी भरकर बातें करेगी गाड़ीवाला दादा से।

भरना ने गली की ओर खुलनेवाली खिड़की बंद कर दी। नहाने के घर से चेहरा धो आयी। बालों को कंधी से सँवारा। चेहरे पर फिर एक उँगली स्नो—आँखों में एक सलाई काजल और मुँह में एक बड़ा पान डालने के बाद, घुसी हुई साड़ी

निकालने लगी। बक्म से निकली हुई, घुली माड़ी की गंध झरना को मदा उत्तेजित करती है। एक नशा छा जाता है क्षण-भर के लिए।

आईने के सामने खड़ी झरना ने गली में फेरीवाले की आवाज सुनी। चाबी के झब्बों को बजाना हुआ यह आदमी ठीक इसी समय आकर हाँक लगा जाता है। न जाने क्या कहना है। इसके बाद ही आवेगा, ढाकई-माड़ी बेचनेवाला रिपयूजी फेरीवाला—चा—य—का—धो-ओ-ओ-ड़ !

झरना सभी फेरीवालों की आवाज पहचानती है। सभी के आने का अपना-अपना बंधा हुआ समय है।

गाड़ीवाला दादा का हानं ।

मीढ़ियों पर जूतों की आवाज क्रमशः निकट होती गयी। झरना ने एक बार फिर अपने को आईने में देख लिया। ...यही नयी ब्रेजरी दुःख दे रही है, जरा। पीठ पर 'हुक' गड़ रहा है।

गाड़ीवाला दादा ने कमरे में प्रवेश करते ही पूछा—बगलवाले बदामदे की कोठरी में कौन रहता है ? उस महिला को लगता है, मैं पहचानता हूँ।

उसने एक सरमरी निगाह से झरना की गृहस्थी को देखा और पलक मारने ही सबकुछ भाप गया। अनुभवही शिकारी की तरह उसने एक गिलास पानी माँगा। सिर्फ पानी।

झरना सुराही से पानी डालते समय मुस्कुरायी, पानी पीकर दादा निश्चय ही कोई उद्गार प्रकट करेंगे—आ-ह ! कलेजा जुड़ गया ! अथवा—सुराही सुराही का पानी इतना ठंडा है ?

सबकुछ दादा ने यही कहा—सुराही सुराही का पानी...

झरना की पतली कमर को हाथ से आवेष्टित करते हुए दादा ने अपने मिर को झरना की छाती में टिकाने की चष्टा की।

"नः नः दादा ! कोई देख लेगा।"

झरना ने दर्बा हुई आवाज में विरोध किया, "दादा !"

दादा, अथर-सुधा-रस पान नहीं कर सके। झरना अपने को छुड़ाकर दूसरे कमरे में चली गयी, "मैं चाय बना लाती हूँ।"

"चाय नहीं। जरा, इधर सुनो। क्या कहूँगा तुम्हारी माँ से?"

झरना सोच में पड़ गयी, वह क्या कहे ? बोली, "बहुत दिन हुए माँ को देखे।"

"तो, चलो न।"

"चलूँ ?"

तीन बज रहे हैं। दो घंटे में ही वह लौट आयेगी। और दो घंटे के बाद भी लौटे तो क्या ? उसकी परवाह किस है ? वह नहीं भी लौटे तो उसके पति को अब

कोई दुःख नहीं होगा। मिर का ब्रोम है वह। और, उनके पास दूसरी चाबी तो है ही। संभवतः कोई दूसरी प्रेमिका भी हो, कहीं।

“क्या सोचा ?”

झरना लजायी, “चलूंगी, लेकिन...”

“लेकिन, क्या ?”

“आप मुझे सीधे माँ के घर पहुँचा देगे तो !”

“इतना डर है फिर...”

“नः नः, डर नहीं !”

दिन-भर उमस के बाद अभी पुरवा हवा चली है। बादल उमड़-धुमड़ रहे हैं।

ताला लगाते समय दादा ने पूछा, “क्यों, किसी में कुछ कहना नहीं है ? एक पर्जा छोड़ दो लिखकर।”

झरना चुप रही। गाड़ी में वह पिछली गद्दी पर बंठी। दादा मुस्कराये...तो, झरना सयानी हो गयी है ! झरना ने पूछा, “आजकल पारुल दीदी कहाँ है ?”

दादा इस प्रश्न का अर्थ समझते हैं। झरना जानना चाहती है कि पारुल से उसका गुप्त संबंध अब भी है या नहीं ?

दादा ने कहा, “दुनिया-भर की खबर तो पूछती हो। मगर, अपनी खबर नहीं लेती ?”

“अपनी खबर ?”

“तीन साल हो गये। दो से तीन तुम लोग कब...?”

गाड़ीवाला दादा अपनी भोड़ी रसिकता पर स्वयं हँसे। झरना चुप रही तो उन्होंने फिर कहा, “तुम लोग चेंष्टा ही नहीं करते।”

दादा ने उलटकर झरना की ओर देखा।

गाड़ी साहित्य-सम्मेलन-भवन के पास आकर दाहिनी ओर मुड़ गयी। यह बादल बरसेगा अब ! किरानियों को रलानेवाली वर्षा ! सभी ‘बावू’ भीगते हुए घर पहुँचेंगे... एक प्याली गर्म चाय... कुछ गर्म... कुछ गर्म-गर्म पकोड़े... काफी... मुट्ठा... नीबू... हरी मिर्च !!

“जो भी हो, तुमने अपनी देह को अब तक पहले जैसा पालकर रखा है। स्वास्थ्य देखकर मुझे खुशी हुई है।” दादा ने झरना की छाती पर दृष्टि टिकाकर अपना वक्तव्य समाप्त किया। थोड़ी देर और इधर-निगाह रह जाती तो जरूर इस सार्याकल वाले को धक्का मार देते, गाड़ीवाला दादा।

बाकरगज नुक्कड़ के पास गाड़ी की चाल धीमी हुई। सामने वाले फुटपाथ पर छाटी-सी भोड़ लगी हुई है। न जाने क्या बिक रहा है !

झरना चिहुँक पड़ी, “आ !”

“क्या हुआ ?” दादा ने पूछा ।

झरना आंचल में मुंह छिपाकर, फुटपाथ की ओर कुछ खोज रही है । हाँ, उसका पति ही है । पंकज ही है । कुछ खरीद रहा है ।

ट्राँफिक पुलिस ने हाथ से राह रोकी । सभी गाड़ियाँ रुक गयीं । झरना का दिल जोर-जोर से धड़कने लगा । उसे अचानक ज्वर हो गया क्या ? नहीं, भीड़ में उसका पति खो नहीं सकता । झरना देख रही है लेकिन पंकज उसको नहीं देख पायेगा । क्या खरीद रहा है ? भुट्टा ? दूधिया भुट्टा ? झरना के लिए ही !

भुट्टावाले की हाँक बीच-बीच में सुनायी पड़ती है—सरकारी फारम का भुट्टा, तीन आने जोड़ा !

बादल गाँधी मैदान पर छाने के लिए दल बाँधकर उतर रहे हैं । झरना को अचानक भूने हुए भुट्टे की सौधी गंध लगी । भुट्टा-नीबू—हरी मिचं ? झरना की जीभ पनिचा गयी ।

ट्राँफिक पुलिस ने रास्ता छोड़ दिया । सभी रुकी हुई गाड़ियाँ, गियर बदलते समय गुर्रायीं । झरना बोली—“दादा, जरा रुक के !”

दादा के क्या का कोई जवाब दिये बिना ही झरना एक झटका देकर गाड़ी से उतर गयी । उसने फिर उलटकर देखा भी नहीं । भीड़ में खो गयी—झटपट ।

भीड़ में पंकज को लगा, उसके हाथ का मोला कोई खीच रहा है, ‘ए ! कौन है ? मोला क्यों अरे, तुम ?’

पंकज की ऐसी उत्फुल्ल मुस्कराहट बहुत दिनों के बाद छलकी है । लगा, उसे युगों के बाद मिली है झरना । झरना बोली, “मैंने सोचा कि तुम भुट्टा लाना भूल जाओगे । इसलिए खुद चली आयी ।”

“वाह, भूल क्यों जाऊँगा ! चलो, ठीक है । अच्छा ही किया । आज बहुत दिनों के बाद दफ्तर से जरा पहले ही क्यों छुट्टी मिली है, जानती हो ? आज बड़े साहब खुश थे । दो-दो इक्कीमेट एक साथ !...अरे-रे, अब तो तुम्हारी यह साड़ी भोगकर लपपय हो जायेगी ।—ए ! रिक्शा !”

बारिश शुरू हुई । भीड़ की भगदड़ में दोनों ने एक-दूसरे को देखा और रिक्शा में जा बैठे । रिक्शावाले ने पर्दे के फीते को बाँधते हुए पूछा, “कहाँ चलना है बाबू ?”

झरना ने मोले से एक भुट्टा निकालकर कहा, “देखो-देखो, इसके बाल कैसे लगते हैं, ठीक पादरी साहब की भूरी दाढ़ी ।”

पर्दे से ढँके हुए रिक्शे के अंदर झरना की मुस्कराहट रोशनी बिखेरती है—रह-रहकर ।

“जरा इधर खिसक आओ । और भी जरा । भोग जाओगी । सोचा था, आज हम कहीं बाहर ही भोजन करने जायेंगे । लेकिन यह मौसम की वर्षा और यह

मुनहली माँझ!’’

पंकज की बोली में न जाने कितने दिनों का संचित रस उतर आया है !...
एक-दूसरे के स्पर्श में वैसा ही मुख—अब भी जीवित है !! वैसी ही मादक
उत्तेजना....!

झरना सरककर पास नहीं गयी। वह सीधे पंकज की गोद में जा बैठी और
पंकज की गर्दन पकड़, पाँच साल की बच्ची की तरह मचलती हुई—सटक
गयी।

रोमांस-शून्य प्रेम-कथा की एक भूमिका

आज यह 'हल्दी-चिरैया' फिर आयी है ? बरमात-भर यह रोज़ इसी तरह समय-असमय आयेगी और किसी पट्ट की डाली पर भीगती हुई या पख सुखाती हुई—सुग्रीव स्वर में एक लंबी पवित्र दुहरायेगी। मस्कृत-श्लोक की कड़ी—का कस्य परिवेदना ! स्पष्ट ! ह-व-ह ! 'पता नहीं क्या बोलती है ! पवित्रा को अचरज होता है, नहीं के लोग इस 'पाखी' का नाम नहीं जानते। घुछने पर मुँह बिदकाकर कहेंगे—पता नहीं क्या नाम है। हल्दी-चिरैया नाम पवित्रा ने ही गढ़ लिया है।

यही एक पखेरू है, जो उसके देश में नहीं होता। या, होता भी हो तो पवित्रा ने कभी नहीं देखा। मत्तमुच टम 'देश' में कुछ भी ऐसा नहीं, जो पवित्रा के 'देश' में नहीं था। पेड़, फल, फूल, फसल, जानवर, पंछी, मिर्च, इस 'हल्देपाखी' को छोड़कर। 'माल्लगा' को यहाँ के लोग मछलीकनी कहते हैं। पवित्रा के गाँव का अर्थात् 'पूववग' का 'पेचा' ही यहाँ का उल्लू है, यह उसने यहाँ आकर जाना। उल्लू को वह भात के जैमा कोट जानवर समझती थी। लोगों के नामों में लाल, प्रमाद और झा तथा नागायण लगा देने में क्या होता है, चेहरे तो नहीं बदलते ? लेकिन, इस 'कॉलोनी' (नवीनगर गाँव) के मैकडे-निन्नानवे लोग ऐसे हैं जो पवित्रा की इस राय से सहमत नहीं। वे कहेंगे—की मुश्किल दीदी ठाकन... परछाद-टाइटल अपने गाँव के किसी आदमी के नाम में लगा दो, देखोगी फिट ही नहीं करेगा। नाम के माफिक चेहरा भी होना होगा दीदी ठाक... की मुश्किल !!

गाँव बमने के बाद पवित्रा एक दिन गाँव के लोगों को समझा रही थी—हम लोगों का भाग्य अच्छा है कि हमें इस जिले में बसाया गया। यहाँ धान और पाट की खेती होती है। हम भी अपने 'देश' में धान और पाट की खेती करते थे। यहाँ के लोग भी मछली-भात खाते हैं। गाँव-घर, बाग-बगीचे, पोखरे और नदी, सब-कुछ अपने ही 'देश' जैमा...

सूखी हुई कायावाले हरलाल साहा ने तीखी आवाज में विरोध किया था—
 से हुति पारेना... ऐसा होना असंभव है ! कहीं अपना देश और अपने देश की
 मिट्टी और अपने देश का चावल और कहीं इस अद्भुत देश का सब 'आजगूबी-
 व्यापार' ।... पता नहीं, तुमने क्या देखा है दीदी ठाकरन ! यहाँ की मछली में
 क्या वही स्वाद है, जो 'पद्मा के इलिच' (पद्मा नदी की हिससा मछली !) में... ?

हरलाल साहा की बात पर सभी इस तरह मुस्कराये मानो वह सबके दिल
 की बात कर रहा हो ।

गाँव में ट्यूबवेल गाड़ने के लिए सरकारी आदमी आया है । वह बंगाल से
 आये हुए शरणाधिकियों के लिए कई गाँव बसा चुका है, यानी गाँवों में ट्यूबवेल
 लगवा चुका है । इसलिए, 'पूर्व बंगाल' की बोली 'कुछ-कुछ' समझने का दावा
 करता है । उसे देखते ही हरलाल साहा ने आँख टीपकर अपनी बात बंद कर दी।
 सभी चुप हो गये ।

किंतु वह सरकारी आदमी चुप नहीं रहा । उसने मुस्कराकर मीधे पवित्रा से
 पूछा था—यह आप लोग 'अपना देश-अपना देश' क्या बोलते है ? देश का क्या
 मतलब ? क्या माने ?

... देश का माने आर केया होगा... देश का माने देश... हरिधन मोड़ल को
 इस ट्यूबवेल गाड़नेवाले 'खुदे मनिब' (क्षुद्र अधिकारी) से न जाने क्यों चिढ़ है...
 'माइयाँ-छायला' (लड़कियाँ) देखते ही बात करने के लिए इसकी जीभ 'मुड़-
 मुड़ाती' रहती है । मानो हर बात का माने खोजता है बेटा !

... देश का माने देश, तो क्या हिंदुस्तान अपना देश नहीं है ? आप लोगों का
 देश नहीं है ?

... हिंदुस्तान कैसे 'आपना-देश' होगा ?

काला चाँद घोप चतुर नौजवान है । उसने अपनी भारी और मोटी हँसी से
 बात को हल्का करने की चेष्टा की—हे-हे-हे-हे ! अरे बाबू, आप देश का जो माने
 बूझता है, 'आसल' में हम लोगों का देश का माने वो नेंही है । देश का माने ? जैसे
 बांग्ला-देश, बिहार-देश, उड़ीसा-देश ! वैसे माफिक । हे-हे-हे-हे !

"तो प्रदेश बोलिए । प्रांत कहिए ।"

छिदामदास सरकारी कर्मचारियों से बातें करने का अवसर कुँड़ता रहता है ।
 उसने दाँत निपोरकर कहा—ओवरसियर बाबू—यह देश बोलिए, प्रदेश बोलिए
 या कि प्रांत कहिए—अब तो जो है सो बस यही नोबीननगर ग्राम !

सरकारी आदमी न जाने क्यों ठठाकर हँस पड़ा था । छिदामदास की
 बुद्धिमानी देखकर पवित्रा मुस्करायी थी और उस ट्यूबवेल-फिटर साहब की
 नजर शुरू में अंत तक पवित्रा पर ही गड़ी हुई थी । जब से बीड़ी निकालकर
 बाँटने के बाद सभी के मुँह के सामने, बारी-बारी से मच्च-सच्च लाइटर जलाकर

बीड़ी मुलगा दिया, फिटर साहब ने ।

वह अपने काम पर चला गया । छिदामदास ने कहा—देखा ? फिटर साहब को ओवरसियर बाबू कह देने से कितना खुश हुआ ?

सभी अपने देश की हँसी हँसे थे—जी खोलकर, एक साथ ! किंतु पवित्रा बोली थी—जो भी कहो, वह ठीक ही कहता था । देश माने हिंदुस्तान अर्थात् भारत ।

“दीदी ठाकरुन, देश माने हिंदुस्तान की कयरे हँय बुझाइया दिन” कैसे देश माने हिंदुस्तान हो ? हम लोगों के इस गाँव का नाम है नोबीननगर और यहाँ के लोग कहते हैं पाकिस्तानी-टोला !” की करे हँय बुझाइया दिन ! काला चाँद घोष की माँ वाजिब बात कहती है !

अधेड़ गोपालदा बहुत कम बोलने वाला आदमी है । मैट्रिक तक पढ़ा हुआ है और गाँव में स्थापित होने वाले स्कूल का उम्मीदवार मास्टर है । उसने टोका था—काला की माँ ! साइनबोर्ड लगने दो गाँव के बाहर । स्कूल चालू होने दो एक बार; तब देखना, फिर कैसे लोग पाकिस्तानी-टोला कहते हैं, हमारे इस नोबीननगर को !

छिदामदास अपने पेट से गंजी को तनिक ऊपर की ओर सरकाकर पेट पर हाथ फेरते हुए बोला था—आसल चीज है यह साला पेट ! ई बेटा पेट का बास्ते जो कुछ मुनना पड़े, कहना पड़े—सब कबूल !

“हल्दी-चिरैया फिर बोली—का कस्य परिवेदना !

नोबीननगर नहीं—नबीननगर !

न नोबीननगर, न नबीननगर । हम गाँव का सही नाम है नबीनगर ।

राज्य के पुनर्वास-उपमंत्री मुहम्मद इस्माइल नबी ने, इस गाँव के शिलान्यास-समारोह के अवसर पर बोलते हुए कहा था—यह सब उस बापू की महिमा है कि मेरे जैसे अदना खिदमतगार, जनता के इस छोटे सेवक के नाम पर आज नगर बसाया जा रहा है ।”

इसके बाद डिप्टी मिनिस्टर नबी साहब ने वीराने को बसाने और बसे को उजाड़ने की बात पर एक शेर पढ़ा था । गाँव के अधिकांश लोगों ने जिसका कोई मतलब नहीं ममझा । लेकिन, तालियाँ खूब जोर से बजायी थीं—

बसे को उजाड़ना ?

पवित्रा इस नये बसे हुए गाँव नबीनगर की एक झोंपड़ी में लेटी हुई अपने उजड़े गाँव में पहुँच जाती है—जिला मैमनसिंध के जुमापुर गाँव में ।

“पवित्रा के पिता, जुमापुर गाँव के एकमात्र हिंदू जमींदार ! एकमात्र ब्राह्मण-

परिवार । एकमात्र मवर्ण हिंदू ।

गाँव में तीन और जमींदार थे । तीनों मुसलमान । मुसलमानों की तरह टोली और हिंदुओं के—मव मिलाकर—ढाई मुहल्ले । गाँव के सभी लोग—हिंदू-मुसलमान—पवित्रा के पिता को 'पिता ठाकुर' कहते थे । और पवित्रा की हवेली का नाम मणहर था—ठाकुरवाड़ी !

काशीनाथ चटर्जी—पवित्रा के पिता—बगला और मस्कृत के ही पंडित नहीं, उर्दू और फारसी के भी अच्छे जानकार थे । 'जुमापुर की 'मजलिम' में दूर-दूर के मौलवी और मुल्ले आते थे और 'पिता ठाकुर' उन लोगों में पंडो इस्लाम की बारीक बातों पर बहस करते । घर में, जब किसी बात पर उन्हें तर्जुमा आता तो वे प्रायः फारसी का कोई पद्य दुहराते थे । उस समय मारे घर में एक दबरी हुई हैमी खेल जाती । किंतु, जब उसका अर्थ ठेठ बगला में सुनाया जाता, तो व्ययबाण में घायल शिकार छटपटाकर रह जाता । माँ चिड़चिड़ कहती—तुम हर बात में 'कलमा' पढ़कर जीतना चाहते हो— !

“कलमा” कादिर “कामिम” कामिम नहीं—कामिमदादा “कामिम-दादा” नहीं, कसाई !

“कादिर अब्बा के घर, हर साल 'ठाकुरवाड़ी' में दो बार गीगात भेजे जाते । ईद और दुर्गापूजा में । अपने पिता के माथ पवित्रा बचपन में ही ईद के मौके पर कादिर अब्बा की हवेली में जाती । कामिम, शमीम, शबनम—कादिर अब्बा के सभी बच्चे—दुर्गापूजा में 'ठाकुरवाड़ी' आते थे ।

“किंतु, उस बार 'ईद' के दिन पवित्रा नहीं गयी । कामिमदादा खुद आय । पवित्रा ने हँसकर कहा था—ईद मुबारक कामिमदादा !

“कामिमदादा ने इधर-उधर देखकर कहा था—चाँद तो मैं अभी देखा है ।—कामिमदादा, क्या बक रहे हो ?—तुमही आमा का चाँद !—किंतु, कामिम-दादा, चाँद तो आकाश में रहता है ।

“उसी बार पवित्रा ने अपने पिता से स्पष्ट जवाबों में कह दिया था—बाबा, यह कामिमदादा बड़ा फाजिल—माने—बदमाश हो गया है ।

“बाबा उन दिनों गाँधीजी की तरह सप्ताह में एक दिन मोन व्रत रखते थे । उन्होंने लिखकर उत्तर दिया था, कागज के एक टुकड़े पर—बदमाश हो या शैतान—प्रेम से सबको जीता जा सकता है । प्रेम मदा विजयी होता है !—आमल जिनिस होलो भालोबासा ! गाँधीजी बलेछे— !

“इसके बाद, एक रात को अचानक महाविनाश कीला शुरू हुई ।—आग—मार—काट—बंदूकों की आवाजें—ईद का जश्न—फुलझंडी—बदेमातरम्—गाँधीजी की जय—पवित्रा के पिता की आवाज ठाकुरवाड़ी में मँडरा रही है—आग की लपलपाती हुई लपटों में पवित्रा ने देखा था—कामिम दूँद रहा है ।

कोयाय ?—कहाँ है वह ?

“ फिर, पवित्रा ठाकुरबाड़ी से निकलकर कैसे बागदीपाड़ा में पहुँच गयी, वह नहीं जानती । उसकी आँखें खुली थीं—हिंदुस्तान के एक शरणार्थी कैंप में—कटिहार स्टेशन पर । होश में आते ही पवित्रा ने पूछा था—बाबा कहाँ हैं ? माँ कहाँ है ? और लोग कहाँ हैं ?... किसी ने कोई जवाब नहीं दिया । उसने फिर कोई मवाल नहीं किया । एक लंबी साँस लेकर वह चुप हो गयी । तभी से वह चुप है । सभी अपने गाँव और गाँव के लोगों की, बिछड़े हुए आत्मीय-स्वजनों की चर्चा करने है । वह मुँह बिदकाकर मुस्कराती रहती है । अर्थात्—क्या मूर्खता-भरी बातें करने रहते हैं लोग !

“ जिला मैमनसिंह, गाँव जुमापुर !

नबीनगर कॉलोनी के संकड़े-पचहत्तर निवासी एक ही जिला और गाँव के रहनेवाले हैं । पवित्रा को छोड़कर सभी पिछड़ी जाति के लोग हैं—सतगोप, काँदू, नम.-शूद्र, कैवत और बागदी ।

योगेशदास बारिमाल से आया है, शारदा बर्मन और माखन त्रिपुरा जिले के निवासी थे—बेतिया शरणार्थी कैंप में जुमापुरवालों के दल में आ मिले, इनके परिवार ।

“तीन-चार शरणार्थी कैंपों में, कई वर्षों तक जुमापुरवालों का दल, पवित्रा के बल पर ही टिका रहा ! जुमापुर का एक बच्चा भी दल में बिछुड़कर कहीं जाना नहीं चाहता । और, पवित्रा के कारण ही उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ—कहीं भी । जुमापुरवालों के मारे अभाव-अभियोग की सुनवाई सबसे पहले होती ।” दीदी ठाकुरन की आज्ञा के बिना न तो कोई रेशन का एक दाना छू सकता था और न सरकारी सहायता का एक पैसा । वे कहते—जाने दीदी ठाकुरन !

“और, हर जगह पवित्रा को एक जोड़ी आँखें घूरनी रहतीं । उन आँखों से कासिम झाँककर कहता—यहाँ है मेरा चाँद ! पवित्रा सुनती, कासिम कह रहा है—तुम जो कहोगी—करने को तैयार हूँ । आग में कूदने कहो, पानी में डूबने कहो !

“पवित्रा हुकम देनी—चावल, दूध, बिस्कुट, दवा, कपड़े जल्दी भेजो !... कैंप सुपरवाइजर की बदली करो ।... रिलीफ क्लर्क को बर्खास्त करो !... कासिम कहता—जो हुकम ! जैसी मर्जी ! लेकिन, लेकिन... मेरी अर्जी ? यानी, कम-से-कम एक बोसा भी नहीं ?

ऐसे मवालों पर पवित्रा मुँह बिदकाकर मुस्करा देती । अर्थात्—नॉनसेंस ! “किंतु, बेतिया कैंप के इंस्पेक्टर की आँखों से झाँकता हुआ कासिम अधीर होकर टूट पड़ा था—चाँद को पकड़ने ।

“पवित्रा मुँह बिदकाकर हँसती रही और एक दर्जन जुमापुरी शरणार्थिया

ने मिलकर इंस्पेक्टर का मिर मूड़ दिया, मुंह पर कालिख और चूना पोतकर कैप से बाहर निकाल दिया था—समारोह के साथ ।

...इसके बाद सबसे बड़े अफसर की आँखों में कासिम की झलक पाने ही पवित्रा ने हुकम दिया था—जुमापुरी शरणाधियों को ऐसी जगह में भेजो, जहाँ वे मछली-भात पेट-भर खा सकें । धान उपजा सके, पाट की खेती कर सकें ।

...सबसे बड़े अफसर ने कहा—जो हुकम ! सभी जुमापुरी पूर्णिया जायेंगे । आँखों की खिड़की से कासिम ने झाँककर कहा—किन्तु, तुमको मेरे साथ जाना होगा । मेरे दिल में एक वीरान जगह है, तुम अपना घर वही बाँधो । ...पवित्रा मुंह बिदकाकर हँसती रही, गाड़ी पूर्णिया की ओर चली—सभी जुमापुरी शरणाधियों को लेकर ।

...और पूर्णिया पहुँचकर आर० ओ० साहब के पी० ए० यानी रिट्रिब्यूशन ऑफिसर के पर्सनल असिस्टेंट की आँखों में देखा—कासिम विराजमान है, पढ़ने में ही ।

...इसलिए, सबसे अच्छी जगह और अच्छे इलाके में जुमापुरवालों की 'कॉलोनी' बसायी गयी । जहाँ की धरती उपजाऊ है, जहाँ की नदियों में हर किस्म की मछलियाँ हैं । गोड़ियर गाँव के दक्षिण गैरमजूरवा जमीन पर 'कॉलोनी' की नींव खुद आर० ओ० साहब ने डाली । उम दिन, कासिम आर० ओ० की आँखों में था । पी० ए० ने आँख उठाकर देखने का साहस भी नहीं किया ।

एक सरकारी लिफाफा हाथ में लेकर गोपालदा चिल्ला रहे हैं—सभी भाई-बहन मुन लीजिए । मंजूर हो गया ! हो गया मंजूर ! स्कूल हो गया !

पवित्रा को अचरज होता है, बहुत कम बोलनेवाला, कम मुननेवाला और कम सोनेवाला गोपालदा इधर इतना 'बकबक' क्यों करने लगा है ? स्कूल तो होना ही था । इस तरह चिल्लाने की क्या जरूरत ?

उसने गोपालदा के सारे उत्साह को अचानक बुझा दिया, मानो—गोपालदा, स्कूल तो हुआ मगर आपके पोखता-साइन-बोर्ड का क्या हुआ ? स्कूल का नाम पाकिस्तानी स्कूल तो नहीं रख देंगे, हाकिम लोग ?

गोपालदा ने इस बार ध्यान में—एक-एक शब्द पर जोर देकर पत्र पढ़ना शुरू किया—गोड़ियर गाँव के पाकिस्तानी टोला में स्कूल खोलने के प्रस्ताव पर...

इसके आगे वह नहीं पढ़ सका । उसका गला भर आया—मचमुच, यह पाकिस्तानी टोला नाम अब कभी नहीं मिटेगा ? ...गोड़ियर...गोड़ियर...चूल्हे में जाये यह गोड़ियर गाँव ।

“नहीं, गोपालदा ! ऐसा नहीं कहते । सभी गाँव फूलें-फलें । पवित्रा ने समझाया—गोड़ियर गाँव के साथ आपका नोबीननगर भी चूल्हे में चला जायेगा।

कालाचाँद घोष अब तक चुप था । उसको अपनी कीर्तन-पार्टी में दिलचस्पी है । स्कूल खुले या गाँव का नाम बदले ! उमने गोपालदा की ओर देखकर गाना शुरू किया :

नोबीननगर नेई बाबा—

नोबीनगर बोलो

पाकिस्तानी टोलार नामे—स्कूल

का रजिस्टर खोलो

बोलो हरि बोलो !

सभी हँस पड़े और गोपालदा फूट-फूटकर रो पड़ा । पवित्रा ने आँखों से ही कालाचाँद को डाँटा ।

गोड़ियर गाँव !

पद्रह घर मैथिल ब्राह्मण, चार परिवार राजपूतों के—यह हुआ गोड़ियर गाँव का बाबूटोला । बीस घर ग्वाले, आठ कैबर्त, तेरह घर गोड़ी । गोड़ियर गाँव का असल नाम इसी गोड़ी टोला से हुआ—जहाँ गोड़ी (मछली पकड़नेवाली जाति) लोग रहते हो—गोड़िहार । गोड़िहार से हुआ गोड़ियर । गोड़ियर गाँव का सबसे सुखी और संपन्न परिवार गोड़ी का ही है । तालेवर गोड़ी के यहाँ रुपया ‘गंध’ करता है । अर्थात् सुंगठी (सूखी मछलियाँ) की तरह जमे हुए पैसे से गंध निकलती है ।

ब्राह्मण टोली में चौधरी परिवार और राजपूतों में गिन-गूँथकर बस एक ही ऐसा घर है, जिनके पाम थोड़ी जमीन है । बाकी लोग यजमानी, पहलवानी, गाड़ीवानी, घोड़ा लदाई, दुकान, नौकरी, खेत-मजदूरी और चोरी करके जीवन-यापन करते हैं ।

‘कॉलोनी’ में स्कूल खुलने की खबर गोड़ियर गाँव के सभी टोलों में तुरंत पहुँच गयी । तालेवर गोड़ी के दरबार में मुँहलगुए और चापलूसों की भीड़ लगी हुई है । धानुकटोले का मोहना दफादार चूँकि मरकारी आदमी है, इसलिए वह गैरकानूनी बातें नहीं करता कभी । उमने कहा—गाँव के लोग दस साल से चिल्ला रहे हैं । स्कूल-स्कूल । मगर स्कूल के नाम पर एक चटसारा भी नहीं खुला, अब तक । उधर देखिए, पाखिस्थनियाँ सबको आये छः महीने भी नहीं हुए हैं, मिडल स्कूल खोलने का औडर पास हो गया !

सभी ने एक ही साथ अचरज से कहा—क्या-आ-आ-आ ? स्कू-ऊ-ऊ-ऊ-ल ? पाखिस्थनियाँ-टोला में ?

इसके बाद कुछ देर तक खामोशी छाई रही । सभी की आँखें वृद्ध तालेवर

गोड़ी पर जा अटकी। तालेवर गोड़ी ने हाथ की 'मुमरनी' को, 'सत-नाम-सहसर-नाम' कहकर झोले में रख दिया और निर्विकार नित में कहा—जो मचमुच अपने वच्चो को पढ़ाना चाहते हैं, उनके लिए सरकार जरूर स्कूल खोलेली। इसमें अचरज करने की क्या बात है ?

—वाजिब बात ! वाजिब बात !

तालेवर गोड़ी की वाजिब बात सुनकर सभी के चेहरे मुझा गये। "आज बुढ़वा 'खबुवाया' हुआ है, शायद। आज कोई काम बनने की उम्मीद नहीं।

तालेवर गोड़ी ने लोगों के मुरझाये हुए चेहरों को फिर खिलवा दिया। बोला—भैया, तुम लोग कहाँ हो ? पाश्चिम्पनियाँ सब भला बसेगा ? बगल हा होता तो ये जहाँ बसे हुए थे, वहाँ से भागते ही क्यों ?

—वाजिब बात ! वाजिब बात !

दोनों सौतेले भाई—जयराम मिश्र और रामजय मिश्र—आज न तालेवर गोड़ी के बिना पैसा के लड़ते हैं। जयराम मिश्र बोला—माला, जहाँ-जहाँ कानून बसाया—वहाँ जाकर देखिए। ई बंगलिया सब देखने में 'निबोनिया' लगते हैं, लेकिन 'भीतर-भीतर' बड़े 'मारखू' होते हैं। रातों-रात मिमेट, लोहा-लकड़ बेचकर गाँव-के-गाँव 'परेट' (अर्थात् भाग गये)। मिमूआ में, महिनदा में—सब जगह यही हाल हुआ कॉलनी का।

"कामचोर है सब।"

"फैशन देखा है ?"

"माला, जाना भी खड़ाऊँ पहनकर चलेगी। धरती पर पैर नहीं देगी, कभी।"

"धरती पर पैर कैसे दे ? सरकार बहादुर का रुपया है, घर की मुर्गी है, चाहे दाल बनाओ..."

पंडित रामचंद्र चौधरी अब तक चुप थे। खिनी धूकते हुए बोले—याद स्कूल का रुपया हजम करके पाश्चिम्पनियाँ लोग नहीं भागे तो, मेरा नाम रामचंद्र चौधरी नहीं—कुरुरचंद्र चौधरी कहना। जितने निठल्ले और कामचोर लोग थे, सभी रिफूजी हो गये हैं। मगर पंजाबी-रिफूजी ऐसे नहीं। पटना में, जबीशन रोड के बगल में, लौलीसेन के सामने एक पंजाबी-रिफूजी की पकौड़ी की दुकान थी। जब हम लोग अपील करने के लिए हायकोर्ट गये थे तो बूढ़ा-बूढ़ी दिन-रात पकौड़ी और घुघनी बेचता था। और जब केम का जजमेट मुनने गये तो देखा कि न पकौड़ी है, न पकौड़ी की दुकान और न बूढ़ा है, न बूढ़ी है..."

"कहाँ चले गये ? सरकारी कर्जा खाकर भाग गये ?"

"नहीं भाई, वे क्यों भागेंगे ? भागे थे बंगाली-रिफूजी। अब क्या बतलावे ? कहाँ तो टीन की टूटी हुई 'छनी' और कहाँ तीन मंजिला विलाडग..."

‘ब्लिडिंग क्या ?’

मोहना दफादार न पूछनेवाले को ‘ब्लिडिंग’ का अर्थ समझा दिया और बात का छोरा को अपने हाथ में ले लिया। चौधरीजी ठीक कहते हैं। मेहनत के नाम से उनका भूत भागता है और दिन-भर एक जगह गोबर बांधकर बैठेंगे और बीड़ी ‘धकेंगे’ और हमजा कचर-पचर करके आपस में बहस करेंगे। सभी को ‘मालार धंटा साला’ कहेंगे।

चौधरी रामचंदर को मोहना दफादार की यह आदत अच्छी नहीं लगती। बात के बीच में बोलने का साहस ? बसूलनाकर बोल—मालार धंटा साला कहता है तो कीन-गी बड़ी कहता है। माला तो जैम बिहार में, वैसे बगाल में। अजा, कालना का छोटा-छोटा बच्चा भी हम लोगो के लड़कों को कहता है—असब्बो, जोगूली, यादू।

असब्बो माने ?

मोहना दफादार खुद ‘असब्बो’ का अर्थ नहीं जानता। कैसे समझाये ? मतलब पूछनेवाले को ?

रामजय सिध बोला—मगर तारे कालना में एक ही जनाना ऐसी है कि दधिए तो बस देखने ही रह जाइए—एकटक।

उस दिन मोहना दफादार एक सरकारी बात बोला—अर हाँ। वह औरत नहीं, चाबी है चाबी। सभी हाकिम से मंदा-मंही बोलती है और हाकिम लोग गुम हो जाते हैं। दांगेगा माहब कह रहे थे, उस पर नजर रखना। शायद कोमनाम है।

‘कोमनाम क्या ?’

तानेवर गोदी ने कहा—कोमनाम का मान भी नहीं जानते ? अजी, जियको हिंदी में कमगिन कहते हैं, उगी को उर्दू में कोमनाम कहते हैं।

मोहना ने बाधा डालने की चेष्टा की—नहीं, नहीं...

उस बार पीडित रामचंदर चौधरी चिढ़ गए—मोहना, तुम एक साल की दफादारी में हा तानेवर भाई का बात को नहीं काट सकते। एक तुम्ही अर्थ समझनेवाला हो उस गांव में।

मोहना बोला—कोमनाम का मान कमामन है। मगर ऐसा कमगिन...

मोहना की कमी न बोलने नहीं दिया।

गामन का सड़क में नवानगर कालना के फेरी करनेवाले लड़कों का एक जुड़ गुजरा-गने और पीठ पर टोना न कमतर लटकाया। बिस्कुट, लेमनचूम, गमछा की फेरी करने के लिए ट्रेन और बस स दूर-दूर तक जाते हैं। फिर रात का दम-ग्यारह बजे तक लोटते।

पवित्रा 'आफिस-घर' के दक्षिण में कटहल के छोटे पेड़ के पास खड़ी है... न जाने कहीं देख रही है ! न जाने क्या देख रही है !!

गोपालदा ने पवित्रा का ध्यान भंग किया—की देखसेन ?... स्कूल की जगह देख रही हैं । और देखना नहीं होगा । हम लोगों के नोबीननगर के स्कूल का साइट—एकदम फस्ट क्लास...

"नहीं गोपाल मास्टर ! मैं कुछ और ही देख रही हूँ । आपको भी दिखलाती हूँ, अभी । सभी जुमापुरवालों को बुलाकर दिखलाना होगा ।"

"क्या ?"

पवित्रा हँसी । बोली—इधर आइए ! यहाँ खड़ा होइए ।... अब, देखिए—वहाँ उस... उधर नहीं, सीधे—दूर, उस टेढ़े पेड़ को । देख रहे हैं न ? अब, उससे भी दूर जो काला जंगल दिखलायी पड़ रहा है... और टाइल-खपड़े के वे घर—खजूर के दोनों पेड़ों के उस पार—देखा ?... अच्छा, बोलिए तो गोपाल मास्टर—हम लोगों के जुमापुर गाँव से अछिमुद्दिनपुर हाट जैसा दिखलायी पड़ता था... मान लीजिए आप जुमापुर के 'ठाकुर पोखरे' पर पूरब मुंह खड़े है और दूर दिखलायी पड़ रहा है—अछिमुद्दिनपुर हाट का काला जंगल । वह पेड़, ठीक ऐसा ही टेढ़ा पेड़ उस रास्ते में भी था । और खजूर का जुड़वा-गाछ... आपको याद है ?... देखिए तो ? बोलिए तो ?

गोपालदा ने आँखों के ऊपर तलहथी रखकर दूर तक दृष्टि दीढ़ायी और फिर अपनी आँखों को रगड़ा । फिर देखता ही रहा—ए की लीला ?

—मैं कल से ही देखकर हैरान हूँ ।

गोपालदा एक-डेढ़ मिनट तक चुपचाप खड़ा देखता रहा, फिर न जाने कैसे सब-कुछ भूल गया । उसे लगा; वह जुमापुर गाँव के ठाकुर पोखरा पर खड़ा होकर अछिमुद्दिनपुर हाट की ओर देख रहा है । पीठ की ओर है 'ठाकुरबाड़ी'—काशीनाथ चटर्जी की ड्योढ़ी ।... गोपालदा अभी तुरत पाठशाला से लौटा है । कुछ जरूरी बातें करनी हैं सेक्रेटरी (पिता ठाकुर) से । बागदीपाड़ा में पाठशाला खोलने की बात हो रही है और कादिर जमींदार का बेटा कासिम विरोध कर रहा है । लोगों को भड़का रहा है । पिता ठाकुर, अछिमुद्दिनपुर गये है, 'गोरूगाड़ी' (बैल-गाड़ी) पर ।... टेढ़े पेड़ के पास, 'गोरूगाड़ी' देखकर गोपालदा का कलेजा दहक उठा था—पता नहीं, कमिटी में किसकी जीत हुई ? पिता ठाकुर का कोई प्रस्ताव कभी नहीं गिरा । इस बार देखा जाय । ठाकुरबाड़ी चबूतरे पर खड़ी पवित्रा पुकार रही है—गोपाल मास्टर, बाबा अब आ ही रहे हैं । यहाँ आकर बैठिए न... !

"गोपाल मास्टर, की होलो ?"

"पाठशाला नहीं खोलने दिया तो... आमि हांगार-स्ट्राइक कोर्बों !"

“लेकिन, स्कूल की मजूरी तो मिल गयी है। कल मकान बनानेवाला ठेकेदार भी आ रहा है।”

“कोषाय ? ...सालार बेटा साला कादिरेर बेटा कासिम मार साला जालिम ...आमि हागार ...।”

“क्या बक रहे हो मास्टर ?”

“मैं बक रहा हूँ ?”

अचानक, गोपाल मास्टर को किमी ने नवीनगर कॉलोनी के ऑफिस-घर के सामने लाकर पटक दिया। उसकी आँखों से आँसू की झड़ी लग गयी—ए की ट्खाने दीदी ठाकुरन । ...यह क्या दिखलाया तुमने ? यह कैसे हुआ ?

“मोचनी हूँ, गाँव का रख इस ओर कर दिया जाय। जैसा जुमापुर में था।”

‘आलबन (अवश्य) बदल दीजिए।’

गोपाल मास्टर को ततनी बड़ी बात मिल गयी और वह चुपचाप खड़ा रहेगा ? उसने जुमापुर के एक-एक निवासी को नाम ले-लेकर पुकारना शुरू किया—देखे जाम—देखे जाम—आकर यहाँ देखो—अपनी जननी जन्मभूमि की एक झलक—देखे जाम !

छिदामदाम, कालाचाँद घोष, हरराम, हरिधन, राखाल विश्वास, हरलाल माहा, लखीकान सरकार—सभी दौड़े आये—भूत-ऊत तो नहीं ?

खेत-खमार में लौटे हुए और हाट-बाजार से आये हुए लोगों को गोपालदा चौखत्ते पर—कॉलोनी के बाहर ही—बेतावनी दे देता है—एक अद्भुत व्यापार ! दीदी ठाकुरन एक ‘मजा’ की चीज दिखलावेगी । ...चल ! चल !!

पवित्रा ने कालाचाँद से भी उमी तरह खड़ा होने को कहा—हाँ, पुन एक बार आँखों को मूँदकर कल्पना करो कि तुम जुमापुर के ठाकुर पोखरे पर खड़े होकर अछिमुद्दिनपुर हाट की ओर देख रहे हो—सामने पूरब की ओर। फिर, आँखें खोलो । ...लो, आँखें बंद करो ।

कासाचाँद हँसा—आँखें मूँदने से क्या होगा ? पैर जो इस ‘पर-भूमि’ पर है !

“तुम मूँदो भी । और, जैसा कहा है ...।”

आँखें खोलकर कालाचाँद ने कुछ देर तक पूरब की ओर देखा और उसका चेहरा पीला पड़ गया । ...उसी जुड़वाँ खजूर के पेड़ पर चढ़कर उसने ‘दीया’ (तोता) के दोनों बच्चों को उतारा था—राम-लखन का जोड़ा । ...अछिमुद्दिनपुर हाट का आलूचीप खाने के लिए वह घर से पैसे चुराकर हर ‘हाटबार’ को भाग जाता था । वह, वहाँ जो बगुले उड़ रहे हैं, वही है ‘बीबी दीघी’—मछलियों से भरी हुई छोटी नदी । उमी के किनारे मुहर्रम का मेला लगता है । जंगल के उस पार अछिमुद्दिनपुर गाँव है । जंगल के पास वह ...दरगाह है । उसी जंगल से, एक दिन हजारों लोग जुलूस बनाकर निकले थे । ...बंदे मातरम ! बंदे मातरम !! महत्ता

गाँधी की जे !

पवित्रा ने हँसकर पूछा—नारा क्यों लगा रह हो ?

कालाचाँद ने भरे गले में कहा—दीदी ठाकुरन, उम पर-भूमि में—

पवित्रा न डाँट बनायी—फिर 'पर-भूमि' कहते हो ?

—नही दीदी ठाकुरन ! यह तो...मचमुच जुमापुर में ही है हम लोग ।
जुगीदा आप नहीं समझियेगा । बारिमाल का नहीं—जुमापुर गाँव की छवि देखना चाहते हैं जो—देखे जास, देखे जास !!

पच्चीस साल और इससे अधिक उम्रवालों ने उम दिन बार-बार जुमापुर गाँव की छवि देखी । अपने 'देश' की झलक !!

लखीकांत सरकार, मसूर साहेब की दुकान में नौकरी करता था । रोज मुबह उठकर हाट की ओर जाने के पहले, पूरब की ओर दख नेता—ठाकुर-गाँव तो नहीं है, उधर ? ठाकुर-साँड लखीकांत को देखकर आगबबूला हो जाता था । लाल रंग का कोई कपड़ा नहीं—लोग के झड़े के लिए मसूर साहेब की दुकान में गाँठ-के-गाँठ कपड़े आये थे । उमी कपड़े का कुर्ता मसूर साहेब ने अपनी दुकान के सभी नौकरों को बनवा दिया था । जिस दिन लखीकांत उम कपड़े का कुर्ता पहनकर निकला, सदा शांत रहनेवाला ठाकुर-साँड उसे देखकर ऐसा बिगड़ा कि लखीकांत की जान पर बन आयी । '...किसी तरह उस दाहिनेवाले खजूर पर चढ़कर, दो घंटों तक वह लटका रहा'...

पंद्रह साल के लड़के-लड़कियों की बुद्धि में कोई बात नहीं आ रही !

इनमें से अधिकांश का जन्म भागते समय—खानाबदोशों की हालत में विभिन्न कैपों में हुआ था—मालदह, कटिहार, पटना, बेतिया के कैपों में । इसके बावजूद वे उन खुले खेतों की ओर, खजूर के पड़ों की, काले जंगल की, लाल खपरैलवाले घरों की ओर टकटकी लगाकर देख रहे हैं—वह अछिमुद्दिनपुर क्यों होने लगा, वह परवाहा गाँव है । कल ही उन गाँव में बिस्कुट बच आया है, अन्न !

जुमापुर-निवासी शरणार्थियों को रात-भर नींद नहीं आया—यह क्या दिखला दिया दाँदा ठाकुरन न ? रात के अंधकार में भी—वही झनक ? हूँ-बहूँ अछिमुद्दिनपुर हाट की रोगनी ! ऐसी ही जिनमिलनाता दुःख रोगनी !!

रात-भर, जब तक वे जग रह, जुमापुर में ही रह । वही की याद, वही का चर्चा । किसी ने ख्याया—कोई यो ही लेटा रह गया ।

रात के तीसरे पहर में, नींद के साथ गपन आये—सभी को ।

मुबह में एक-दूसरे के सपने की बात सुनते और एक लंबी साय छोड़कर चुप हो जाते । राखान ने कहा—आज वह खेत पर नहीं जा सकेगा । रात-भर उनकी 'खुड़ी' (चाची) पुकारती रही है—और राखान ! को घायल र !!

तीस जुमापुर-निवासीयों में बीस स्त्री-पुरुषों ने उस दिन कोई काम नहीं किया। किंतु, फेरीवाले नौजवानों और किशोरों ने समय पर अपना काम किया—एक-दूसरे को पुकारकर बुलाया। नहाया-धोया और अपनी-अपनी झोली-टोकरी, कनस्तर और बक्से लेकर निकले—चल रे ! माढ़े आठ-टा बाजलो । ...गाड़ी फेल होने पर आज 'बस' नहीं है, फिर।

फेरी करनेवाले नौजवानों का 'दलपति' है—बिष्टू। ट्रेन में, चंकर और गाड़ से मिलकर, अपने साथियों के दुःख-दर्द की गंवाही सुनाकर, ट्रेन में फेरी करने का मौखिक 'औडर' लेता, बस के ड्राइवर और कंडक्टरों को खुश रखना और सामूहिक खर्च का हिसाब रखना बिष्टू का काम है। महाजन भी उसकी 'जामिन' (जमानत) मांगते हैं।

कॉलोनी से बाहर निकलकर उसे याद आयी, दीदी ठाकरून न बुलाया था। कोई चिट्ठी भेजनी है कही।

पवित्रा ऑफिस-घर में एकत्रित लोगों की ममझा रही थी—काम पर नहीं जाने का क्या कारण? क्या मतलब? ...देशों, 'देश' की याद—अपनी जन्मभूमि की याद करते-करते हमारा हृदय कुठित हो गया है। किसी काम में जी नहीं लगता। हम किसी चीज में प्यार नहीं ...न यहाँ की धरती में, न यहाँ के लोगों में और न जहाँ के पशु-पक्षी से। किसी चीज पर विश्वास जमाना ही नहीं। इसीलिए, भगवान् ने सोचा कि चलो, इन्हें अपनी लीला दिखावा दो, ताकि ये यहाँ की मिट्टी की प्यार कर सकें, यहाँ के मनुष्य-भी प्रीति जोड़ सकें। जुमापुर और नबीनगर एक ही हैं ...।

बिष्टू आकर चुपचाप खड़ा हो गया। पवित्रा बोली—नहीं बिष्टू ! तुम जाओ। मेरा काम हो गया।

सभी चले गये। पवित्रा अपने काम का लेखा-जोखा लेने लगी—चार टेबुल-क्लाथ, दो आसनी, दो दर्जन गिलास डंकने के नेट-कवर, पाँच बटुए ! दो महीने का उत्पादन—बस, इतना ही ?

पवित्रा कॉलोनी-मेबर है। जिना-कॉलोनी-कमिटी के कई महत्वपूर्ण विभागों से उसका संबंध है। हर महीने में एक बार उसे 'मदर' जाना पड़ता है। परसों आवश्यक बैठक है। वह चाहती थी, बिष्टू के हाथ एक पत्र भेजकर ...।

...कालाचाई की माँ फिर कहाँ आ रही है ?

"क्या है काला की माँ ?"

"कुछ नहीं। एक बात पूछने आयी हूँ।"

वह बैठ गयी, चटाई पर। पवित्रा ने पूछा—क्या बात है ?

उधर, योगेशदास की बेंटी सध्या, दीदी ठाकरून के मिखाये नये गीत का 'रियाज' कर रही है—देश-देशे मोर घर आछे, आमि मई घर खुजि मरिया ।।

कालाचाँद की माँ का रग-रग देखकर पवित्रा समझ गयी, आज यह बूढ़ी सचमुच कोई गंभीर बात पूछने आयी है। '...कालाचाँद की माँ, 'ठाकुरबाड़ी' की नौकरी करती थी। पवित्रा के घर की बहुत-सी बातें जानती है। वह यह भी जानती है कि जुमापुर की विनाशलीला के पीछे धर्म और जाति नहीं—क्योंकि, इलाके-भर के लोगों ने 'पिता ठाकुर' को एक दिन पूर्व तक विश्वास दिलाया था—आप निश्चित रहें। यहाँ कुछ नहीं होगा। काला की माँ ने ही बेतिया कैप में चुपचाप बननाया था—कामिम भाले की नोक पर 'विनोद' का कटा हुआ सिर लेकर सबसे आगे था। विनोद मुखर्जी! लखिमपुर के राय माहब विक्रम मुखर्जी का बेटा—जो 'पिता ठाकुर' के नाम अपने बाप का गुप्त सदेश लेकर आ रहा था। अथवा—उमके मन में जो वंटी हुई थी, उमी की मुधि लेने आ रहा हो।' अछिमुद्दिनपुर हाट पर कामिम ने उसे देखा और भुलावा देकर अपने घर ले गया।

कालाचाँद की माँ बोली—दीदी ठाकरून ! एक बात पूछ ?...बुरा न मानियेगा। आप 'पढ़वा-पड़ित' है ? भूल-चूक हो—माफ कर दीजियेगा।

मब-कुछ तो मिला। अपने देश का अन्न, 'चाम-बाम', माछ, 'तरी-तरकारी'—मब-कुछ अपने जुमापुर गाँव में जैसा मिलता था—यहाँ भी मिलता है। हवा-पानी भी बही है। '...लेकिन, 'मन के मानुस' के जैसा... कोई यहाँ नहीं। मुझे माफ करना—दीदी ठाकरून !...तुमने एक बार कहा था—यहाँ भी संकड़ा कामिम है।'...

पवित्रा समझ गयी, कालाचाँद की माँ क्या कहना चाहती है। पवित्रा को लगा, कालाचाँद की माँ ने उसके हृदय के सबसे 'स्पर्श कातर' स्थल को छू दिया।

नबीनगर के आकाश पर, कोओ का एक झुंड बेतरह शोर मचाता हुआ चक्कर मारने लगा।

पवित्रा ने अपने को सँभाल लिया। उसने मुस्कराने की चेष्टा की—काला की माँ, अचरज की बात ! 'मन के मानुस' जैसा भी 'मानुस' है यहाँ। अपने मन की बात—आँखों में लिखकर, वह भी ले आता है। आँखों से ही जवाब उसे मिलता है...'।

काला की माँ बोली—देखने में हू-ब-हू विनोद बाबू जैसा है न ? मैं बतलाऊँ ? वह...वह 'खबर के कागज' का बाबू ?

पवित्रा इस बार हँस पड़ी। कालाचाँद की माँ ने कहा—मैंने ठीक ही पकड़ा है ?...किंतु, विनोद बाबू की तरह...माने...उमने कुछ कहा नहीं है ? आपने...आपने...दीदी ठाकरून, मब भगवान् की लीला है। लेकिन, बात आँखों में...

"काला की माँ ! सबसे अचरज की बात मुनोगी ? विनोद की तरह हँसता-बोलता है, तुतलाता है।...मिठाइयों में इसको भी सर्वप्रिय है—चंद्रपुल !"

“दीदी ठाकरून ! मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ । भगवान् ने शायद उन्हें ही फिर भेजा है, मन की बात कहने के लिए ।”

मन की बात तो वह कह चुका ।

“तुमने क्या जवाब दिया, दीदी ठाकरून ?”

“तुम पागल हो गयी हो काला की माँ ? तुम क्या चाहती हो, खोये हुए धन को पाकर—मैं फिर खो दूँ ?... मैं सिर्फ पवित्रा नहीं—मैं आग हूँ, मैं तलवार हूँ, मैं बर्छी हूँ, मैं-मैं... जहर हूँ... सापिन हूँ... वह मुझे पाकर अथवा मेरे मन को पाकर कितनी देर तक जी सकेगा?... और, तुम लोगों को छोड़कर मैं कहीं जाऊँगी तो कितने दिनों तक—तुम लोग मुझे अपने दरवाजे से इस तरह ठेलकर बाहर नहीं फेंक देना ! और... तुम... तुम काला की माँ—मेरी माँ हो ! भगवान् के लिए, फिर कभी ऐसी बात मुँह से न निकालना ।... वह... उसे यह बात... इस बात की भनक भी नहीं लगे... दुहाई... उसे जीने दो ! नहीं तो, तुम लोगों की दीदी ठाकरून... !

पवित्रा दहाड़ मारकर रो पड़ी ।

कालाचाँद ने माँ उसके उमड़ते हुए आँसू को पोछते हुए खुद रो पड़ी ।—
नहीं माँ ! मैं तुझे अपने कलेजे से सटाकर रखूँगी । अपनी ‘बुकुमणी’ (बिटिया) को आँखों में बिठाकर रखूँगी ।... तुमी जे आमार प्राण !!

उच्चाटन

ठीक वही हुआ, उसी तरह शुरू हुआ, जैसा उसने सोचा था। बरसों से मन में 'गुनी' हुई बात अक्षर-अक्षर फल गयी। रात की गाड़ी से वह गाँव लौटा—दो साल के बाद। और 'मरकट-महाजन' बूढ़े मिसर को रात में ही खबर मिल गयी। 'किरिन' फूटने के पहले ही वह 'बाभन-बनिया' खड़ाऊँ खटखटाता हुआ आया और उसके दरवाजे पर उकामी करके कफ धूकने लगा।

पहले तो उसको ऐसा लगा कि वह भोर का सपना देख रहा है। '...दो साल से, भोर में आनेवाले सपने का 'सिरगनेश' ठीक इसी तरह होता !

कफ से बंझी हुई कंठ-नली से एक गिलगिलाती हुई 'गिटकारी-भरी' बोली निकली, "बिलस-वा-वा-वा !... आ य-हूँ-क्-थो-हूँ !"

वेमुध, चित होकर सोयी हुई उसकी अधनगी बोवी हड़बड़ाकर उठी और कपड़े सहेजने लगी, "मिसर महाराज ?"

...महाराज ? नहीं, सपना नहीं। बुढ़वा माला सचमुच ही आया है।

उसे अचरज हुआ... ठीक वैसा ही हो रहा है। ठीक इसी घड़ी की प्रतीक्षा और इससे जीवट बांधकर जूझने की तैयारी वह पिछले चौबीस महीने स कर रहा था। इसके बावजूद उसका दिल धुका। हड्डी के अंदर एक पुराने डर का तार काँप गया। गाल और कनपटी दहकने लगी, 'डरामा' में परदा उठने ही अचानक 'पाट' भूल गया, मानो।

उसने देखा, उसकी बीवी की आँखों में नींद के बदले भय समाया हुआ था। वह आँखों से ही पृष्ठ रही थी—“महाराज को क्या...?”

अपनी बाँधी की घबरायी हुई मूर्त को देखकर वह संभला। मद्धिम आवाज में बड़बड़ाया, “तरे महाराज को...! तू इस तरह क्या देख रही है? अचभा का बच्चा ?”

बाहर, मिसर ने खासी के पहले वंग का झेल लिया था। इस बार उसकी आवाज में स्वाभाविक 'खनक' थी, 'बिलसि-या-या-या !'

उमने आँगन में निकलकर देखा, बूढ़ी माँ एक कोने में दुबक गयी है—गठरी जैसी। डर के मारे हाथ का हुक्का नहीं पी रही—“कहीं गुड़गुड़ाहट न मुन लें मिसर महाराज !

मुनहले बटनवाला ‘टीमाट’ पहनते हुए उमने आँगन से जवाब दिया, “कौन है जी ?... इस तरह हल्ला काहे कर रहे है साहेब ?”

ऐसा नुकीला जवाब सुनकर उसकी माँ-बीवी ही नहीं, बाहर खड़ा बहत्तर साल का बूढ़ा, इम गाँव का मालिक मिसर भी अवाक् हो गया—नशा-पानी खाया है क्या ?

उमकी बीवी हाथ में छोटी मचिया लेकर दरवाजे की ओर बढ़ी। उसने डाँट दिया—“कहाँ चली मचिया लेकर मटकती हुई उधर ? आँच सुलगाकर पानी गरम कर।”

आँगन में बाहर निकलकर उमने बीड़ी का धुआँ फेंका। “... नहीं, इतने दिन का रटा हुआ ‘पाट’ अब वह नहीं भूलेगा। बोला, “कहिये, क्या बात है ?”

मिसर के लिए इतना ही काफी था। “... न प्रणाम, न पाँवलागी ? मुँह पर बीड़ी का जूठा गुआँ फेंक दिया।

“अरे, तू तो एकदम बदल गया है, बिलसिया !”

“... अचरज की बात ! मिसर ने ठीक वही बात कही !

उमने अपना ‘नैयार-जवाब’ दिया, “बिलसिया-बिलसिया क्या बोलते हैं ? मेरा नाम रामबिलाम है—रामबिलास मिघ।”

रामबिलास ने अपनी माँ को पुकारकर कहा, “माय, जरा एक टोकरी गोबर और एक झाड़ू लेकर उधर आना तो—!”

रामबिलाम की बीवी ने अपनी बूढ़ी माम की ओर देखा। “... पहले पानी गरम करने को कहा, अब गोबर और झाड़ू माँगना है !

बूढ़ी आँगन से ही बोली, डरती-डरती, “झाड़ू-गोबर का क्या होगा, बेटा ?”

मिसर की आँखें गोल हो गयीं। दम फूलने लगा—सण्ढ ! अपमान, क्रोध और भय के मारे मिसर के गले में फिर खसखसाहट शुरू हुई। खाँसी को रोकने की चेष्टा करते उसका ‘युथना’ विकृत हो गया। पेट में कुपित वायु—

“बहू पूछती है कि गरम पानी का क्या होगा ?”

रामबिलाम कुढ़ गया, “बस, लगी जिरह-बहस करने ! पानी क्या होगा तो झाड़ू क्या होगा ? आकर देखो, किम तरह मारे कफ-यूक के दरवाजा ‘घिना’ गया है।... ! ! ! मिसरजी, यूक-थाक जरा उधर खेत में हैं-हैं-हैं-हैं—!”

मिसर ने सँभालने की कोशिश की, लेकिन उनकी गमछी गंदी हो गयी।

रामबिलाम ने घृणा से मुँह-नाक मिकोड़ते हुए कहा, “ऐसी ‘बेसँभाल’ खाँसी है तो गाँव-घर में ‘चल-फिर’ क्यों करते है ? इस बीमारी को पोसे हुए है, इलाज

क्यों नहीं करवाते ?...फोटो करवाकर देखिये, 'टीबी-उबी' न हो गया हो !"

किंतु मिसर की इस खांसी-उकासी ने सारा खेल ही बिगाड़ दिया मानो । जैसा कि रामबिलास ने सोच रखा था, रामबिलास के 'टीबी-उबी' वाले संवाद के बाद, मिसर को बोलना था—'चुप साला बेटीच्...टीबी हो तुम्हें और तुम्हारी औलाद को...!'

लेकिन मिसर 'पाट' छोड़कर 'बेपाट' की बात बतियाने लगा । बोला, "बबुआ ! अब क्या इलाज और क्या डागडर, क्या बैद ! टीबी हो या दमा, अब तो चलाचली की बेला हैं ।"

...पिछले साल, महेंद्रपुर मोहल्ला दुर्गापूजा के 'डरामा' में जुगल महतो पनवाड़ी ने इसी तरह खेला चौपट किया था । जल्लाद का 'पाट' लेकर उतरा और तलवार उठाकर मारते समय रटा हुआ 'पाट' ही भूल गया और बेपाट की बात बोलते-बोलते तलवार फेंककर रोने लगा । ...मिसर भी रोता है क्या ? नहीं, नाक पोंछ रहा है ।

मिसर समझ गया... 'राड़' की बाढ़ ! जब देखो राड़ की बाढ़, मुंह सँभाल-कर बोली काढ़ !

रामबिलास की बूढ़ी माँ हाथ में झाड़ू लेकर बाहर आयी— "पाँव लागी महराज !"

...बूढ़ी ने हाथ में झाड़ू लेकर ही पाँवलागी की ?

"प्रभु हो ! प्रभु हो ! ! अब तो बिल...रामबिलास बबुआ, इज्जत-आबरू के साथ चले जायें, यही मना रहा हूँ । इधर से जा रहा था तो सुना कि रात को बिल...रामबिलास बबुआ लौटा है तो बड़ी खुशी हुई । ...वाह ! खूब उन्नति किये हो । वाह ! !"

अब रामबिलास क्या जवाब दे ! ...बेपाट की बात !

"हम तो समझे कि आप बकाया रुपये का तकादा करने आये हैं । रात में तो आया ही हूँ । भागा जा रहा हूँ क्या ? खैर, जब आ गये हैं तो लेते जाइये अपना बकाया ।"

बूढ़ी ने पूछा, "बहू पूछती है कि पानी गरम हो गया । अब क्या...?"

"हर बात में जिरह ! पानी गरम करने कहा है चा बनाने के लिए ।"

मिसर बोला, "बाकी-बकाया का हिमाव-किताब होता रहेगा । जल्दी क्या है ?"

"नहीं...।" उठकर आते समय भी बिलसिया ने पाँवलागी नहीं की ।

रामबिलास अपने नये सूटकेस से चाय-चीनी-ग्याली निकालने लगा । बहू बोली, "अभी तो मिसर महाराज मैदा के हलुआ जैसा नरम हो गये । मैदा से १, किस तरह महीने में दो बार आकर भैंस 'कुरुक' करने की धमकी देते थे

दोनों—बाप-पूत मिलकर ।”

“तो उस समय बोली क्यों नहीं ? मुंह में क्या था, केला ?”

रामबिलास को याद आयी । मिसर की बेबात की बात सुनकर ही वह ‘परन’ ठानकर घर से भागा था—शहर, रुपया कमाने !... ‘साले, रुपया लेकर ‘बिहा-गौना’ किया । अब बीबी की टाँग पर टाँग चढ़ाकर सोते हो और मेरे रुपये की बात भूल गया ? एं ?... मैं यदि रुपया नहीं देता तो अभी ‘गुलगुला’ कैसे खाते रोज, एं ?’

...साला ! कान गरम हो जाता है अब भी, याद करके ।

“बेटा ! अब क्या बताऊँ ? अभी उस दिन मिसर का बड़ा बेटा दूध लेने आया । दूध बिक गया था, सब । कहीं से देती ? तो बर्तन उठाकर जाते समय जीभ ऐंठकर बोला—जमाना ही उलट गया है । नहीं तो इसी टोले से भैंस के बदले औरत का दूध दूहकर ले गये है हमारे सिपाही बरकंदाज !”

रामबिलास की जीभ जल गयी । चाय को फूँकते हुए वह बोला, “तो उस समय बोली क्यों नहीं ? मुंह में क्या था, केला ?”

...औरत का दूध ? साला, कलेजा काट देनेवाली बात !

रामबिलास ने अपनी बीबी से कहा, “सूटकेस में नयी अँगिया है । निकालकर पहन ले ।... अंग्रेजी अँगिया ।”

“राम-राम पालवेत !”

मूरज की रोशनी के साथ गाँव में बात फैलती गयी ।

...बिलसिया घर लौटा है, रात में ! ऐ ! अब उसको बिलसिया मत कहना कोई ! मिसर को ‘भोरे-भोरे’ बेपानी कर दिया । बोला, ‘बिलमिया मत बोलिये, रामबिलास कहिये ।’... मिसर की नाक पर दो मो रुपये का ‘पुलिदा’ फेक दिया ।... ‘हूँ, उमके कुरता के पाकिट में ‘लैसम’ है, सरकारी मोहरवाला । पटना में ‘रिक्शा-डलेवरी’ करता है तो सरकारी मोहरवाला लैसम जरूर मिला होगा ।... जानते हो ? अपनी घरवाली को नाम धरकर बुलाता है — ‘ए, झुमकी !’

झुमकी—रामबिलास की घरवाली—लाल अँगिया पहनकर पानी भरने गयी । औरतो ने उमे घेर लिया । “देखे जरा अंग्रेजी अँगिया; मेमिन लोग पहनती है... पेट उधारे’ । अरे, इम बित्ते-भर अँगिया का दाम पाँच टका ? बटून नहीं है तो खोलती-पहनती हो कैसे ? ऐसा ही ‘सकिस्त’ रहता है हरदम ? माड़ी भी ले आया होगा ? रात में कब आया ? पहली-पहर रात में ही ?”

झुमकी लजाती-हँसती कहती, “मैं तो डर गयी कि रात में नालवाला जूता पहनकर कौन आया रे बाप ! मैंया डरकर ‘कोठाली’ के पीछे छिप गयी दम साधकर ।... सहर जाकर आदमी की आवाज तक बदल जाती है । मगर, कारी भैंस ने उसकी बोली को ठीक पहचान लिया ।... ऊँय-ऊँय करती रस्मी तुड़ाकर

आँगन में दौड़ी आयी। मिर से पैर तक चाटने लगी मारे हुलार से। “मो, आते ही उलाहना दे दिया मरद ने—तुम लोगों में भली है मेरी यह कारी भीम।” आदमी से बढ़कर।”

“तब इसके बाद ? खाने को क्या दिया ‘उत्ती’ रात को ?”

“क्या बताऊँ दिदिया, लाज की बात। संजोग ऐसा देखो कि घर में न एक चुटकी चावल, न चूड़ा और न भूजा। मुदा, दही जम गया था तब तक। सो, दही खाते समय उलाहना दे दिया—‘कारी नहीं होती तो घर आकर रात में उपास हो करना पड़ता !’”

“तब ? इसके बाद ?”

“चोली रात में ही पहनी ?”

“गुल रोगन का तेल भी लाया होगा ?”

“तब ? और भी कोई उलाहना दिया ?”

“महर जाकर आदमी की आवाज ही बदली है या...?”

झुमकी मुँह बनाकर मुस्करायी। पनभरनियाँ हैंस पड़ीं, सभी। सभी की आँखों में झुमकी की लाल अँगिया की लाली तैरने लगी। सचमुच अँगिया पहनकर झुमकी का रूप खुल गया है !

दोपहर को पानी भरने आयी तो झुमकी के दोनों कानों में कुँडल लटक रहे थे। झुमकी का रूप खुलता ही जाता है।

नहाने के समय औरतों और लड़कियों की भीड़ लग गयी। सभी ने झुमकी से ‘मुनलेंट साबुन’ का झाग माँग-माँगकर देह में लगाया। “झुमकी अब रोज साबुन लगाकर नहायेगी ? तब तो, एकदम मेमिन-बंगालिनी की तरह गोरी हो जायेगी ? है कि नहो ?”

अवेर में दुकान पर गयी—कपाल पर चकमक बिंदी लगाकर। राह में ही, बहरी मौसी की गली में शिवधारी खड़ा था। झुमकी को देखकर मिन्नत गया, “एह ! आब जीयब काँउन...अब ? अब मेरा क्या होगा ?”

“घेत ! राह चलते हँसी-दिल्लगी मुझे पसंद नहीं।”

“हँसी-दिल्लगी पसंद नहीं ? मुँह बनाकर बड़बड़ाती हुई गयी। कही घर जाकर कह न दे ! सुनते हैं कि शहर से नाम में मिघ लगवाकर आया है। अच्छा, देखना है, कितने दिन तक यह गुमान ? शहर का मलीदा खाया हुआ मरद गाँव में कब तक रहेगा ?” इतने दिन का सब ‘लिया-दिया, किया-धिया’—सब फुम ?

दुकान पर उतने लोगों के बीच भी मोदियाइन ने बात को घुमा-फिराकर झुमकी से कहा, “तनि अपनी सास से होशियार रहना। अकेले में बैठा को फुमलाकर बम में करने के लिए इधर-उधर की बात न लगा दे, तुम्हारे

खिलाफ ! रुपया-पैसा न 'हथिया' ले बूढ़ी कहीं !"

झुमकी मदा की भाँति नयी बहुरिया की रीत निभाते हुए धूँघट के अंदर से ही बोली. मौसी, कोई कुछ लगावे-बझावे। ऊपर भगवान् तो हैं ! टोला-समाज, अड़ोस-पड़ोस के लोग तो है ! यह भैंस न होती तो न जाने क्या नतीजा होता ? दो-दो बरस किम तरह खेपा है मो सभी जानते है !"

...झुमकी भी बात को घुमा-फिराकर कहना जानती है। सभी समझ गये, इस बात को शिवधारी की बात पर बँठायी गयी है। अर्थात् शिवधारी नहीं होता तो भैंस की चरवाही कौन करता ? रात की चरवाही 'ठट्ठा' नहीं।

झुमकी बोली, "पिछवाड़े मे दो धूर जमीन 'सर्वे' मे हुआ है, लेकिन जमीन होने से ही तो नहीं होता है, उसको जोतना-कोड़ना जनाना का काम तो नहीं !... बीम रुपये की गोभी और प्याज-लहसुन दस रुपये का दो साल से हुआ—मो ऐसे ही नहीं। ... इस गाँव में कैसे-कैसे 'जमामार लोग' है सो किसी से छिपा है ? लेने के समय दूध-दही मीठा लगता है और दाम देने के बेर खट्टा ! हाट-बाजार मे लोगों को 'पिठिया' कर दूध-दही का दाम वसूलते फिरना तो जनाना जात नहीं कर सकती !"

दुकान मे लौटते समय झुमकी बहरी मौसी के आँगन मे गयी। शिवधारी मुँह लटकाये, सूतली का 'ढेरा' घुमा रहा था। झुमकी तनिक विहँसकर बोली, "मैं तुम पर गुस्साई हूँ। सुबह से सभी लोग आवे और तुम भैंस दूहकर बयान पर से ही क्यों भाग आये ? ... सुबह से तुम्हारे नारे मे दस बार पूछ चुका है। नहीं जाओगे तो उसको कैसे मालूम होगा कि तुमने कैसे-कैसे दिन मे क्या-क्या किया है ? अपने जानते, जिनना हो सका, मैंने कहा है। 'तुमको डर काहे का लगता है ? साँच को आँच क्या ?'"

झुमकी ने टोकरी से बीड़ी का एक 'भुट्ठा' निकालकर ओसारे पर रख दिया, "यह रही तुम्हारी बीड़ी-मुपारी। ... मुँहचोर हाँकर रहोगे तो वह जो कुछ मुनेगा, पतिया लेगा।"

शिवधारी का तन-बदन झनझन उठा। लगा, जान लौट आयी। ... नहीं, उसकी बुद्धि सचमुच थोड़ी मोटी है। झुमकी भोजी का गुस्सा जायज है !

... झुमकी के कान के कुँडल ... लाल अँगिया ... चकमक बिंदी ... महमह महक देह की ... जानलेवा हँसी !

शिवधारी की देह तप गयी ... आग लग गयी हों जैसे !

शिवधारी ओसारे पर रखे बीड़ी के मुट्ठे मे एक बीड़ी निकालकर मुलगाने लगा। उसका दिल अचानक बुझ गया ... सब दिना ललचाती ही रही। ... "कहीं भागी जा रही हूँ ?"

... अब तो भेंट-मुलाकान भी चोगी-चोगी ही कर सकता है वह।

शिवधारी बहुत देर तक बीड़ी का धुआँ उड़ाता रहा ।

रामबिलास के 'मचान' पर सुबह से ही बीड़ी के धुएँ का गुब्बारा उड़ रहा है । रह-रहकर हँसी की लहरें आती हैं । एक-से-एक दिल को गुदगुदानेवाला किस्सा सुना रहा है, रामबिलास—पटनियाँ किस्सा !

“दो साल पहले, चैत महीने की आधी रात में गाँव छोड़कर चुपचाप भागा था रामबिलास—गाँव छोड़कर और मिसर की नौकरी छोड़कर, मिसर का करजा पचाकर ।

“दूसरे दिन उसके मचान के पास और आँगन में ऐसी ही भीड़ लगी थी । उसकी माँ रो-रोकर लोगो को मुना रही थी, गोना के बाद से ही उमके लाड़ले बटे बिलसिया की मति फिर गयी । पराये घर की बेटो ने आकर उमके पाले हुए मुग्गे को उड़ा दिया ।

मुमकी घूँघट के अंदर से ही बुढ़िया को कोस रही थी और खूँटे पर बँधी भैंस रह-रहकर बहुत करुण सुर में पुकारती जाती थी—ऊँ-यें-यें-ये-ये-हँ-हँ-हँ !!

बूढ़े मिसर के मिपाही रामसिधामन सिध ने कहा था, ‘हम खूब समझते हैं । लीला पमार रही है दोनों ! बिलसिया चुपचाप नहीं भागा है । अपनी माँ-बीवी से सलाह करके ‘घसका’ है, गाँव छोड़कर । भागकर जायगा कहाँ ?’ ई ‘भैसिया’ तो मालिक के बथान पर जइबे करी, एक-न-एक दिन !’

“वह माला आजकल कहाँ है ?” नौकरी छोड़कर चला गया क्या ?” रामबिलास के इम मवाल को मुनकर सभी ने एक ही साथ अचरज प्रकट किया—“ओ-ओ-ओ ! तुमको नही मालूम ?”

पटनियाँ किम्मो के मुकाबले में एक ‘गंवैया-घरैया’ किस्सा सुनाने का मौका मिला है, घोटना को ।

“हाँ-हाँ, सुनाओ तुम्ही, घोटना ।”

“रामबिलास भाय ! तुमने आज जैमी बहादुरी की है उससे बढ़कर मर्दानगी का काम किया पिछले साल, पछियानी टोली की मुसम्मात की नयी पुतोह ने ।” जानते ही हो, मिधवा साला कैसा ‘घरढुक्का’ था ! गाँव में कोई नयी बहुरिया आयी कि उमकी नींद गयी । “बिलार की तरह घर में पँठकर, बिना ‘छिका’ को हिलाये ही दही के ऊपर की मलाई साफ कर देता था । लेकिन सब मलाई निकाला मुसम्मान की पुतोह ने !” माले को ऐसा ‘कसकसाकर’ पकड़ा कि ऊपर-नीचे दोनों तरफ की हवा गुम !”

“एँ ?”

“पूछो, सभी से।” आखिर अररिया अस्पताल में औपरेशन करके ‘बधिया’ किया तब जाकर होम हुआ। सुनते हैं, अस्पताल का डागडर पूछता था कि कहीं चक्की के दो पाट में पड़ गया था क्या सिधजी? मो, अस्पताल से निकलने के बाद इस गाँव की ओर मुँह नहीं किया, फिर। माला, एकदम बधिया! बा-आ-हा-हा....!”

“इस औरत को तो सरकार की तगमा मिलना चाहिए। सहर में होती तो अखबार में खबर ‘औट’ हो जाती, फोटो के साथ....।”

“फोटो कैसे औट होता? ...कमकसाकर पकड़े हुए ही? ह-ब-हू?”

फोटो की बात पर रामबिलास को अपनी तसवीर की बात याद आयी। पॉकेट से लाइसेंस निकालकर दिखलाया। सभी ने बारी-बारी से हाथ में लेकर फोटोवाला रिक्शा-डलेवरी-लाइसेंस को देखा। ...नहीं, रामबिलास झूठ नहीं कहता। लोगों ने झूठमूठ खबर उड़ा दी थी कि ‘क्रस्थान होटिल’ में बर्तन मंजना है। ...लोगों ने नहीं, उस दूबे के बड़े बेटे ने। जनेऊ की कसम खाकर कहता था कि हम अपने ‘चसम’ से देखा है, उसको।

शिवधारी को देखकर सभी चुप हो गये। ...रामबिलास को ‘लाट-साट’ का किस्सा मालूम हुआ है या नहीं? ...मालूम हुआ कि जान से खतम कर देगा। ...बात छिपेगी थोड़ी!

“क्या रे शिवधरिया! मुबह मे कहाँ ‘लापन्ता’ थे?”

“जरा टिसन चला गया था भैया!”

जरूर घड़े का पानी फेंककर पानी भरने निकली है अभी रामबिलास की बहू। ...शिवधारी की बोली सुनकर आंगन में कैसे रहे?

बहू पानी लेकर वापस आयी और घूँघट के अंदर से ही बोली, “अभी सहजो पीसी कह रही थी, तुम्हारे पिछवाड़े से मुसलमान-टोली की तरह महुक क्यों आ रही है? मुर्गी का अंडा पकाया जा रहा है कहीं?”

रामबिलास ने जाने क्या समझा। बोला, “कल से यहाँ मुर्गा बनेगा, मुर्गा! देखें, कौन साला क्या बोलता है! ...साला यह भी कोई जगह है? आलू की तरकारी में जरा-सा गरम मसाला डलवा दिया तो सारे गाँव में मुर्गी के अंडे की महक फैल गयी? बोलो!”

शिवधारी ने कहा, “इस गाँव की बलिहारी है! बिना पर की चिड़िया उड़ाने वाले बहुत लोग हैं।”

“सहर में सभी अपनी औरत को नाम लेकर बुलाते हैं। मैं अपनी बीवी को हजार नाम लेकर पुकारूँ, किसी साले का क्या?”

रामबिलास ने अपनी बहू को पुकारकर कहा, “ए झुमकी! शिवधरिया आया है। उसके लिए एक कुलफी चा भेज दो।”

आगिन में बहू ने मास से कहा, “माई ! मुनते हैं इस मरव की बोली-बानी !”
कमाऊ पूत की मस्ती देखकर, मसाले की गंध सूँघकर बूढ़ी प्रसन्न है।
कहती है, “बोली बानी क्या मुनूंगी ? आदमी जहाँ रहेगा, चाल वहीं का चलेगा !”

“साला ! हम दिन-भर चा पीयें या रात-भर दारू पीयें, इससे लोगों का क्या ?—मिवधरिया, टिसन की कलाली में पचास दारू अमली मिलता है या पानी मिलाया हुआ ? आज दो बोतल चढ़ेगा ।”

शिवधरिया दारू का हाल क्या जाने ! वह गाँजा के बारे में कह सकता है ।

“ए झुमकी ! इधर आ !” तू एक हाथ घूँघट क्यों काढती है ?”

झुमकी लजाकर आगिन की ओर भागी ।

सब-कुछ हुआ । रामबिलास ने पटना में बैठकर जो-जो सपने देखे थे, सभी सच हुए । “मिसर का ‘जहरदात’ उसने उखाड़कर फेंका । गाँव में इस बात को लेकर रामबिलास का जै-जकार हो रहा है । गाँव के हर घर में उसका नाम दिन में दस बार लिया जा रहा है ।—बेटा हो तो ऐसा !—मरद हो तो ऐसा !

उसका मवान गाँव के गालिक मिसर का चौपाल हो गया है, मानो । अब रामन-राजपूत दोले के अद्यान भी आकर बैठते हैं । दिन-भर चाय, बीड़ी, ताश और रात में ‘अंग्रेजी ताश’ !

उस दिन मिसर का बड़ा बेटा दिन-भर रामबिलास के मवान पर ताश खेलता रहा । साँझ हुई तो रामबिलास ने कहा, “अब यहाँ अंग्रेजी ताश का खेला होगा ।—खेलियेगा ?—एक ही घूँट !”

मिसर का बड़ा बेटा अब रोज साँझ को पाव-भर पी जाना है और दाम पूरे बोतल का देता है ।

गाँव के सभी नौजवान रामबिलास के साथ पटना जाना चाहते हैं, इस बार । रामबिलास के मुँह में चटकदार पटनियाँ किस्सा सुनकर गाँव कौन रहना चाहेगा, भला !

“...रजिन्तरनगर ? अब क्या बतावें कि कैसा है ? लगता है कि सरकारी इंजिनियर इंदरामन ने जाकर फोटो खींच लाया है, ठू-ब-ठू-बैसा ही सहर बसा दिया ।—सड़क के दोनों ओर रंग-विरंग के फूल । और हर फूल की झाड़ी में एक लड़की बंटी हुई—गीत गाती हुई !”

“एह ! तब तो सचमुच इंदरामन की इंदरसभा—”

“अजी, जहाँ की जमादारिन—जमादारिन माने पुलिस-जमादार की बहू नहीं, सड़क पर साड़ू देनेवाली—पटना की जमादारिन को देखोगे तो लगेगी किसी बड़े जमींदार की बहू है ।”

“ऐसी खपसूरती ?”

“देखने में काली होने से क्या होता है ? अमल चोज है, देह की गठन ।
... एक है रजबतिया । हमारे ‘रिक्सा-खटाल’ के पास ही रहती है । साली,
सुबह-सुबह छापेदार साड़ी पहनकर, कंधे पर झाड़ू-डंडा का झंडा लेकर
इस तरह ऐंठती हुई निकलती है जैसे राज जोतने जा रही है, झाड़ू देने
नहीं ।”

“एह !”

... भला कौन जवान रहना चाहेगा, इस मनहूस गाँव में ?

... रामबिलास भैया, इस बार आपके साथ मैं भी जाऊँगा । ... मैं भी । ...
मैं भी !! ... मैं भी !!! ... यहाँ साल-भर हलवाही करने हूँ, सिरफ़ एक गो माछ
रुपये में । वहाँ, एक महीना में दो सौ ? ... रामबिलास काका, मैं भी ! ...
रामबिलास पाहुन, मुझे मत भूलिएगा । रिक्सा-खलेवरी नहीं तो किमी होटल में
रखवा दीजिएगा । साला, हम चिनियाँ-बादाम बेचेंगे । ... मामा, आप उस
दिन कह रहे थे कि रद्दी कागज-सीमी-बोन्न का कारख़ाना भी खूब नफ़ावाला
होता है ...

एक शिवधरिया को छोड़कर सभी ने शहर जान का इरादा पक्का कर लिया
है । शिवधरिया ने कभी चर्चा भी नहीं की ।

सब-कुछ हुआ, लेकिन रामबिलास के मन में एक छोटा-सा कांटा कई दिनों
से ‘खच-खच’ कर गड़ जाता है—समय-अममय । उस रात झुमकी ने वैसा क्यों
कहा ? क्यों ? ... ‘सब ठीक है । मुदा ... !’

‘क्या मुदा ? बोल !’

... झुमकी आँखें मूंदकर हँसती है ।

‘आँखें क्यों मूंद रखी है ?’

‘लालटेन क्यों जलाकर रखे हो ? बुझा दो ।’

रामबिलास ने अनचाहे लालटेन की रोशनी मद्धिम कर दी । झुमकी बोली,
‘नहीं, एकदम बुझा दो ।’

... साली ! औरत है या चमगादड़ ?

शिवधारी गाँजा पीता है । बहुत जिद्द करने पर भी उसने किमी दिन दारू
का एक घूँट नहीं लिया । चखने के लिए एक बूँद भी नहीं !

सुबह, नींद खुलने के बाद ही रात की बात मन में ‘खचखचा’ कर गड़ गयी,
‘सब-कुछ ठीक है । मुदा ... ! !’

अब चार ही दिन रह गये हैं । ... रमाँ-आँ रहा एक दिन अर्बाध अधारा-आ-
आ-आ रम्माँ हो रमाँ-आँ ! ... रामबिलास के मन में आजकल हमेशा एक विदाई
गीत—समबाऊन—गूँजता रहता है ... मिली लेट्टु सखियाँ, दिवस भेल रतिया कि

चित भेल जग से उदा-आ-आ-आ-म !!

गाँव के सभी जानेवाले नौजवान कल स्टेशन-हाट से बाल कटवाकर आये है । ...रामबिलास बोला था कि शहर में केश के फैशन से ही लोग समझ जाते है कि कहीं का आदमी है । ...सभी की देह की बोटी-बोटी में 'उछाह' है, लेकिन रामबिलास के मन में रह-रहकर काँटा गड़ जाता है ।

...आज रात में वह झुमकी से फिर पूछेगा ।

"झुमकी, अब तो यहाँ चार ही दिन रहता है ।"

"हूँ-ऊँ-ऊँ !"

रामबिलास बहुत देर तक चुप रहा । तब वह ने पूछा, "फिर कब आओगे ?"

"आने का क्या ठिकाना !"

आज रामबिलास ने दारू नहीं पी है । स्टेशन-हाट की पचास दारू एकदम खाँटी होता है, गाँव के खाँटी दूध की तरह । ...एक ही प्याली में नशा सिर पर सन्न से सवार हो जाता है । ...आज अंग्रेजी ताश नहीं होगा, भाई !

रामबिलास की 'निरगुनियाँ-बोली' का कोई जवाब नहीं दिया झुमकी ने, लेकिन है जगी हुई ही ।

"झुमकी !"

"हूँ ! ...आज तुम दारू क्यों नहीं पीये ?"

"आज मारी रात जगा रहूँगा ।"

...मचमुच, सारी रात जगा रहा रामबिलास । भोर को जब कीआ-मैना बोलने लगा तो झुमकी ने कहा, "जरा मद्धिम आवाज में बोलो !"

अब तीन दिन 'फक्कत' । चौथे दिन साँझ को गाड़ी से—बरोनी पसिजर से—बीसों जवान खाना हो जायेंगे, एक शिवधारी को छोड़कर । कई दिन से वह भैस भी दूहने नहीं आता है । रामबिलास खुद दूहता है ।

"झुमकी !"

"क्या है ?"

"आज मैंने दारू नहीं, गाँजा पीया है । लगता है, आसमान में उड़ रहा हूँ ।"

"शिवधारी अब रात में भैस नहीं चरावेगा । उसकी बहरी मौमी आकर कह गयी है ।"

"मारो साले को गोली ! कल एक भैसवार ठीक कर दूँगा ।"

"भैसवार कौन चरावेगा तुम्हारी भैस ?"

"क्यों ?"

"सभी गिरस्तों के हलवाहे-चरवाहो को तुम भगाकर सहर ले जा रहे हो ।"

"किसने कहा कि मैं भगाकर ले जा रहा हूँ ?"

“गाँव के सभी गिरस्त बोलते हैं !”

“सभी गिरस्त नहीं । बोलता होगा, तुम्हारा वह सिवधरिया !”

झुमकी चुप रही । रामबिलास ने घुटने में ठोकर मारते हुए कहा, “क्यों ? ठीक कहता हूँ न ?”

“जो कहो तुम ।”

“मैं जो कहता हूँ, ठीक कहता हूँ ।”

झुमकी ने एक लबी साँस ली ।

“ठीक कहता हूँ न ?”

“है !”

“चौथे दिन से खूब मोज करना ।”

“मैं मोज करूँ या दुःख से मरूँ, तुमको क्या ? मोज करेगी रजबतिया-बोमिनियाँ तुम्हारे माथ ।”

“क्या बोली ?”

झुमकी चुप रही । रामबिलास ने फिर घुटने से एक ठोकर लगाकर पूछा, “क्या बोली :”

“मारना है तो जान से मार दो ।”

“साली ! जाने के पहले तुमको और तुम्हारे सिवधरिया को खतम करके ही...”

रामबिलास के सिर पर कोई भूत सवार है । आज वह दो चिलम गाँजा पीकर आया है ।

“चिल्लाओ मत, इस तरह ।”

“साली ! पटना का बड़ा-से-बड़ा बालिस्टर हमारी बोली को बद नहीं कर सकता और तुम कहती हो, चिल्लाओ मत !”

“तो चिल्लाते रहो ।”

“आज तो मैंने दारू नहीं पी है । तू उधर मुँह फिराकर क्यों साँप्यो है ? इधर पलट, तेरी...”

“नहीं ।”

“स्-स्-सा-ली !”

“आज रामबिलास खून कर देगा । चीर-फाड़कर रख देगा झुमकी को । “...क्या समझ लिया है ?...एँ ?...रिक्मा-डलेवरी करने से आदमी जनखा हो जाता है ?...एँ ?...बोल ?...कहती है, सब झूठ है !...मिसर से चौगुने सूद पर करजा लेकर उस सिवधरिया ने तुमसे बिहा किया था ?...एँ ?...बोल ! चौप साली !...खा कमम !...क्या समझ लिया है ? सहर में रहने से, दारू पीने से आदमी...चौप साली ! हम सब समझते हैं ।”

झुमकी बहुत देर तक रोती रही। रामबिलाम जब बिछावन छोड़कर उठने लगा तो झुमकी ने उसकी गजी पकड़ ली।

“क्या है ?”

“तुम पटना मत जाओ।”

“क्या बकती है ?”

“हाँ, मैं पैर पड़ती हूँ, मत जाओ !”

“हूँ। ...सहर नहीं जाऊँगा तो काम कैसे चलेगा ?”

“इतने लोगों का काम कैसे चलता है ?”

“ऊँह !”

“तब मुझे भी साथ ले चलो।”

“और सिवधरिया ?”

झुमकी रोने लगी फूट-फूटकर। सूरज बाँस-भर ऊपर उग आया। बूढ़ी ने पुकारा—“बहू-ऊ-ऊ-ऊ !”

गाँव के सभी जवान एक ही साथ आममान से गिरे। रामबिलाम आज मिसर के दरबार में कह रहा था कि घर की आधी रोटी भली। ...शहर में क्या है ? जितनी आमदनी होती है उससे चौगुना लहू खर्च होता है। गाँव आखिर गाँव है। ...मिसरजी ने बाकी करज का एक पाई भी सूद नहीं लिया। शहर में इस तरह कोई सूद छोड़ देता ? ...पटना कहो या दिल्ली, जो मजा अपने गाँव में है, वह इद्रासत में भी नहीं।

...मुना है, मिसर का बड़ा बेटा आँटा-धानी का मिल बैठावेगा। रामबिलास मंनेजरी करेगा उसका !

...मुना है, गाँव के गृहस्थों ने मिलकर चुपचाप रामबिलाम को ‘घूस’ दिया है। सभी के हलवाहे-चरवाहे भागे जा रहे थे न !

...मुना है, रामबिलास पटना में एक डोमिन से फँस गया था, इसलिए अब नहीं जाना चाहता। डोमिन को बचना होने वाला है।

और चौथे दिन सभी ने मुना, शिवधारी गाँव छोड़कर भाग गया। ...कल स्टेशन-हाट में दारू पीकर घुत था।

उसकी बहरी मौखी कह रही थी कि रामबिलास की बहू साँझ से आकर न जाने क्या फुमुर-फुमुर कह गयी और रात में ही शिवधरिया हबा हो गया।

रामबिलास ने कहा, “झुमकी, मुना वह सिवधरिया साला भाग गया !”

“दो कोड़ी रुपया मेरा लेकर भागा है।”

“तू पहले ही क्यों न बोली ? मुँह में क्या केला था ?”

“ऐसी नमकहरामी करेगा वह, सो कौन जानता था ?”

“तू आदमी को नहीं पहचानती !”

“कभी तो आवेगा मुंहझौसा ! तब पूछूंगी ।”

रामबिलास ने झुमकी को खींचकर छाती से लगा लिया। बांहों में उसके सिर को भरकर बोला, “मारो साले को गोली ! वह साला सहर से बचकर कभी वापस नहीं आवेगा !... साले को दारू खा जायगा ! देखना !”

झुमकी हठात् उठ बैठी, “भैंस क्यों ‘डिकर’ रही है इस तरह ?”

रामबिलास ने कहा, “सुबह भैंसा की खोज में जाना होगा। भैंस ‘उठ’ गयी है, लगता है।”

आज झुमकी फिर नयी बहुरिया की तरह लजाकर मुस्कराती है। बिना पीये ही रामबिलास मतवाला हो गया।

“ऐ ! जरा दारू चखेगी ?... बस, एक घूंट ।”

झुमकी हंसने लगी—“नही !... नही !!... नही !!! मुझे दारू की बास... उयेक्... ऊँहँहँहँ !!”

एक आदिम रात्रि की महक

“न...करमा को नींद नहीं आएगी।

नये पक्के मकान में उसे कभी नींद नहीं आती। चूना और वानिश की गंध के मारे उसकी कनपटी के पास हमेशा चौअल्ली-भर दर्द बिनचिनाता रहता है। पुरानी लाइन के पुराने ‘इस्टिसन’ सब हजार पुराने हों, वहाँ नींद तो आती है।...ले, नाक के अंदर फिर मुड़सड़ी जगी समुरी !...

करमा छींकने लगा। नये मकान में उमकी छीक गूँज उठी।

“करमा, नींद नहीं आती ? बाबू ने कँप खाट पर करवट लेते हुए पूछा।

गमछे से नथुने को साफ करते हुए करमा ने कहा, “यहाँ नींद कभी नहीं आएगी, मैं जानता था बाबू।”

“मुझे भी नींद नहीं आएगी।” बाबू ने सिगरेट सुलगाते हुए कहा, “नयी जगह में पहली रात मुझे नींद नहीं आती।”

करमा पूछना चाहता था कि नये पोख्ता मकान में बाबू को भी चूने की गंध लगती है ? कनपटी के पास दर्द रहता है हमेशा क्या ?...बाबू कोई गीत गुनगुनाने लगे। एक कुत्ता गश्त लगाता हुआ सिगनल केबिन की ओर से आया और बरामदे के पास आकर रुक गया। करमा चुपचाप कुत्ते की नोयत को ताड़ने लगा। कुत्ते ने बाबू की खटिया की ओर धुपना ऊँचा करके हवा में सूँघा। आगे बढ़ा। करमा समझ गया—जरूर जूताखोर कुत्ता है, साला !...नहीं, सिर्फ सूँघ रहा था। कुत्ता अब करमा की ओर मुड़ा। हवा सूँघने लगा। फिर मुसाफिरखाने की ओर दुलकी चाल से चला गया।...

बाबू ने पूछा, “तुम्हारा नाम करमा है या करमचंद या करमू ?”

...सात दिन तक साथ रहने के बाद, आज आधी रात पहर में बाबू ने दिल खोलकर एक सवाल के जैसा सवाल किया है।

“बाबू, नाम तो मेरा करमा ही है। वैसे लोगों के हजार मुँह हैं, हजार नाम कहते हैं।...निताय बाबू कोरमा कहते थे, घोस बाबू करीमा कहकर बुलाते थे,

सिंघजी ने सब दिन कामी ही कहा और असगर बाबू तो हमेशा करम-करम कहते थे। खुश रहने पर दिल्लगी करते थे—हाय मेरे करम ! ' ' नाम में क्या है बाबू ! जो मन में आये कहियें। हजार नाम... ! ”

“तुम्हारा घर संचाल परगना में है, राँची-हजारीबाग की ओर ? ”

करमा इस सवाल पर अचकचाय जरा। ऐसे सवालों के जवाब देते समय वह रमता जोगी की मुद्रा बना लेता है। घर ? जहाँ धड़, वहाँ घर। माँ-बाप—भगवान्जी ! ...लेकिन, लेकिन बाबू को ऐसा जवाब तो नहीं दे सकता। ...

...बाबू भी खूब हैं। नाम का अरथ निकालकर अनुमान लगा लिया—घर संचाल परगना या राँची-हजारीबाग की ओर होगा, किसी गाँव में ? करमा का पर्व के दिन जन्म हुआ होगा, इसीलिए नाम करमा पड़ा। माया, कपाल, होंठ और देह की गठन देखकर भी। ...

...बाबू तो बहुत गुनी मालूम होते हैं। अपने बारे में करमा को कुछ मालूम नहीं। और बाबू नाम और कपाल देखकर सब-कुछ बता रहे हैं। इतने दिन के बाद एक बाबू मिले हैं, गोपाल बाबू के जैसा !

करमा ने कहा, “बाबू, गोपाल बाबू भी यही कहते थे। यह करमा नाम तो गोपाल बाबू का ही दिया हुआ है। ”

करमा ने गोपाल बाबू का किस्सा शुरू किया—“गोपाल बाबू कहते थे, आसाम से लौटती हुई कुली गाड़ी में एक ‘डोको’ के अंदर तू पड़ा था, बिना ‘बिल्टी-रसीद’ के ही। लावारिस माल ! ”

...चलो, बाबू को नींद आ गयी। नाक बोलने लगी। गोपाल बाबू का किस्सा अधूरा ही रह गया।

...कुत्ता फिर गश्त लगाता हुआ आया। यह कार्तिक का महीना है न ! समुरा पस्त होकर आया है। हाँफ रहा है। ...ले, तू भी यहीं सोएगा ? जँह ! साले की देह की गंध यहाँ तक आती है—धेत्त ! धेत्त !

बाबू ने जगकर पूछा, “हूँ-ऊँ-ऊँ ! तब क्या हुआ तुम्हारे गोपाल बाबू का ? ”

कुत्ता बरामदे के नीचे चला गया। उलटकर देखने लगा। गुर्राया। फिर, दो-तीन बार दबी हुई आवाज में ‘बुफ-बुफ’ कर जनाने मुसाफिरखाने के अंदर चला गया, जहाँ पैटमान जी सोता है।

“बाबू, सो गये क्या ? ”

...चलो, बाबू को फिर नींद आ गयी। बाबू की नाक ठीक बबुआनी आवाज में ही डाकती है। पैटमान जी तो, लगता है, लकड़ी चीर रहे हैं ! ... गोपाल बाबू की नाक बीन जैसी बजती थी—सुर में ! ...असगर बाबू का खर्राटा...सिंघजी फूफकारते थे और साहू बाबू नींद में बोलते थे—‘ए, डाउन

दो, गाड़ी छोड़ा...!

‘तार की घंटी ! स्टेशन का घंटा ! गाड़ साहब की सीटी ! इंजन का बिगुल ! जहाज का भोंगा !...सैकड़ों सीटियाँ...बिगुल...भोंपा...भों-ओं-ओं-ओं...!’

“ हजार बार, लाख बार कोशिश करके भी अपने को रेल की पटरी से अलग नहीं कर सका, करमा । वह छटपटाया, चिल्लाया, मगर जरा भी टस से मस नहीं हुई उसकी देह । वह चिपका रहा । धड़धड़ाता हुआ इंजन गर्दन और पैरों को काटता हुआ चला गया ।...लाइन के एक ओर उसका सिर लुढ़का हुआ पड़ा था, दूसरी ओर दोनों पैर छिटके हुए ! उसने जल्दी से अपने कटे हुए पैरों को बटोरा—अरे, यह तो एंटोनी गाट साहब के बरसाती जूते का जोड़ा है । गंबूट !—उसका सिर क्या हुआ ? धेत्त-धेत्त ! ससुरा नाक-कान चबा रहा है ।... ”

“करमा !”

“धेत्-धेत् !...”

“उठ करमा, चाय बना !”

करमा फड़फड़ाकर उठ बैठा ।...ले, बिहान हो गया । मालगाड़ी को ‘धुरू पास’ करके, पेटमान जी हाथ में बेत की कमानी घुमाता हुआ आ रहा है ।...साला ! ऐसा भी सपना होता है, भला ? बारह साल में, पहली बार ऐसा अजूबा सपना देखा करमा ने ।

बारह साल में एक दिन के लिए भी रेलवे लाइन से दूर नहीं गया करमा । इस तरह ‘एकसिडंटवाला सपना’ कभी नहीं देखा उसने !

करमा रेल कंपनी का नौकर नहीं । वह चाहता तो पीटर, खलासी, पेंटमान या पानी पांडे की नौकरी मिल सकती थी । खूब आसानी से रेलवे नौकरी में ‘घूस’ संकता था । मगर मन को कौन समझाए । मन माना नहीं । रेल कंपनी का नीला कुर्ता और इंजन छाप वटन का शोक उसे कभी नहीं हुआ ।

रेल कंपनी क्या, किसी की नौकरी करमा ने नहीं की । नाम-धाम पूछने के बाद लोग पेशे के बारे में पूछते हैं । करमा जवाब देता है, “बाबू के ‘साथ’ रहते हैं ।—एक पंसा भी मुसहरा न लेनेवाले को नौकर तो नहीं कह सकते ।”

“...गोपाल बाबू के साथ, लगातार पाँच वर्ष ! इसके बाद कितने बाबुओं के साथ रहा, यह गिनकर बतलाना होगा । लेकिन एक बात है...रिलिफिया बाबू को छोड़कर किसी सालटन बाबू के साथ वह कभी नहीं रहा ।...सालटन बाबू माने किसी टिसन में परमानटी नौकरी करनेवाला—फैमिली के साथ रहने-वाला !

“...जा रे गोपाल बाबू ! वैसा बाबू अब कहाँ मिले ? करमा का माय-बाप, भाय-बहिन, कुल-परिवार, जो बुझाए, सब एक गोपाल बाबू !...बिना बिल्टी-

रसीद का लावारिस माल था, करमा। रेलवे अस्पताल से छुड़ाकर अपने साथ रखा गोपाल बाबू ने। जहाँ जाते, करमा साथ जाता। जो खाते, करमा भी खाता। 'लेकिन आदमी की मति को क्या कहिए। रिलिफिया काम छोड़कर सालटनी काम में गये। फिर, एक दिन शादी कर बैठे। 'बौमा' गोपाल बाबू की फैमिली—राम-ही-राम ! वह औरत थी ? साच्छात चुड़ैल ! 'दिन-भर गोपाल बाबू ठीक रहते। सौझ पड़ते ही उनकी जान चिड़िया की तरह लुकाती फिरती 'आधी रात को कभी-कभी इमपेसल पाम करने के लिए बाबू निकलने। लगता, अमरीकन रेलवे इंजिन के बायलर में कोयला झोंककर निकले हैं। 'करमा क्वाटर के बरामदे पर सोता था। तीन महीने तक रात में नींद नहीं आयी, कभी। 'बौमा फों-फों करती—बाबू मिनमिनाकर कुछ बोलते। फिर शुरू होता रोना-कराहना, गाली-गलौज, मारपीट। बाबू भागकर निकलते और वह औरत झपटकर माथे का केश पकड़ लेती। 'तब करमा ने एक उपाय निकाला। ऐसे समय में वह उठकर दरवाजा खटखटाकर कहता, "बाबू, इसपेसल का कल बोयना है।" 'बाबू की जान कितने दिनों तक बचाता करमा ? 'बौमा एक दिन चिल्लायी, "ए छोकरा हरामजादा के दूर कोरो ! यह चोर है, चो-ओ-ओ-र।"

'इसके बाद से ही किसी टिमन के फैमिली क्वाटर को देखते ही करमा के मन में एक पतली आवाज गूँजने लगती है—चो-ओ-ओ-र ! हरामजादा ! फैमिली क्वाटर ही क्यों—जनाना मुसाफिरखाना, जनाना दर्जा, जनाना 'जनाना नाम से ही करमा को उबकाई आने लगती है।

'एक ही माल में गोपाल बाबू को हाड़-गोड़ सहित चबाकर खा गयी, वह जनाना ! फून जैसे मुकुमार गोपाल बाबू ! जिंदगी में पहली बार फूट-फूटकर रोया था, करमा।

'रमता योगी, बहता पानी और रिलिफिया बाबू ! हेडक्वाटर में चौबीस घंटे हुए कि परयाना कटा—फलाने टिसन का मास्टर बीमार है, सिकरिपोट आया है। तुरंत जोआयेन करो। 'रिलिफिया बाबू का बोरिया-बिस्तर हमेशा रेडी रहना चाहिए। कम-से-कम एक सप्ताह, ज्यादा-मे-ज्यादा तीन महीने से ज्यादा किसी एक जगह में जमकर नहीं रह सकता कोई रिलिफिया बाबू ! 'लकड़ी के एक बक्से में सारी गृहस्थी बंद करके आज यहाँ, कल वहाँ। 'पानी-पाड़ा से भातगाँव, कुरंठा से रीताड़ा। फिर, हेडक्वाटर, कटिहार !

'गोपाल बाबू ने ही घोंस बाबू के साथ लगा दिया था—खूब भालो बाबू ! अच्छी तरह रखेगा। लेकिन, घोंस बाबू के साथ एक महीना से ज्यादा नहीं रह सका, करमा। घोंस बाबू की बेवजह गाली देने की आदत ! गाली भी बहुत खराब-खराब। माँ-बहन की गाली। 'इसके अलावा घोंस बाबू में कोई

ऐब नहीं था। अपने 'सर्वांग' की तरह रखने थे। '...घोम बाबू आज भी मिलते हैं तो गाली से ही बात शुरू करते हैं, "की रे...करमा? किमका साथ में है आज-कल मादबं...?"

...घोस बाबू को माँ-बहन की गाली देनेवाला कोई नहीं। नहीं तो समझते कि माँ-बहन की सुनकर आदमी का खून किस तरह खौलने लगता है। किमी भले आदमी को ऐसी खराब गाली बकते नहीं मुना है करमा ने आज तक।

...राम बाबू की सब आदत ठीक थी। लेकिन—भा-आ-री इसकी आदमी ! जिस टिसन में जाते, पेंटमान-पोटर-सुपर को एकांत में बुलाकर घुमुर-घुमुर दतियाते। फिर रात में कभी मालगोदाम की ओर तो कभी जनाना मुमाफिर-खाना में, तो कभी जनाना पैखाना...छिः-छिः...जहाँ जाते, छुछुआते रहते, "क्या जी, असल माल-बाल का कोई जोगाड़-जंतर नहीं लगेगा?... " आखिर वही हुआ जो करमा ने कहा था—माल ही उनका काल हुआ। पिछले माल जोगबनी लाइन में एक नेपाली ने खुखरी से दो टुकड़ा काटकर रख दिया। और उड़ाओ माल !...जैसी अपनी इज्जत, वैसी परायी !

...सिधजी भारी पुजेगरी ! सिया सहित राम-लछमन की मूर्ति हमेशा उनकी झोली में रहती थी। रोज चार बजे भोर से ही नहाकर पूजा की घंटी हिलाते रहते। उधर कल की घंटी बजती।...जिम घर में ठाकुरजी की झोली रहती, उसमें बिना नहाये कोई पैर भी नहीं दे सकता था।...कोई अपनी देह को उस तरह बांधकर हमेशा कैसे रह सकता है ? कौन दिन में दस बार नहाए और हजार बार पैरें धोए ! सो भी, जाड़े के मौसम में !...जहाँ कुछ छूओ फि हूँ-हूँ-हूँ—हाँ-हाँ-हाँ—अरेरेरे—छू दिया न !...ऐसे छुतहा आदमी को रेल कपनी में आने की क्या जरूरत !...सिधजी का साथ नहीं निभ सका।

...साहू बाबू दरियादिल आदमी थे। मगर मदक्की ऐसे कि दिन-दोपहर को पचास दारू एक बोतल पीकर मालगाड़ी को थुरु पास दे दिया और गाड़ी लड़ गई। करमा को याद है, एकसिडेंट की खबर सुनकर साहू बाबू ने फिर एक बोतल चढ़ा लिया।...आखिर डाक्टर ने दिमाग खराब होने का सर्टिफिकेट दे दिया।

...लेकिन, उस एकसिडेंट के समय भी किमी रात को करमा ने ऐसा सपना नहीं देखा !

...न...भोरे-भोर ऐसी कुलच्छन-भरी बात बाबू को सुनाकर करमा ने अच्छा नहीं किया। रेलवे की नौकरी में अभी तुरत 'घुसवें' किये हैं।

...न...बाबू के मिजाज का टेर-पता अब तक करमा को नहीं मिला है। करीब एक सप्ताह तक साथ में रहने के बाद, कल रात में पहली बार दिल खोलकर दो सवाल-जवाब किया बाबू ने। इसीलिए सुबह को करमा ने दिल

खोलकर अपने सपने की बात शुरु की थी। चाय की प्याली सामने रखने के बाद उमने हँसकर कहा, “हँह, बाबू, रात में हम एक अ-जू-ऊ-ऊ-बा सपना देखा। धड़धड़ाता इंजन—लाइन पर चिपकी हमारी देह टस-से-मस नहीं... सिर इधर और पैर दोनों लाइन के उधर... एटोनी गाट साहेब के बरमाती जूते का जोड़ा... गवोट...!”

“धेन ! क्या बेमिर-पैर की बात कहते हो, सुबह-सुबह ! गाँजा-वाँजा पीता है क्या ?”

...करमा ने बाबू को सपने की बात सुनाकर अच्छा नहीं किया।

करमा उठकर ताखे पर रखे हुए आईने में अपना मुँह देखने लगा। उमने अ-जू-ऊ-ऊ-बा कहकर देखा। छि., उसके होठ तीतर की चोंच की तरह...

“का करचमन ? का बन रहा है ?”

...पानी पाडे भला आदमी है। पुरानी जान-पहचान है इससे करमा की। कई टिमन में सगन में सगन हुआ है। लेकिन, यह पैटमान लटपटिया आदमी मालूम होता है। हर वान में पुच-पुच कर हँसनेवाला।

“करमचन, बाबू कौन जाति के है ?”

“बगो ? बगाली है।”

“भैया, बगाली में भी माढ़े बारह बरन के लोग होते है।”

“पानी पाडेजी, मां तो मैं नहीं जानता। मगर बहुत गुनी आदमी है। आपका नाम का मतलब निवालकर—चेहरा देखकर सब-कुछ बता देंगे... नीजिए, घटी पड़ गयी जुबज्जी गाड़ी की, और मेरी तरकारी अभी तक चढ़ी हुई है।”

पानी पाडे जाने-जाने कह गया, “घोड़ी तरकारी रखना, करमचन !”

... घर कहाँ ? कौन जाति ? मनिहागी घाट के मस्तान बाबा का मिखाया हुआ जवाब सभी जगह नहीं चलता—हरि के भजे सो हरि के होई ! मगर, हरि की भी जाति थी !...ले, यह घटही गाड़ी का इंजन कैसे भेज दिया इस लाइन में आज ? सथाली बामी जैसा पतली सीटी—सी-ई-ई !!

...ले, पक्का ! एक भी पसिजर नहीं उतगा इस गाड़ी से भी। काहे को टत्ता खर्चा करके रेल कपनी ने यहाँ टिमन बनाया, करमा की बुद्धि में नहीं आता। फायदा ? बस, नाम ही आदमपुरा है—आमदनी नदारद। सात दिन में दो टिकट कटे है और मिफं पाँच पसिजर उतरे है, तिममें दो बिना टिकट के।... इतने दिन के बाद पंद्रह बोर बँगन उम दिन बुरा हुआ। पंद्रह बँगन देकर ही काम बना लिया, उस बूढ़े ने।... उम बँगनवाले की बोली-बानी अजीब थी। करमा से धुलकर गप करना चाहता था बूढ़ा। घर कहाँ ? कौन जाति ? घर में कौन-कौन है ?...करमा ने सभी सवालों का एक ही जवाब दिया था—ऊपर की

ओर हाथ दिखलाकर ! बुढ़ा हूँ पड़ा था ।...अजीब हूँसी !

...घटही गाड़ी ! सी-ई-ई-ई ! !

करमा मनिहारी घाट टिमन में भी रहा है। तीन महीने तक एक बार, एक महीना दूसरी बार ।...मनिहारी घाट टिमन की बात निगली है। कहीं मनिहारी घाट और कहीं आदमपुरा का यही पिछी टिमन !

...नयी जगह में, नये टिमन में पहुँचकर आमपाम के गाँवों में एकाध चक्कर घूमे-फिरे बिना करमा को न जाने कैसा-कैसा लगता है। लगता है, अंध-कूप में पड़ा हुआ है।...वह डिमटन मिगल के उस पार दूर-दूर तक खेन फैले है।...वह काला जंगल...ताड़ का वह अकेला पेड़...आज बाबू को खिला-पिलाकर करमा निकलेगा। इस तरह बैठे रहने से उसके पेट का भात नहीं पचेगा।...यदि गाँव-घर और खेत-मैदान में नहीं घूमता-फिरता, तो वह पेड़ पर चढ़ना कैसे सीखता ? तैरना कहीं सीखता ?

...लक्षपतिया टिमन का नाम कितना जब्बड़ है ? मगर टिमन पर एक सत्तू-फरही की भी दुकान नहीं। आमपाम में पाँच कोम तक गाँव नहीं। मगर, टिमन से पूरब जी दो पोखरे हैं, उन्हें कैसे भूल सकता है करमा ? आईना की तरह झलझलाना हुआ पानी।...वंशाख महीने की दोपहरी में घटो गले-भर पानी में नहाने का मुख मुँह से कहकर बताया नहीं जा सकता।

...मुद्रा, कदमपुरा—मचमुच कदमपुरा है। टिमन में शुरू करके गाँव तक हजारों कदम के पेड़ हैं।...कदम की चटनी खाए एक युग हो गया !

...बारिमगज टिमन बीच कम्बा में है। बड़े-बड़े मालगोदाम, हजारों गाँठ पाट, धान-चावल के बोरे, कोयला, सीमेंट-चूना की ढेरी ! हमेशा हजार लोगो की भीड़ ! करमा को किसी का चेहरा याद नहीं।...लेकिन टिमन में मटे उत्तर की ओर मैदान में तंबू डालकर रहनेवाले गदहावाले मगहिया डोमों की याद हमेशा आती है।...घाघरीवाली ओरतें, हाथ में बड़े-बड़े कड़े, कान में झुमके... नंगे बच्चे, कान में गोल-गोल कुंडलवाले मर्द !...उनके मुँह ! उनके कुत्ते !

...बघनाहा टिमन के चारों ओर हजार घर बन गए हैं। कोई परतीन करेगा कि पाँच साल पहले बघनाहा टिमन पर दिन-दोपहर को टिटही बोलती थी ?

...कितनी जगहों, कितने लोगों की याद आती है।...सोनबरसा के आम... कालूचक की मछलियाँ...भटोतर का दही... कुसियारगाँव का ऊख !

मगर सबसे ज्यादा याद आती है मनिहारी घाट टिमन की। एक तरफ घरती, दूसरी ओर पानी। इधर रेलगाड़ी, उधर जहाज। इस पार खेत-गाँव-मैदान, उस पार साहेबगंज-कजरोटिया का नीला पहाड़। नीला पानी—सादा बालू !...तीन एक, चार ! चार महीने तक तीसों दिन गंगा में नहाया है, करमा।

चार जनम तक श्राप का कोई अमर तो नहीं होना चाहिए। इतना बड़िया नाम शायद ही किसी टिसन का होगा—मनिहारी !...बलिहारी ! मछुवे जब नाव से मछलियाँ उतारते तो चमक के मारे करमा की आँखें चौंधिया जाती ।”

“...रात में, उधर जहाज चला जाता—धू-धू करता हुआ। इधर गाड़ी छक-छकाती हुई कटिहार की ओर भागती। अजू साहू की दूकान की झाली बंद हो जाती। नव घाट पर मस्ताना बाबा की मंडली जुटती।

“...मस्ताना बाबा कुली कुल के थे। मनिहारी घाट पर ही कुली का काम करते थे। एक बार मन ऐमा उदास हो गया कि दाढ़ी और जटा बढ़ाकर बाबाजी हो गए। खजड़ी बजार निरगुन गाने लगे। बाबा कहने—घाट-घाट का पानी देखा—सब फीका। एक गंगाजल मीठा। बाबा एक चिलम गाँजा पीकर पाँच किस्सा मुना देते। सब वेद-पुरान का किस्सा ! करमा ने ग्यान की दो-चार बोली मनिहारी घाट पर ही सीखीं। मस्तान बाबा के सत्संग में। लेकिन गाँजा में उसने कभी दम नहीं लगाया। “आज बाबू ने झुंझलाकर जब कहा, गाँजा-बाँजा पीते हो क्या—तो करमा को मस्तान बाबा की याद आई। बाबा कहने—हर जगह अपनी खुशबू-बदबू होती है !...इम आदमपुरा की गंध के मारे करमा को खाना-पीना नहीं रुचता।

“...मस्तान बाबा को बाद देकर मनिहारी घाट की याद कभी नहीं आती।

करमा ने ताखे पर रखे आँटने में फिर अपना मुखड़ा देखा। उसने आँखें अग्रमुंदी करके दान निकालकर हँसते हुए मस्तान बाबा के चेहरे की नकल उतारने की चेष्टा की—मस्त रहो !...मदा आँख-कान खोलकर रहो। “धरती बोलती है। गाछ-बिरिच्छ भी अपने लोगो को पहचानते हैं। “फमल को नाचते-गाने देखा है, कभी ? रोते मुना है कभी अमावस्या की रात को ? है...है...हू मस्त रहो !...”

“...करमा को क्या पता कि बाबू पीछे खड़ा होकर सब तमाशा देख रहे हैं। बाबू ने अचरज से पूछा, “तुम जगे-जगे खड़ा होकर भी मपना देखता है ?...” कहता है कि गाँजा नहीं पीता।”

सचमुच वह खड़ा-खड़ा सपना देखने लगा था। मस्तान बाबा का चेहरा बरगद के पेड़ की तरह बड़ा होता गया। उनकी मस्त हँसी आकाश में गूँजने लगी। गाँजे का धुआँ उड़ने लगा। गंगा में लहरे आईं। दूर, जहाज का भोपा मुनाई पड़ा—भों-ओं-ओ !

बाबू ने कहा, “खाना परोसो। देखूँ, क्या बनाया है ? तुमको लेकर तो भारी मुश्किल है।...”

मुँह का पहला कौर निगलकर बाबू करमा का मुँह ताकने लगे, “लेकिन खाना तो बहुत बड़िया बनाया है।”

खाते-खाते बाबू का मन-मिजाज एकदम बदल गया। फिर रात की तरह दिल खोलकर गप करने लगे, “खाना बनाना किसने सिखाया तुमको ? गोपाल बाबू की घरवाली ने ?”

“गोपाल बाबू की घरवाली ? माने बीमा ? वह बोला, “बीमा का मिजाज तो इतना खट्टा था कि बोली मुनकर कड़ाही का ताजा दूध फट जाए। वह किसी को क्या सिखावेगी ? फूहड़ औरत !”

“और यह बात बनाना किमने सिखाया तुमको ?”

करमा को मस्तान बाबा की ‘बानी’ याद आई, “बाबू, सिखलाएगा कौन ? शहर सिखाए कोतवाली !”

“तुम्हारी बीबी को खूब आराम होगा ?”

बाबू का मन-मिजाज इसी तरह ठीक रहा तो एक दिन करमा मस्तान बाबा का पूरा किस्सा सुनाएगा।

“बाबू, आज हमको जरा छुट्टी चाहिए।”

“छुट्टी ! क्यों ? कहाँ जाएगा ?”

करमा ने एक ओर हाथ उठाते हुए कहा, “जरा उधर घूमने-फिरने...”

पैटमान जी ने पुकारकर कहा, “करमा ! बाबू को बोलो, कल बोलता है।”

“तुम्हारी बीबी को खूब आराम होगा। ... करमा की बीबी ! बारिमगंज टिमन ... मगहिया डोमों के तबू ... उठती उमेरवानी छोड़ी ... नाक में नथिया ... नाक और नथिया में जमे हुए काले मैने ... पीले दाँतों में मिस्सी !”

करमा अपने हाथ का बना हुआ हलवा-पूरी उम छोड़ी को नहीं खिला सका। एक दिन कागज की पुड़िया में ले गया। लेकिन वह पसीने में भीग गया। उसकी हिम्मत ही नहीं हुई। “यदि यह छोड़िया बिल्लाने लगे कि तुम हमको चुगा-छिपाकर हलवा काढ़े को खिलाता है ? ... ओ, भइयो-यो-यो-यो-यो !”

“बाबू हजार कहे, करमा का मन नहीं मानता कि उसका घर स्थान परगना या राँची की ओर कहीं होगा। मनिहारी घाट में दो-दो बार रह आया है, वह। उम पार के गाहेबगज-कजरोटिया के पहाड़ ने उसको अपनी ओर नहीं खींचा कभी ! और बारिमगंज, कदमपुरा, कालूचक, लखपतिया का नाम सुनने ही उसके अंदर कुछ झनझना उठता है। जाने-पहचाने, अचीन्हे, कितने लोगों के चेहरों की भीड़ लग जाती है ! कितनी बातें—सुख-दुःख की ! खेत-खलिहान, पेड़-पौधे, नदी-पोखरे, चिरई-बुनमुन सभी एकमात्र टानने हैं, करमा को !

“मात दिन में उस जंगल का वह काला ताड़ का पेड़ उसको इशारे से बुला रहा है। जंगल के ऊपर आममान में तैरती हुई चील आकर करमा को क्यों पुकारा जाती है ? क्यों ?

रेलवे हाना पार करने के बाद भी जब कुत्ता नहीं लौटा तो करमा ने झिड़की

दी, "तू कहाँ जाएगा मसुर ? जहाँ जाएगा झाँव-झाँव करके कुत्ते दीड़ेंगे । ...जा ! भाग ! भाग !!!"

कुत्ता रुककर करमा को देखने लगा । धनखेतों के बीच से गुजरनेवाली पगड़ंडी पकड़कर करमा चल रहा है । धान की बालियाँ अभी फटकर निकली नहीं हैं । ...करमा को हैडक्वाटर के चौधरी वावू की गर्भवती घरवाली की याद आई । मुना है, डॉक्टरनी ने अदर का फोटो लेकर देखा है—जूड़वाँ बच्चा है पेट में ।

...इधर हथिया नच्छत्तर अच्छा झरा या । खेतों में अभी पानी लगा हुआ है । ...मछली ?

...पानी में माँगुर मछलियों को देखकर करमा की देह अपने-आप बँध गई । वह माँम रोककर चुपचाप खड़ा रहा । फिर धीरे-धीरे खेत की मेड़ पर चला गया । मछलियाँ छलमलाई । आईने की तरह थिर पानी अचानक नाचने लगा । ...करमा क्या करे ? ...उधर की मेड़ से मटाकर एक छेका देकर पानी को उलीच दिग्न जाए तो ...?

...है है—है है ! साले ! बन का गीदड़ जाएगा किधर ? और छलमलाओ ! ...अरे, काँटा करमा को क्या मारता है ? करमा नया शिकारी नहीं ।

आठ माँगुर और एक गरई मछली ! सभी काली मछलियाँ ! कटिहार हाट में इसी का दाम वेखटके तीन रुपया ले लेता । ...करमा ने गमछे में मछलियों को बाँध लिया । ऐसा संतोख उसको कभी नहीं हुआ, इसके पहले । बहुत-बहुत मछली का शिकार किया उसने !

एक बूढ़ा भैंसवार मिला जो अपनी भैंस को खोज रहा था, "ए भाय ! उधर किसी भैंस पर नजर पड़ी है ?"

भैंसवार ने करमा से एक बीड़ी माँगी । उसको अचरज हुआ—कंसा आदमी है, न बीड़ी पीता है, न तंबाकू खाता है । उसने नाराज होकर जिरह करना शुरू किया, "इधर कहाँ जाना है ? गाँव में तुम्हारा कौन है ? मछली कहाँ ले जा रहे हो ?"

...ताड़ का पेड़ तो पीछे की ओर ही धसकता जाता है । करमा ने देखा, गाँव आ गया । गाँव में कोई तमाशावाला आया है । बच्चे दौड़ रहे हैं । हाँ, भालू-वाला ही है । डमरू की बोली सुनकर करमा ने समझ लिया था ।

...गाँव की पहली गंध का पहला झोका !

...गाँव का पहला आदमी । वह बूढ़ा गोभी को पानी से पटा रहा है । बाल सादा हो गए हैं, मगर पानी भरते समय बाँह में जवानी ऐंठती है । ...अरे, यह तो वही बूढ़ा है जो उस दिन बँगन बुक कराने गया था और करमा से धुल-मिलकर गप करना चाहता था । करमा से खोद-खोदकर पूछता था—माय-बाप है

नहीं या माय-बाप को छोड़कर भाग आए हो? ...ले, उसने भी करमा को पहचान लिया !

“क्या है भाई ? इधर किधर ?”

“ऐसे ही । घूमने-फिरने...।...आपका घर इसी गाँव में है ?”

बूढ़ा हँसा । घनो मूँछे खिल गईं । बूढ़ा ठीक सत्तो बाबू टीटी के बाप की तरह हँसता है ।

एक लाल साड़ी वाली लड़की हुक्के पर चिलम चटाकर फूँकती हुई आयी । चिलम को फूँकते समय उसके दोनों गाल गोल हो गए थे । करमा को देखकर वह ठिठकी । फिर गोभी के खेत के बाड़े को पार करने लगी । बूढ़े ने कहा, “चलो बेटी, दरवाजे पर ही हम लोग आ रहे हैं ।”

बूढ़ा हाथ-पैर धोकर खेत में बाहर आया, “चलो ।”

लड़की ने पूछा, “बाबा, यह कौन आदमी है ?”

“भालू नचानेवाला आदमी ।”

“घेत !”

करमा लजाया ।...क्या उसका चेहरा-मोहरा भालू नचानेवाले जैसा है ? बूढ़े ने पूछा, “तुम रिलिफिया बाबू के नौकर हो न ?”

“नहीं, नौकर नहीं ।...ऐसे ही साथ में रहता हूँ ।”

“ऐसे ही ? साथ में ? तलब कितना मिलता है ?”

“साथ में रहने पर तलब क्या मिलेगा ?”

...बूढ़ा हुक्का पीना भूल गया । बोला, “बस ? बेमतलब का ताबेदार ?”

बूढ़े ने आँगन की ओर मुँह करके कहा, “मरमतिया ! जरा माय को भेज दो यहाँ । एक कभाल का आदमी...।”

बूढ़ी टट्टी की आड़ में खड़ी थी । तुरत आयी । बूढ़े ने कहा, “जरा देखो, इस किल्लाठोग जवान को ! पेट भर भात पर खटता है ।...क्यों जी, कपड़ा भी मिलता है ?...इसी को कहते हैं—पेटमाधोराम मर्द !”

...आँगन में एक पतली खिलखिलाहट ।...भालू नचानेवाला कहीं पड़ोस में ही तमाशा दिखा रहा है । डमरू के डम ताल पर भालू हाथ हिला-हिलाकर थन्बड़-थन्बड़ नाच रहा होगा—थुथना ऊँचा करके ।...अच्छा जी भोलेराम, नाच तो खूब बनाया, तैने । अब एक बार दिखला दे कि फूहड़ औरत गोद में बच्चा को सुलाकर किम तरह ऊँघती है ।...वाह जी भोलेराम !

...सैकड़ों खिलखिलाहटें !!

“तुम्हारा नाम क्या है जी ? मरमचन ? वाह, नाम तो खूब मगुनिया है । लेकिन काम ? काम चूल्हचन ?”

करमा ने लजाते हुए बात को मोड़ दिया, “आपके खेत का बैंगन बहुत बढ़िया

है। एकदम घी जैसा...'' बूढ़ा मुस्कराने लगा।

और बूढ़ी की हँसी करमा की देह में जान डाल देती है। वह बोली, "बेचार को दम तो लेने दो। तभी से रगेट रहे हो।"

"मछली है? बाबू के लिए ले जाओगे?"

"नहीं। ऐसे ही... रास्ते में शिकार..."

"सरसतिया की माय। मेहमान को चूड़ा भूनकर मछली की भाजी के साथ खिलाओ।... एक दिन दूसरे के हाथ की बनाई मछली खा लो जी!"

जनपान करने समय करमा ने सुना—कोई पूछ रही थी, "ए, सरसतिया की माय! कहाँ का मेहमान है?"

"कटिहार का।"

"कौन है?"

"कुटुम ही है।"

"कटिहार में तुम्हारा कुटुम कब से रहने लगा?"

"हाल से ही।"

"फिर एक खिलखिलाहट! कई खिलखिलाहट!!

...चिलम फूँकते समय सरसतिया के गाल मोसम्बी की तरह गोल हो जाते हैं। बूढ़ी ने दुलार-भरे स्वर में पूछा, "अच्छा ऐ बबुआ! तार के अंदर से आदमी की बोली कैम जाती है? हमको जरा खुलासा करके समझा दो।"

चलते समय बूढ़ी ने धीरे से कहा, "बूढ़े की बात का वुरा न मानना। जब से जवान बेटा गया, तब से इसी तरह उखड़ी-उखड़ी बात करता है... कनेजे का घाव..."

"एक दिन फिर आना।"

"अपना ही घर समझना।"

लौटने समय करमा को लगा, तीन जोंडी आँखें उसकी पीठ पर लगी हुई हैं। आँखें नहीं—डिमटन सिगल, होम सिगल और पैट सिगल की लाल-लाल, गोल-गोल रोशनी!!

जिम बेन में करमा ने मछली का शिकार किया था उसकी पेड़ पर एक ढोंढा साँप बैठा हुआ था। फो-फो करता हुआ भागा।... हद है! कुत्ता अभी तक बैठा उसकी राह देख रहा था। खुशी के मारे नाचने लगा करमा को देखकर।

रत्नवे हाता में आकर करमा को लगा, बूढ़े ने उसको बनाकर ठग लिया। तीन रुपये की मोटी-मोटी माँगुर मछलियाँ एक चुटकी चूड़ा खिलाकर, चार खट्टी-मोठी बान सुनाकर...

...करमा ने मछली की बात अपने पेट में रख ली। लेकिन बाबू तो पहले से ही सब-कुछ जान लेनेवाले 'अगरजानी' हैं। दो हाथ दूर से ही बोले, "करमा,

मुन्हारी देह से कच्ची मछली की बास आती है। मछली ले आए हो ?”

“करमा क्या जवाब दे अब ? जिदगी में पहली बार किसी बाबू के साथ उसने विश्वासघात किया है।” मछली देखकर बाबू जरूर नाचने लगते।

पंद्रह दिन देखते-देखते ही बीत गए।

अभी रात की गाड़ी से टिसन के सालटन मास्टर बाबू आए हैं। बाल-बच्चों के साथ। पंद्रह दिन से चुप फैमिली क्वाटर में कुहराम मचा है। भोर की गाड़ी से ही करमा अपने बाबू के साथ हैडक्वाटर लौट जाएगा। इसके बाद, मनिहारी घाट !

“न...आज रात भी करमा को नींद नहीं आएगी। नही, अब वानिश-चूने की गंध नहीं लगती।” बाबू तो मजे में सो रहे हैं। बाबू सचमुच में गोपाल बाबू जैसे हैं। न किसी जगह से तिल-भर मोह, न रत्ती-भर माया। “करमा क्या करे ? ऐसा तो कभी नहीं हुआ।” एक दिन फिर आना। अपना ही घर समझना। “कुटुम हैं...पेटमाधोगम मर्द !

“अचानक करमा को एक अजीब-सी गंध लगी। वह उठा। किधर से यह गंध आ रही है ? उसने धीरे से प्लेटफार्म पार किया। चुपचाप सूँघता हुआ आगे बढ़ता गया। “रेलवे लाइन पर पैर पड़ते ही सभी सिगल—होम, डिस्टन और पैट—जोर-जोर से बिगुल फूंकने लगे। “फैमिली क्वाटर से एक औरत चिल्लाने लगी—“ओ-ओ-ओ-र !” वह भागा। एक इजिन उसके पीछे-पीछे दौड़ा आ रहा है। “मगहिया डोम की छोड़ी।” तबू में वह छिप गया। “सरसतिया खिलखिलाकर हँसती है। उसके झबरे केश, बेनहाई हुई देह की गंध करमा के प्राण में समा गयी। “वह डरकर सरसतिया की गोद में...नहीं, उसकी बूढ़ी माँ की गोद में अपना मुँह छिपाता है। “रेल और जहाज के भोपे एक साथ बजते हैं। सिगल की लाल-लाल रोशनी...”

“करमा, उठ ! करमा, सामान बाहर निकालो !”

“करमा एक गंध के समुद्र में डूबा हुआ है। उसने उठकर कुरता पहना। बाबू का बक्सा बाहर निकाला। पानी पाँडे ने ‘कहा-सुना माफ करना’ कहा। करमा डूब रहा।

“गाड़ी आई। बाबू गाड़ी में बैठे। करमा ने बक्सा चढ़ा दिया...वह सरवेट दर्जा में बैठेगा। बाबू ने पूछा, “सब-कुछ चढ़ा दिया तो ? कुछ छूट तो नहीं गया ?” “नहीं, कुछ छूटा नहीं है।” गाड़ी ने सीटी दी। करमा ने देखा, प्लेटफार्म पर बैठा हुआ कुत्ता उसकी ओर देखकर कूँ-कूँ कर रहा है। “बेचैन हो गया कुत्ता !

“बाबू !”

“क्या है ?”

“मैं नहीं जाऊँगा।” करमा चलती गाड़ी से उतर गया। धरती पर पैर रखते ही ठोकर लगी। लेकिन संभल गया।

आत्म-साक्षी

भात की हाँड़ी से उबले हुए आलुओं को निकालकर छील रहा था गनपत, कि बाहर किसी ने ख्खासकर अपने आने की सूचना दी—सूचना नहीं, चेतावनी। उसने पूछा, “कौन है ?”

“कौन है अंदर ? गनपतजी ?” इधर ऑफिस में अँधेरा क्यों है ? लालटेन दे जाइए बंधू !”

गनपत को अचरज हुआ। कॉमरेड बलरामजी कब आये पटना से ? और कॉमरेड लोग अभी रैली से लौटे नहीं। बलरामजी कब और कैसे लौट आये ?

उसने आलू की कटोरी को घाली से ढँक दिया और लालटेन लेकर बाहर आया।

“लाल सलाम, साथी ! कहिए रैली का कुशल-समाचार !”

बलराम का लटका हुआ मुँह देखकर गनपत का हुलसा हुआ मन अचानक बैठ गया। बलराम की विकृत मुखमुद्रा को देखकर उसका जी धड़का। “लक्षण अच्छे नहीं।

“ऑफिस खोलिए जरा।”

गनपत ने मन-ही-मन कहा, ‘जरा क्यों ! पूरा ही खोल देता हूँ। मुँह-नाक इस तरह सिकोड़कर क्यों बतियाते हैं ?’ पटना एक बार पहुँचते ही साथियों को न जाने क्या हो जाता है !

उसने ऑफिस नामक झोपड़ी का दरवाजा खोल दिया। कई दिन से बंद कमरे से एक गुभी हुई गंध निकली। लालटेन की रोशनी दो-तीन बार भुकभुकाकर काँपने लगी।

बलरामजी ने अपने मुँह को और भी बिगाड़कर कहा, “लालटेन में तेल है या पानी ? एक चिमनी क्यों नहीं खरीद लेते ?”

गनपत को भात की याद आयी। ठंडा भात बह नहीं खा सकता। खाते ही ‘बाय’ उखड़ जाता है। उसने रसोईघर की ढिबरी जलाते हुए कहा, “तेल और

चिमनी की बात पूछते हैं कॉमरेड, तो पहले हमको भोजन कर लेने दीजिए, तब जवाब देंगे। '...आप चाह-चू पीजिए तो बोलिए, पानी चढ़ा दे। चूल्हे में आग है। पुड़िया में थोड़ी पत्ती और कागजी नीबू भी है।'

चूल्हे पर अलमूनियम की काली देगची चढ़ाकर गनपत ने जलावन को घघकाया और आलू निकालकर छीलने लगा। '...आलू का भुर्ता और गरम-गरम भात ! गनपत के लिए इससे बढ़कर लोभनीय पदार्थ इस ससार में और कुछ नहीं। कुसमी कहती है कभी-कभी, 'भुता खीका मरद।' और गनपत हँसकर जवाब देता है, 'भतारखीकी !' बलरामजी ने 'खवाम' कर चेनावनी दी थी उस समय। यदि अंदर कुसमी होती उस समय तो गनपत का चेहरा लाल हो जाता और वह जोर-जोर से बेवजह कुसमी को डाँटने लगता—'काम करने का मन नहीं है तो छोड़ दो। जैसे तुम्हारा घेठा कामचोर, वैसी ही तुम।' कुसमी हँसती हुई घूँघट के नीचे से जवाब देती—

भुर्ता बनाते समय गनपत को आज के अखबार में पढ़ी हुई बात याद आयी—
'हमारे जवानों ने दुश्मनों के टैंको का भुर्ता बना डाला...'

तेल, प्याज, मिर्च और धनिया की कतरी हुई पत्ती को भुर्ता में भिलाकर उसने गोला तैयार किया। पीतल की चमचमाती हुई थाली में भात डालते समय भाप की महक उसके तन-मन में समा जाती है। भात की यह ललचानेवाली गंध उसे सबसे पहले सन् तीस में लगी थी—स्वयंसेवक शिविर में। तब में आज तक न जाने कितने आश्रम, शिविर, रैली, सम्मेलन और जेलों के सामूहिक भोजनालयों में गनपत ने पत्तल जूठा किया है मगर ऐसी गंध क्या हर जगह और हर रोज मिलती है ?

तृप्तिपूर्वक पेट-भर भोजन कर लेने के बाद गनपत ने जूठी थाली और जूटे चौके को माँज-धोकर पवित्र किया। मुझ्ह कुसमी आकर चिकनी मिट्टी से लीप-पोत देगी। उसने पुकारकर कहा, "शोभितलाल ! भात ले जा रे !"

काठ के बक्स में प्याली निकालकर बलरामजी के लिए नींबूवाली चाय तैयार की गनपत ने। फिर भुने हुए सौंफ की बुकनी मुँह में डालकर, हाथ में चाय की प्याली लेकर वह ऑफिस घर में आया। सौंफ की बुकनी के अलावा किमी किस्म की लत नहीं है गनपत को। न बीड़ी-मिगरेट पीता है, न पान-तबाकू खाता है।

चाय की पहली चुस्की लेते ही बलरामजी का निगड़ा हुआ मुँह मुधर गया। चमड़े के थैले में कागज-पत्र डालते हुए बलरामजी ने पूछा, "आप खुद क्या खाना बनाते हैं ? शोभित की माँ क्या करती है ?"

गनपत कूट-भरी बोली का मतलब समझता है। अर्थात् तीन रुपये महीना शोभित को और पाँच रुपये माहवार उसकी माँ कुसमी को किस काम के लिए दिए जाते हैं ?

बलरामजी ने दूसरा सबाल किया, “तब ?... इधर कुछ चंदा-फंदा बगुल हुआ है, या...?”

गनपत ने डकार लेते हुए कहा, “वही तो कह रहा था, कॉमरेड...!”

बलराम ने टोक दिया, “देखिए, आप इस तरह बात-बात में कॉमरेड जोड़-कर क्यों बोलते हैं ?”

“कॉमरेड को कॉमरेड न कहें तो क्या कहें ? और यह कुछ नयी बात तो नहीं । मन् तीस से ही जब से ‘पाटी’ का प्लेज लिया, तभी से कॉमरेड...।”

“तब की बात छोड़िए । आजकल कोई नहीं बोलता ।... आपकी बोली सुन-कर लोग हँसते हैं, इसी के चलते ।”

“इसमें हँसने की क्या बात है ?”

“खैर, बहस छोड़िए । आपसे बहस में कौन पार पायेगा ? हाँ, तो क्या कह रहे थे आप चंदा के बारे में ?”

“कह्ना क्या है ? पिछले छः महीने से साहू की दुकान का बकाया बढ़ते-बढ़ते ढाई सौ पर पहुँच गया है । जिला रैली के समय टीसन के मारवाड़ी का पचास रुपया बकाया अब तक चुकता नहीं हुआ । पाट के समय चंदा की उम्मीद थी । मगर भुखमरी के समय कौन माँगता है—और कौन देता है चंदा ? अब धान का समय आया है तो सभी कॉमरेड साथी महीना-भर से ‘फिड़ाड़’ हैं...”

बलराम चौका, “फिरार ? कौन है फिरार ?”

गनपत मुस्कराकर बोला, “फिड़ाड़ माने वह फिड़ाड़ नहीं । माने अभी सभी कॉमरेड क्षेत्र से बाहर हैं ।”

बलरामजी गंभीर हो गये । उठते हुए बोले, “गनपतजी, आप ठीक कहते हैं । लगता है, सभी अब फिरार हो जायेंगे ।”

“मतलब ?”

“मतलब आप समझकर क्या कीजियेगा । वह सब ‘हाई लेवेल’ और ‘सिद्धांत की लड़ाई’ की बात आप क्या समझिएगा ?”

गनपत और कुछ समझे या नहीं, आदमी के मन की बात को पढ़ना जानता है । बलरामजी की बात में उसको एक खास किस्म की ‘झाँस’ लगी ।... आलू के भुतों में खराब तेल की गंध ?

हाई लेवेल ! बलराम अंग्रेजी पढ़ा-लिखा नहीं है तो क्या ? संकड़ों अंग्रेजी के शब्दों का मतलब वह समझता है । बोलता है—केपिटलिस्ट, बुर्जुआ, प्रोलेतारियत, कुलक, रिएक्शनरी, गांधियाइट, पीस, पार्टि-लिटरेचर, और भी अनेक शब्द ।

बलरामजी ही नहीं, सभी ‘नये कॉमरेड’ गनपत को तीन कोड़ी का आदमी भी नहीं समझते हैं । अभी साथी जियाउद्दीन या मैलेन्दरजी अब्बा गोपालजी

होते तो क्या किसी रैली से या मीटिंग से लौटकर इसी तरह मुंह लटकाकर, भोह चढ़ाकर बातें करके घर चले जाते—बीवी के पास सटकर सोने ? ऑफिस सेक्रेटरी बलरामजी का जब से गौना हुआ है, सूरज डूबने के पहले ही ऑफिस बंद करके घर भाग जाते हैं ।

इधर कई वर्षों से गनपत को लगता है कि हर तरफ एक मनहूसियत घनी होकर छा रही है । कहीं किसी के मन में किसी बात के लिए उत्साह नहीं । आखिर यह रोग गनपत की 'पाटी' को भी लग गया ? इस बार जिला कांफ्रेंस में वह जी खोलकर इस सवाल को पेश करेगा ।

वह जानता है कि सवाल पेश करने के लिए वह ज्यों ही उठेगा, नवतुरिया कॉमरेड लोग आपस में फुसफुसाकर मुस्कराने लगेंगे, कपट-खांसी खासेंगे, और कोई-कोई चिल्लाकर कहेंगे, 'कॉमरेड गनपत ! यह सवाल कलचरल प्रोग्राम के समय स्टेज पर पेश कीजियेगा ।'

"हूँ ! स्टेज पर ! स्टेज..."

उँगलियों पर जोड़ने की जरूरत नहीं । गनपत का सब-कुछ जोड़ा हुआ है । पैंतीस साल पहले वह सबसे पहले आर्यसमाजी सभा-मंच पर खंजड़ी बजाकर 'बछुतोडार वाला गीत' गाने के लिए खड़ा हुआ था ।

उस सभा की याद आते ही परबतिया की याद आ जाती है, जिसके हाथ का पानी पीने से जाति मारी जाये, प्रेम में पड़कर गनपत ने 'नीच कुल' की उसी परबतिया के मुंह का 'चुम्मा' लिया था । 'सत्त' किया था—सब-कुछ छूट जाये, परबतिया को वह कभी नहीं छोड़ेगा । जाति-समाज के अलावा घर के लोगों ने गनपत को तरह-तरह की यातनाएँ दीं । गनपत ने हारकर आर्यसमाज के मंत्री के पास अरजी दी । लेकिन तब तक परबतिया का बाप परिवार सहित गाँव छोड़कर भाग गया था ।

गनपत फिर लौटकर घर नहीं गया, गाँव नहीं गया । माँ-बाप, भाई-बहन, कुटुंब-परिवार, गाँव-समाज—सबसे 'नेह-छोह' तोड़कर 'देश' और 'दस' के काम में लग गया । जहाँ कहीं भी सभा होती, गनपत सबसे पहले हाथ में खंजड़ी लेकर गीत गुरू कर देता—'हिंदुओ ! दिल में सोचो-बिचारो जरा—अपने भाई से नफरत...'।

और सन् तीस में इसी गीत को गाने के अपराध में वह पकड़ा गया, जेल गया, सजा भोगी । उसी बार जेल में ही सरमाजी की कृपा से वह कॉमरेड हो गया...

सरमाजी ने उसकी 'टिक्की' को दाढ़ी बनानेवासी 'पत्ती' से कतर दिया था और बनेऊ को उतारकर पेजामा में फँसा दिया था और बोले थे, 'आज से तुम कॉमरेड गनपत । सिब-उंभ कुछ भी नहीं । सिर्फ कॉमरेड...'।

याद है, बाबनदास और चुन्नीदास ने मिलकर गनपत को कितना 'घिबकारा था ! मगर वह टस-से-मस नहीं हुआ । उसने बाबनदास को चिढ़ाने के लिए सरमाजी से सीखा हुआ सबाल पेश कर दिया था—'बाबनदासजी, चर्खा चलाने और बकरी का दूध पीने से सुराज कैसे मिलेगा, समझा बीजिए जरा ।'

जेल से निकलने के बाद सारे जिले में गनपत ही अकेला 'पाटी कॉमरेड' रहा कई वर्षों तक । एक ही साल में बिहार प्रांत के कई 'किसान फ्रंट' और मजदूर-मोर्चों पर पहुँचकर गनपत ने मेहनतकशों की लड़ाई में साथ दिया, नारा लगाया, धरना दिया, खँजड़ी बजाकर गीत गाये, अछूतोद्धार के बदले सरमाजी का सिखाया हुआ 'अंतर्राष्ट्रीय गीत' गाया—'उग रहा है आफताब लाल-लाल आफताब...' जाग रे किसान भाई, जाग ! जाग रे मजदूर भाई, जाग...!'

वैष्णव माँ-बाप का बेटा गनपत ! जन्म से ही वैष्णव था । जिसको कहते हैं 'गभंदास' । सो सरमाजी ने जब परीक्षा ली तो वह खरा उतरा । '...मुर्गों का अंडा नहीं, बिना किसी घृणा और संकोच के वह 'मुर्गमुसल्लम' खा गया था । सरमाजी बोले थे, 'शाबाश कॉमरेड ! तुम जन्मजात इंकलाबी हो !'

स्कून्-वॉनेज के फेलियर लोंडे-लहेंगड़े क्या समयमेंगे कि कॉमरेडशिप किसको कहते हैं ! '...डेहरी ऑफिस में सात साथियों के बीच बस दो पाजामे, तीन हाफ-पैट और एक ही धोती । और उसी में सभी साथी मजे में काम चला लेते थे । सप्ताह-भर सत्तू घोलकर पीते थे, प्रेम से मिल-जुलकर । '...अब तो हुर रैसी के समय पत्तल पर ही 'इंकलाब' छेड़ देते हैं साथी लोग, 'यह क्या बात है ? खाने के समय कोई खाने पुआ-पूड़ी, कोई भूजा फाँके ? अन्याय है ! जुल्म है !'

आज किसी साथी से सभा का ऐलान करने को कहिए, बिना जीप और लाउडस्पीकर के । तुरत तमककर जवाब देगा, 'हम क्या 'मोलटियर' हैं ?' अपनी पार्टी की सभा का ऐलान करने में इन्हें लाज आती है । पार्टी का झंडा कंधे पर लेकर चलने में इज्जत चली जाती है । गनपत ने अकेले ढोल बजाकर मुनाही और ऐलान किया है, 'भाइयो ! देश की गरीबी को दूर करने के लिए, पूँजीवाद का खात्मा करके किसानों और मजदूरों का राज कायम करने के लिए, आज चार बजे दिन में...!'

और गनपत नहीं होता तो उस गाँव में यह 'शहीद किसान आश्रम' कभी खुलता भी ? तीन-तीन नामी जुल्मी और जालिम जमींदारों के इस खूनियाँ इलाके में किसी पार्टी का 'वर्कर' कभी खाँसी करने के लिए भी नहीं आता था—डर के मारे । दिन-दहाड़े मारकर लाश को गायब कर देनेवाले तीनों जमींदारों की आठ सौ एकड़ जमीन पर 'बकास्त-संघर्ष' छेड़ने का प्रस्ताव पास करके 'पाटी' चुपचाप महीनों बैठी रही । न किसी बहादुर कॉमरेड का कदम कभी आगे बढ़ा और न कोई क्रांतिकारी किसान आगे आया । तब गनपत ने ही बीड़ा उठाया

था। ‘‘‘जमींदार के सिपाहियों ने अपनी समझ में उसको मारकर फेंक दिया था। मगर गनपत मरते-मरते जी गया था। होश में आते ही वह अस्पताल में नारे मचाने लगा था—‘बकाशत आंदोलन जिदाबाद ! बिसनपुर के किसान जिदाबाद !’ यदि गनपत उस दिन घायल होकर अस्पताल नहीं पहुँचता तो मामला ‘बकाशत बोर्ड’ में कभी नहीं जाता। ‘‘‘आठ सौ एकड़ जमीन मुफ्त में जीतने के बाद बिसनपुर के किसानों ने दो एकड़ जमीन मिल-जुलकर आश्रम खोलने के लिए दिया—तो भी बहुत कहने-सुनने और ‘धिवकारने’ पर।

आश्रम अब से खुला है, जिले-भर के कॉमरेड शुरू अगहन में ही बोरे-बोरियाँ लेकर पहुँच जाते हैं—धान-बसुली के लिए। किसी को बहिन की शादी में मदद चाहिए, किसी को ‘बर-खर्ब’ के लिए। गनपत को एक ही साथ अपने इलाके की साख और पाटी-कॉमरेडों की इज्जत रखनी पड़ती है।

जिले-भर में तब यही एक क्षेत्र है, जहाँ से पार्टी का उम्मीदवार विधान सभा के लिए विजयी हुआ—सिर्फ इमी आश्रम की महिमा से।

लासटेन झुकझुकाकर बुझ गयी। गनपत के मन में अचानक ‘निरगुन’ की एक कड़ी बूँब गयी—तेरो जनम अकारथ जाय मूरख...!

गनपत ने सपने में देखा—‘बोर’ ‘पाटी’ ऑफिस का बक्सा उठाकर भागा जा रहा है। उसने ओर से पुकारने की चेष्टा की—‘बो-ओ-ओ-ओ ! बो-बो-बो...!’

गनपत का सपना झूठ नहीं, सब साबित हुआ।

सुबह कॉमरेड चंद्रिकाजी ने आकर महाअशुभ समाचार सुनाया, “पार्टी दो दुकड़ों में बँट गयी।”

गनपत को लगा, कॉमरेड चंद्रिका के मुँह से निकली हुई बात ने बज्रपात कर दिया। कागजात, चंदा-बही, रसीद-वाउचर, मोहर—सब-कुछ गायब। गनपत ने कहा, “कल पहली पहर रात में कॉमरेड बलराम आये थे...।”

गनपत की बात पूरी भी नहीं हो पायी थी कि कॉमरेड चंद्रिका ने उसके गाल पर कसकर तमाचा जड़ दिया। वह तिलमिलाकर कुछ कहना चाहता था, मगर कॉमरेड चंद्रिका चिल्लाने लगा, “आखिर आपको यहाँ किस काम के लिए रखा गया है ? चंदा बसूल कर पेट पालने के लिए सिर्फ ! आप जानते नहीं थे कि बलराम डिसिडेंट, माने बागी मैबरों के साथ है ? ऐं ?”

“नहीं जानता था,” गनपत ने सीधा और सही जवाब दिया, “कौन बागी है और कौन बागी, यह मुझे क्या मालूम ?”

“आप गद्दार हैं,” चंद्रिका ने उँगली उठाकर पिस्तौल का निशाना लेने के

सहजे में कहा, “आपने पार्टी के साथ गद्दारी की है। आप मक्कार हैं !”

एक-मे-एक तेज और नुकीली गाली गनपत की देह में धँसती जा रही है। आमपाम गाँव-भर के लोग—औरत-मर्द—जमा हो गये हैं। ‘‘गद्दार, मक्कार ! फटकार !

कॉमरेड चंद्रिका ने चलते समय चेतावनी दी, “इसका नतीजा बाद में जो कुछ भी हो, मैं अभी आपको बरखास्त करता हूँ। चले जाइए...!”

कॉमरेड चंद्रिका के जाने ही कॉमरेड बलराम अपने नये माथियों के साथ आया। गनपत की डबडबाई हुई आँखें भरने लगी।

बलराम ने कहा, “कॉमरेड गनपत, रोइए मत। बहादुरी से इन डिक्टेटर-गाहों का मुकाबला करना होगा। पेटी-बुर्जुआ के बच्चों ने पार्टी को अपनी जमींदारी ममल्ल लिया था।”

गनपत ने भरीयाँ हुई आवाज में कहा, “कॉमरेड बलरामजी, आपने ऐसा काम क्यों किया? यदि जानता कि आप पार्टी ऑफिस से सामान लेने आये हैं, तो हरगिज...!”

बलराम के बदले में इस बार बोला अकालू महतो का अधपगला बेटा सुधीर महतो, “गनपतजी, आप डूबकर पानी पीते हैं, और ममल्लते हैं कि बात छिपी हुई है। पार्टी ऑफिस दिन-रात बेवा मुसम्मात के साथ इष्कबाजी करने के लिए नहीं बना है।”

गनपत अब बेपानी हो गया। आम जनता के बीच उसकी इज्जत उतर गयी। उमको नगा कर दिया सुधीर महतो ने। वह गद्दार है, मक्कार है, बद-चलन है। अब क्या रह गया है देखने-मुनने को !

बलराम ने जाने समय लाल रंग के पर्चों का एक बंडल देकर कहा, “आज हाट में, स्टेशन पर, हर जगह यह पर्चा बँट जाना चाहिए। समझे ?”

गनपत अपनी झोंपड़ी के अंदर चला गया और बिछावन पर कटे हुए पेड़ की तरह गिर पड़ा। उमकी देह के रोम-रोम में गालियाँ गड़ रही थीं। उसने लाल पच्चे को टटोलकर पढ़ना शुरू किया। पार्टी के कई बड़े लीडरों ने जनता को सावधान किया है—‘किमान-मजदूरो के नाम पर, पूँजीपतियों की थैली से पार्टी चलानेवाले धोखेबाजों से होशियार...!’

इससे आगे एक शब्द भी नहीं पढ़ सका वह। गाली-गलौज, कीचड़-गोबर !... सब गुड़-गोबर !

गनपत के पेट में पित्त का प्रकोप शुरू हुआ। अब ‘बाय’ भी जोर मारेगा। हाँ, मिचली आने लगी।

कौन असली, कौन नकली ? कॉमरेड चोरघड़े या कॉमरेड जादव ? पिछले साल प्रांतीय किसान सभा का सभापतित्व करने आये थे चोरघड़ेजी। स्वागत-

भाषण में जादवजी ने उनकी कितनी तारीफ की थी !...सब झूठ ! और चोर-घड़ेजी ने बिहार की पार्टी को देशद्रोहियों का दल कह दिया है इस पर्व में ।

गनपत ने तय किया कि वह पटना जायेगा, दिल्ली जायेगा । हर जगह के बड़े और छोटे साथियों से मिलकर बातें करेगा, रोयेगा, कलपेगा, जनता की बुर्दशा की कहानियाँ सुनायेगा । खँजड़ी बजाकर गीत गायेगा—भैया, मगड़ न जाहु कचहारया ।

जादवजी और चोरघड़े केंद्रीय पार्टी ऑफिस के सामने लड़ रहे हैं । तलवार लेकर एक-दूसरे पर हमला करते हैं, और गनपत उन दोनों के बीच जाकर खड़ा हो जाता है—‘सांति, सांति !’ मगर दोनों की तलवार गनपत की गरदन पर ।

गनपत की आँखों के आगे पंद्रह साल पहले देखे हुए किमी नाटक का दृश्य उपस्थित हुआ, फिर बिला गया । उसकी देह रह-रहकर सिहरने लगी । मलेरिया बुखार चढ़ने के पहले ऐसी ही सिहरन और कँपकँपी देह को झँझोड़ जाती है ।

गनपत ने कंबल ओढ़ लिया, कै किया, मौफ की बुकनी मुंह में डालकर लेट गया । सिहरन के बाद तेज बुखार के साथ ‘बाय’ । वह बकने लगा । चालीस साल के बाद—देश से मलेरिया-उन्मूलन के बाद गनपत पहली बार बीमार पड़ा है । इस बीच कभी सिर-दर्द भी नहीं हुआ । उसके मुंह से पहली करुण पुकार निकली, “भैया—ने-ए-ए-ए ! पारबती-ई-ई-ई !”

उसने देखा, सरमाजी आये हैं, हाथ में लाल-लाल सेव और नारंगी लेकर । फल का रस निकालकर गनपत से कहने हैं—‘पी लो, कॉमरेड ! कलेजा ठंडा हो जायेगा ।’ गनपत एक घूँट पीता है । उमका गला जलने लगता है । कड़वा जहर !

परबतिया आयी । पैताने में बैठकर पाँव सहलाने लगी । मगर गनपत के बड़े भाई और बाबूजी हाथ में भाला लेकर आये और आँखें तरेरने लगे ।

रेशम मजदूर यूनियन भागलपुर की हड़ताल ! गनपत खँजड़ी बजाकर जुलूम के आगे गा रहा है—‘दुनिया के मजदूरों, एक हो...’

पुलिस आँसू-गैस छोड़ती है । घुड़सवार सिपाही घोड़े को दौड़ाता, हड़तालियों को चाबुक से पटापट पीटता, रौदता, धूल उड़ाता हुआ चला जाता है ।

गनपत जेल के एक गंदे मेल में पड़ा हुआ है । सिर पर पट्टी बंधी हुई है । परबतिया—परबतिया—परबतिया—पारो-ओ-ओ... !

सात दिन सताने के बाद ‘सर्दरा बुखार’ उतर गया । अस्पताल के डॉक्टर साहब ने जी-जान से इलाज किया । कुममी कह रही थी, “दो-दो ‘जकशन’ एक साथ

देते थे डागडर बाबू।" और इसी डॉक्टर के खिलाफ गनपत ने, बलराम के कहने पर, पर्चा छपवाकर बँटवाया था—बिसनपुर अस्पताल के जुल्मी डॉक्टर को जल्दी बर्खास्त करो !

सिर्फ सात दिन का बुखार नहीं, गनपत को लगता है, पैंतीस साल से चढ़ा हुआ ज्वर आज उतरा है। इतने दिनों तक एक 'अध सुरंग' में वह चल रहा था—बेमतलब, बेकार, अकारण।

कुसमी गरम दूध में धान का लावा डालकर ले आयी। "डागडर साहब बोले हैं कि पथ्य में माँथुर मछली चाहिए। शोभित को भेज दिया है। साँझ होते-होते एकाध सेर मछली जरूर ले आवेगा।"

फिर कुसमी बोली, "सात दिन में गाँव का बच्चा-बच्चा आकर देख गया, कुसल पूछ गया। मगर कोई 'साथी कामरेट' झाँकी मारकर देखने के लिए भी नहीं आया। कल बलराम बाबू आकर कह गये हैं कि 'गनपत को अपने घर ले जाओ। पाटी आफिस खाली कर दो। उसको बरखास्त कर दिया गया है।'"

परिवार, जाति, धर्म, समाज, सरकार और अन्याय, अत्याचार से हमेशा लड़नेवाला लड़ाकू गनपत आज अखाड़े में हारे हुए पहलवान की तरह पड़ा हुआ है। सभी उसकी पीठ पर एक लात लगाकर, गाली देकर चले आते हैं। पैंतीस साल तक साधु-संन्यासियों की तरह लंगोटबंद रहकर, जीभ, मुँह और मन में लगाम लगाकर उसने पब्लिक का काम किया। किसी का एक तिनका न चुराया, न पार्टी का एक पैसा गोलमाल किया। माँ-बाप, भाई-बहन, गाँव-समाज और परबतिया से भी बढ़कर पार्टी और पार्टी के झंडे को प्यार किया। बे-का-र...!

गनपत को लगता है कि चाँद-सूरज में भी दरार पड़ गयी है। दुनिया की हर चीज आज दो भागों में बँटी हुई-मी लगती है। हर आदमी के दो टुकड़े, दो मुखड़े और दरका हुआ दिल।

जिन बातों को आज तक पूँजीपतियों और साम्राज्यवादियों और जंगबाजों की बात समझकर अनसुनी कर देता था, आज वे ही बातें बार-बार याद आती हैं—

गनपत, तुम्हारे लीडर लोग, यानी तुम्हारी पार्टी, जाति और धर्म को अफीम कहती है। मगर तुम्हारे लीडर लोग अपने बच्चे-बच्चियों की शादी किसी दूसरी जाति में क्यों नहीं करते? लड़के की शादी में कॉमरेड रामलगन सरमा ने पचीस हजार रुपये तिलक में गिनवा लिया। तुम्हारे लीडरों के बच्चे दार्जिलिंग और देहरादून में पढ़ते हैं। तुम्हारे सेक्रेटरी की बीवी कांग्रेसी-मिनिस्टर होने के लिए जाति की गुटबंदी करती है। तुम्हारे तूफानजी ने मिल-मालिक से मिलकर मजदूरों की गरदन पर छुरी...!

गनपत के सामने एक-से-एक बड़े कॉमरेड की तसवीर उभरती है—

चोरघड़ेजी, जादबजी, गोपालजी, मिनहा साहेब, ठाकुरजी, तूफानजी । सभी तमबीरों के मुंह से बम एक ही बात निकली है, 'हम गलत रास्ते पर थे...'।

एक अंध-मुरंग में बाहर निकलकर गनपत बेदम पड़ा हुआ है। उसके पीले मूखड़े पर उसकी खिचड़ी मूँछ लटकी हुई हैं। 'पैंतीस साल तक वह गलत रास्ते पर गलत दिशा की ओर चलता रहा। न जाने उसने कितनी गलतियाँ कीं ! न जाने कितने लोगों को गुमराह किया !

यदि परबतिया का पेट गिराया न जाता तो उसकी संतान पैंतीस साल की होती। यदि बेटा होता तो बलराम की उम्र का होता अब।

परबतिया को उमने धोखा दिया। पहली गलती, जिमका फल वह आज तक भोग रहा है।

कुसमी पिछले पाँच साल से गनपत से प्रेम-भाव का बरताव करती है। गनपत सब-कुछ समझकर भी कुछ नहीं समझने का भाव दिखलाता है। मगर बेवा कुसमी मती नारी की तरह टुकुर-टुकुर उसका मुँह देखती रहती है। तिस पर अकालू महतो का पियक्कड़ बेटा ताना मार गया—बेवा मुसम्मात के साथ इश्कबाजी...

कुसमी भरथा नाई को बुला लायी। हजामत बनाते समय कुसमी ने कहा, 'मूँछ भी छांट दो। दूध-बालीं पीते समय 'लस्टम-पस्टम' हो जाती है...'।

आलू का भुर्ता और गरम भात खाकर मुँह का कसैलापन दूर हुआ। सौंफ की बुकनी मुँह में डालकर, उसने आईने में अपना मुखड़ा देखा। 'आश्चर्य ! उसका मुँह ठीक उस मरियल घोड़े की तरह लबा हो गया है, जिसके (पैंतीस साल पहले) अगले दोनों पैरों को 'छान' कर कमाई मालिक ने छोड़ दिया था। जमीन पर लेटा हुआ, 'हुकुर-हुकुर' करके साँस लेता हुआ, टाँगों को झटकारता ! कोओं ने जिसकी देह में न जाने कितने घाव कर दिये थे। पर परबतिया हँसिया लेकर दौड़ी गयी थी। पैरों के बंधन कट जाने के बाद, 'मरतुहार' घोड़ा बैठ गया था, सिर झुकाकर। फिर धीरे-धीरे धरती को सूँघने लगा था...'।

गनपत ने धीरे-धीरे अपने पैर फैलाये।

बाहर कॉम्रेड चंद्रिका की आवाज सुनायी पड़ी। एक लाल पगड़ीवाले सिपाही ने झाँककर अँगनाई की ओर देखा और बोला, "चपरामी साहेब तऽ होने चटाई पर पैर पसार के पसरल बाइन।"

घाने के दारोगा और सिपाही को देखकर गनपत की खाली, खोखली काया में कुछ भरने लगा। उसकी शिराओं में झनझनाहट शुरू हो गयी। उसने एक बार कॉम्रेड चंद्रिका की ओर देखा। दारोगा साहेब ने कहा, "देखो जी गनपत, तुम आश्रम के चपरामी हो न?"

"तुम-ताम मत बोलिए। मैं चपरामी नहीं किसी का।"

दारोगा ने चंद्रिका की ओर देखा।

चंद्रिकाजी बोले, “देखो गनपत, दारोगा साहब आश्रम पर दफा 144 लगाने आये हैं। तुम...!”

गनपत अब अच्छी तरह सँभल चुका था। उसने स्वस्थ और निडर स्वर में जवाब दिया, “यहाँ आश्रम कहाँ है? यह मेरा घर है। मेरी जमीन है। यह सार्वजनिक संपत्ति नहीं, किसी की पाटी-बंदी का अखाड़ा नहीं।”

पुलिस का सिपाही अँगनाई की ओर झकिकर कुछ देख रहा था। गनपत ने कड़ककर कहा, “ए मिपाहीजी, उधर ‘जनाना हवेली’ में क्या ताक-झाँक कर रहे हैं? नौकरी भारी हुई है क्या?”

दारोगा ने पूछा, “तुम... तुम्हारे... आपके पाम कोई सबूत है?”

“सबूत? कैसा सबूत? कागजी या जुबानी? गवाही?” शोभित की माँ, मेरी झोली इधर दे जाना।”

शोभित की माँ, यानी कुसमी घूँघट काढ़कर बाहर आयी। गनपत झोली से अपना ‘पोथी-पत्तर’ निकालने लगा—‘मावर्मवाद की मोटी बातें’, ‘किसानों और मजदूरों के गीत’, ‘जालिम जमींदारवा...’ गीत बैंगवाड़ा का मशहूर प्रस्ताव, तैलंगाना की लाल भवानी, शहीद फिल्म के गाने, ‘देश के दुश्मन’, गनतंत्र... “यह लीजिए कागजी सबूत। और जुबानी गवाही? गाँव के बच्चे-बच्चे से पूछ लीजिये।”

दारोगा साहब ने दस्तावेज के मुड़े हुए पन्नों को सीधा करके शुरू से अंत तक पढ़ा, फिर मुस्कराकर चंद्रिकाजी की ओर देखने लगे, “यह तो ठीक ही कहता... कहते हैं। जमीन-जायदाद सब इन्हीं के नाम में रजिस्टरी हुआ है।”

चंद्रिकाजी अब चिल्लाने लगे, “बेईमान कहीं का! ‘पब्लिक प्रापर्टी’ को हड़पना चाहता है? देखना है कि तुम...!”

गनपत उठकर खड़ा हो गया। “पब्लिक का नाम मत लो चंद्रिका, पब्लिक अंधी नहीं, सब-कुछ देखती है, समझती है। अपने ‘स्वार्थ’ के लिए पाटी के टुकड़े-टुकड़े करनेवाले...!”

कुसमी अंदर से ही बोली, “इन लोगों के मुँह लगने की क्या जरूरत? डगडर माहब ने मना किया है न!... ‘लड़ि मरे बरदा, और बैठा खाय तुरंग।’”

किंतु गनपत ने तब तक नारा बुलंद कर दिया था, “इनकिलाब, जिदाबाद! ...फूटपरस्तो, मुर्दावाद! ...पाटी के दुश्मन, मफेदपोश!”

एकत्रिंश भीड़ में तुरंत उत्तेजना की लहर दौड़ गयी। लोगों ने गनपत के साथ नारा लगाना शुरू किया तो दारोगा साहब जल्दी से बाहर चले गये। उन्होंने चंद्रिका में अंग्रेजी में कुछ कहा।

मिपाही ने धवराकर कहा, “हुजूर, यह पाटीवालों का घरेलू झगड़ा है। अब यहाँ ठहरियेगा तो मामला बिगड़ जायेगा।”

बारोगा और चंद्रिका के जाने के बाद एकत्रित लोगों ने जय-जयकार किया, "बोलिए एक बार प्रेम से—गनपतजी की जै ! किसानों के नेता—गनपतजी ! मजदूरों के नेता—गनपतजी ! गनपतजी जिदाबाद ! जो हमसे टकरायेगा, चूर-चूर हो जायेगा !"

पैंतीस साल में पहली बार अपनी 'जय' और 'जिदाबाद' के नारे सुनकर गनपत का दिल उमड़ आया ।

कोलाहल और कलरव के बीच किसी ने भाषण देना शुरू कर दिया—
"भाइयो, इस बार ग्राम-पंचायत के चुनाव में मुखिया के चुनाव में, इन लंबे कुरते और पजामे वाले फोकटिया बाबूओं के छक्के छुड़ा दो ।...आज रात यहाँ खूब घूम से 'किसान कीर्तन' होना चाहिए ।"

जब सभी चले गये, और एकांत हुआ, तो गनपत ने झोपड़ी के अंदर से आवाज दी, "शोभित की माँ !...जरा इधर आना ।"

कुसमी अंदर गयी । गनपत का चेहरा देखकर वह उरी—फिर बुझार आ गया क्या ? उसने गनपत के कपाल पर हाथ धरा । गनपत ने कुसमी की कलाई गड़ड़ ली । उसके ओठ थरथराये । उसने कुसमी के चेहरे को अपने मुँह के पास खींच लिया । काँपती हुई आवाज में बोला, "कुसुम, ...लेकिन यह पाप है, अन्याय है । पब्लिक की संपत्ति, पाटी की जमीन...आश्रम में...यह पाप...यह घोर पाप है...!"

कुसमी को भूने हुए सॉफ की गंध बहुत भली लगी । वह मान-भरे स्वर में बोली, "कैसा पाप ? चंद्रिका बाबू ने पाटी के चंदे से पुरैनियाँ में पुस्तकें खरीदवा लीया । रामलखन बाबू ने जमींदारों से घूम लेकर गरीब रैपतों के मुकदमों को खराब कर दिया । गो...!"

"कुसुम, लोग कुछ भी करें । मुझसे यह पाप-कर्म नहीं होगा । तुम भुझे... तुम मुझे जिलाना चाहती हो तो अपनी झोपड़ी में ले चलो ।"

कुसमी ने कुछ क्षण गनपत की डबडबायी हुई आँखों और नग्नमाये हुए चेहरे को देखा । फिर बोली, "और...यह आश्रम ?"

"मैं जमीन वापस दे दूँगा लोगों को । दम जन की दी हुई चीज 'धर्मदा' होती है । इसे अकेला भोगनेवाला कभी सुख-चैन से नहीं रह सकता ।...और अब मुझसे पब्लिक का काम नहीं हो सकेगा । जब पाटी ही टूट गयी...!"

वह बच्चों की तरह हिचकियाँ लेकर रोने लगा ।

कुसमी अपने गंदे आँचल से गनपत के आँसू पोंछती हुई बोली, "रोइये मत ।"

गनपत ने कुसमी को छाती से चिपका लिया ।...आह ! पैंतीस साल के बाद औरत को छाती की गरमी उसकी देह में पहली बार आँघी की तरह समा गयी ।

उमने कुममी के काले-काले ओठों को चूमने के लिए मुंह बढ़ाया, किंतु रुक गया ।

“नहीं कुमुम, यहाँ नहीं... यहाँ नहीं... चलो अपने घर । यहाँ एक क्षण भी रहने का मुझे अधिकार नहीं ।”

कुममी उठ खड़ी हुई । गनपत का हाथ पकड़कर उठाने हुए बोली, “चलो ।”

“माँ ! भैया ! देख, कितनी मछली ले आया हूँ !”

शोभित ने बाँस की टोकरी मामने रख दी । काली-काली माँगुर मछलियाँ छलमलाने लगीं ।

कुममी बोली, “मछली का सगुन सुभ होता है ।”

गनपत हँसा ।

कुसमी ने अपने इकलौते जवान बेटे से कहा, “बबुआ, तुम काका को सहारा देकर ले चलो । मैं बिछावन समेटकर ले आती हूँ ।”

शोभित ने अपनी माँ का मुँह देखते हुए कहा, “कहाँ ?”

गनपत बोला, “जहाँ तुम्हारा जो चाहे, बेटा !”

गनपत ने एक बार उलटकर देखा । पार्टी का झंडा बदरग होकर भी फड़-फड़ा रहा है, हवा में । उसे लगा कि वह खुद पार्टी का झंडा है, जिसे शोभित कंधे पर ढोकर ले जा रहा है...

आजाद परिदे

जब बग्गी-गाड़ी के कोचवान को मालूम हुआ कि पीछे पाबंदान पर कोई शंतान लौंडा लटका हुआ है तो उसने चाबुक फटकारकर एक गाली दी पीछे की ओर, “उतर ! हुरामी का पिल्ला !”

हरबोलवा हँसकर उतर गया और पाम वाली गली में घुसने से पहले उसने एक हवाई गाली फेंकी, “साले ! खनगिन का खसम !”

हरबोलवा ने यह गाली दो ही दिन पहले सीखी है। ठेलावाले भुजंगी और भाजी वाले हलमान में कजिया शुरू हुआ। भुजंगी ने हलमान को बहन की गाली दी। हलमान उसकी छाती पर चढ़ बैठा, “बोल साले, खनगिन का खसम....!”

इस गली में बहुत दिन के बाद आया है हरबोलवा। इस गली में एक स्कूल है। छोटी-छोटी लड़कियाँ पढ़ती हैं।... नहीं। स्कूल के चपरामी ने उमी दिन अच्छी तरह पहचान लिया था हरबोलवा को, “साले, तुमको पहचानते हैं। तू ही न, उस दिन मेरी बकरी को पकड़कर दूह रहा था? सब्जी बाग की कमाई गली में रहता है न साले ! यहाँ क्या करने आया है...?”

हरबोलवा ने हिम्मत बाँधकर जवाब दिया, “ए ! गाली काहे देते हैं ? हम यहाँ गली में खड़े हैं, किनी का कुछ लेते हैं ?”

“माने ! मुँह लगता है फिर ? नाक की हड्डी तोड़ दूँगा, मारे झापड़ के। साला, यहाँ नाली में ‘बेबी’ लोग, ‘तीन मिनट’ करती हैं और तू देखता है ? भागो, साले !”

उस दिन, हरबोलवा ने अपने यार फरजन से कहा था, “ए ? ‘तीन मिनट’ का माने जानता है, फरजनवा ?”

... फरजन के मामू ने उस दिन फरजन को सजा दी थी—सुबह का नाश्ता बंद कर दिया था। हरबोलवा उसके लटके हुए मुँह को देखकर समझ गया था। यार को दिलामा देने के लिए उसने कहा था, “अरे, तेरा एक ही दिन नाश्ता बंद हुआ और इसी में तू हिम्मत हार गया ? मेरा तो कभी-कभी दिन-भर का खाना

‘गोल’ कर दिया जाता है। ऊपर से मार और गाली अलग। ‘लो, मुनी ! मैं तुमको ‘तीन मिनट’ का माने बतलाता हूँ।”

फरजानवी को दिखलाकर सामने चिपकी हुई एक विज्ञापन की तस्वीर पर ‘तुरी’ मारकर वह पेशाब करने लगा, “समझे ‘तीन मिनट’ का माने ?...हे हे हे हे !”

हरबोलवा ने देखा, स्कूल का फाटक बंद है। छुट्टी है। उसने इधर-उधर देखा और पास की नाली में—जहाँ उम दिन छाड़िया सब...। नहीं, दरबान के डर से उसका ‘तीन मिनट’ नहीं उतरा। ‘आज जब इधर आ ही गया है तो एक चक्कर मीसी के घर का लगा लेना ठीक होगा। उमने धीरे-धीरे अपनी नयी गाली पर सुर चढ़ाया—एक फिल्मी धुन—खनगिन का खसम, खनगिन का खसम, खनगिन...!

गली से बाहर निकलकर उमने देखा, उसी को उम्र के कुछ लड़के एक गधे की पूँछ में फूटा कनस्तर बांधने की कोशिश में लगे हुए हैं। मगर गधा है चालाक ! पूँछ को इस तरह समेट लिया है कि...

हरबोलवा ने अपने पकित को टटोलकर देखा—हाँ, तार का ‘हुक’ है। उसने बिन माँग ही मदद दी, “अजी, बँधे नहीं होगा। जो यह ‘हुक’, इसको रस्ती में बाँधकर दुम में लपेट दो। फिर हुक खोम दो।”

और, यही सुदरसन से उसकी दोस्ती हो गयी। गधे के पीछे तालियाँ बजा-बजाकर, कुछ दूर दौड़कर बहुत खुश हो गया हरबोलवा का मिजाज। गधा भागा जा रहा है और कनस्तर उनठना रहा है। सुदरसन ने कहा, “ऐन मौके पर तुम आ गये भला। ‘कहाँ रहते हो ? बाप क्या करता है ? माँ है ? भाई-बहन ?”

सुदरसन ने बतलाया, उसकी सोतेली माँ है, लेकिन बहुत दुलार करती है। मगर बाप कसाई है। असल में उसका बाप ही है सोतेला ! “माने, नहीं समझे ? मेरा असल बाप जब मर गया, तो इस बाप ने मेरी माँ को फुमलाकर एक दिन अपने घर बुलाया और दरवाजा बंद करके सिदूर दे दिया माँग में—जबरदस्ती। माँ रोने लगी। मगर रोने से क्या है ? सिदूर दे दिया एक बार तो...। आखिर, मेरी माँ इसी शर्त पर राजी हुई कि सुदरसन को अपने बेटे की तरह रखोगे तो मैं तेरी बीबी, नहीं तो...”

“ए ! सुदरसनवाँ ! तेरा बाप आ रहा है, इधर ही।”

“आने दे।”

हरबोलवा बोला, “मैं जाता हूँ। मुझे मीसी के घर जाना है।”

सुदरसन ने कहा, “ठहरो यार !”

“क्यों बे सूबर ? बारह बजे गये और तू सड़क पर ‘खचड़’ करता है ?”

मुदरसन ने कहा, "आज छुट्टी है दुकान में।"

मुदरसन के 'कठबाप' ने कड़ककर कहा, "छुट्टी है तो घर क्यों नहीं गया अभी तक ?...साने, एक दिन तेरी पीठ की चमड़ी फिर सेकनी होगी। जा, घर जा !"

मुदरसन का कठबाप जब मोड़ के पार चला गया तो मुदरसन ने अपने चेहरे पर हाथ फेरकर मुँह बनाया, मानो चेहरे पर लगी हुई गालियों को पोछकर फेंक दिया। फिर बोला, "तू कहाँ जा रहा है ?"

"मौसी के घर।"

"कहाँ रहती है तेरी मौसी ?"

"पगलखनवा के पास।"

हरबोलवा ने पूछा, "और तुम्हारा घर किधर है ? किम दुकान में काम करते हो ?"

मुदरसन ने हाथ में एक ओर दिखलाते हुए कहा, "यही, गली में। पीर साहेब का मजार देखा है ? उमी के पास। चलो यार ! देखे तुम्हारी मौसी का घर। चलो।"

"तुम ? तुम मेरी मौसी के घर क्यों जाओगे ?"

हरबोलवा नहीं चाहता था कि मुदरसन, जिमसे उसकी जान-पहचान नहीं कभी की, ऐसे लड़के को अपनी मौसी के घर ले चले। मगर, मुदरसन तो जोक की तरह चिपक गया है।

कारपोरेशन के सामने, पानी का बंबा बिगड़ा हुआ देखकर दोनों प्रमत्न हुए। पानी का फव्वारा !

"नहायेगा ?"

"और तुम ?"

मुदरसन ने पैंट खोलकर बन्ने के फव्वारे से अपनी देह को ढँक लिया मानो। हरबोलवा किंतु आगे-पीछे की बात सोचने लगा। फिर अपने पॉकेट से साबुन का एक टुकड़ा निकालकर जमीन पर फेंकते हुए बोला, "जरा पाजामा साफ कर सें।"

दोनों बहुत देर तक फव्वारे में नगे नहाते रहे। बीच-बीच में टोटी में उँगली डालकर पिचकारी छोड़ते।

लेकिन मुहल्ले के लड़कों को तब तक सूचना मिल गयी थी। वे एक-दूसरे को नाम लेकर पुकारते हुए दौड़े—धर-धर-धर सालो को...

हरबोलवा डरा। मगर मुदरसनवा लापरवाही से कुल्ला करता रहा।

मुहल्ले के लड़कों का 'मेट', एक भालू जैसा लड़का, आगे बढ़कर बोला, "कहाँ रहता है बे ? यहाँ लगटा होकर नहाने आया है, खचड़े ?"

हरबोलवा ने अपने अधसूखे पाजामे को ही जल्बी-जल्बी पट्टन लिया। मुदरसन

हैमा । और सुदरसन की हँसी ठीक जगह पर जाकर लगी । भेट ने अपनी टोली को माबधान किया, "यह साला बड़ा चालू मालूम होता है । होशियार रहना !"

सुदरसन ने कहा, "तुम्हारा नाम डफाली है न ?"

आश्चर्य ! सुदरसन के मुँह से अपना नाम सुनकर डफाली के सिर के 'कदम-कुट्टी बाल' खड़े हो गये । उसकी आँखें गोल हो गयी । बोला, "तुम... तुम कहाँ रहते हो ? तुम कौन... तुमने मेरा नाम कैसे जाना ?"

सुदरसन बोला, "तुम्हारी माँ तुमको साथ लेकर एक दिन हकीम साहेब के दवाखाने में गयी थी न ?"

डफाली का मुँह खुल गया । वह बोला, "हाँ !"

सुदरसन हँसता रहा, पूर्ववत् । डफाली ने अपनी टोली के सदस्यों में कहा, "अरे, यह जान-पहचान का है रे !"

डफाली अपनी टोली के साथ गली में गायब हो गया । तब सुदरसन बोला, "जानते हो, इतना बड़ा हो गया है और बिछावन में पेशाब करता है !"

हरबोलवा भी हँसने लगा, "इसीलिए भागा समुर ।"

किन्तु आज हरबोलवा की मौमी उसको देखकर जरा भी खुश नहीं हुई । सुदरसन को देख बोली, "और ई कौन है ?... दिदिया तुमको पीटती है, सो ठीक ही करती है । दुनिया-भर के लुच्चे-लफंगों के साथ इधर-उधर मटरगस्ती करता फिरंगा तो एक दिन जेल जायेगा । जा, घर जा !"

हरबोलवा की समझ में नहीं आया कुछ । आज मौसी इस तरह अचानक बिगड क्यों गयी ?

सुदरसनवा ने रास्ते में पूछा, "यार, वह झोपड़ी के अंदर कौन बैठा था ? वही तुम्हारा मौसा है ?"

"मौसा ? नहीं तो । मौसा तो बरौनी में रहते हैं ।"

"तब वह लाल कमीजवाला कौन था ?"

"किधर ?"

"अरे, मैंने झकिककर देखा था । इसीलिए तुम्हारी मौमी धड़फड़ाकर झोपड़ी में बाहर आयी थी और तुमको डाँटने लगी थी ।"

"ओ !"

हरबोलवा चुप रहा । सुदरसनवा बोला, "एक बात कहूँ, बुरा तो नहीं मानेगा ?... तेरी मौसी छिनाल है ।"

"धेत्त !"

"धेत्त क्या ?... मैंने झकिककर देखा तो...।"

सुदरसनवा की हँसी पर हरबोलवा का चेहरा ठीक डफाली की तरह हो गया मामो वह भी बिछावन में पेशाब करता हो ! और यह बात सुदरसन को मालूम

हो गयी ।

लौटती बार कारपोरेशन के सामनेवाले बंबे के पास वे कुछ देर तक रुके रहे ।

हरबोलवा ने पूछा, “तुम किस चीज की दुकान में काम करते हो ?”

“दफ्तरी की दुकान में । ...साला, सँड़ी हुई बासी लेई की गंध के मारे तुम्हारा दिमाग फट जायेगा ! ...करेगा काम ?”

“कितना मिलता है ?”

“मोट पंद्रह रुपये ।”

“बस ?”

“तो कागज पर लेई लगाने का और कितना मिलेगा—एक सौ ? बोल, काम करेगा ?”

मखनियाँ कुर्आ के नुक्कड़ पर कुछ हो गया है । दोनों ने दुलकी चाल पकड़ी । लेकिन जब वे पहुँचे, खेला खत्म हो चुका था । स्कूटर-रिक्शा एक्सीडेंट में दो आदमी घायल हुए थे और दोनों अस्पताल जा चुके थे । दोनों को पछतावा हुआ ।

हरबोलवा ने उलटकर देखा, सुदरसन एक बीड़ी की दुकान पर रुक गया है । बीड़ी सुलगकर वह तेजी से हरबोलवा के पास आया, “बीड़ी पीयेगा ?”

“बीड़ी नहीं पीता ।”

हरबोलवा जब अपने मुहल्ले की ओर आने लगा तो सुदरसन का दिल अचानक बुझ गया । उसने हरबोलवा को पुकारा, “ए ! सुनो !”

हरबोलवा रुका, “क्या है ?”

सुदरसन बोला, “तुम्हारे घर चलूँ तुम्हारे साथ ?”

“नहीं । बेकार, मेरी माँ तुमको भी गाली देगी ।”

“तू काम करेगा ?”

“बाबू से पूछूँगा । ...मुझे देरी हो रही है, चलता हूँ ।”

“ठहरो जरा, यार ! ...सच ! लगता है तुमसे बहुत दिनों की जान-पहचान है ।”

हरबोलवा हँसा । ...शायद, उसकी हँसी ने सुदरसन को मोह लिया है । उसने पूछा, “तुम लकड़ी के कोयले से मंजन करते हो ?”

“हाँ ।”

“मैं भी करूँगा ।”

हरबोलवा चलने लगा तो सुदरसन ने उसके दोनों हाथों को पकड़कर हँसते हुए कहा, “कहा-सुना माफ करना, भाई !”

सुदरसन की आँखों में न जाने क्या देखा कि हठात् हरबोलवा का दिल उमड़

आया। वह रुक गया। उसने उदास मुद्रसन से पूछा, “क्या हुआ?”

“साला आज बहुत मार पड़ेगी।”

“मुझे?”

“साला, जब तक मुँछ नहीं जमेगी, तब तक बालिग नहीं हो सकते और जब तक नाबालिग रहोगे, इसी तरह रोज लतम-जुतम! साला घर जाने का जी नहीं करता।” कहीं भाग चलने का मन करता है।”

बाकरगंज मसजिद के पास दोनों बहुत देर तक उदास खड़े रहे—नीम की छाया में।

“जब तक बालिग नहीं हो जाते, रोज लतम-जुतम सहना होगा। साला! मुनो, एक काम करेगा? सलीमा में ‘टनटन भाजा’ देवेगा?”

“सलीमा में टनटन भाजा?”

मुद्रसन ने बतलाया—‘लौन-सलीमा’ के पास एक टनटन भाजा कपनी है। उममें उसके कई दोस्त काम करते हैं। खूब मोज का काम है, यार! मगर जमानतदार ही नहीं मिलता कोई। और, बाप साला काहें चाहेगा कि उसका बेटा टनटन भाजा बेंचकर पैसा जमा करे?

मुद्रसन ने बतलाया, “बीस रुपये महीना! एकदम आजादी का काम और फाँकट में सलीमा देखो सो ऊपर से।”

मुद्रसन ने अपने बाप से कहा था। मगर मुद्रसन के बाप ने कहा, ‘टनटन भाजा कपनी का मालिक एक सौ रुपये पेशगी देगा? दफतरी ने दो सौ रुपये पड़वाग दिया है।’

मुद्रसन ने हरबोलवा के कंधे पर हाथ रखकर, “यार-भरे मुर में पूछा, “बोल ना यार, टनटन भाजा कपनी में काम करेगा।”

“मगर जमानतदार?”

“उसका इतना पैसे हो जायेगा।”

“कितना?”

“साला मुझे मगर अमजद मिस्तगी है। मगर यही खचड़ा है।”

मुद्रसन ने थूँक फेंकते हुए कहा, “यार, एर बाप कोई जमानत हो जाये। एक थार टनटन भाजा कपनी की नौकरी मिल जाये, फिर कौन बाप ले जाता है एक डकक घर और कौन साला मारता है?” मगर अमजद मिस्तगी साला भारी खचड़ा है।”

“खचड़ा है तो जमानत कैसे...?”

मुद्रसन हँसा—“खचड़ा है इमीलिग तो जमानतदार होगा।”

बाकरगंज मुहल्ले के पास ही कहीं शादी के ढोल बजने लग। दोनों ने एक लबी साँस ली।

हरबोलवा ने कहा, "इस साल खूब लगन हैं। तुम्हारे मुहल्ले में कोई शादी नहीं? हमारी गली में एक ही रात में पाँच....।"

मुदरसन हँसा, "मारो यार गोली ! शादी ! जब तक मूँछ-दाढ़ी नहीं उगता साला, नाबालिग ही रहेंगे हम लोग।....चलो, अमजद मिस्तरी के घर चलें।"

हरबोलवा को हठात् लगा, मुदरसन ही उसका सब-कुछ है। मुदरसन के सिवा इस दुनिया में अपना कोई नहीं। उसका दुःख समझने वाला यह मुदरसन....।

मुदरसन के हाथों को हरबोलवा ने पकड़ लिया, "मुझे डर लगता है लेकिन....।"

"काहे का डर?"

"बाप....।"

"अरे, एक बार कंपनी में घुसने तो द, तब देखना है बापों को।....ए देख, इधर....इसमें तेल लगावेगा आकर तुम्हारा और हमारा बाप-माँ, मौसा-मौमी—सब। समझे?"

हरबोलवा ने हँसकर मुदरसन के गले में हाथ डाल दिया, "तो मिल जायेगी न नौकरी?"

"अमजद मिस्तरी को तेल लगाना होगा।"

"लगायेंगे ! कंपनी की नौकरी के लिए जो करना होगा, करेंगे। अब लौटकर घर नहीं जाना है।....थूक है घर को !"

"पक्का?"

"पक्का....!"

विकट संकट

दिम्बिजय बाबू को जो लोग अच्छी तरह जानते-पहचानते हैं, वे यह कभी नहीं विश्वास करने कि दिम्बिजय उर्फ दिगो बाबू कभी क्रोध से पानल होकर सड़क पर, खाली देह और ऊँची आवाज में किसी को अश्लील गालियाँ दे सकते हैं। लोग उनको अजातशत्रु मानते हैं। और भूल-चूक से एकाध मनु कहीं पंखा भी हुआ हो तो उन्होंने दिगो बाबू को कभी ऊँचे स्वर में बोलते नहीं सुना होगा। अपनी क्रोधहीनता के कारण ही उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त की है।

किंतु लोगों ने देखा और पहचाना कि अपने अतिपुरातन भृत्य को बीच सड़क पर बैठ से पीटने और गालियाँ देनेवाले सचमुच दिगो बाबू ही हैं। उनके इस अभूतपूर्व कोप का कारण पूछनेवाले भी दिगो बाबू के मुँह से होनेवाली 'प्रथम वर्चा' में भीम गये। आसपास एकत्रित सभी लोगों को 'सालो' कहकर संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि उन्हें सब-कुछ मालूम है और वे सभी को ठीक करके दम लेंगे। तमाशा देखनेवालों को अच्छी तरह दिखला देंगे। लोग सन्न करें।

इतना कहकर वे अपनी कोठी के अहाते में गये, फिर बँगले के बरामदे पर रखे हुए कई नमलों को लात मार-मारकर नीचे गिरा देने के बाद अंदर चले गये। निःशब्द खुलने और बंद होनेवाला दरवाजा आज पहली बार चूँ-चूँ कर उठा। ताड़ित भृत्य रामट्टल अँगोछे से अपनी पीठ झाड़ता हुआ उनके पीछे-पीछे चला गया। बस !...लोग सन्न करें? पता नहीं फिर कितनी बेर के बाद वे अच्छी तरह तमाशा बिछाने को बाहर निकलें?...उन्हें लोगों के बारे में सब-कुछ पता है और लोगों को यह नहीं मालूम कि उन्होंने दिगो बाबू का क्या बिगाड़ा है। उनके घर में जिनका 'आना-जाना' है, वे भी आज उनकी 'जाति-कुटी' में पैर देने का साहस नहीं करते। फिर कारण कैसे मालूम हो...?

कामवाले अपने-अपने काम पर गये और बेकाम के लोग कई घंटों तक बेकार न बैठकर सामने पार्क में ताज खेलते रहे। किंतु किसी खिड़की या दरवाजे से फिर कोई बाहर नहीं आया, न किसी प्राणी या वस्तु की आवाज ही बाहर आयी।

जैसी नाटकीयता से गमलों पर पदाघात करके और जिस वेग से वे अंदर गये थे, उस हिसाब से अंदर पहुँचने के एक मिनट बाद ही 'ठाय-ठाय' विस्फोट अथवा काँच के बतनों की टूटती आवाज अथवा किसी के अचानक फूट-फूटकर रोने का स्वर गूँज जाना चाहिए। परंतु दो घंटे बाद भी कुछ नहीं हुआ और धीरे-धीरे रहस्य गंभीर होता गया।

रात के दस बजे इस रहस्य को भेदन करके एक उड़ती-सी खबर फैली कि दिगो बाबू के घर में मुकम्मल हड़ताल है। दिगो बाबू के अतिरिक्त कोठी में रहने-वाले अन्य सभी प्राणी दिगो बाबू के विरुद्ध असहयोग-आंदोलन कर रहे हैं। अधाँगिनी अपने पूरे अंग को समेटकर अँगनाई की एक छोटी कोठरी में चली गयी है; प्रजा अर्थात् पुत्र अराजक हो गया है; भृत्य किसी वचन का पालन नहीं करता; महाराज मनपसंद भोजन बनाने लगा है। यहाँ तक कि घर की बिल्ली भी गुर्राती है देखकर। 'हाय रे, दिगो बाबू का सुख का संसार ! हाय रे उनकी 'शांति-कुटी', अर्थात् न्यू पटलपुरी में नवनिर्मित दिगो बाबू की कोठी !!

दूसरे दिन सूर्योदय से पहले ही तमाशा शुरू हो गया।

दिगो बाबू के लाड़ले बेटे श्रीहर्ष ने अपनी कोमल मधुर आवाज को कर्कशतम् कर, भोले-भाले चंहेरे को कठोर क्रूर बनाकर अखबार देनेवाले लड़के से कहा, "अभी अखबार पहले 'छोटी कोठी' में देगा अब से—समझा ?"

'छोटी कोठी' अर्थात् कोठी की अतिगिश्ताला, जिसमें श्रीहर्ष रहता है। सभी पत्र-पत्रिकाओं को बगल में दबाकर खुलेआम सांचिस जलाकर, सिगरेट मुलगाकर धुएँ का गुब्बारा छोड़कर श्रीहर्ष अपनी छोटी कोठी की ओर चला गया।

थोड़ी देर बाद, श्रीहर्ष की माताजी यानी श्रीमती धर्मशीला अपने पति को, न जाने किन बात पर धिक्कारती हुई बाहर बरामदे पर आयी। जिस महिला को लोगों ने हर एकादशी की माँझ को अपने पति का चरणोदक पीते देखा है, वह कह रही थी, "भोर-ही-भोर जो इनका नाम ले ले, उभका सारे दिन का सगुन चौपट !"

कल जिस पर मार पड़ी थी वही चाकर आज निडर होकर लॉन में, आराम-कुर्मी पर लेटकर बीड़ी खींच रहा है। और, महाराज अपने दीर्घ दाँतों को दंतुअन से रगड़ता हुआ यत्र-तत्र शुकता जाता है—मैं किसी का नोकर नहीं। जिसको 'चाह' पीना है 'दान' से मँगवा ले। मैं अभी गंगाजी में नहाकर, बिड़ला मंदिर जाऊँगा ! आक्यों !

आश्चर्य ! लगता है, दिगो बाबू को जीवन में सिर्फ कल ही—पहली और अंतिम बार—क्रोध हुआ। आज वे पुनः धीरे-गंभीर और मौम्य-शांत है—सब-कुछ देख-सुनकर भी।

कंधे पर धोती-तीलिया डालकर बाहरवाले खुले नल पर जाते देखकर किसी

को विश्वास नहीं हुआ कि दिगो बाबू बाहर ही नहायेंगे, जहाँ नौकरानी बर्तन माँजती है।

दिगो बाबू ने सड़क पर हाँक लगानेवाले पूरी-भाजेवाले को पुकारा। राह चलते पतौरे-पकौड़े-कचालू-छोले खानेवाले लड़कों को सुबह-शाम निःशुल्क स्वास्थ्यपूर्ण मीख देनेवाले दिगो बाबू को इस तरह बासी पूरी-भाजी खाते देखकर एक सहृदय पड़ोसी का हृदय हिल गया और उसने “अरे-रे, यह क्या, यह क्या...” कहकर सहानुभूति-विगलित स्वर में कुछ कहने की चेष्टा की। किंतु दिगो बाबू ने एक अंग्रेजी वाक्य का ठेठ भारतीय अनुवाद करके कपट-नम्र उत्तर दिया, “जनाब ! आप अपने चरखे में जाकर तेल डालें।”

दोपहर को उनके पूर्वी पड़ोसी एक ‘अर्थपूर्ण बात’ अर्थात् रुपये-पैसे से संबंधित बात सुनाने गये, “श्रीहर्ष बाबू ने रोड नंबर पाँच के फ्लैट के किरायेदारों को आज नोटिस दिया है कि मकान का किराया श्रीहर्ष बाबू के हाथ में ही...”।

दिगो बाबू ने बीच में ही काट दिया, “हाँ, प्लॉट और फ्लैट श्रीहर्ष के नाम है, इसलिए मकान का किराया उसी को मिलना चाहिए।”

श्रीहर्ष ने किरायेदारों को ही नहीं, दिगो बाबू को भी नोटिस दिया है—जीवन-बीमा के पैसे का ‘नामिनी’ वह नहीं रहना चाहता। उसे पैसे नहीं चाहिए। ...वह किसी का आश्रित नहीं।

श्रीमती धर्मशीला ने भी कुछ ऐसा कहा, जिसका आशय यही होता है कि वह भी दिगो बाबू के आश्रय को श्राप समझती है।

दिग्विजय बाबू एकदम चुप रहे। उनकी लंबी और गंभीर चुप्पी से माँ-बेटों, नौकर-चाकर सभी उत्तेजित हो गये, “इनको क्या है ? चुप रहें या बोलें—मौज में ही रहेंगे। संकट तो हम लोगों के सिर है।

“आप भला तो जग भला। इनके सुख-चैन में कोई कमी न हो कभी। कोई मरे, इनकी बला से।”

दिग्विजय बाबू ने अपनी उँगली में दाँत काटकर देखा; नहीं, वह सपना नहीं देख रहे !

आखिर, बात तरह-तरह की बातें लेकर उड़ी। सारे शहर के हर ‘नगर’ और ‘पुरी’ में फैलती गयी। तब, दिग्विजय बाबू के हर वर्ग और समाज के मित्रों का आगमन शुरू हुआ।

‘शांति-कुटी’ में प्रवेश करनेवाले की दृष्टि दूर से ही रामटहल के गंदे-चिकट लंगोट पर पड़ती, जिसे उसने बतौर बगावत के झंडे के दिगो बाबू की खिड़की पर पसार दिया है।

दिगो बाबू के एक वकील मित्र ने जिरह करके मामले के मूल सूत्र को पकड़ने की चेष्टा की। ...नौकर को पीटने के बाद ही पत्नी और पुत्र ने विद्रोह किया या

पहले ? और नौकर यानी रामटहल तो बहुत पुराना चाकर है । दिगो बाबू जब कॉलेज में पढ़ने आये थे, रामटहल को साथ ले आये थे । दिगो बाबू की पढ़ाई खत्म हुई, नौकरी शुरू हुई—खत्म हुई—रामटहल सब साथ रहा । मारी और मोने में भी वह दिगो बाबू से सटकर खड़ा था...

दिगो बाबू के दूसरे मित्र खुफिया विभाग में काम करते हैं और उनका वह विश्वास है कि संसार में जितने भी अपराध या अचटन होते हैं उनके पीछे कहीं-न-कहीं किसी स्त्री का कोमल हाथ जरूर होता है ।... इस मामले में औरत तो सीधे सामने है । लेकिन इसके अलावा कोई और औरत तो कहीं नहीं ?

श्रीमती धर्मशीला से बहुत देर तक बेमतलब की बातें करके वे अपने मतलब की बात नहीं निकाल सके । किसी औरत या लड़की का पता नहीं चला । पति से इस 'बिराग' और असहयोग का कारण पूछने पर श्रीमती धर्मशीला रामटहल की ओर देखकर चुप हो जाती ।

तब, विविध बाबू के खुफिया विभागीय मित्र ने दूसरे सिरे से शुरू किया... कहीं श्रीमती धर्मशीला ही तो वह 'औरत' नहीं ? अतः उन्होंने रामटहल की देह में नुकीले सवाल गड़ाकर 'बाहना' शुरू किया ।... एक बार इसी तरह कटहल में लोहे की कमानी गड़ाकर चोरी का सोना बरामद किया था ।

लेकिन रामटहल शुरू से अंत तक हर सवाल का एक ही जवाब देता रहा, "मालकिन असल सती नारी हैं !"

उन्होंने तब उन गमलों की परीक्षा की जिन्हें दिगो बाबू ने सात मारकर गिराया था, पर कुछ हाथ नहीं लगा ।

तीसरे दिन किसी अज्ञात हितचिंतक ने दिगो बाबू के बड़े बेटे को तार लगा दिया— 'बाप लवेजान है, जल्दी आइए ।'

दिगो बाबू के निर्जला मौन-व्रत ने लोगों को भी हैरत में डाल दिया है । जिन अपराधों के लिए कोई भी अपनी स्त्री, बेटे, नौकर सभी को बाहर निकाल सकता है, उन्हें चुपचाप सहने का क्या अर्थ हो सकता है भला ? बिमाग सही है या वह भी बीमार-पड़ी की तरह बंद हो गया है ?

दुर्गापुर से दिगो बाबू का बड़ा बेटा श्रीपार्थ अपनी स्त्री श्रीमती जबानी के साथ दौड़ा आया । उनकी अगुवानी के लिए श्रीमती धर्मशीला और श्रीहर्ष एक ही साथ दौड़े । श्रीहर्ष ने कहा, "मेया डॉण्ट...!!"

"बाबूजी कैसे हैं ?"

"अरे, उनको क्या है बेटा ! संकट तो हम लोगों के सिर है । वे तो मौज में हैं और मौज में रहेंगे ।"

श्रीपार्थ तथा उसकी पत्नी को स्टेशन पर ही मालूम हो गया था कि बाबूजी लवेजान नहीं, 'सनक' गये हैं ।... सनक गये हैं माने पागल ? सुनते ही श्रीमती

भवानी की देह में कँपकँपी, कलेजे में धड़कन, गले में घिघी और सिर में चक्कर—
सब एक साथ ! श्रीपार्थ ने समझा-बुझाकर अपनी पत्नी का दिल मजबूत किया—
“पागल हो गये है तो क्या—है तो हमारे बाप ही !”

किंतु परिवार के सभी प्राणियों को कोठी के फाटक की ओर झपटते देखकर
भवानीदेवी फिर भय में पीनी पड़ गयी । ... श्रीहर्ष का रह-रहकर ‘भैया, डॉण्ट’,
श्रीमती धर्मशीला की आतंकपूर्ण आँखें, खिड़की पर प्रसारित रामटहल का गंदा-
चिकट लैंगोट, फिमफिसाहट और इशारों में बातें देख-सुनकर श्रीपार्थ की अवस्था
भी शोचनीय हो गयी ।

वे सभी दल बाँधकर, दवे पाँच चुपचाप बरामदे में आये । श्रीमती भवानी
सबसे पीछे थी । रामटहल दिगो बाबू के कमरे का दरवाजा खोलकर इस तरह
खड़ा हुआ मानो पिजड़े में बंद किमी हिस्से प्राणी की झाँकी दिखला रहा हो ।
दिगो बाबू ने ‘गीता रहस्य’ में गड़ी हुई आँखों को ऊपर उठाने की चेष्टा नहीं
की । श्रीपार्थ ने दूर से ही मूक प्रणाम किया । श्रीमती भवानी साहम बटोरकर
आगे बढ़ रही थी कि रामटहल ने दरवाजा बंद कर दिया ।

सभी ने एक साथ लंबी माँस ली ।

श्रीमती धर्मशीला बोली, “बेटा ! तुम तो इनके ‘आश्रित’ नहीं । तुम लोगों
को क्या डर ? संकट तो हमारे मिर है !”

तब तक रसोईघर में महाराज ने हनुमान चालीसा का स-स्वर दैनिक पाठ
शुरू कर दिया था, “संकट मोचन नाम तिहारो...”

पाँच मिनट में ही हर व्यक्ति के मुँह से पच्चीस बार ‘संकट’ सुनकर श्रीपार्थ
के मन में एक काँटा-मा गड़ने लगा—संकट...कंकट...सं...कट ! उसने पूछा,
“संकट क्या है ?”

रामटहल ने कुछ कहना चाहा तो श्रीहर्ष ने उसे चुप कर दिया । श्रीहर्ष
संकटकालीन समस्याओं पर पूर्ण प्रकाश डालने को उत्सुक हुआ । किंतु श्रीपार्थ
ने उसको अंग्रेजी में समझा दिया कि वह सभी से अलग-अलग (इनडिविजुअली)
बातें करना चाहता है । अतः माँ को छोड़कर बाकी सभी इस कमरे से बाहर
निकल जायें । जिसको पुकारा जाये, वही आये । कोई किसी को कुछ सिखाये-
पढ़ाये नहीं ।

श्रीमती भवानी उधर से तनिक खुश, ज्यादा परेशान होकर आयी और अपने
स्वामी से पूछने लगी, “बाबूजी मुझे बुला रहे हैं !...हाँ, बहुत प्यार से बुला रहे
हैं । मैं खिड़की से बाहर झाँककर देखने गयी तो पुकारा—बेटी !”

श्रीपार्थ ने अपनी माता की ओर देखा । श्रीमती धर्मशीला चुपचाप अपना
बयान देने लगी और श्रीमती भवानी ‘क्या करे नहीं करे’ का सवाल अपने मुँहड़े
पर जड़कर वहीं खड़ी रही ।

श्रीमती धर्मशीला, श्रीहर्ष, रामटहल और महाराज से अलग-अलग साक्षात्कार संपन्न करके श्रीपार्थ ने संकट का सूत्र पकड़ा। और, तब उसको अचानक ज्ञात हुआ कि उसके पिता दिग्विजय बाबू सचमुच अभूतपूर्व पुरुष हैं। लगातार तीन-चार दिन तक ऐसे विकट संकट में रहकर भी जिनका दिमाग सही-सलामत है, वे निश्चय ही देवता हैं।

श्रीपार्थ अपने उत्पीड़ित पिता की चरणधूलि लेने के लिए दौड़ा। उसने श्रीमती भवानी को निकट बुलाकर कुछ कहा। श्रीमती भवानी ने घबराकर श्रीहर्ष, रामटहल और अंत में श्रीमती धर्मशीला की ओर देखा... इतने पागलों के बीच... हे भगवान् !

श्रीमती भवानी अपने पति के पास भागकर चली गयी।

संकट की मूल कहानी इस तरह शुरू होती है :

...अष्टग्रह को भयावह अफवाहों के बीच एक दिन इस नगर की 'बूढ़ी-सेठानी-धर्मशाला' में एक त्रिकालदर्शी ज्योतिषी ने अपना डेरा डालकर ऐलान करवा दिया कि वह एक पखवारे से एक दिन भी ज्यादा इस शहर में नहीं रहेगा। जिन्हें अपने भूत, भविष्य और वर्तमान का दर्शन करना अथवा बिगड़ी तकदीर को सुधारना हो, जल्दी करे।

अखंड संकीर्तनों के असंख्य ध्वनि-विस्तारक यंत्रों के आतंकपूर्ण हाहाकार और महायज्ञ के कटु-पवित्र धुएँ से ढके हुए इस नगर में त्रिकालदर्शीजी आशा की किरण नहीं, उम्मीद का सूरज लेकर आये। लोगों की जान-में-जान आयी।

तब एक दिन उपयुक्त अवसर देखकर श्रीमती धर्मशीला ने अपने पति से निवेदन किया कि क्यों न एक दिन त्रिकालदर्शन...

श्रीमती धर्मशीला अपने पति की मुद्रा देखकर धबरायी। किंतु दिग्विजय बाबू ने झिड़की नहीं दी। प्रेम-लपेटे शब्दों में ही उन्होंने पूछा कि अकल से बड़ी भैंस कैसे हो सकती है ?

श्रीमती धर्मशीला मुस्कराकर रह गयी। वह जानती थी कि उसके 'कर्मयोगी' पति यही कहेंगे। दिगो बाबू ने उस दिन के समाचार-पत्र में प्रकाशित पंडित जवाहरलाल नेहरू का वक्तव्य पढ़कर मुत्ता दिया।

किंतु लगातार तीन बार बी० ए० की परीक्षा में अमफल होने के बाद श्रीहर्ष को 'तकदीर के लेख' पर अटूट विश्वास जम गया था। वह दूसरे ही दिन काशी से प्रकाशित एक प्रतिष्ठित पत्र की कतरन ले आया, "मैं, देखो यह श्री संपूर्णानंद की चेतावनी, नेहरूजी के नाम। जरा बाबूजी को दिखला दो—माने—पढ़ने को कहो।"

दिगो बाबू ने कनरन पर मरमरी निगाह डालकर देखा। फिर, गस्वर गुन-गुनाने लगे, 'होइतै सोइ जो राम रचि राखा'...'

श्रीमती धर्मशीला को बल मिला। किन्तु रामटहन, राम एवं चुनमुन झा यानी महाराज मुबह-शाम ताजा और भयानक अफवाह लेकर घर लौटने लगे, रोज। श्रीहर्ष को रात में नींद नहीं आती। आँख लगते ही वुरं मपने देखना और चीख पड़ता।

श्रीमती धर्मशीला चित्रित हुई, फिर। भय से सुखे हुए श्रीहर्ष ने सूचना दी कि मुमिफ माहव तथा दूसरे टोटे-बड़े हाकिमों ने ज्योतिषी से अपनी कुडली दिखवायी है। '...मिबिल मर्जन माहव दिन-रात ज्योतिषीजी के साथ ही रहने हैं...कलकत्ता का एक बड़ा भारी मेट स्पेशल हवाई जहाज में उड़कर आया है—परिवार सहित।

जीवन-भर पेशकारी का पेशा करके दिग्विजय बाबू का 'कर्म' में दृढ़ विश्वास जम गया है। इसलिए बुद्धि भी बलवती हो गयी है। पर हाकिम-दुक्काम का नाम सुनते ही वे तुरंत प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। अदालत और फौजदारी के हाकिमों के बारे में मुना तो सोच में पड़ गये। फिर बोले, "भेरी तो कुडली ही नहीं।" पत्नी बोली, "तो क्या हुआ? किमी फूल का नाम लेते ही कुडली बना देते हैं, मुना है।" "लेकिन मैं धर्मशाला में जाकर अपना भविष्य नहीं देखना चाहता।" दिगो बाबू ने एतराज किया।

"डबल फीम लेकर घर पर भी जात है ज्योतिषीजी।"

अंततः तय हुआ कि श्रीहर्ष डबल फीम लेकर जायेगा और फिटन पर ज्योतिषीजी को सादर लिवा लायेगा।

सभी को अपार हर्ष हुआ...घर के 'कर्ता' के भविष्य के साथ ही सभी की किस्मत 'नत्थी' है। '...मालिक राजी हो गये, यही बड़ी बात है।

ज्योतिषीजी को फिटन लेकर श्रीहर्ष बुलाने गया। श्रीमती धर्मशीला ने अपने पति को मलाह दी, "जब डबल फीम दिया गया है तो बातें भी 'डबल' करके पूछ लीजियेगा।"

"डबल करके माने?"

"मतलब, अपने अलावा घर के और लोगों के बारे में खुलासा पूछ लीजियेगा।"

ज्योतिषीजी आये। जटा-दाढ़ी और त्रिपुड-भभूतवाने ज्योतिषियों को लोगो ने देखा है। मूट-बूटवाने इम ज्योतिषी को देखने ही लोगो को अपने-अपने भविष्य की हल्की झलक मिल गयी, मानो... यह आदमी जरूर जादू जानता है।

डॉक्टरों की तरह एक हाथ में बैग और कंट्राक्टर की तरह दूसरे हाथ में एक बड़ा पोर्टफोलियो बैग लटकाकर फिटन में ज्योतिषीजी उतरे। दिगो बाबू को

देखते ही उन्होंने अपनी पहली ही बाणी से बिस्मित और अग्रतिभ कर दिया। बोले, “मैं विशुद्ध-वैज्ञानिक ढंग से गणना करता हूँ। इसलिए मेग्निफाइंग ग्लास के बलावा स्टेक्सोप, ब्लडप्रेसर-ऑपरेटम और थर्मामीटर भी रखता हूँ। ज्योमिटिक-फोष्टक-अंकन और अंशादि के मही माप के लिए इंस्ट्रूमेंट-बॉक्स, विभिन्न राज्य एवं जिलों के नक्शे रखना आवश्यक हो जाता है।”

दिगो बाबू की ‘शांति-कुटी’ के निवासियों ने मन-ही-मन जय-जयकार किया। किंतु तब तक दिगो बाबू ने एक नयी शर्त लगा दी। वे एकदम एकांत में अपने भविष्य की गणना करवायेगे।

दिगो बाबू के कमरे का दरवाजा बंद हुआ। सभी ने एक साथ अपने-अपने ललाटों पर एक अद्भुत गुदगुदी का अनुभव किया। सभी की हथेली एक साथ ‘कपाल’ पर पहुँची। “जै भगवान् !

पूरे तीन घंटे के बाद ज्योतिषीजी हँमते हुए कमरे से बाहर निकले। दिगो बाबू के उत्कृष्ट मुखमंडल में सभी को अपना-अपना भविष्य उज्ज्वल दिखायी पड़ा। अतः श्रीहर्ष दूने उत्साह में ज्योतिषीजी के साथ फिटन पर जा बैठा।

सबसे पहले श्रीमती धर्मशीला ने पूछा, “भगवान् की दया से सब-कुछ सही ही बताया होगा। है या नहीं?” “अरे मारो गोली। ठग है सब।” “क्यों? कुछ ‘ऐसी-वैसी’ बातें हाँक गया?”

“अरे, हाँकेगा क्या? नक्शा और थर्मामीटर से भविष्य देखनेवाला इतना चतुर तो होगा ही कि न्यू पटेलपुरी में इतनी बड़ी कोठी बनवानेवाला, पेंशनयाफता आदमी—जिमका बड़ा बेटा हाकिम हो और छोटा स्वस्थ, सद्दर और बेवकूफ, जिसकी पत्नी का नाम धर्मशीला।”

श्रीमती धर्मशीला अपने प्रोठ पति की इस बचकानी मुद्रा को देखकर बहुत दिनों बाद पुलकित हुई। “गचमुच निकालदर्शी हैं न?

श्रीहर्ष ने लौटकर अपनी माता से अपने पिता के भविष्य के बारे में पूछा।

“अरे, वे तो कहते हैं कि मुप्त में पैतीम रुपये...”

“मुप्त में? कुछ बतलाया नहीं?”

“कहते हैं, ठग है सब।”

“हूँ! ...तुम एक बार मौका देखकर फिर पूछोगी? क्योंकि ज्योतिषीजी की बात से ऐसा लगा कि कही कुछ ‘गड़बड़’ है भविष्य में—।”

“गड़बड़ है?” श्रीमती धर्मशीला के निर्मल चेहरे पर आनक की छाया फैल गयी, “क्या कहा उन्होंने?”

“माँ, पाँच रुपये धूम, या प्रणामी जो भी कहें, लेकर भी कुछ खूनासा नहीं बतलाया। बोने कि मनुष्य का भविष्य अंधकार और प्रकाश में मिलकर बनता है। मो, अंधकार और प्रकाश के कुप्रभाव में बचने के उपाय भी हैं...”

श्रीमती धर्मशीला और श्रीहर्ष ने ज्योतिषीजी के इस 'पंचटंकिया' वचन बूढ़ाई को समझकर एक ही निष्कर्ष निकाला—निश्चय ही कहीं कुछ गड़बड़ी है भविष्य में, जिसको सुधारने का उपाय भी उन्होंने बतलाया होगा। और संभवतः वह उपाय मईगा है, इसलिए 'गृहकर्ता' की ऐसी प्रतिक्रिया....।"

माता और पुत्र को समान रूप से भयभीत और उबास देखकर रामटहल ने भी मुंह लटका लिया। उमने बारी-बारी से 'माता और पुत्र' की ओर आँख में एक ही सवाल डालकर देखा। फिर धीमे स्वर में पूछा, "अच्छा, छोटे भैया ! 'आमरित' का क्या मतलब होता है ? आसरित ?"

"आमरित या आसरहित ?"

रामटहल ने सही शब्द को जीभ पर चढ़ाने की यथासाध्य चेष्टा करके कहा, "आमरीत !" रामटहल ने इधर-उधर देखकर कहा कि वह ज्योतिषीजी को चाय और पान देने के लिए कमरे में गया था तो ज्योतिषी मालिक से कह रहे थे कि उनको अष्टग्रह का कोई डर नहीं। सुख-चैन ही मिलेगा। लेकिन संकट है आमरीत लोगों के मिर !

"ओ ! आश्रित ?"

श्रीहर्ष ने विशाल शब्दकोश निकालकर धूल झाड़ते हुए शब्दांश ढूँढ़ना शुरू किया। श्रीमती धर्मशीला ईस्ट नाम का जाप करने लगी और रामटहल की आँखें गोल होती गयीं।

पाँच मिनट के अधिक तथा निःशब्द परिश्रम के बाद श्रीहर्ष को सफलता मिली, "हाँ। आश्रित ?...आश्रित...सं०—ब्रेकेट में, किसी के सहारे...फिर... ठहरा, टिका हुआ...पुं०—वह जो भरण-पोषण के लिए किसी पर अवलंबित हो, स्त्री०—बच्चे, नौकर-चाकर, मन और ज्ञानेंद्रिय....।"

ऐसा लगा, तीनों के बीच एक हथगोला आकर गिर पड़ा और जोरों का धड़ाका हुआ। जब तीनों को होश हुआ तो देखा कि हथगोला नहीं, श्रीहर्ष के हाथ में विशाल शब्दकोश छूटकर गिरा था...अब क्या हो ? आश्रित का अर्थ—स्त्री-बच्चे-नौकर ?...इस लपेट से न रामटहल बचकर निकल सकता है और न महाराज ?...दुहाय बाबा नरसिंह !

भयातुर आश्रितों ने अंतिम चेष्टा करके यह पता लगा लेना आवश्यक समझा कि आश्रितों के भीषण संकट के प्रतिकार के लिए गृहस्वामी ने कुछ किया है अथवा नहीं ?

दोपहर का, भोजन के समय श्रीमती धर्मशीला आज प्रेमपूर्वक पंखा लेकर बैठी। पान के मुँह में प्रथम ग्राम पहुँचा तो श्रीमती धर्मशीला ने अपने मुँह की बात निकाली, "यदि भविष्यफल में कोई गड़बड़ी हो तो उसका उपाय भी बतलाया होगा ? अपने अलावा अपने आ-आ-आ-स-र....।"

दिगो बाबू तिलमिला उठे, “महाराज ने आज यह...किस चीज की मन्जी है...यह तो जहर है...इतनी मिर्च...दिन-रात भविष्यफल जानने के लिए पागल रहती हो, मगर एक बार रसोईघर में झाँककर नहीं देखती कि आज क्या...ओहो...मार डाला...”

दिगो बाबू न भोजन कर सके, न क्रोध। चुपचाप सिमकारी लेते हुए कुल्ली-आचमन करने लगे।

चाय के समय भी ‘चेष्टा’ करने की चेष्टा विफल हुई, हालाँकि चाय में मिर्च या नमक नहीं, चीनी पड़ी थी।

श्रीहर्ष ने रात्रि के भोजन के पहले इस संकट से उबरने का एक ‘साइंटिफिक उपाय’ ढूँढ़ निकाला। और कोई चारा नहीं। शांति-कुटी के आश्रितों के समक्ष अपनी गुप्त योजना रखते हुए उसने खामती से अपनी माँ को समझाया, “यह तब है कि बाबूजी हम लोगों को संकट से उबारने के लिए कुछ नहीं करेंगे। हम उन्हें स्वार्थी नहीं कहते। किंतु वे निर्दय अवश्य हैं। उपाय क्या करना होगा, यह भी नहीं बतलाते। ऐसी अवस्था में अपनी बुद्धि से निकले हुए उपाय के द्वारा ही प्रतिकार कर सकते हैं हम। बाबूजी हर हालत में सुख-चैन से ही रहेंगे। उन पर कोई खतरा नहीं। संकट उनके आश्रितों के सिर है। हम हर हालत में उनके आश्रित ही रहेंगे। रहना पड़ेगा हमें—हमारी मजबूरी है। ऐसी अवस्था में ‘साँप भी मरे और लाठी न टूटे’—जैसा कोई वैज्ञानिक तरीका अख्तियार करना होगा। यदि सभी सहमत हों...”

सर्वसम्मति से संतुष्ट आश्रितों ने तय किया कि वे आत्मरक्षार्थ गृहस्वामी का ‘अहिंस विरोध’ करेंगे, अर्थात् बचाव के लिए विरोध। वे आश्रित रहते हुए भी आश्रित न रहने का भाव दिखलायेंगे। चूँकि गृहस्वामी हर हालत में चैन से ही रहेंगे, उनका कुछ नहीं बिगड़ेगा।...

इसके बाद श्रीहर्ष ने विस्तारपूर्वक अपने ‘लाइन ऑफ एक्शन’ का ‘डायरेक्ट एक्शन’ बतलाया।

तय हुआ कि कल सुबह पहले रामटहल को ही बगावत का झंडा फहराना होगा, क्योंकि वही पहला आश्रित है, जिसका नाम लेकर गृहस्वामी सुबह में पहले पुकारते हैं। श्रीमती धर्मशीला की शंकाओं का समाधान और निवारण करते हुए श्रीहर्ष ने कहा, “चाय उन्हें जरूर मिलेगी लेकिन देर से मिलेगी। उन्हें कष्ट देने के लिए नहीं, अपने को कष्टमुक्त करने के लिए हम विरोध करेंगे।...विरोध शुरू करने के पहले सभी अपने-अपने कलेजे को टटोल लें।”

रामटहल को कलेजा नहीं टटोलना पड़ा।

सुबह को पहली पुकार पर उसके मुँह से पहला जवाब निकल ही रहा था कि उसने कमकर दाँतों का ब्रेक लगा दिया जीभ पर।...पच्चीस साल की

श्रीहर्ष ने विरोध के लिए, तेमे ही गीतों के रेकार्ड, नंगी तस्वीरोंवाली तथा-
कथित स्वास्थ्यपूर्ण किताबें, खुलेआम धूम्रपान और चंद आबारा दोस्तों के साथ
ताश खेलने का कार्यक्रम बनाया। उसने सभी आश्रितों के लिए अलग-अलग
'एक्शन' तय करके समझा दिया था।

श्रीहर्ष ने माँ को याद दिलाकर कहा था, "गलती से पैर छूकर प्रणाम मत
कर बैठना। भक्ति और पूजा, बाबूजी की तस्वीर की करो। हर्ष नहीं। लेकिन
बाबूजी के साथ बुरा बर्ताव करके ही सकट को टाल सकती।"

तीन दिन तक, दिन-रात सभी आश्रितों ने ईमानदारी और दृढ़ता से अपना
विरोध जारी रखा। गृहस्थामी को चिढ़ाने के लिए नित नये उपाय सोच गये,
प्रयुक्त हुए। मगर दिगो बाबू ने मोनग्रन धारण करके 'गीता रहस्य' में अपने को
इस तरह डाल दिया कि 'मन-स्वच' ऑफ कर देने और जोर से रेडियो खोलने
पर भी उससे बाहर नहीं निकले। 'रामटहल' ने गदा लँगोट पमारकर उनकी
क्रोधाग्नि को पुनः-पुनः भड़काने की चेष्टा की, किंतु व्यर्थ।

श्रीमती भवानी को अपने देवता-तुल्य ममुर की सेवा करने का सुअवसर अब
तक नहीं मिला था। श्रीमती धर्मशीला किसी कारणवश अपनी पुत्रवधू पर मन-
ही-मन अप्रसन्न रहती थी। इसलिए पति के सामने यदा-कदा तथा कभी-कभी
मवंश उसकी बुराई ही करती थी।

इम बार श्रीमती भवानी ने अपने गुणों से दिग्विजय बाबू को दो दिन में ही
मुग्ध कर लिया। उनके मन से 'पुत्रहीन' होने का एकमात्र दुःख हमेशा के लिए
दूर हो गया।

उम दिन श्रीपार्थ ने फंमला मुनाने के लहजे में अपने पिता के सभी बिटोही
आश्रितों को मुना दिया—"अब तुम लोग पिताजी के आश्रित नहीं रहे। अब
किसां सकट की आशंका नहीं। पिताजी अब मेरे आश्रित होकर दुर्गापुर में रहेंगे,
क्योंकि ज्योतिषी ने यह भी बतलाया है कि अब उन्हें किमी के आश्रय में रहना
चाहिए।"

श्रीपार्थ ने अपनी माना को 'सोशल वर्क' करने, श्रीहर्ष को 'घरेलू नौकरों
की यूनियन' बनाने, रामटहल को मूंगफनी बेचने तथा महाराज को गंगाजी के
घाट पर भिक्षाटन करने की उचिन और लाभदायक मलाह देकर, श्रीमती भवानी
को दुर्गापुर लौटने की नैयारी तुरंत करने का आदेश दिया।

दिग्विजय बाबू बाबू की तरह प्रमन्न और उत्साहित होकर अपना सामान
मट्टेज गृहे थे कि आगन में चोलाहल मुनायी पड़ा। श्रीमती धर्मशीला क्रोध से
कांपती हुई महाराज से पूछ गई थी, "बोलो! तुम जानबूझकर यह सब कर रहे

ये ? आखिर क्यों ? हम लोगों का मुख तुमसे देखा नहीं जाता था : ...ऐसे में सारे परिवार के लोग पागल नहीं होंगे भला ?”

श्रीपार्थ ने यात्रा के समय इस कलह का कारण जानना चाहा । श्रीमती धर्मशीला बोली, “बेटा, तुम हाकिम हो । तुम्हीं इस बात का इंसाफ करो । इस बार तुम्हारे बाबूजी ने गाँव से ‘पाट-साग’ का बीज मँगवाया था । महाराज ने बोते समय चुटकी-भर भंग का बीज मिला दिया था । पिछले पाँच-सात दिनों से नौकरानी भंग के पौधों सहित साग ले आती थी और महाराज आँख मूँदकर कड़ाही में डाल देता । ...ऐसे में घर-भर के लोग पागल क्यों नहीं होंगे ?”

रामटहल ने कहा, “अब ममजा कि मेरा माथा हमेशा क्यों उस तरह चकराता था ।”

श्रीहृषं बोला “रामटहल, अभी तुरंत आबकारी पुलिस को बुला लाओ ।”

महाराज हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगा, “मालिक—बड़े भैया—छोटे भैया—मालकिन—इस बार माफ कर दीजिए । ‘भविष्य’ में कभी ऐसी गलती नहीं होगी । दुहाई...।”

‘संकट’ का सही कारण दूँड निकालने के बाद श्रीमती धर्मशीला एक बिसास ठंडा पानी लेकर अपने पति के कमरे में चली गयी ।

अभिनय

छदा ने जिस दिन घर-भर के लोगो के छप्पर-फोड़ ठहाके के बीच मुझे 'दादू' कहकर संबोधित किया, मैं थोड़ा अप्रतिभ हुआ था। मेरे (अकाल) परिपक्व केश के कारण ही छंदा (जिमकी माँ मुझे देवर मानती है और जिमकी दादी मेरा नाम लेकर पुकारती है) ने मुझे 'दादू' यानी 'बाबा' कहा था। मुझे 'केशव-केशन' की याद आयी थी और मैं मद-मंद सुर में दोहा पढ़ने लगा था।

उसने पहले छदा की दादी (जिसे मैं जेड़ी माँ अर्थात् बड़ी चाची कहता हूँ) ने 'दोहा' का अर्थ पूछा था। और मजबूत सम्झकर छदा की छोटी चाची (जो अनाथालय गुरही है) ने मुझे डाढ़म वंभाण था, "किंतु" बापका माने हम लोगो का दादू लोग खूब मौज में रहता है। जानत है न?"

छदा की सदा लोमार घाँ के पीने मुखड़े पर भी हँसी की रत्ना फूटी थी, "दादू को लोरी में खुदकर दिखानी चलनी है। खूब फस्टीनस्टी"।"

छदा की छोटी चाची ने आँवों को मचाने हुए कहा था, "अब आप भी छदा को 'गिन्नी' लोव के अम्पि। गिन्नी का मान बूझत है? गून्गिणी।"

और, हम बान पर फिर एक बार साप्ताहिक ठहाका लगा था।

मना की, छोटी चाची (जो राजापुर का नाम मुनत ही भारतीय-म की तरह चल जाती है।) क्या करने का हक जानती है। (मैंने एक निदा पड़ोगी मरी तिला करण समय लोगो में कहते हैं कि छदा की छोटी चाची से बाने करने के लिए मैं अपना न कौबुल लीव ले लिया करता हूँ।) वह मामनेवाली कुर्मी पर आकर बैठ बसी और दुनिया-भर के दादुआ की कीर्ति-कथा सुनाने लगी, "कोलकाता में हमारा भी एक ऐसा ही दादू था..."

"ऐसा ही माफिक माने?"

"आप ही माफिक। पातानो दादू।"

"पातानो दादू?"

"मुहबोला दादू।"

छंदा का छोटा भाई संतू, जो अब तक चुप था, बोल उठा, "तब ठाकुरी (दादी) से काका बाबू का...कौन...संबंध..."

बेचारा अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि हँसी का हल्कड़ा शुरू हुआ। और सबसे ऊपर छंदा की मगूरकठी हँसी। हँसी नहीं, पिहकारी। सारे गोल मार्केट में उसकी हँसी कुछ देर तक मँडराती रहती है। पाम-पड़ोस के लोगों ने छंदा के फ्लैट को, इसी उन्मुक्त हँसी के कारण 'नाइट क्लब' का नाम दे दिया है।

उस रात को (छंदा का दादू बनकर) लौटते समय बत्तीस नंबर के (सीधा-सादा दीखनेवाला नंबर एक शैतान) सज्जन ने कपट-नम्रता से पूछा था, "क्यों अरुण बाबू! पच्चीस नंबर में किसी डिरामा-उरामा का रिहलसल-उहलसल चल रहा है क्या?"

मैंने कहा था, "जी हाँ।"

बत्तीस नंबर मुँह बा कर मुझे थोड़ी देर तक देखता रहा था। फिर पूछा था, "कौन नाटक?"

"दादू 'परित'।"

छंदा रेलवे-कंट्राक्टर बी० घोष की बड़ी बेटी है। माँवरी-मुदरी और चंचल लड़की है। नाचती है, गाती है, अभिनय करती है। सौभाग्यवश, अब तक कुमारी है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि किसी कंट्राक्टर की संतान विवाह के मामले में और प्रेम के व्यापार में धोखा नहीं खा सकती। दुधमुँही बच्ची जैसी भोली-भाली छंदा 'लोलिता' पड़ चुकी है। मेरे जैसे अनेक मूढ़ लोगों को नचा चुकी है। फिर भी, सब-कुछ जानते हुए भी लोग उसकी मोठी बोली सुनकर भ्रम में पड़ जाते हैं।

मैं सोचने लगा, इतने दिनों के बाद आखिर छंदा ने मुझसे यह नया रिश्ता क्यों जोड़ा? दादू और पोती में खुल्लमखुली दिल्लगी चलती है। ...मेरे मुँह से 'गिल्ली' संबोधन सुनने के लिए अथवा...अथवा...?

यों मुँहबोले काका की हैसियत से भी मैं छंदा से हल्की-फुल्की दिल्लगी किया करता था। छंदा के राही-प्रेमी (रिक्शे के पीछे साइकिल भगाकर 'होगा कि नहीं' पूछनेवाले) के बारे में पूछता था। जिस लड़के के बाप ने छंदा की तस्वीर मँगवायी है, उसकी मूँछों की ऐठन देखकर डरेगी तो नहीं छंदा?...यह गीत और नाच किस काम आयेगा...सुहाग की रात में घुंघरू बाँधकर नाचेगी छंदा? आदि-आदि।

फिर, इस नये रिश्ते की क्या जरूरत थी? छंदा के (बाप के) बैठक में जिस सोफा पर मैं पहली बार बैठा था, उम्मीद पर आज तक बैठता आया हूँ। कल भी उसी सोफे पर बैटूंगा। लेकिन छंदा मुझे दादू कहेगी।

दूसरे दिन प्लेट में पैर रखने ही छदा ने स्वागत किया, “कि बूड़ो ?...क्यों बुड़े, दाँत में दर्द-वर्द तो नहीं ? आज चने की घुंघनी बनी है।”

मैं हठात् अंधे हो गया। मुझे लगा, मेरे चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी है और दमे से परेशान हूँ, कि गठिया के मारे मेरे घुटनों में रात-भर दर्द था, मगर किसी ने गरम पानी का थैला नहीं दिया। मैंने कराहते हुए जवाब दिया, “दर्द की क्या पूछती हो गिन्नी। कहाँ नहीं दर्द है ?”

छदा की छोटी चाची देर से आयी, मगर दुरुस्त होकर आयी। बोली, “किंतु दाढ़ होने में खतग भी है।”

“कैसा खतरा ?”

“लड़कियों के नाबालिग प्रेमी लोग दादुओं से बहुत नाराज रहते हैं। हाथ में छड़ी लेकर मुवह-गान पोती-नतनी की खवाली करनेवाली दादुओं को बेफूटी नजर भी नहीं देखना चाहते। अतएव, हमेशा होशियार रहियेगा।”

उधर छदा के छोटे भाई ने गाना शुरू कर दिया था—“मैं का कलू लाम मुझे बुढ़ा मिल गया...”।”

तीसरे दिन मानूम हुआ कि धनवाद से एक कोयला खदान के मालिक का बड़ा बेटा छदा को देखन आ रहा है। मैंने कहा, “गिन्नी ? आखिर इस काला हीरा की ही गले में डालेगी ?”

छदा लजानेवाली लड़की नहीं। बोली, “सुनती है काकी ! मारे डाह के जल-भुनकर भुर्ना हुआ जा रहा है बुड़ा !”

मैं एक लंबी गाय लेकर उदाम हो गया।

छदा की छोटी चाची चाय लेकर आयी (आज तक चाय लाने का काम किसी और ने नहीं किया) और बोली “छदा ने आपके लिए...”।”

तब तक छदा हाथ में एक माप्ताहिक पत्रिका लेकर मेरे पास आ गयी। बोली, “आज ही कांड लिखकर बी० पी० मंगा लो दादू। बढ़कर देखो, लिखा है, केश काले न हो तो दाम बागम।”

मैंने तत्परता से कहा, “दया करके इसकी कटिंग मुझे दे दो।...” हाय ! दुनिया में हमदर्दों की कमी नहीं।...क्या लिखा है ? जवानी में बुढ़ापा क्यों भोग रहे हैं ? “वाह ! आज ही लिख देता हूँ। काला हीरा में मुकाबला है, खेल नहीं।”

लगातार चार महीने तक दादू की भूमिका अदा करने के बावजूद, मुझसे गलती ही हो जाती। तब, छदा की छोटी चाची अथवा माँ या दादो मुझे टोककर सुधारती—“एमा नहीं, इस तरह...”।”

किंतु, छदा कभी कोई गलती नहीं करती। आधा दर्जन नाती-पोतीवाली बूढ़ी की तरह वह बालनी-बनियाती। मेरी गलतियों (बेवकूफियों) पर ताने देती

हुई कहती, "तुम्हारे मन में भी भारी-जवान चोर है बुद्धे !"

एक दिन छंदा ने मुझसे धीमे स्वर में कहा, "दादू, तुमने कुछ मार्क किया है ? तुम्हारे आते ही दादी सिर पर कपड़ा सरका लेती है ।"

"सचमुच ?"

छंदा की छोटी चाची दांतों-तले जीभ दबाकर हँसी । फिर, फिसफिमाकर बोली, "हाँ, कल कह रही थी कि बेचारे अरुण को छंदा बहुत दिक् करती है । और छंदा ने तुरत उलटा जवाब दिया—तो, तुम अपने बूढ़े को सँभालती क्यों नहीं ।" इस पर मैं हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयीं ।"

मैंने छंदा से पूछा, "क्यों बूढ़ी ! मुझे धकेल रही हो ?"

छंदा हँसती रही । बोली, "और, इधर दादी आपसे बहुत कम बातें करती है, यह आपने लक्ष्य किया है ? आते ही अचानक गंभीर हो जाती है ।"

छंदा की दादी ने पूजा-घर से ही कहा, "छंदा, पूछो तो, आश्रम में इस बार पूजा होगी या नहीं ?"

"तू लाज से गड़ी क्यों जा रही है ?"

"अब गार खायेगी तू, ही ।"

"...चिढ़ी है ।...बात सगी है ?" छंदा टेबुल पीटकर हँसने लगी ।

तो, छंदा ने मेरे मुँह से 'गिन्नी' सुनने के लिए नहीं, मुझसे एक 'मधुर संबंध' के लिए नहीं, अपनी दादी को चिढ़ाने के लिए ही मुझे दादू कहना शुरू किया है ? अब तो स्पष्ट शब्दों में वह अपनी दादी की भारी-भरकम देह और मेरी दुबली-पतली काया की जोड़ी लगा देती है । उस दिन एक व्यंग्य-चित्र दिखलाकर बोली, "आप लोगों की युगल-जोड़ी..."

छंदा की दादी विधवा है । मांस-मछली नहीं खाती । पान का नशा है—मगर मुँह में दाँत नहीं । इसलिए पान के बीड़े को कूटकर खाती है । छंदा ने मुझसे एक दिन यह कर्म भी करवाया और उसकी दादी हँसती रही ।

उठते समय, उस दिन फिर हो-हुस्ला शुरू हुआ । छंदा की माँ से उसकी दादी ने चुपके से कहा कि अरुण को कल रात यहीं खाने को कहो... छंदा ने सुना और से उड़ी, "सिर्फ खाने का निमंत्रण ?"

छंदा की दादी के हाथ में जादू है, सुन रखा था । अचानक निमंत्रण पाकर मैंने पूछा, "लेकिन मांस-मछली तो..."

छंदा बोली, "आपके लिए सब नियम-कानून तोड़ सकती है—मांस-मछली छूने की क्या बात ?"

दूसरे दिन, सुबह ही सत्तू एक लिखित निमंत्रण-पत्र दे गया—'एक बार

आकर देख जाइए कि आपकी 'मोटकी' दिगंबरी रसोईघर में किस तरह पसीने से नहा गयी है। "इसी को कहते हैं प-रे-म।"

मैं नहीं गया। शाम को भी अपने समय पर नहीं गया। तय किया, ठीक भोजन के समय जाऊंगा।

शाम को मैदान का एक चक्कर लगाकर लौट रहा था। हुयुआ मार्केट के सामने आते ही पान खाने को मन सलब पड़ा।

जाफरानी पत्नी मुंह में घुलाते हुए मैंने पूछा, "यह कैसी पत्नी है?"

"बाबूजी, वाराणसी पत्नी है। आपने तो पान छोड़ ही दिया।" बिश्वनाथ ने कहा।

"क्या कीमत है?"

"छाई रुपये।"

पाँकेट टटोलकर देखा, पचास पैसे कम पड़ेंगे। बिश्वनाथ ने कहा, "कोई बात नहीं।"

मैं जानबूझकर ही देर से छंदा के पसैंट गया। सुना, दादी निराश होकर सो गयी हैं। निराश ही नहीं, नाराज होकर भी।

छंदा बोली, "बाबा! अब मैं कुछ नहीं बोलूंगी। दादी का कहना है कि मेरे ही कारण, आप..."

मेरी बोली सुनकर छंदा की दादी कपड़े सँभालती हुई आयी। मैंने देरी के लिए एक झूठी सफाई दी। वह बोली, "सभी चीजें ठंडी हो गयी होंगी।"

छंदा कुछ कहना चाहती थी। किंतु हाथों से मुंह ढँककर अंदर चली गयी। छंदा की छोटी चाची रसोईघर की ओर गयी। छंदा की दादी बंटी, "मुंह-हाथ धो चुके हो?"

मैंने पाँकेट से जर्दा की डिबिया निकालकर बूढ़ी की ओर बढ़ायी।

वह मद्धिम अवाज में बोली, "की जिनिस?"

"वाराणसी जाफरानी जर्दा।"

बूढ़ी ने डिबिया को खोलकर सूँघा। मुस्कराकर चुपचाप आँगल में बाँधने लगी, "क्या जरूरत थी? कितना दाम लिया?"

"अच्छी चीज है।" मैंने कहा।

"गंध तो बहुत अच्छी है।" बूढ़ी ने आँगल को एक बार सूँघकर छिपा लिया।

कि अचानक छंदा, सतू और छंदा की चाची ने एक साथ कमरे में प्रवेश किया। छंदा ने पूछा, "क्यों? क्या घुसुर-फुसुर हो रहा है?"

सतू बोला, "की मिष्ठी गंध?"

"यह खुशबू कैसी है बुढ़े?" छंदा ने मुझसे पूछा।

मैंने छंदा की दादी की ओर देखा । लाज के मारे बूढ़ी का चेहरा लाल हो गया था ।

“क्यों दादी ? आँचल में क्या छिपाया...देखूँ...यह...क्या...?”

“कुछ नहीं...जर्दा...।”

“किसने दिया ?”

अब मेरी देह काँपने लगी । कान गर्म हो गये । लाज से मेरी आँखें झुक गयीं और पञ्चीस नंबर फ्लैट में एक बार फिर छप्पर-फोड़ ठहाका गूँजा ।

छंदा की छोटी चाची ने कहा, “ठाकुरपो (देबरजी) आज एकदम सही... ओके...। जरा भी गलती नहीं की आपने ।...ठीक, दादू । हू-ब-हू!”

छंदा डाँट रही थी दादी को, “ऐं ? तुम डूब-डूबकर पानी पीती थी बूढ़ी ?” संतू बोला, “सिकिंग-सिकिंग-ड्रिकिंग वाटर...?”

विघटन के क्षण

रानीडिह की ऊंची जमीन पर—लाल माटीवाले खेत में—अक्षत-सिंदूर बिखरे हुए हैं—हजारों गौरैया-मैना सूरज की पहली किरण फूटने के पहले ही खेत के बीच में 'कनर-पचर' कर रही हैं। बीती हुई रात के तीसरे पहर तक, जहाँ सारे रानीडिह गाँव की कुमारी-कन्याएँ कचर-पचर नृत्य-गीत-अभिनय कर चुकी हैं।

रात में शामा-चकेवा 'भँसाया' गया है...प्रतिमा-विसर्जन !

श्यामा, चकवा, खजन, बटेर, चाहा, पनकौआ, हाँस, बनहाँस, अदंगा, लाल-सर, पनकीड़ी, जलपरेवा से लेकर कीट-पतंगों में भुनगा, भेम्हा, अँखफोड़वा, गंधी, गोबरला तक की मिट्टी की छोटी-छोटी नन्ही-नन्ही मूर्तियाँ गढ़ी गयी थीं, रंगी गयी थीं। दो रात तक उन्हें ढेलेवाले खेतों में चराया गया अर्थात् उनकी पूजा की गयी। रात को विसर्जन !

बिरनाबन (बूँदापत्र ?) जले हैं—सैकड़ों। हजारों चुगलों के पुतले ! पुतलों की शिखाएँ जली हैं—घर-घरों में तू झगड़ा लगावे, बाप-बेटा से रगड़ा करावे; सब दिन पानी में आगि लगावे, बिनु कारन सब दिन छुछुवावे—तोर 'टिकी' में आगि लगायब रे चुगला...छुछुदरमुँहे...मुँहमोसे...चुगले...हाहाहाहा !

सैकड़ों लड़कियों की खिलखिलाहट ! तालियाँ !

सारे झरे, पायल झनके। हुस्नहिना के गुच्छों ने लंबी साँस ली। रात भीग गयी...

घरती पर बिखरे अक्षत-सिंदूर। दूबों पर बिखरे मोती के दाने।...छोटे-छोटे इन्द्रधनुषों के टुकड़े !

...अचानक, एक चील ने डेंना फड़फड़ाया। सभी चिरैयाँ एक साथ भड़क-कर उड़ीं। गौरैयाँ की विशाल टोली मरसों के खेत में जा बैठी।

बहुत दिनों के बाद—कोई पाँच बरस के बाद—धूमधाम से 'शामा-चकेवा' पर्व मनाया है रानीडिह की कुमारियों ने।

एक चदरी-भर मरदी पड़ गयी। अगहनी धान के खेतों में अब हलकी जाली

दीड़ गयी है अर्थात् अब दानों में दूध सूख रहा है। आलू के पौधों में पत्तियाँ लग गयी हैं। सुबह-सुबह गोभी की सिचाई कर रहे हैं, सभी।

“बिजैयादि ! तू इतना सबेरे ‘कोबी’ जो पटाती हो, सो बेकार ही ना ? तू तो अब पटना में रहेगी...”

“चुप हरजाई !” गंगापुरवाली दादी ने चिढ़कर चुरमुनियाँ को झिड़की दी, “दिन-भर बेबात की बात बकबक करती रहती है यह रत्ती-भर की छाँड़ी।”

चुरमुनियाँ, रत्ती-भर की छोकरी चुप नहीं रही। आँखें नचाकर, ओठों को बिदकाकर बोली, “दूँह ! तोरे तो मजा है। कोबी रोपकर पटा रही है बिजैयादि और टोकरी भर-भरके फूल बेचेगी तू। और जब हिसाब पूछेगी पटना से आकर मलकिन-काकी तो...तो...ई ऊँगली तोड़ना, ऊ ऊँगली मोड़ना, मगर भूलल हिसाब कभी न जोड़ना...हिहिहिहि...!”

दादी ने इस बार एक गंदी गाली दी। गाली सुनकर चुरमुनियाँ ने विजया की ओर देखा। विजया शुरू से ही मुस्करा रही थी। इस काली-कलूटी लड़की की मीठी शंतानी को वह खूब समझती है। जहर, है यह छोकरी ! लछमन की पोती !

गंगापुरवाली दादी को चुरमुनियाँ की बात लगी नहीं, किंतु वह नकियाकर कुछ बोली। चुरमुनियाँ ने समझ लिया। बोली, “क्यों दादी, मैं झूठ कहती हूँ ? बेचारी गंगापुरवाली दादी, जो गंडा से आगे गिनती न जाने, उससे मलकिन-काकी पूछेगी, ‘पाँच टके सैंकड़ा के दर से डेढ़ सौ बीजू आम का दाम ?’ हे-हे-ए—हा-हा-हा बम; दादी को तो ‘आकाशी’ लग गयी—ही-ही-ही-ही !”

विजया बोली, “जल्दी-जल्दी हौज भर दे।”

आठ-नौ साल की इस लड़की से पार पाना खेल नहीं। विजया को छोड़कर उससे और कोई काम नहीं ले सकता, उसकी माँ भी नहीं। बाप को तो वह बोलने ही नहीं देती कुछ।

जब से विजया रानीडिह आयी है, चुरमुनियाँ दिन-रात ‘बड़घरिया’ हवेली में ही रहती है।

कल चुरमुनियाँ कह रही थी, “बिजैयादि, तू आयी है तो लगता है रानीडिह गाँव में कोई ‘परब-त्योहार’...माने...ठीक देवी-दुर्गा के मेला के समय जैसा लगता है वैसा ही लगता है। अब तो तुम भी ठीक ‘खरगेंट’ (खंजन) चिरैया की तरह साल में एक बार आओगी, जैसे मलकिन-काकी आती है।...अब तुम भी शहर में जाकर ‘चोंचवाली अँगिया’ पहनोगी।”

“लात खायेगी अब तू।” दादी ने साग खाँटते चेतावनी दी, “है तनिक भी बड़े-छोटे का लिहाज इस छिनाल को ?”

दादी बीच-बीच में बाल पकड़कर घसीटती-पीटती भी है, और उस दिन सारे

गाँव में कुहराम मच जाना है; चुरमुनियाँ किसी राख के घूरे में लोट-लोटकर एकदम 'भूतनी' हो जाती है और उसके मुँह से छंदबद्ध पंक्तियाँ—'रुदनगीत' की—अनायास ही निकलती रहती हैं, "री-ई-ई बुढ़िया गंगपरनी, बड़घरिया की घरनी, हमरो सौतिनी-ई-ई-बिना रे करनवा हमरा मारलि गे-ए-बुढ़िया गंगपरनी-ई-ई।" लड़की तो नहीं, एक 'अवतार' है, समझो।

गंगापुरवाली दादी की मुस्कराहट पोपले मुँह पर देखने योग्य होती है। हँसती हुई कहती है, "जानती है बिजै, भागलपुरवाली को इस निगोड़ी ने कैसा 'बेपानी' किया था?"

गंगापुरवाली दादी ने मद्धिम आवाज में कहा, "भागलपुरवाली उस बार आयी भादों में। एक दिन 'बक्कस' से कपड़ा निकालकर धूप में सुखाने को दिया। कपड़ों को पसारते समय यह 'लॉंगी-मिर्च-छोड़ी' अचानक चिल्लाने लगी—ले ले लाला...जर्मनवाला...रबड़वाला...गेंदवाला...चोंचवाला...। मैंने झाँककर देखा, बाँस की एक कमानी में भागलपुरवाली की 'अँगिया' लटकाये चुरमुनियाँ नचा-नचाकर चिल्ला रही है। उधर, दरवाजे पर, दरवाजा-भरपंचायत के लोग। ...भागलपुरवाली जलती 'उकाठी' लेकर दौड़ी थी।"

गंगापुरवाली दादी के साथ विजया भी हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी।

चुरमुनियाँ खोजकर बड़ी बाल्टी ले आयी।

आठ बजे वाली गाड़ी आने से पहले ही गोभी की सिचाई हो गयी। बाल्टी-लोटा-डोरी लेकर चुरमुनियाँ के साथ विजया भाजी कि बगिया से बाहर आयी। इस बार चुरमुनियाँ अपने झबरे बालों में उँगली चलाते हुए बोली, "बिजैयादि, सचमुच कल ही चली जाओगी? धेत...मत जाओ बिजैयादि!"

इस बार विजया ने एक लंबी साँस ली।

बड़घरिया हवेली। पहले यही अकेली हवेली थी।

पहले सिर्फ 'बड़घरिया' कहने से ही लोग समझ लेते थे—रानीडिह का चौधरी-परिवार। अब 'हवेली' जोड़ना पड़ता है, क्योंकि रानीडिह में अब एक नहीं, कई 'बड़घरिया' हैं।

बड़घरिया हवेली के एकमात्र वंशधर श्री रामेश्वर चौधरी एम० एल० ए० पिछले कई वर्ष से पटना में ही रहते हैं, सपरिवार। दूर रिश्ते की एक मौसी यानी गंगापुरवाली दादी बड़घरिया हवेली का पहरा करती है। हलवाहा सीप्रसाद खेती-बारी देखता है। लोग उसे 'मनीजर' कहते हैं। प्रखोल में रखा हुआ नाम ही अब 'चालू' हो गया है, सीप्रसाद का—'मनीजर'।

'छिटपुट जमीन' यानी आधीदारी पर लगी हुई जमीनों की हर साल बिक्री

करके रामेश्वर बाबू अब 'निःसंभट' हो गये हैं; खुदकाशत में थोड़ी-सी जमीन है, पोखर और बाग-बगीचे हैं। जिस दिन कोई बड़ा गाहक लग जाये, बेचकर छुट्टी। छुट्टी ? माने, इस रानीडिह गाँव से, अपनी 'जन्मभूमि' से कोई लगाव—किसी तरह का संबंध नहीं रखना चाहते रामेश्वर बाबू। 'मजबूरी है !'

पिछले पंद्रह साल से रामेश्वर बाबू पटना में रहते हैं—पटना के एम० एल० ए० क्वार्टर में। अब राजेन्द्रनगर में घर बनवा रहे हैं। इस बार संभव है, 'पार्टी-टिकट' नहीं मिले। किंतु, अब गाँव रानीडिह लौटकर नहीं आ सकते। किसी गाँव में अब नहीं रह सकते—'

स्वर्गीय बड़े भाई सिद्धेश्वर चौधरी की बिधवा की हाल ही में मृत्यु हो गयी। बड़े भाई की एकमात्र संतान विजया, जो अपनी माँ के साथ पिछले सात-आठ साल से मामा के घर थी, सोलहवाँ साल पार कर रही है। विजया के बड़े मामा ने कड़ी चिट्ठी लिखी विजया के काका को इस बार—'जिनके त्याग और बलिदान का भीठा फल आप खा रहे हैं उनकी स्त्री को तो झाड़ू मारकर ऐसा निकाला कि...। खैर, बह मरी और दुःख से उबरी। लेकिन, आपका 'सिरदंद' दूर नहीं हुआ है। अभी आपको थोड़ा और कष्ट भोगना बाकी है। विजया अब ब्याहने के योग्य हो गयी। 'यदि आप मेरे इस पत्र पर ध्यान नहीं देंगे तो मुझे मजबूर होकर आपकी पार्टी के प्रधान को लिखना पड़ेगा !'

इस बार दुर्गापूजा की छुट्टी में रामेश्वर बाबू अपनी स्त्री (भागलपुरवासी) के साथ रानीडिह आये। नारायणगंज आदमी भेजकर विजया को बुलवा लिया। काली-पूजा के बाद जब पटना वापस आने लगे तो गंगापुरवाली ने कहा, "बिजै यहाँ दस दिन और रहकर 'साग-भाजी' लगा जाती। फिर भागलपुरवाली बहू तो धान कटाने के लिए एक महीना के बाद आवेगी ही। उसी के साथ जायेगी !"

रामेश्वर बाबू को बात पसंद आयी। कहा, "ठीक है। 'नवान्न' के बाद ही बिजया जायेगी, पटना।"

लेकिन परसो चिट्ठी आयी है—धान कटाने के लिए इस बार नहीं आ सकती। मकान बन रहा है। दिन-रात मजदूरों के सिर पर सवार रहना पड़ता है। अगले सप्ताह 'ढलैया' शुरू होगी। इसलिए 'शामा-चकेवा' के बाद विजया अपने छोटे मामा के साथ चली आवे पटना... 'जरूर-से-जरूर'...

आज शाम तक विजया के छोटे मामा नारायणगंज से आ जायेंगे। कल गाड़ी से बिजया पटना चली जायेगी।

चुरमुनियाँ अपने घर का बस एक काम करती है। साँझ को पूरब-टोले के साहू की दुकान से सौदा ला देती है—मकई, चना, नून, तेल, बीड़ी। हिसाब जोड़ने में कभी एक पाई भी गलती नहीं करती। अपने दादा-दादी से ज्यादा हिसाब जानती है वह। साहू की दुकान पर होनेवासी 'गप' में चुरमुनियाँ 'रस'

डाल देती है, “अब बिजैयावि भी चली जायगी। कल ही जायगी।”

“और गंगापुरवाली ?”

“ऊ चली जायगी तो यहाँ कलमी आम का ‘बगान’ कौन ‘जोगेगी’ रात-भर जगकर ?”

चुरमुनियाँ की बात सुनकर सभी हँसे। रामफल की घरवाली ने पूछा, “और तुमने नहीं ले जा रही बिजैया ?”

“धेत ! मैं क्यों जाऊँ ?”

सच्चिदा पाँच पैसे का कपूर लेने आया था। विजया के कल ही जाने की खबर सुनकर स्तब्ध रह गया।

उजड़े हुए हिंगना-मठ पर खंजड़ी बजाकर सतगुरु का नाम लेनेवाला एक-मात्र बाबाजी सूरतदास बैरागी कहता है, “सभी जायेंगे। एक-एक कर सभी जायेंगे...”।

गाँव की मशहूर झगड़ालू औरत बंठा की माँ बोली, “‘ई बाबाजी के मुँह में ‘कुलच्छन’ छोड़कर और कोई बानी नहीं। जब सुनो तब—सभी जायेंगे ! जब से यह बानी बोलने लगा है बूढ़ा बाबाजी, गाँव के ‘जवान-जहान’ लड़के गाँव छोड़कर भाग रहे हैं। पता नहीं, शहर के पानी में क्या है कि जो एक बार एक घूँट भी पी लेता है, फिर गाँव का पानी हजम नहीं होता। गोबिन गया, अपने साथ पंचकौड़िया और मुगवा को लेकर। उसके बाद, बाभन-टोले के दो बूढ़े अरजुन मिसर और गेंदा झा...”।

रामफल की बीवी ने बीच में ही बंठा की माँ को काट दिया, “अरजुन मिसर और गेंदा झा की बात कहती हो, मौमी ? तो पूछती हूँ कि गाँव में वे दोनों करते ही क्या थे ? ‘बिलल्ला’ होकर इसके दरवाजे से उसके दरवाजे पर खिन्नी ‘चुनियाते’ और दाँत निपोड़कर भीख माँगते दिन काटते थे। अब शहर में जाकर ‘होटिल’ में भात राँघते हैं दोनों। पिछले महीने अरजुन मिसर आया था। अब बटुआ में पनडब्बा और सुर्ती रखता है। तोंद निकल गया है।”

“तो तू भी रामफल को क्यों नहीं भेज देती ? तोंद निकल जायगा।”

किसी ने कहा, “एह ! सभी जाकर शहर में ‘रिश्कागाड़ी’ खींचते हैं। हे भगवान् ! अंधेर है।”

जवाब मिला, “क्यों ? रिश्का खींचना बहुत बुरा काम है क्या ? पाँच रुपये रोज की कमाई यहाँ किस काम में होगी, भला ?”

सभी ने देखा, कैवर्तटोली का सच्चिदा, जो पाँच पैसे का कपूर लेने आया था, पूछ रहा है, “बताइये ?”

किसी ने कोई जवाब नहीं दिया।

सच्चिदा चला गया तो चुरमुनियाँ ने ओठ बिदकाकर कहा, “इसके भी पंख

फड़फड़ा रहे हैं। “ई भी किसी दिन उड़ेगा। फुरें-र।”

हँहँहँहँ ! बहुत देर से रुकी हँसी छलक पड़ी। लोग बहुत देर तक उसकी बात पर हँसते रहे। चुरमुनियाँ की दादी पुकारने लगी, “अरी ओ चुरमुनियाँ !”

रात में चुरमुनियाँ बड़घरिया हवेली में ही सोती है, गंगापुरवाली दादी के साथ। दादी सुबह-शाम चाय पीती है और चुरमुनियाँ को चाय की आदत पड़ गयी है। आज रविवार है। आज रात में दो बार चाय पियेगी, गंगापुरवाली दादी।

लेकिन आज चाय पीने का जी नहीं होता। चुरमुनियाँ चुपचाप अपनी कयरी में मिमट-सिकुड़कर अँगोठी पर चढ़ी केतली में पानी की ‘गनगनाहट’ सुन रही है। दादी ने दिल्लगी के सुर में पूछा, “आज तुमको किसका ‘बिरह-बिजोग’ सता रहा है जो इस तरह...?”

चुरमुनियाँ चिढ़ गयी, “मुझे अच्छी नहीं लगती तुम्हारी यह बानी।”

“ऐ हे ! अच्छी बानी की नानी रे ! आखिर तुझको हुआ क्या है ?”

कण जवाब दे चुरमुनियाँ !

सभी, एक-एक कर गाँव छोड़कर जा रहे हैं। सच्चिदा भी चला जायेगा तो गाँव की ‘कबड्डी’ में अकेले पाँच जन को मारकर दाँव अब कौन जीतेगा? आकाश छूनेवाले भुतहा-जामुन के पेड़ पर चढ़कर शहद का ‘छत्ता’ अब कौन काट सकेगा? होली में जोगीड़ा और भड़ीआ गानेवाला—अखाड़े में ताल ठोकने-वाला...सच्चिदा भैया !

...पिछले साल से होजी का रंग फीका पड़ रहा है। आठ-नौ साल की चुरमुनियाँ की नन्ही-सी-जान, न जाने किस संकट की छाया देखकर डर गयी है।—क्या रह जायेगा ?

चुरमुनियाँ गा-गाकर रोना चाहती है कण सुर में—एक-एक पंक्ति को जोड़कर गाकर रोना जानती है, वह। धीमे सुर में उसने शुरू किया—‘आ मे मइयो-यो-यो...’।

गंगापुरवाली दादी ने झिड़की दी, “ऐ-हे ! ढंग देखो इस रत्ती-भर छिनाल का। नाक से रोने बैठी है भरी साँस की बेला में। उठ, जाके देख बिजै काहे पुकार रही है।”

“गोलपारक क्या, भैया ?”

गाँव के नौजवानों के तन-मन में ‘फुरहरी’ लग रही है, फुलकन की सहरी गप सुनकर। मजेदार गप ! इस गप में एक खास किस्म की गंध है—फुलकनी के ‘बाबड़ी केश’ से जैसी गंध आती है, ठीक वैसी ही।

फुलकन फुलझड़ी उड़ा रहा है, “रजिन्नरनगर ? अब उसके बारे में कुछ मत पूछो, भैया ! साला, ऐसा सहर कि लगता है कि धरती फोड़कर ‘गोबर छत्ते’ की तरह रोज़ मकान उगते जा रहे हैं । होगा नहीं भला ? वहाँ कोई भी काम हाथ से ढोड़ो होता है ? सुर्खी कुटाई से लेकर सिमटी-सटाई और चुना-पुताई— सब-कुछ ‘मिथिन’ से । बाल कटाने जाओ तो नाई एक ऐसा ‘मिथिन’ लगा देगा कि चटपट हजामत खत्म । ...दस कदम पर एक-एक गोलपारक...”

“गोलपारक क्या, भैया ?”

“अब क्या बतावें कि गोलपारक क्या है और कैसा होता है ? वह देखने पर ही समझोगे । मुंह की बोली में उतने किस्म का रंग कहीं से लावेंगे ? समझो कि ‘सीकी’ की एक बहुत बड़ी सतरंगी ‘डलिया’ धरती पर रखी हुई है । ...जब साँझ को लंबे-लंबे ‘मरकली’ के डंडे छटाक-छटाक कर जल उठते हैं और साँझ के झुट-पुटे में ठंडी-ठंडी हवा खाती हुई अधनंगी लड़कियाँ ...लड़की तो नहीं, समझो कि ‘फिलिइस्टार’...”

“फिलि...क्या...?”

“घेतरे की ! फिलिइस्टार भी नहीं समझते ? अरे, पिकचर की लड़की रे पिकचर की !”

“पिकचर—?”

“अब तुम लोगों को क्या समझावें ! ...माने, सिनेमा की छापी की लड़की । समझो ?”

“...पिकचर की लड़की, छापी की लड़की ?” क्या-क्या बोलता है, फुलकन ? क्या या और क्या से क्या होकर लौटा है ! गाँव के नौजवानों की देह कसमसाने लगती है । फुलकन पटना में, ‘रिश्का गाड़ी’ खींचता है । ... खींचता नहीं है, ‘डलेवरी’ करता है । फुलकन रिश्का-डलेवर है ।

“अच्छा ! रिश्का-डलेवरी कितने दिनों में सीखा जा सकता है ?”

“मिखानेवाला उस्ताद हो और सीखनेवाला ‘जेहन’ का तेज हो तो तीन ही दिन में ‘हैडिल’ थिर हो जा सकता है ।—असल ‘चीजवा’ है ‘हैडिल’ !”

...गाँव के लड़कों ने लक्ष्य किया, फुलकन खास-खास बात में ‘वा’ लगाकर बोलता है—टिकटिवा, कगजवा, बतवा, चीजवा ।

फुलकन ने अब पॉकेट में ‘छापियों’ का लिफाफा निकाला, “और देखो देखन-वालो...”

“ऐ हे ! बाप...!!”

“फिलि की छापी की तसवीर की लड़की ?”

“भैया ! राह-घाट में इसी तरह ‘कच्छा-लंगोटा’ पहनकर चलती है ? कोई कुछ कहता नहीं ?”

300 / फणीश्वरनाथ रेणु : चुनी हुई रचनाएँ

सभी 'लहंगड़े-लौंडों' के मिर पर छापियाँ नाचने लगीं। नाचती रही।... रात में, सपने में भी छापी की लड़कियाँ नाचती रहीं और एकाध को 'भरमा' भी गयीं।

विजया को अचरज होता है ! गाँव खाली होने का, गाँव टूटने का जितना दुःख-दर्द इस छोटी-सी चुरमुनियाँ को है, उतना और किसी को नहीं। विजया इस गाँव में सात-आठ साल के बाद आयी है तो क्या ? है तो इसी गाँव की बेटा।

जब से पटना जाने की बात तय हुई है, अंदर-ही-अंदर वह फूट रही है... रजनीगंधा के डंठलों की तरह। वह पटना नहीं जाना चाहती। वह इसी गाँव में रहना चाहती है।... बाबूजी की याद आती है, माँ की याद आती है। गिल-जुल-कर आती है। कलेजा टूक-टूक होने लगता है तो इमली का बूझा पेड़, बाग-बगीचे, पशु-पंछी—सभी उसे ढाढ़स बँधाते हैं। एक अदृश्य आँचल मिर पर हमेशा छाया रहता है। यहाँ आते ही लगता है, बाबूजी बाग में बैठे हैं, माँ रसोईघर में भोजन बना रही है। इसीलिए, मामा का गाँव-घर कभी नहीं भ्रम्या उसे। अपने बाप के 'झिह' पर वह टूटी मईया में भी मुख से रहेगी। लेकिन...

“बिजैयादि !”

...चुरमुनियाँ ने आज चोरी पकड़ ली, शायद ! विजया जब से आयी है, रोज रात में चुपचाप रोती है। रोज सुबह उठकर तकिये का गिलाफ बदल देती है।

“बिजैयादि !” चुरमुनियाँ अब उठकर बैठ गयी।

गंगापुरवाली दादी करवट लेती हुई बड़बड़ायी, “क्यों गुल मचाकर जगा रही है, नाहक ?”

विजया ने कनखी-नजर से देखा, चुरमुनियाँ सोयी हुई गंगापुरवाली दादी का मुँह चिढ़ाती है, ओठों को बिदकाकर। इसका अर्थ होता है, ‘तुमको क्या ? दो बार ‘चाह’ पी चुकी है। यहाँ बिजैयादि कल से ही अन्न-पानी छोड़कर पड़ी हुई है।’

विजया ने देखा, चुरमुनियाँ उठकर बाहर गयी। आकाश के तारों को देखा। फिर बड़बड़ाती अंदर आयी, “इह, अभी बहुत रात बाकी है।”

चुरमुनियाँ आकर विजया के पंताने में बैठ गयी और धीरे-धीरे उसके पैरों को सहलाने लगी।

...इस लड़की ने तो और भी जकड़ लिया है, माया की डोर से। उसने पैर समेटकर कहा, “यह क्या कर रही है ?”

चुरमुनियाँ हँसी, “थी तो जगी हुई ही। फिर जवाब क्यों नहीं दिया ?”

“तुझे नींद नहीं आती ?”

चुरमुनियाँ ने गंगापुरवाली दादी की ओर दिखलाकर इशारे से कहा, “दादी की नाक इस तरह बोलती है मानो ‘अरकसिया’ आरा चला रहा हो !”

विजया को हँसी आयी। उसने डाँट बतायी, “क्यों झूठ बोलती है ? दादी की नाक आज एक बार भी नहीं बोली है।”

“तुम जगी नहीं थीं तो तुमने जाना कैसे ?” चुरमुनियाँ जीत गयी। “जानती है बिजैयादि ? लगता है, सच्चिदा भी अब सहर का रास्ता पकड़ेगा।” “जाओ भाई, सभी जाओ। यहाँ गाँव में क्या है ? सहर में बायस्कोप है, सरकस है, सलीमा है...”

“सोने भी देगी ?” विजया का जी हलका हुआ थोड़ा।

“नहीं।”

“क्यों ?”

“कल रात से तो और तुमको नहीं पाऊँगी। आज रात-भर सताऊँगी।”

कुछ देर तक चुप्पी छापी रही। दोनों ने लंबी साँस ली।

“बिजैयादि !” चुरमुनियाँ सटकर सो गयी।

“क्या है रे ?”

“सहर के दुल्हे से सादी मत करना।”

विजया ठाठकर हँसना चाहती थी। उसने बहुत मुश्किल से अपनी हँसी को जब्त करके पूछा, “सो क्यों ? सहर के लोगों ने तेरा क्या बिगाड़ा है ?”

“मेरा क्या बिगाड़ेगा कोई !”

“तो, किसका बिगाड़ेगा ?”

“तुम्हारा... बिजैयादि ! तू सादी ही मत करना। वे लोग तुमको कभी फिर इस गाँव में नहीं आने देंगे।”

“क्यों ?”

“जब गाँव का आदमी ही गाँव छोड़कर सहर भाग रहा है तो सहर का आदमी अपनी ‘जनाना’ को गाँव आने देगा भला ?”

“मुझे बाँध रखेंगे क्या ?”

“हाँ, बाँधकर रखेंगे। कमरे में बंद करके।”

गंगापुरवाली दादी उठकर बैठ गयी और ‘जाप’ करने लगी। दोनों चुप हो गयीं।

गंगापुरवाली दादी बाहर गयी। विजया ने देखा, चुरमुनियाँ सो गयी है। वह धीरे-धीरे उसके झबरे बालों पर हाथ फेरने लगी।

सुबह उठकर बाहर निकलते ही चुरमुनियाँ बिल्लाया, “देख-देख बिजैयादि, ‘लीलकंठ’ देख लो !”

गोड़ी-टोले से एक ज़िंदा मछली ले आयी चुरमुनियाँ और मिट्टी के बर्तन में पानी डालकर सामने रख दिया। फिर गाँव से उत्तर, बाबा जीन-जीर के धान की मिट्टी लाने गयी। मुबह से ही वह काम में मगन है, चुपचाप। विजया के मामा ने कई बार छेड़कर चिढ़ाने की चेष्टा की। विजया ने भी कई बार चुटकी ली। मगर वह चुप रही। आज वह गंगापुरवाली दादी की गालियों का न जवाब देती है और न ओठों को बिदकाकर मुँह चिढ़ाती है। “कल कह रही थी, “जानती है बिजैयादि, तुम चली जाओगी तो कल से दादी गाली भी नहीं देगी। दिन-रात मुँह फूलाकर बैठी रहेगी या आँख मूँदकर जाप करेगी।”

दोपहर को जब विजया के मामा भोजन करने बैठे तो चुरमुनियाँ ने मुँह खोला, “मामा, बिजैयादि को भी अपने सामने बैठकर खाने को कहिए। कल से ही मुँह में...कुछ...नहीं।”

लगा, बालू का बाँध अरराकर टूट गया। फफककर फूटकर रो पड़ी चुरमुनियाँ, “विजैयादि यहाँ से...भूखी-प्यासी...जायगीई-ई-ई...!”

चुरमुनियाँ की बरसती हुई, लाल-लाल आँखों में विजया ने कुछ देखा और वह सिहर पड़ी। “रोते-रोते मर जायेगी यह लड़की! उसने रुँधे हुए गले से चुरमुनियाँ को समझाना शुरू किया, “चल! पहले उठकर नहा ले! मैं तुम्हारे साथ ही बैठकर खाऊँगी। उठ!”

विजया के मामा को अजरज हुआ। आज तक विजया ने किसी बच्चे-बच्ची को इस तरह दुलार-भरे मुर में नहीं पुचकाया। वे जल्दी-जल्दी भोजन करके बाहर दालान पर चले गये।

विजया ने चुरमुनियाँ को नहलाया-धुलाया। गंगापुरवाली दादी ने बाहर निकलकर कई भद्दी गालियाँ दीं। किंतु आज उसकी गाली सुनकर भी चुरमुनियाँ रोती है। “कल से दादी गाली देना भी बंद कर देगी।

खाने के समय विजया ने टोका, “पेट भरकर खा।”

चुरमुनियाँ बोली, “मैं भी वही कह रही थी तुमसे।”

फिर दोनों हँस पड़ी। हँसते-हँसते रोने लगी।

बाहर मामा ने सूचना देने के लहजे में कहा, “तीन बज रहे हैं।” अर्थात्, अब दो घंटे और। साढ़े छह बजे की गाड़ी पकड़ने के लिए पाँच बजे ही घर से निकल पड़ना होगा।

चुरमुनियाँ बोली, “जमराज!”

विजया हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी। “मन की बात कही है चुरमुनियाँ ने।

देखते-ही-देखते सूरज ढल गया। अब, एक घंटा और!

सामान वगैरह बाहर दालान में भेजकर विजया ने चुरमुनियाँ को ‘पूजा-घर’

में पुकारा। गंगापुरवाली दादी रसोईघर में पकवान छान रही थी। चुरमुनियाँ अंदर गयी।

“देख चुरमुन, इधर आ। इस घर में रोज झाड़ू-लेपन, साँझ धूप-बत्ती देना मत भूलना।”

“तुमको कहना नहीं होगा। मैं घर के ‘देवता-पितर’ से लेकर गाँव के देवता-बाबा जीन-पीर के थान में रोज झाड़ू-बुहारी दूँगी—यही मनोती मैंने की है कि हे मैया गौरा पारबती !...कि हे बाबा जीन-पीर...हमारी बिजैयादि को कोई सहर में बाँधकर नहीं रखे।...जिस दिन तू लौटकर आयगी, मैं देवी के ‘गह्वर’ में लाचूँगी...सिर पर फूल की डलिया लेकर। तू लौट आवेगी तो सब कोई लौटकर आवेंगे। भूले-भटके, भागे-पराये—सभी आवेंगे। तू नहीं आयेगी तो इस गाँव में अब धरा ही क्या है? जो भी है, वह भी एक दिन नहीं रहेगा। सिर्फ गाँव की निसानी, घरों के डिह...।”

“नहीं चुरमुन, ऐसी बात मत बोल।”

“तो, सत्त करो। मेरी देह छूकर कहो...।”

चुरमुनियाँ अपलक नेत्रों से विजया को देखती रही। विजया भी उसकी आँखों में डूब गयी, “चुरमुन, मैं शहर में नहीं रह सकूँगी। मैं लौट आऊँगी। यही जोऊँगी, यही मलूँगी...।”

“नः नः, जातरा के समय कुलच्छन-भरी बात मत निकालो मुंह से।...जानती है बिजैयादि, मुझे कैसा लगता है, कहूँ?...लगता है, तू मेरी बेटो है और मैं तुम्हारी माँ। तू मुझे...माने...अपनी माँ को हमेसा के लिए छोड़कर जा रही है।”

विजया चौंकी, तनिक। उसने चुरमुनियाँ के चेहरे पर उमड़ने-बुमड़नेवाली घटाओं को देखा। वह बोली, “हाँ, तू मेरी माँ है।...तू ही मेरी माँ है।”

चुरमुनियाँ आनंद-विभोर हो गयी, “बिजैयादि, जो छोटा मत करो। रोओ मत।...कलेजा मजबूत करो।...‘कहल-मुनल’ माफ करना।...अच्छा तो, पाँव लागों।”

बैलगाड़ियाँ चल पड़ी। दालान के पाम, गंगापुरवाली दादी के साथ चुरमुन टुकुर-टुकुर देखती रही...।

विजया उँगलियों पर जोड़ती है—ग्यारह महीने ! ग्यारह-तीस, तीन माँ तीस...!

चुरमुनियाँ ने ठीक ही कहा था। सच्चिदा भी शहर आ गया है और एक प्रायवेट कंपनी में दरबानी करता है। गाँव से जो भी आता है, विजया सबसे पहले चुरमुनियाँ के बारे में पूछती है; फिर पूछती है, “गाँव छोड़कर क्यों आये?” सच्चिदा ने बताया, “चुरमुनियाँ तो पूरी ‘भगतिन’ बन गयी है। रोज भोर में

नहाकर सिव मंदिर जाती है। ... लोग कहते हैं कि लड़की पर कोई 'देव' ने सवारी की है।"

...जिस दिन विवाह की बात पक्की हुई, विजया का कलेजा धड़का था। उसे चुरमुनियाँ की बात याद आयी थी। शादी के समय भी चुरमुनियाँ की बात मन में गूँज गयी थी।

...उसने ठीक ही कहा था। चुरमुनियाँ पर सचमुच कोई 'देव' की सवारी हुई है। विवाह के बाद, पाँच महीने भी नहीं बीते सुख-चैन से ! विजया फिर उँगलियों पर कुछ जोड़ती है।

...अब उसके पति इस बात को अच्छी तरह प्रमाणित करने पर तुले हुए हैं कि विजया को गाँव के किसी लड़के से प्रेम था और उसी के विरह में वह विवाह के बाद से ही अर्ध-विक्षिप्त हो गयी है..."

...विजया के काका को वकील का नोटिस देकर पूछा गया है कि इस धोखेबाजी के लिए उस पर मुकदमा क्यों नहीं चलाया जाये ?

...विजया के पति पाँच हजार रुपये बतौर हर्जाना के वसूल करना चाहते हैं, उसके काका से। ...विजया कुछ भी नहीं जानती। कुछ भी नहीं समझती। कुछ समझने की चेष्टा भी नहीं करती। सिर्फ उँगलियों पर कुछ जोड़ती है। जोड़ती ही रहती है।

हिगना-मठ के सूरतदास बाबाजी से एक पोस्टकार्ड लिखवाकर भेजा है, चुरमुनियाँ ने। कई डाकघरों में घूमती-भटकती हुई बिट्टी विजया के पति को कल मिली है, "बिजयादि, कब आओगी ? अब नहीं ही आओगी।" इसके बाद सूरतदास बाबाजी ने अपनी ओर से लिखा है, "चुरमुन एक महीने से बिछावन पर लबेजान है और रात-दिन तुम्हारा नाम..."

विजया अपने पति को कुछ भी नहीं समझा सकी कि यह चुरमुन कौन है, जिसकी बीमारी की खबर पाकर वह इस तरह बेचैन हो गया। विजया की बस एक ही ज़िद, "मैं आज ही जाऊँगी। अभी..."

तब, हमेशा की तरह उसे घर में बंद करके कुंडी चढ़ा दी गयी। किंतु इस बार विजया न रोयी, न चीखी, न चिल्लायी, न दरवाजा पीटा, न बतन-बासन तोड़ा। कष्ट-कंठ से गिड़गिड़ाने लगी, "मैं आपके पंर पड़ती हूँ। आप जो भी कहियेगा, मानूँगी। ... मुझे एक बार अपने साथ ही गाँव ले चलिए। मैं खड़ी-खड़ी उस निगोड़ी को देख लूँगी। मरे या जीये। मैं उलटे पाँव वापस चली आऊँगी—आप ही के साथ।"

"यह चुरमुनियाँ आखिर है कौन ?"

"मेरे गाँव की... एक... पड़ोसी की लड़की।"

"लेकिन, लगता है, तुम्हारी कोख की बेटी हो।"

“हाँ, वह मेरी माँ है। माँ है...।”

“मुझे देहाती उल्लू मत समझना।”

हर दिन की तरह, विजया अचानक चुप हो गयी और आँख मूँदकर अपने गाँव-मैके रानीडिह भाग गयी। अब उसे कोई मारे, पीटे या काटे—घंटों अपने गाँव में पड़ी रहेगी। वह...दूर से ही दिखलायी पड़ता है, गाँव का बूढ़ा इमली का पेड़। वह रहा बाबा जीन-पीर का घान।...वह रही चुरमुनियाँ।... रानीडिह की ऊँची जमीन पर...लाल माटीवाले खेत में...अक्षत-सिद्धर बिखरे हुए हैं। हजारों गौरैया-मैना सूरज की पहली किरण फूटने के पहले ही खेत के बीच में कचर-बचर कर रही हैं। चुरमुनियाँ सचमुच पखेरू हो गयी? उड़कर आयी है, खंजण की तरह!... विजया की तलहथी पर एक नन्ही-सी जानवाली बिड़िया आकर बैठ गयी।...चुरमुन रे! माँ...!

...डॉक्टर ने सूई गड़ायी या किसी ने छुरा भोंक दिया?—कोई मारे या काटे, विजया अपने गाँव से नहीं लौटेगी, अभी!

जलवा

फातिमादि को कभी देखूंगा और इस तरह देखूंगा, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। इसलिए, कुछ देर तक 'पटना-मार्केट' को स्वप्नलोक समझकर खोया-खोया-सा खड़ा रहा—जूतों की दूकान पर। ... बुरके में सिर से पैर तक ढँकी वो महिलाएँ और साथ में नौ-दस साल की गुड़िया जैसी खूबसूरत लड़की। लड़की ने दुबारा पूछा—“मौसी पूछ रही है कि पटना कब आये आप?”

दूकानदार ने रेजगारी गिनते हुए कहा, “वह आप ही से पूछ रही है।”

लड़की हँस पड़ी। बुरके के अंदर भी हँसी खनकी। ... परिचित हँसी! लड़की हँसी अपनी मौसी की किसी बात पर। बोली, “मेरी मौसी आपकी फातिमादि हैं।”

अब कतई रंग के बुरके के अंदर से फातिमादि की चिर-परिचित बोली स्पष्ट सुनायी पड़ी, “सुना, दिल्ली या बंबई में रहते हो?”

“मैं पिछले दस साल से पटना में हूँ।”

“अजब बात! पटना में हो और कभी देखा नहीं?”

“और आप...?” इतनी देर के बाद मेरा होश लौटा, मानो।

मेरी बात को बीच में ही काटकर बुरकापोश फातिमादि बोली, “मेरी छोड़ो। अपनी बताओ। शादी-वादी की?”

मुझे सकपकाया देखकर वह बोली, “बाकरगंज-गली में 'दानिश-मंजिल' देखा है न? वही रहती हूँ। बहू को लेकर किसी दिन आओगे? कल ही आओ न सुबह आठ बजे।”

लड़की बोली, “कल सुबह आठ बजे तो हमीदा खाता के घर जाना है।

“ओ-ओ! ... परसों आओ!”

मेरे मुँह से अनायाम ही निकल पड़ा, “प्रणाम!”

“खुश रहो।”

फातिमादि को कभी 'आदाब अज' नहीं कहा हमने। वह हमारे 'प्रणाम' को

कबूल कर हमेशा 'खुश रहो' कहकर आशीर्वाद देती। किंतु फातिमादि को इस तरह सिर से पैर तक ठँका हुआ कभी नहीं देखा। उन दिनों भी नहीं, जब वह परिचितों की निगाहों से बचकर रहती थीं।

रात-भर नीद नहीं आयी। आँखें मूँदते ही कत्थई रंग के बुरके में ठँकी हुई छाया आकर खड़ी हो जाती। '... एक जोड़ी जालीदार आँखें ! लाख कोशिश करके भी बुरके को हटाकर फातिमादि का चेहरा नहीं देख सकता। और झुंझलाकर आँखें खोल लेता।

अपने घरवाले की लंबी माँसों और छटपटाहट को देख-मुनकर कोई भी गृहिणी शनक हो सकती है। मगर कथाकार की पत्नी जानती है कि कहानी गढ़ते समय उमका घरवाला इसी तरह बेवजह, बेकार, बेकरार होकर लंबी साँसे लेता करवटें बदलता है। अतः वह सुख में सोयी रहती है।

उस रात जगी हुई थी। पूछा, "तुमसे कभी फातिमादि के बारे में कहा है मैंने ?"

"नहीं तो ! कौन फातिमादि ?"

"एक कहानी की फातिमादि।" बात को टालकर मैंने करवट ली।

कहानी की फातिमादि ! अचरज हुआ कि फातिमादि के बारे में अब तक अपनी पत्नी को कुछ क्यों नहीं सुनाया ! '... नहीं, अचरज की कोई बात नहीं। कट्टर सनातनी की बेटा और हिंदू-मभाइस्ट भाई की बहन को जान-बूझकर ही मैंने कभी फातिमादि की कोई बात नहीं बतायी। डर था कि मुनकर मुह बिदकाकर कुछ कह देगा। कहेगी—एबसड !

एबसड नहीं ! असाधारण !

आज से छत्तीस साल पहले भी लोगो ने कहा था—एबनामल ! अधपगली !

मेरा सोभाग्र्य कि मैंने इस असाधारण महिला को बहुत करीब से देखा है।

... याद आती है 1930 की उस सभा की। स्कूल के पिछवाड़े में भारी भीड़। ठाकुरबाड़ी के चबूतर पर गांधी-टोपी पहने कई लोग बैठे थे। एक दस-ग्यारह साल का लड़की 'लक्चर' दे रही थी। लड़की का पाजामा और कुरता पहने देखकर बहुत अचरज हुआ था। सुना, मोलवी साहब की बेटी है। मोलवी साहब 'खिलाफत' के समय से ही 'मांटिया' पहनते हैं, चर्खा कातते हैं। सफेद पाजामा-कुरता पहने, कंधे पर तिरंगा झंडा लेकर खड़ी लड़की !

... 1934 के प्रलयकारी भूकंप के बाद, दूसरी बार देखा था। चार साल में ही काफी बड़ी दीख रही थी। महात्मा गांधी भूकंप-पीड़ित क्षेत्र के दौरे पर आये थे। मंच पर गांधीजी के पास खड़ी लड़की को पहचानने में कोई दिक्कत नहीं हुई थी। '... प्रार्थना-सभा में कुरानशरीफ की आयतों का मस्वर पाठ करती हुई मोलवी साहब की बेटी ! हाल ही दो साल की सजा काटकर जेल से निकली

है। कहते हैं, गिरफ्तारी के समय पुलिस के डंडे से बुरी तरह घायल हो गयी थी।

...1937 में तीसरी बार निकट से देखने का पहला अवसर मिला। स्कूल के मैदान में जिला राजनैतिक-मम्मेलन का आयोजन किया गया था। कांग्रेसी-मिनिस्टरी के दिन थे। इसलिए स्कूल में ही प्रतिनिधियों के ठहरने की व्यवस्था की गयी थी और स्कूल के बालबार कांग्रेस-सेवादल के स्वयंसेवकों के साथ मिलकर काम कर रहे थे। सेवादल की जी० ओ० सी० मौलवी साहब की बेटी को पहली बार 'फातिमादि' कहकर पुकारा था। उस सभा में प्रोफेसर अजीमाबादी की तकरीर के समय, मुस्लिमलीगियों ने गड़बड़ी मचाने की कोशिश की। फातिमादि लपककर मंच पर गयी थीं। और उनकी तेज आवाज पंढाल में गूँज उठी थी, "गद्दारो! शरम करो।"

...और, 1943 में पाँच महीने तक दिन-रात उनके साथ रहना पड़ा। बनारस, लखनऊ, इलाहाबाद और गोरखपुर की गलियों में, 'आजाद दस्ता' के क्रांतिकारी कार्यक्रमों को लेकर अलख जगानेवासी फातिमादि की तसवीरें आँखों के आगे आती है, एक-एक कर। ...गिरफ्तारी के समय पुलिस-सार्जेंट की भद्दी गालियों के जबाब देते समय उनके चेहरे पर जो विजली कौंधी थी; 1947 में हिंदू मुस्लिम दंगे के समय उपद्रवियों से जूझते समय उनके मुखमंडल पर जो आभा छापी रहती थी, सबको इस कथई रंग के बुरके ने कैसे ढँक दिया? यह कैसे हुआ?

...मैं उनके चेहरे पर पड़े परदे की चित्थी-चित्थी उड़ा देना चाहता हूँ। मैं फातिमादि की सूरत देखना चाहता हूँ और वह चीखकर अपनी दोनों हथेलियों से अपना मुँह ढक लेती है, "नहीं-नहीं! ओजू! ...अजीत...मेरा चेहरा मत देखो..."

सपना टूटने के बाद बहुत देर तक मैं चुपचाप पड़ा रहा। ऑल इंडिया रेडियो का 'सिग्नेचर-ट्यून' शुरू हुआ। हठात्, मन में एक खयाल आया—आकाशवाणी के 'सिग्नेचर-ट्यून' को बदलने के लिए अब तक कोई 'हंगामा' क्यों नहीं हुआ? यह तो शुद्ध 'अजान' का सुर है। ...वायलिन पर चढ़ती-उतरती नमाज की पुकार।

'दानिश-मंजिल' की सीढ़ियों पर चढ़ते समय मुझे लगा, इस पुरानी इमारत की हर ईंट मुझे ताज्जुब-भरी निगाहों से देख रही है।

"किससे मिलना है?"

"फातिमादि से।"

"किससे?"

“फातिमादि से ।”

सवाल पूछनेवाला अचरज में बुत बना खड़ा रहता है। फिर बुदबुदाता है,
“फातिमादि ?”

गुड़िया जैमी खूबमूरत लडकी हँमती हुई आती है, सलाम करती है और कहती है, “मौमी पूछती है कि बहू को क्यों नहीं ले आये ?”

मैं ममम गया, फातिमादि आज भी मेरे सामने नहीं आयेंगी। आज भी इसी लडकी को बीच में रखकर बाने चलायेगी।

उधर कई कमरों के दरवाजे जोर से बंद हुए। मॉडिम आवाज में बजते हुए रेडियो अचानक चुप हो गये। हवा में फिमफिमाहट और सरगोशियाँ।

“मुना है, अफमाने लिखते हो ?” चिक की आड से गवान पूछा गया।

फर्श पर बिछी फटी दरी की ओर देखते हुए मैंने जवाब दिया, “जी हाँ, झूठ बोलने की आदत को अब पेशा...।”

खिलखिलाहट मुनकर ‘दानिश-मजिल’ की कई खिड़कियाँ चरमराकर खुली। भुने हुए प्याज की गंध मे कमरा भागी हो गया। और इसी गंध ने मेरे दिमाग में हाल की एक घटना की याद जगा दी। ‘...एन० सी० सी० कंप के बावर्चीखाने में ‘जहूर-कातिल’ की शोशी के साथ पकड़े गये उम मुमलमान नौजवान का नाम क्या था ?

गुड़िया जैमी लडकी का नाम नगमा है। वह एक प्याली चाय ले आयी। मैं झूठ बोलना चाहता था, मगर बोल नहीं सका। चाय की प्याली हाथ में लेकर मैंने पूछा, “तो फातिमादि—आप इतने दिन में...मेरा मनलब...आप न जाने कहाँ खो गयी ?”

जवाब मिला, “बहू को लेकर कब आ रहे हो ?”

मैं आँखें मूँदकर चाय पी गया। मैं ममम गया, फातिमादि मेरे सवाल का जवाब नहीं देना चाहती। मुझे अब थोड़ा मदेह भी होने लगा, यह खातून हमारी फातिमादि नहीं, कोई और है।

मैं कुरसी छोड़कर उठा। नगमा तश्तरी में पान ले आयी। इस बार साफ-साफ झूठ बोल गया, “मैं पान नहीं खाता।”

चलते समय मैंने हिम्मत बाँधकर कह दिया, “माफ करे। मुझे लगता है, आप हमारी वह फातिमादि नहीं...।”

“तुमने ठीक समझा है, अजीज।”

अजीज ? मैं फिर चौका। याद आयी, फातिमादि मुझे अजीज नहीं, अजीज कहाँ करती थी। मैं खामोश खड़ा रहा और चिलमन के उम पार फिर एक झुली खिलखिलाहट खनक उठी।

‘दानिश-मजिल’ की सीढ़ियों से उतरते समय मुझे लगा, इस पुरानी इमारत

की हर ईंट मुझे नफरत-भरी निगाह में देख रही है। ... मैं उस नौजवान का नाम याद करने की कोशिश करने लगा, जिमने एक हजार 'कैंडेट' के भोजन में जहर मिला दिया था।

'अमजदिया होटल' के सामने दीवार पर एक उर्दू 'पोस्टर' चिपकाया जा रहा है। मोटे हकूफों में लिखा हुआ है, 'नेशनलिस्ट-मुस्लिम कनवेंशन मुर्दाबाद !' ... गदरों से हौशियार !'

उम नफरत-आमेज पोस्टर को पढ़कर एक मौलाना तैश में बड़बड़ाने लगा, "इन नद्दाफ के बच्चे ने रुई धुनना छोड़कर अब कौम को धुनना शुरू किया है। इन्हें सबक सिखाना होगा। नेशनलिस्ट के बच्चे..."

मुझे मितली आने लगी। रिक्शा पर बैठकर मैंने अपनी नाड़ी पर उँगली रखी। दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। पमीने से देह तर-ब-तर हो गयी। ... चाय के स्वाद में थोड़ी तुर्शी थी न ! ... दाहिनी ओर जनरल हॉस्पिटल है और बायीं ओर पुलिस चौकी। सोचने लगा, पहले किधर जाना ठीक होगा?

किंतु रिक्शेवाले ने पूछा तो जवाब दिया, "राजेंद्रनगर ले चलो।"

एक कहानी-गोष्ठी में 'नयी कहानी', 'अ-कहानी', 'आज की कहानी', 'आनेवाले कल की कहानी' पर लगातार चार घंटों तक चुपचाप वाद-बिवाद सुनने के बाद मीधे घर लौटने की हिम्मत नहीं हुई। ऐसी हालत में गंगा के किनारे अथवा किसी 'बार' में बैठकर ही अपने को ढूँढ़ना पड़ता है। लेकिन रिक्शेवाले ने पूछा तो जवाब दिया, "राजेंद्रनगर चलो।"

'गोल मार्केट' के पास पहुँचकर हमेशा की तरह अपने फ्लैट और कमरे को दूर से ही देखा। अपने कमरे में रोशनी देखकर माया ठनका—अब कहाँ जायेंगे?

दिल को कड़ा किया—कोई भी हो, माफी माँग लूँगा। कोई बहाना बनाकर विदा कर दूँगा।

सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते मैंने सारी दुनिया की परेशानी ओढ़ ली। दुनिया से बेजार एक आदमी का मुखौटा चेहरे पर लगाकर दरवाजा खटखटाया। किंतु दरवाजा खुला तो देखा, पत्नी के मुख-मडल पर खुशी की लाली बिखरी हुई है। मेरी लटकी हुई सूरत पर उमकी नजर ही नहीं पड़ी। हुलसती हुई बोली, "कहो तो कौन आये हैं?"

मुझे अवाक् होने का मौका ही नहीं मिला। हँसती-मुस्काती नगमा ने आकर सलाम किया। पत्नी बोली, "ओहो ! तीन घंटे से हम हँस रहे हैं। ... तुम कहाँ थे ? ... और, तुम भी खूब हो ! कभी बताया नहीं।"

"क्या नहीं बतलाया ?" मैंने पूछा।

“यही कि तुम हिंदू नहीं, मुसलमान हो !” मेरे कमरे से आवाज आयी।
देखा, फातिमादि गारे प्लेट को रोशन करके बैठी है। बुरका फर्श पर पड़ा हुआ है। बुरका नहीं, चिन्थी और चीथड़े !

“यह कैसे हुआ ? किसने...?”

पत्नी बोली, “और कौन ! तुम्हारी दुलारी बेटी नौमी... जब तक बुरका नहीं उतारा, भोकती रही। और जब बुरका उतारकर रखा तो दाँत में नोच-नोचकर छुट्टी कर दिया।”

“वह है कहाँ ?”

देखा, फातिमादि की गोद में आँचल के नीचे दुबककर बैठी है, शैतान। कोई अपराध करने के बाद वह इसी तरह मुँह बनाकर बैठती है।

“गोदी से उतरती ही नहीं। गुराँती है।” नगमा बोली।

उन्नीस-तीस माल के बाद देखा, फातिमादि जैमी की नैमी है। मिफं, आँखों के पाम कई नयी रेखाएँ उभर आयी है।

पत्नी की हँसी छलक रही थी रह-रहकर। किस्मा मुनाने लगी, “नौमी को बाँधकर मैंने दरवाजा खोला। इन्होंने पूछा, ‘अजीज है घर में?’ मैं बोली, ‘कौन अजीज ?... अजीज नहीं, अजीत।’ तो बोलीं—‘अरे हाँ-हाँ, मुना है उमने अपने नाम का एक हर्फ बदलकर अपने को हिन्दू बना लिया है और एक बेचारी हिन्दू लडकी से शादी कर ली है।’ मैं तो अवाक्...!”

“अच्छा ! तो भाभीजान अब तक मुगलाने में हैं। क्यों अजीज ? इस तरह किमी का धरम बिगाड़ना कुफ नहीं तो और क्या है ? लेकिन मान गयी तुमको। हो उस्ताद ! बुतपरस्त बनने के बाद अपना देवता भी चुना तो एक ऐंमे दाढ़ीवाले को जिमने कलमा पढ़कर...”

उन्हे श्रीरामकृष्ण परमहंस देव की मूर्ति की ओर इस तरह इशारा करते देखकर हम सभी ठठाकर हँस पड़े।

हँसी की हिलोरे थमी तो मैंने पूछ लिया, “अच्छा, अब बताइये। आप कहाँ थी ? कहाँ है ?”

“कन्न में थी, कन्न में हूँ।”

पत्नी रमोईघर में चली गयी। मुझे लगा, अभी यह सवाल पूछना उचित नहीं हुआ।

फातिमादि ने पूछा, “तुमने क्या मोचा था ?... पाकिस्तान चली गयी ! है न ?”

“आपने पॉलिटिक्स क्यों छोड़े...?”

“यह मुझसे क्यों पूछते हो ? अपने उन नवाबजादों में कभी क्यों नहीं पूछा, जो रातोंरात ‘देश-भगत’ बनकर कांग्रेस के खेमे में दाखिल हो गये—बगल में छुरी दबाकर। अपने नेताओं में क्यों नहीं जवाबनलब करते ? कन्न तक गाँधी-

जवाहर-पटेल को सरेआम गालियाँ देनेवाले, कौमी झंडे को जलानेवाले फिरका-परस्त लोगियों की इज्जत-अफजाई की गयी और मुल्क के लिए मरने-मिटनेवालों को दूध की भस्त्रियों की तरह निकाल फेंका। '...तुम खुद अपने से यह मवाल क्यों नहीं पूछते?' फातिमादि का चेहरा लाल हो गया। मुझे खुशी हुई।

मैंने टोका, "लेकिन, आपका इस तरह खामोश हो जाना..."

"खामोश?" लगा, सिहनी तड़प उठी, "इन जालिमों ने मुझ पर क्या-क्या कहर ढाये, यह तुम्हें क्या मालूम? ...और, हमने किस दरवाजे की कुंडी नहीं खटखटायी। मगर, दिल्ली से पटना तक के खुदाबंदों ने मुझे अकल की दवा करने की सलाह दी। शादी करके बच्चे पैदा करने की नसीहत दी। और आखिर में घमकियाँ...ओह...अजीज...!"

फातिमादि का गला भर आया। पत्नी न जाने कब आकर खड़ी हो गयी थी। बोली, "तुम भी अजब आदमी हो..."

नौमी, जो अब तक दुबककर बैठी थी, फातिमादि के चेहरे को सूँघकर 'कुई-कुई' करने लगी।

"अब भी लोगों को होश नहीं हुआ है। इन्हें सिर्फ अपनी गद्दी की फिक्र है। देश जहन्नुम में जाये। इन्हें क्या?" फातिमादि की बोली में गहरी पीड़ा उत्तर आयी थी, "तुम...तुम...अफसाने लिखते हो न? ...याद है, आजादी के पहले जिन तरक्की-यसद अदीबों की नग्मों और अफसानों में हिंदू-मुस्लिम इत्हाद की बातें, 'मानवता' की दुहाई और न जाने क्या-क्या ठुंसी रहती थीं, आजादी के बाद अचानक उनकी बोलियाँ बद हो नहीं, बदल गयीं...। अब्बाम की कसमें खानेवाले टुकुर-टुकुर देखते रहे और फिरकापरस्त अजदहों ने पूरी कौम को लील लिया।"

पत्नी ने टोका, "फातिमादि, खाना ठंडा हो जायेगा।"

टाउन हॉल में 'नेशनलिस्ट-मुस्लिम-कांफ्रेंस' की तैयारी घूमघाम से हो रही है। देश के कोने-कोने से प्रतिनिधियों के आने की खबरें छप रही हैं। और इन्हीं खबरों के साथ घोंटी सुखियों में इस कांफ्रेंस की मुखालिफत के समाचार भी छपते हैं। रोज दोनों ओर से, सैकड़ों नामों के साथ बयान शायी होते हैं। ... विरोधियों का कहना है कि कोई 'गैर-नेशनलिस्ट' नहीं, सभी मुसलमान नेशनलिस्ट हैं। और अपने को नेशनलिस्ट कहनेवाले खुलेआम कहते हैं कि पुराने 'मुस्लिमलीगियों' के दिन-दिमाग में फिरकापरस्ती का जहर है। उन पर यकीन नहीं किया जा सकता। ... बहुत दिन से किसी राजनैतिक जलसे में शरीक नहीं हुआ था। किंतु इस बार अपना 'कर्तव्य' समझकर इस सम्मेलन में सम्मिलित

होने के लिए पहुँचा। किंतु वहाँ का दृश्य देखकर फुटपाथ पर ही ठिठककर खड़ा रहा।

टाउन हॉल के सामने सड़क के दोनों ओर हजारों लोग खड़े नारे लगा रहे थे। गालियाँ, नारे और रह-रहकर रोड़े और पत्थरों की बौछार !

पुलिस के सिपाही चुपचाप कतार बाँधकर खड़े थे, क्योंकि प्रदर्शनकारियों की रहनुमाई 'कुलीन मुस्लिम' नेताओं के साहबजादे और बड़े अफसरों के लड़के कर रहे थे। मुझे लगा, हम फिर सन् 1947 साल में लौट गये हैं। हवा में फिर वही जुनून, वही नारे, वही नजारे, वही चेहरे !!

“लेना ! लेना ! जा रहा है काफिर का बच्चा !”

‘तड़तड़ाक् ! तड़तड़ाक् !’

“यह रहा हरामखोर ! मारो माले को !”

“सुअर की औलाद !”

‘तड़तड़ाक् !’

अब वे हर डेलीगेट को पकड़कर पीटने लगे। उत्तेजना की लहरें तेज होती गयीं। नारे, गालियो और रोड़ों की वर्षा जोर-शोर से होने लगी।

“भहारमा गाँधी की जय !”

एक महीन किंतु तेज आवाज ! हठान् सब-कुछ रुक गया। लोगों ने देखा, अंजुमन इस्लामिया हॉल के प्रवेशद्वार—अब्दुल बारी दरवाजा—के सामने एक औरत खड़ी नारे लगा रही है।

फातिमादि ? मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। देखा, फातिमादि ही हैं।

“कीन है यह औरत ?”

“कोई हिन्दू...?”

“अरे नहीं। पहचानते नहीं ! यह वही कुतिया है...।”

“फातिमा ?...माली फिर कहाँ से आ गयी ?”

“कुत्ती !”

पागलों का एक जत्था नाचता, अश्लील गालियाँ देता हुआ फातिमादि की ओर झपटा। फातिमादि मुस्कराती खड़ी रहीं। देखते-ही-देखते दरिदों ने उनको जमीन पर पटक दिया और बाल पकड़कर घसीटना शुरू किया। दोनों ओर खड़ी भीड़ ने तालियाँ बजायीं—‘शाबाश !’ जब तक पुलिस के सिपाहियों की टुकड़ी पहुँचे, उन्होंने फातिमादि के सभी कपड़े उतार लिए थे।... मैं इससे आगे और कुछ नहीं देख सका।

कई दिन के बाद बहुत हिम्मत बाँधकर हम दोनों अस्पताल में फातिमादि को देखने पहुँचे ।

केबिन के दरवाजे के पास ही नगमा खड़ी मिली । हमें देखते ही बिलख-बिलखकर रोने लगी ।

“जानवरों ने फातिमादि के चेहरे पर एमिड की शीशी उँडेल दी थी । चेहरा झुलसकर काला हो गया है । एक आँख खराब हो गयी है ।... हाथ की हड्डी टूट गयी है ।”

आहट पाकर उनके हाँठ थरथराये । शायद मुस्कराने की कोशिश कर रही हैं । फिर धीमे स्वर में बोलीं, “दुर पगला ! यहाँ रोने आया है ? जलवा देख ।... भाभी ! कल सूजी का ‘पायस’... क्या कहते हैं उसको... ‘परमान्त’... बनाकर ले आना । नौमी को भी साथ लाना ।”

फातिमादि को कभी इस तरह देखूँगा, इसकी कल्पना भी नहीं की थी हमने ।

अकल और भेंस

जब अखबारों में 'हरी क्रांति' की सफलता और चमत्कार की कहानियाँ बार-बार विस्तारपूर्वक प्रकाशित होने लगीं, तो एक दिन श्री अगमलाल 'अगम' ने भी शहर का बोह त्यागकर, खेती करने का फैसला कर लिया। गाँव में उनके चार-पाँच बीघे जमीन थी, जिसे बटाईदारी पर उठाकर, अगमलालजी 'अगम' आज से सात साल पहले ही गाँव छोड़कर जिला के सदर शहर में आ बसे थे। चूँकि, उनके दाप के साथ उनका 'उपनाम' भी लगा हुआ था, इसलिए शहर के लोगों को यह जानने में देरी नहीं लगी कि 'अगमजी' एक साहित्यिक प्राणी हैं। एक मित्र से किसी वकील की मुहूर्ति करने की पैरबी करवायी, तो वकील साहब ने उनके उपनामयुक्त नाम पर ही एतराज किया—'एक ही साथ दो नाम रहना गैरकानूनी है। और जिसका नाम ही गैरकानूनी हो वह कानूनी कारबार कैसे कर सकता है?'... एक सेठजी के घर बच्चों की पढ़ाने का 'टिप्पस' लगाया, तो सेठजी भी उनके नाम और उपनाम से भड़के। पूछा—'क्यों जी?' गाणा-वाणा तो नहीं बजाते हो?'... 'नहीं जी, हमें ऐसा मास्टर नहीं चाहिए।' चारों ओर से हारकर, आखिर एक दिन 'अगम' जी अपने नाम की कुर्बानी करने को तैयार हो गये। अपने नाम के अतिरिक्त-अंश को कतरकर अलग करना चाहते ही थे कि नौकरी दिलानेवाले देवता अचानक प्रसन्न हो गये, मानो। एक पुराने प्रेस में 'प्रूफ' देखने की नौकरी मिल गयी और तब से अगमलालजी 'अगम' अपने अखंड नाम के साथ ही 'प्रूफ' देखते हुए साहित्य-सेवा में संलग्न थे। किंतु, इस 'हरी क्रांति' की हवा ने 'अगम' जी के हृदय को ऐसा हरा बना दिया कि उन्हें चारों ओर हरी-हरी ही सूझने लगी। और, अंततः एक दिन शहर छोड़कर बोरिया-विस्तर समेत गाँव वापस आ गये।

गाँव के लोगों ने जब 'अगम' जी के ग्राम-प्रत्यागमन का समाचार कारण सहित सुना, तो उन्हें खुशी नहीं—अचरज हुआ। कई निकट के संबंधियों और शुभचिंतकों ने उन्हें नेक से नेक सलाह देकर शहर वापस भेजना चाहा। किंतु

‘अगम’ जी की आँखों के आगे सदैव ‘उन्नत किस्म’ के गेहूँ की बालियाँ झूमती रहतीं, ‘मंकर मकई’ के धूरे-धूरे बाल लहराते रहते । और जब आँखों में नींद आती, तो अपने साथ नये किस्म के उन्नत सपने ले आती—आलू की ढेरी, उख के अंबार और हरे चने और मटर की मखमली खेतीवाले सपने ! सो, ‘अगम’ पर किसी की सलाह का कोई असर नहीं हुआ और वे उत्साहपूर्वक अपने जीवन की ‘प्रूफ रीडिंग’ यानी भूलों को सुधारने में लग गये ।

खेती करने के लिए सबसे पहले हल, बैल और हलवाहे की आवश्यकता होती है । हल और बैल तो खरीद लिए गये । किंतु हलवाहा की समस्या जटिल प्रतीत हुई । अब्बल तो आजकल गाँव का सबसे निकम्मा आदमी ही हलवाही करता है । निकम्मा अर्थात् जिसे ‘घर-घरहट’, ‘छोनी-छप्पर’ और ‘कोड़-कमान’ का कोई ‘लूर’ नहीं, जो गाड़ी-बैल भी नहीं हाँक सकता—ऐसे ‘फूहड़’ आदमी के लिए गाँव में हलवाही के सिवा और कोई धंधा नहीं । ऐसे लोग, किसी भी गाँव में, आजकल बहुत कम ही मिलते हैं । एकाध हुए भी तो ऐसे लोगों को गाँव के बड़े-बड़े किसान बहुत पहले से ही चारा-पानी खिलाकर यानी ‘अग्रिम पारिश्रमिक’ (कर्ज नहीं) देकर, अनुबंधित कर लेते हैं । सो, बहुत खोज-बूँद करने के बाद, गाँव का सबसे अपाहिज और काहिल पुरुष बिल्लूदास—‘अगम’ जी को किस्मत में आकर जुटा । बहुत ‘खुशामद-दरामद’ और प्रलोभन देने के बाद—नित्य सुबह-शाम एक गिलास गर्म चाय पिलाने की शर्त पर बिल्लू महाराज राजी हुए । ‘अगम’ जी ने सबसे पहले उसके नाम को ‘प्रूफ रीडिंग’ करके सुधारा—बिल्लूदास नहीं, बिलोमंगल ! बिलोमंगलजी गाँव के सर्वश्रेष्ठ थालसी माने जाते थे । किंतु, ‘मुहरत’ के दिन ही ‘अगम’ जी ने उनको एक गिलास ‘औरेंज पिकोदार्जिलिंग’ चाय पिलाकर उनकी सारी सुस्ती इस तरह दूर कर दी और वे तत्काल ही इतने चुस्त हो गये कि उनके अंग-अंग फिल्मी गीतों पर झोलने लगे । हल जोतते समय जब गाँव के अन्य हलवाहे-मजदूर ‘बिरहा-बारहमासा’ गाते, तो बिलोमंगलजी के पैर ‘मस्तानी महबूबा’ के तर्ज पर पिरकते रहते । इसी प्रक्रिया में एक दिन दाहिने बैल के पिछले पैर में ‘फाल’ लग गया । ‘अगम’ जी को यह नहीं मालूम था कि हल का फाल भी इतना खतरनाक हो सकता है कि जरा-सा सग जाने पर महीनों तक बैल लँगड़ा होकर बैठा रहे !

खर, शुभचिंतकों और संबंधियों से बैल और मैसा मँगनी करके, ‘अगम’ जी ने किसी तरह खेतों को तैयार करवाया । कस्बे से रासायनिक खाद खरीद साथे और ‘बीज-वपन’ के लिए शुभ दिन देखकर गेहूँ की ‘बोआई’ हो गयी । ‘बोआई’ के बाद दोनों—अगम और बिलोमंगल—इतने प्रसन्न हुए कि रात-भर मिला-जुलकर—हुएट-भाव से—‘मिट्टी में सोना’ उपजानेवाले गीत गाते रहे । उसी दिन ‘अगम’ जी ने अपने शहरी साहित्यिक मित्रों को कई लंबी-लंबी चिट्ठियाँ

लिखीं, जिनमें 'नई खेती' के नये अनुभवों के आधार पर उन्होंने घोषित किया कि खेती करने में, कविता और चित्रकारी करने का आनंद, एक ही साथ प्राप्त होता है।

कई दिनों तक स्वामी-सेवक 'बोआई' के आनंद में मग्न रहे। कि, एक दिन सूर्योदय के एक घंटा पहले ही एक शुभचिंतक ने आकर दरवाजा पीटना शुरू कर दिया। सुबह के सुनहले सपने को छोड़कर 'अगम' जी अत्यंत अप्रसन्न हुए। शुभचिंतकजी को भला-बुरा कहना चाहते थे, किंतु इसके पहले ही शुभचिंतकजी ने सूचना दी, "तुम सोए हो ! जाकर देखो, तुम्हारे खेतों में गेहूँ का एक भी दाना बचा भी है या नहीं।"

अगमजी समझ गये, सुबह-सुबह दिल्लगी करके चाय पीने आया है। वे बोले, "क्यों ? गेहूँ के दाने कहाँ चले जायेंगे ?"

शुभचिंतक बोले, "अरे, जाकर देखो ना—हजारों-हजार कौआ, मैना और दुनिया-भर की चिड़ियों का झुंड तुम्हारे ही खेतों में पड़े है। गेहूँ के दाने चुग रहे हैं।"

"क्या सुबह-सुबह दिल्लगी करने आ गये ?"—अगमजी ने कहा।

"मैं दिल्लगी करने नहीं आया, तुमको 'चेताने' आया हूँ।"

अगमजी ने तकिया के नीचे से 'गेहूँ की सफल खेती' नामक पुस्तिका निकालकर शुभचिंतक के सामने फेंकते हुए कहा, "मुझे इतना उल्लू मत समझना। मैंने गेहूँ की सफल खेती के बारे में एक-एक शब्द पढ़ लिया है और जहाँ-जहाँ 'प्रूफ' की गलतियाँ थीं, उन्हें शुद्ध भी कर दिया है। ममझे ? इस किताब को खोलकर कहीं भी किसी अध्याय की किसी भी पंक्ति में खोजकर निकाल दो कि गेहूँ की 'बोआई' के बाद 'चिड़ियाँ-उड़ाई' भी आवश्यक..."

शुभचिंतकजी ने अप्रमत्न होकर जवाब दिया, "तुम्हारी इस किताब में क्या लिखा है और क्या नहीं लिखा है—यह मैं नहीं जानता। मामने तुम्हारे खेत हैं। जाकर खुद देखते क्यों नहीं कि खेतों में चिड़ियों के कितने अध्याय और कितनी पंक्तियाँ हैं..."

'बोआई' के बाद सभी किसानों के हलवाहे-रखवाले सूर्योदय के बहुत पहले ही खेतों पर चले जाते हैं। दुनिया-भर की चिड़ियों की टोलियाँ कचर-पचर करती हुई खेतों में उतरना चाहती हैं। किंतु, वे पटाखे छोड़कर तथा फटे कनस्तरो को पीट-पीटकर उन्हें उड़ाते रहते हैं—'हा, हा-ए !'

अगमलालजी 'अगम' ने गाँव से बाहर जाकर देखा—सचमुच अद्भुत व्यापार ! जो बात किताब के किसी पृष्ठ पर नहीं, वह खेत पर लिखी हुई है—आधुनिक कविता की पंक्तियों की तरह। और, जिस तेजी से उन पंक्तियों के बीच चले रहे थे, उतनी तेजी से किसी प्रेम में 'ऑटोमैटिक कंपोजिंग' भी नहीं

होती होगी। एक ही घटा में सब गेहूँ चुगकर खत्म कर देंगे !... 'अगम' जी के अंतर से, पूरी शक्ति के साथ बस एक ही शब्द अनायास निकल पड़ा, "हा—हाय !"

किंतु उनके 'हाय' का कोई खास असर नहीं हुआ और हाय की तालियों से जब पंछियों के एक पंख भी नहीं फड़के, तो उन्होंने एक ढेला उठाकर फेंका। ढेला खेत में गिरा, तो इधर चरती हुई चिड़ियाँ उड़कर उधर जा बैठीं और चुगने लगीं। अगमजी दौड़कर उस मेंड़ पर गये, तो पंछियों के दल उड़कर दूसरी तरफ बैठ गये। तब तक बिलोमंगलजी भी सहायता के लिए पहुँच गये थे। अगमजी को राहत मिली। पटाखे या कनस्तर तो थे नहीं, इसलिए दोनों बहुत देर तक इस मेंड़ से उस मेंड़ पर दौड़-दौड़कर 'ढेलेबाजी' करते रहे। मूरज बाँस भर चढ़ आया और पूस की सुबह का कुहासा तनिक छँटा और चिड़ियों के पेट भर गये तो वे स्वयं ही उड़कर बाँसों तथा पेड़ों की फुनगियों पर जा बैठीं।

उस दिन लौटकर 'अगम' जी ने 'गेहूँ की सफल खेती' नामक पुस्तिका के अंतिम पृष्ठ पर नोट लिखा, "बीज की 'बोआई' के बाद ही, 'चिड़िया-उड़ाई' पर विस्तारपूर्वक एक अध्याय लिखकर पुस्तिका के अगले संस्करण में जोड़ दिया जाये।"

'नोट' लिखने के बाद अगमजी ने बिलोमंगल से कहा, "कल सूरज उगने से दो घड़ी पहले ही खेत पर एक फूटा कनस्तर लेकर पहुँच जाना।"

"फूटा कनस्तर कहीं से लावेंगे?"—बिलोमंगल का सवाल था।

"कनस्तर?... तुमको कहीं फूटा हुआ कनस्तर भी नहीं मिलेगा?"

जवाब मिला, "जी, हमारी नजर में तो कहीं कोई फूटा कनस्तर नहीं पड़ा। आपने कहीं देखा हो तो कहिए, ले आता हूँ।... हाँ, सहुआइन की दुकान में साबुत कनस्तर जरूर मिल सकता है।"

बिलोमंगल लौटकर एक रुपया में एक कनस्तर उधार ले आये। कनस्तर को अगमजी के कान के पास पीटकर परीक्षा दते हुए कहा, "देखिए! एकदम साबुत है।"

कनस्तर की समस्या हल करने के बाद ही बिलोमंगल ने दूसरा सवाल पैदा कर दिया, "लेकिन, हमसे यह काम नहीं होगा।"

"क्यों?"

बिलोमंगल ने सर्वप्रथम कारण बतलाया, "बात यह है बाबू साहेब कि हम ठहरे बैस्नव आदमी। भोरे-भोरे इतने 'प्राणी' के मुँह का आहार छीनने का काम हमसे मत करवाइए।"

अगमलालजी को अचरज हुआ—क्या कहता है यह आदमी! झुंझलाए, "तो क्या चिड़िया उड़ाने के लिए दूसरा आदमी रखना होगा?"

बिलोमंगल ने भी झुंझलाकर जवाब दिया, “एक तो जाड़े का मौसम ! तिस पर सूरज उगने के दो घड़ी पहले ही उठना । इसके बाद, खेत पर पाँव-पैदल जाना । आजकल सुबह-सुबह ऐसी कनकनीवाली पछिया हवा चलती है कि बेह ब्या, जीभ भी सुन्न हो जाती है....”

अंततः सम्मानपूर्ण शतिया समझीता हुआ—कल से सूरज उगने के दो घंटा पहले नहीं, एक घंटा पहले बिलोमंगल अगमजी का ऊनी ओवरकोट और ‘कन-मप्पाटोपी’ पहनकर, पंरों में काबुली अपल ढालकर एक गिलास गन्म बाय पीने के बाद—एक बीड़ी गुलगाकर दूसरी जेब में रखते हुए—कनस्तर लेकर खेत पर पहुँचेगा । वह चिड़ियों को उड़ावेगा नहीं । सिर्फ, ‘चल उड़ जा रे रंछी’ गीत गाता हुआ, ताल पर कनस्तर बजाया करेगा ।

‘चिड़िया-उड़ाई’ के बाद जब खेत में गेहूँ की पीके फूटे और धीरे-धीरे बढ़े, तब अगमजी को मालूम हुआ कि बिलोमंगल की दाहिनी जाँख जन्म से ही दुष्टि-हीन है । जिस स्थान पर बैठकर वह नित्य कनस्तर पर ठेका बजाया करता था, उससे दाहिनी ओर के खेतों में बहुत कम पौधे उगे ।

अस्तु, पौधे बढ़ने लगे । हरियाली गहरी होती गयी और अगमजी दूर होते गये और बिलोमंगलजी ‘हरियाली और रास्ता’ के गीत गाते रहे । किंतु सिचाई करने का समय आया तो बिलोमंगलजी फिर अकड़ गये, “हम हलवाही करने के लिए बहाल हुए हैं, पानी पटाने के लिए नहीं ।”

इस बार भी सम्मानपूर्ण समझीता हुआ—बिलोमंगल जलपान करके खेत में जल सीचने के लिए खाली हाथ जायेगा । किंतु, गाँव के किसी किसान से ‘शगड़ा-कनिया’ नहीं करेगा । कोई जोर-जबर्दस्ती करे, तब भी नहीं ।

पहली सिचाई के अंतिम दिनों में भी जब अगमजी ने अपने खेतों में घूल उड़ने देखा, तो उनका माथा ठनका । खेतों में जाकर देखा—एक चुल्लू पानी भी किसी दिन नहीं पड़ा है । कारण पूछने पर बिलोमंगलजी के सम्मान को चोट लगी । उन्होंने समझीते की जर्तों का स्मरण दिलाते हुए कहा, “भाबू साहेब ! यहाँ तो कहावत चालू हो गया है कि ‘जो दिखावे मर्दानी—वह पावे पानी ।’ हम ठहरे हलवाहा आदमी । उधर, गाँव के बड़े-बड़े बाबू किसान खुद पानी के लिए आते हैं । उनमें ‘बनकुटी’ करके मार खाने कौन जाये ? आप खुद क्यों नहीं जाते ?”

अनंतोत्तरा, अगमजी स्वयं ही सिचाई के लिए पानी लाने के लिए खेत पर गये । वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा—हर नहर, आहर, छहर और पैन पर गाँव के बड़े-बड़े किसान लाठी और लठैतों के साथ जमे हुए हैं । अगमजी ने जब देखा कि बाँगर लाठी और लठैती के पानी पाना असंभव है, तो उन्हें ‘सत्याग्रह’ की याद आयी । उन्होंने ऐलान करके कहा, “सभी लोग मुन ले । कल से अगर मुझे पानी

नहीं लेने दिया गया तो मैं यहीं इसी 'साइफन' पर बैठकर 'आमरण-अनशन' शुरू कर दूंगा।"

लेकिन, नहर-विभाग में 'पाट-टाइम' करनेवाले, गाँव के एक किसान नीजवान ने उनकी, आमरण-अनशन-घोषणा को एक ही बात से निस्तेज कर दिया—"आपने तो पानी के लिए 'सट्टा' ही नहीं करवाया है तो पानी, कैसे मिलेगा?"

"सट्टा? यह 'सट्टा-पट्टा' क्या होता है?" अगमजी ने पूछा।

"जी, 'सट्टा' माने 'एप्रिमेंट'। जिन्होंने सट्टा करवाया है, पानी उन्हें ही मिलेगा। 'अनअथॉराइज्ड' पानी लेने पर तुरत मुकदमा दायर हो जाता है।"

अगमजी की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। वे चुपचाप मुँह बाये अपने सहायक बिलोमंगलजी की ओर देखते रहे। बिलोमंगल ने उनको किसफिसाकर बताया, "बाबू साहेब! यहाँ हर बात में 'पाटीपोलटिस' होता है।"

"पाटीपोलटिस?"—अगमजी मुँह बाये ही रहे।

"जी! गाँव 'दोपाटी' है। 'पुआरी-टोल' पाटी और 'पछियारी-टोल' पाटी। आपका घर दोनों टोले के बीच 'सीवान' पर पड़ता है। आपको लोग न इस टोल की पाटा म समझते हैं, न उस टोल की पाटी में..."

अगमजी गम खाकर गुमसुम लौट आये। रात-भर उनको अपनी निर्बलता पर, उनके अपने ही हृदय में ग्लानि और क्षोभ के बादल घुमड़ते रहे। और अंत में निर्बल के बल रामजी को उन पर ऐसी दया आयी कि आसमान में घने काले बादल उमड़ आये और घनघोर वृष्टि शुरू हुई। अपने सहायक की 'बरमात' का गीत गाने के लिए उन्होंने पुरस्कार दिया प्रसन्न होकर। सुबह जाकर देखा कि बगैर 'सट्टा-पट्टा' के ही उनके खेत में भरपूर पानी छलमला रहा है। पानी रह गया उनका!

पौधे एक बालिशत-भर और बढ़े तो अगम का हौसला भी डेढ़ हाथ बढ़ा। बढ़ता ही जा रहा था कि एक सुबह को बिलोमंगलजी आकर कोई आवश्यक सूचना देते हुए तुतलाने लगे। बार-बार 'भैंम-भैंम' सुनकर अगमजी ने समझा कि आज दूधवाले ने दूध नहीं दिया। किंतु, बात दूसरी ही थी और थी भीषण मारात्मक! रात में गाँव के भैंसबारों ने उनके तीनों खेतों की फसल को चराकर साफ कर दिया।

अगमजी दौड़कर खेत पर गए। वे रोना चाहते थे किंतु रो भी नहीं सके। गाँववालों को कोई अचरज नहीं हुआ। और न किमी ने इस अन्याय के लिए किसी से कुछ कहा। बल्कि, ठहरानेवालों ने अगमजी को इसके लिए 'दोषी' ठहराया। खेत में फसल लगाकर—बेसुध होकर घर में सोने से खेती चरेगी ही।

अगमजी ने अपने सहायक की ओर देखा। बिलोमंगल ने कहा, “बाबू साहेब ! अमल में बात यह है कि ‘जिसका काम उसी को साजे, और करे तो डंडा बाजे ।’ आप ठहरे ‘कागत-कलम’ वाले आदमी । अगर खेती करना हो तो यहाँ के लोग जैसा करते हैं, जो करते हैं, वह आपको भी करना होगा ।... यहाँ ‘अकल’ से बढ़कर ‘भैंस’ है। और, क्यों न हो ? भैंस का दूध मीठा है। बहुत ताकतवर होता है । और, जब ताकत होगा, तो लाठी भी मजबूत होगी । जब लाठी मजबूत होगी, तब दूमरे की भैंस भी आप हाँककर अपने बघान पर ला सकते हैं ।... और, भैंस तो ‘जीप’ गाड़ी से भी बढ़कर होती है । रात-बेरात जब जी में आवे, इस पर सवार होकर आप ‘बिजूबन-बिजूखंड’ में भी जा सकते हैं । न साँप-बिच्छू का डर, न भूत-पिशाच का कोई भय और न बाघ-भालू । कीचड़, पानी, कादी ओस, पल्ली—सबसे बचाकर, खेत की हर मेंड़ पर ले जाएगी और कोई सवारी ? सोचिए, जरा ।”

अगमलालजी ने मोचकर देखा—और बिलोमंगल को मान गये। इसलिये, गाँव के कई तथाकथित शुभचिंतकों ने एकांत में आकर जब अमुक-अमुक व्यक्तियों के चरवाहों पर मुकदमा दायर कर देने की गुप्त सलाह दी, तो उन्होंने इंकार कर दिया—कौन देगा उमकी गवाही ? चश्मदीद गवाह कहाँ मिलेंगे ? नहीं-नहीं ! उन्होंने जो करना है, उमका फँसला कर लिया है ।

अगमलालजी ने विचार कर देखा—अभी ‘भेला-तमाशा’ शुरू होनेवाला है। तीन महीने तक ‘प्रेस’ में खूब ‘ओवरटाइम काम’ रहता है। उसके बाद ही शुरू हो जायेगा—एलेक्शन का काम । वोटर-लिस्ट छपाई के दिनों दम-पंद्रह रुपये रोज ‘ऊपरी आमदनी’ हो जाती है... फिर, खेती के नये अनुभवों के आधार पर वह ‘गहूँ की सफल खेती’ में भी अच्छी पुस्तिका लिख ले सकता है ।... इन पैसों को जमा करके अगमजी सबसे पहले एक गुजराती भैंस खरीदेंगे—धर्मगंज के मेले में। इसके बाद, गगाजी के मेले में बनबाँस की मजबूत लाठी खरीद लावेंगे। तब, कलम का छोड़कर हाथ में लाठी गहेंगे और भैंस चरावेंगे, दूध पीयेंगे, डंडा पेलेंगे—लाठी को तेल नहीं—घी पिलाकर लाल बना लेंगे और तब खेती करने के लिए खेत पर उतरेंगे !... अभी शहर लौट जाना ही श्रेयस्कर है ।

गाँव छोड़कर पुनः शहर की ओर आने के दिन बिलोमंगलजी ने उमकी यात्रा की ‘शुभ’ करने के लिए कहा, “बाबू साहेब ! आपने हमको साल-भर के लिए बहाल किया था। अब आप बीच में ही हमको छोड़कर जा रहे हैं ! क्या यही ‘निसाफ’ है ?... खैर, आपकी जो मर्जी । मगर, मेरी एक अरजो है कि आप हमको भी अपने साथ ले चलिए । वहाँ जब आपको मिल गया है, तो मेरा भी कहीं-न-कहीं ‘डोल’ लग जाएगा ।... और, कुछ नहीं तो आपके दुश्मनों की ‘यात्रा’

तो रोज खराब कर ही सकता हूँ। कहावत है कि काना आदमी सेबक रहे तो मालिक की यात्रा को शुभ और मालिक के दुश्मनों की यात्रा को अशुभ करता है। वैसे आपकी मर्जी !”

अगमजी बिलोमंगलजी के साथ आज ही सुबह की गाड़ी से शहर वापस चले गये।

रेखाएँ । वृत्तचक्र

अस्पताल के सजिकल वाडं से मैं सदा दूर-दूर ही रहा करता था। कभी किसी घायल आत्मीय अथवा बीमार दोस्त को देखने के लिए गया, तो वार्ड के बरामदे पर ही पसीने से लथपथ और सिर में चकराहट। चारों ओर मिट्टी के बरतन-बासन की तरह टूटे-फूटे लोग। सफेद पट्टियों और प्लास्टर से बंधे उनके भग अंग। कटे-छटे हाथ या पाँव। चीरे हुए पेट से लगी हुई रबर की नली। पलंग के पास स्टैंड से लटकती हुई खून, अथवा प्लाज्मा, या सलाइन की बोतल। हवा में ईश्वर की उत्कट गंध और चीख-कराह-पुकार... इस बार बीमार होकर जब से सजिकल वाडं में भरती हुआ हूँ, सब-कुछ सामान्य और शील लगता है। घबराहट नहीं। मिर में चक्कर नहीं। कहीं कोई दुर्गंध नहीं। जब से होश में आया हूँ अपनी हालत पर खुद हँसकर प्राणांतक कष्ट सह लेता हूँ। आज हठात् अपनी इस बेबस अवस्था पर मुझे भीष्म पितामह की याद आयी। महाभारत की वह तसवीर आँखों के सामने स्पष्ट हो गयी... ब्लड की बोतल, बेड रेस्ट, राइस-ट्यूब, सलाइन की बोतल से लगी रबर की नली मेरे पाँव की नस में बिधी हुई... उमा से मैंने कहा—मे शरशय्या पर सोये हुए भीष्म पितामह की तरह नहीं लग रहा क्या?

उमा के हाँठो पर हल्की-सी मुस्कराहट दोड़ गयी। वह बोली—कल नाई को बुला लाऊँगी... दाढ़ी कितनी बढ़ गयी है...!

मैंने पहले एतराज जाहिर किया, फिर कुछ सोचकर कहा—आज ही क्यों न बुला लाती...?

सोचा, आज अगर हजामत नहीं बनी और आज ही कुछ हो गया... कुछ हो गया क्या, साफ-साफ क्यों नहीं कि यदि मर गया, तो आखिरी तसवीर कितनी बदमूरत उतरेंगी! बढ़ी हुई दाढ़ी, खुला हुआ विकृत मुह, चेहरे पर आतंक... नहीं-नहीं, आखिरी तसवीर में मेरे होठो पर मुस्कराहट अकित रहे, मरते-मरते चंष्टा करूँगा... स्माइल प्लीज...!

जलधरजी की याद आती है। जलधरजी की शव-यात्रा की तसवीरें 'माधुरी', 'फिल्मफेयर', 'चित्रपट' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं—चेहरे पर कैसी शांति छाई थी ! होंठों पर एक अपूर्व मुस्कान, ललाट पर चंदन। फूलमालाओं से ढका प्रसिद्ध मिने गीतकार जलधर... आँखें मूंदकर किसी मधुर गीत का मुखड़ा सोच रहा हो, मानो ! किंतु, पुष्पलाल ? अत्याधुनिक विद्रोही कवि, कथाकार पुष्पलाल के एक दर्जन में भी अधिक कैमरावाले मित्र थे। जब वह जीवित था तो मित्रों ने उसकी कई नंगी तसवीरें उतारी थीं। किंतु उसकी आखिरी तसवीर किसी के पास नहीं, किसी ने उतारी नहीं, अथवा उसने मौका ही नहीं दिया। पुष्पलाल के पेट में जब एकाध पैग 'माल' पहुँच जाता यानी जब वह मौज में आता, तो हर बात के पहले मैथिली की एक भद्दी गाली उगलता—'धीचो-ओ-ओ' ! सुना है मरने के पहले उसके मुँह से यही गाली निकली थी। उसके एक मित्र का कहना है कि उसने भगवान् को गाली दी थी। वह जिसे भी गाली दे, मैं उसके मरते हुए चेहरे की कल्पना करता हूँ। दोनों होंठों को संकुचित करके गोल बनाते हुए वह गोली दागता था—'धीचो-ओ-ओ' ! सामनेवाले बाइं में पिछले साल पुष्पलाल ने चोमा छोड़ा था। मैं जानता हूँ, मेरी बीमारी का समाचार सुनकर लोगों ने जलधर और पुष्पलाल को याद किया होगा। किसने क्या कहा होगा, अनुमान से ही मैं सही-मही बता सकता हूँ।

उमा इस तरह चिंतित होकर क्यों आ रही है उधर से ? कहती है—ब्लड बैंक में 'ओ' ग्रुप का इन्ड नहीं है। कल कोई रक्तदाता 'ओ' ग्रुपवाला नहीं आया, तो क्या होगा ?... उमा चिंतित हो फिर उधर चली गयी।

माला ! न जाने कैसे-कैसे और किस-किस पेशे के लोगों के खून ! एक दिन बाद देकर 300 सी० सी० रक्त शिराओं के द्वारा बूंद-बूंद कर डेढ़ घंटे तक मेरे शरीर के अंदर पहुँचाया जाता है। और डेढ़ घंटे तक निश्चल चित लेटा हुआ मैं स्टैंड में लटकती उलटी बोतल की ओर देखता रहा हूँ। रबर की नली के बीच लगे काँच के बल्ब में टपकते हुए गाढ़े खून की बूंदों को गिनता हूँ। फिर बूंदों के टपकने के ताल पर मन में मुखरित होनेवाली बात स्वयं ही पद्यबद्ध-सी होती जाती है।

दौड़ाया जा रहा है रोज, मेरी शिराओं में 300 सी० सी० रक्त !

किमी आततायी, आक्रामक, बूचड़ ब्रह्मचारी, कृपालु ईश्वर का... !

और तब कोई मेरे अंदर ही मुझे गाली देता हुआ कहता है—साले ! अब तू कविता करने लगा... ?

इस बार अस्पताल में होश संभालने के बाव ही से ऐसा होता है। मन-ही-मन किसी पंक्ति की आवृत्ति, तुकबंदी और व्यस्मील मुहावरे जड़ने का खिलवाड़ ! अबवा यह भी मेरे मूल रोग का कोई उपसर्ग है ? कई बड़ी बीमारियों के बाव

ऐसे ही लक्षण प्रकट होते हैं—रात से नाखून कुरेदना, बार-बार नाक पोंछना, हाथ की उँगलियों को नचाना, जीभ से होंठ चाटना—

उमा ब्लड का प्रॉब्लेम सॉल्व कर आयी है। उसके साथ मुस्कराती आयी है एक मोटी अघेड़ बंग महिला।

उमा कहती है—इनका भी 'ओ' ग्रुप है। कई साल से बराबर ब्लड बैंक में ब्लड डोनेट कर रही हैं।

महिला अपने बैग से एक लाल कार्ड निकालकर उमा की ओर बढ़ाती हुई कहती है—एमरजेंसी में ही हमेशा हमारा ब्लड लगता है।

उमा उससे बातें करने लगी। वह कल सुबह आठ बजे आकर ब्लड बैंक में अपना खून दे जाएगी। और बारह बजे से मेरी नसों में इस स्कूल-मास्टरनी का रक्त टपकने लगेगा। वह नमस्कार करके चली गयी, तो मेरा मुँह खुला—औरत का ब्लड ? तिस पर इस औरत का...? हरगिज नहीं ! कभी नहीं ! मैं लूंगा ही नहीं !

उमा चुप रही, तो मैं लगातार दुहराने लगा—मैं लूंगा ही नहीं। नहीं लेना है...नहीं लेना है...!

—क्या लड़कपन कर रहे हो !—उमा किंचित् हँसती हुई मुझे डाँटती है।

—मैं हरगिज नहीं लूंगा !

—मत लेना ! अभी चुप तो रहो !

—मैं चुप भी नहीं रहूँगा ! मैं अभी दूध भी नहीं पीऊँगा। दबा भी नहीं।

उमा फीडिंग कप में दूध डालकर चम्मच से दवा मिलानती रहती है और मैं कटे हुए रेकार्ड की तरह बजता रहता हूँ—दवा भी नहीं ! दूध भी नहीं ! दबा भी नहीं ! दूध भी नहीं...!

यदि नाइट नर्स मिस नीलम्मा नहीं आ जाती तो लगातार दस-पंद्रह मिनट तक आँखें मूँदकर इसी तरह बोलता रहता और उमा हाथ के 'फीडिंग कप' में चम्मच चलाती मुझे डाँटती, पुचकारती रहती। इस लड़की को मैं मन-ही-मन रजनीगंधा की खिली हुई कली कहता हूँ। रात-भर इसी तरह तरोताजा यह मंद-मंद मुस्कराती और मह-मह महकती रहेगी।

—यह कौन-सा गाना चल रहा था ?—नीलम्मा अपनी 'केरालाई हिंदी' में पूछती है।

मेरे मुँह में फीडिंग कप की टोंटी डालती उमा मुस्कराकर जवाब देती है—दूध भी नहीं ! दवा भी नहीं...!

—बाह ! कित्ता अच्छा गाना है ! कल से फीडिंग कप नहीं, फीडिंग बॉटल ले आइए !—नीलम्मा थर्मामीटर झाड़ती आगे बढ़ जाती है। मुझे आज्ञाकारी बालक की तरह दूध पीते देखकर कहती है—दूध पी के खूब गाना गा !

उमा और नीलम्मा एक ही साथ हँस पड़ती हैं।

नीलम्मा बृत्तार मापकर चली गयी, तो उमा उगकी नकल करती हुई बोली—
/दूध पी के खब गाना गा...!

किंतु मैं हँस नहीं सकती हूँ। गाना, गीत, मांग, म्यूजिक, लै, टेक, रेकार्डिंग, प्लेबैक वगैरह शब्द सुनने ही मुझे हिचकी आने लगती है। हिचकी अर्थात् हिककप, जिसे मात दिन तक, दिन-रात हवा अदल-बदलकर डॉक्टरों ने मुश्किल से दूर किया है। हिचकी के बाद मतली, यानी नांमिया। फिर अंतर्द्वियों में सोया दर्द धीमे-धीमे शूल बनकर चुभने लगता है। तब शुरू होता है वमन। सब दवा, पथ्य, टेब्लेट्स, प्रेगुल्स, पिल्स, कैप्सूल, ड्रॉप्स एक साथ बाज़र ! वमन के बाद ही काँसा, मज़ाहीनता !

हिचकी शुरू हुई और उमा ड्यूटी रूम की ओर भागी। उमा के साथ खुट-खुट करती नीलम्मा तेजी से आती है। मेरी नाड़ी पर उँगनी रखती है और फिर तेजी से ड्यूटी रूम में चली जाती है। निश्चय ही बड़े डॉक्टर को कॉल देंगे...

'शि-वू-ऊ-ऊ !' लगा, गंगा के उस पार में कोई मुझे पुकार रही है। मैं जबाब देना चाहता हूँ, आवाज़ नहीं निकलती। आँखें खुलती हैं। मेरे नामाछिद्र में लगी राइन ट्यूब में मोटी सीरिज लगाकर नीलम्मा मेरी अर्तर्द्वियों में जमे हुए दूषित-कुपित पित्तज तरल पदार्थ को खींच-खींचकर बाहर निकालती जा रही है। पाम खड़े बड़े मर्जन डॉक्टर अजय चुपचाप मेरी ओर देख रहे हैं।

पेट का शूल धीरे-धीरे कम हो रहा है। शायद हिचकी रोकनेवाली मूर्ई लगाई गयी है। उस मूर्ई के बाद एक पैंग स्कांच का नशा-मा हो जाता है...तो काँसा काँसा में नहीं गया ! काँसा ! हास्यरस के उन बनारसी कविजी का नाम भूल रहा हूँ, जिनकी एक कविता की पक्ति है : अिदगी का सेटेम है...काँसा...कुल स्टॉप ?

लेकिन मैं काँसा को समाधि कहना हूँ। मूच्छा को मय्याम रोग भी कहा जाता है न ! आश्चर्य ! बेहोशी में देखे हुए सपनों के दृश्य मुझे विस्तारपूर्वक याद हैं।

देखा, सभी लोग पेट पकड़कर झुके हुए हैं, झुक गये हैं अचानक, जो जहाँ है, वह अपने दोनों हाथ कमर पर रखकर झुका हुआ है। खेत-खलिहान में काम करते हुए लोग, नहर के किनारे खड़े लोग, चने के खेत में भाग खोटी हुई औरतें, सभी दर्द में छटपटा रहे हैं। हवा में एक विचित्र प्रकार की खटाम है। सब-कुछ खट्टा-खट्टा। हवा का एक झोंका आता है और सभी एक साथ चीखकर और भी झुक जाते हैं। सभी व्यक्तियों के शरीर मुड़कर विवृत स्वस्तिक चिह्न जैसे... मैंने सुना, कोई रेडियो पर किमी स्टेशन में ऐलान कर रहा है—भाइयो ! भाइयो ! यह कोई एटॉमिक गडबड़ी हुई है। जमीन पर पेट के बग नेट जाइए। वैक़म आ

रहा है। बैकवम ! ओ-य-क ! ओ-य-क। हजारों लोग एक साथ बमन कर रहे हैं। सभी के मुंह से एक ही शब्द—बैकवम ! बैकवम ! बैकवम !... किंतु उमा स्वस्थ है। दौड़ी आ रही है—भय नेई, भय नेई। आर बैकवम एदिके आमबे ना। डरने की बात नहीं, गलती से ऐसा हो गया है। किसने की ऐसी गलती ? यह जानलेवा गलती किसकी है ? अमरीकी बैज्ञानिकों की या रूसी व चीनी या पाकिस्तानी, अथवा भारतीय... जुडिशियल इन्क्वायरी हो। गलती करनेवाले को सजा दो। नहीं तो गद्दी छोड़ दो।

समाधि भंग होने पर अपने चारों ओर डॉक्टरों को खड़ा देखकर मैं पूछना चाहता था—आखिर किसकी गलती थी ? लेकिन कुछ पूछ नहीं सका।

ऑक्सीजन सिलिंडर लगी हुई नली मे मुझे नाथ दिया गया था।...

दूमरा दृश्य : अशोक राजपथ पर एक बड़ा-सा जुलूस आ रहा है। कोई नारा नहीं। शोर-गुल नहीं। जुलूस करीब आता गया। सड़क के दोनों किनारे असंख्य लोग पंक्तिमें में खड़े इस जुलूस की प्रतीक्षा कर रहे हैं। किंतु यह जुलूस आदिमियों का नहीं, सफेद बत्तकों का है। मुड़ी हुई गर्दन, दूध की तरह सफेद डैने, गुलाबी चोंच... हजारों-हजार बत्तकें पैक-पैक-पैक... पैक-पैक-पैक करती हुई अस्पताल की ओर मुड़ गयीं। फिर गंगा-किनारे सभी बत्तकें पंक्तिबद्ध पानी में उतर गयीं। गंगा के इस पार से उस पार तक बत्तकों का एक पुल बन गया। नीले जल पर सफेद पुल... जीवंत पुल... पैक-पैक-पैक-पैक... उमा मुझे हाथ पकड़कर उठाती है—शिबू। ताड़ाताड़ी ओ पारे चलो... शिगिर... नइले पुल भगे जावे। पैक-पैक-पैक... मैं टटोलकर उमा का हाथ पकड़ता हूँ। बत्तक के डैने मेरे हाथ से फड़-फड़ाकर निकल जाते हैं, सशब्द... पैक-पैक-पैक—मैं पुकारता हूँ, किंतु उमा जवाब नहीं देती। मैं उमा का नाम लेकर पुकारता हूँ, किंतु मेरे कंठ से भी सिर्फ बत्तकों की बोली-निकलती है... पैक-पैक-पैक।...

संज्ञा झोटने पर देखा : मेरे मिरहाने से केहुनी टिकाकर स्टूल पर झुकी बैठी उमा सो गयी है। मैंने उमा को पुकारा, पर मेरे मुंह से निकला—माँ ! माँ !

माँ होती तो, इसी तरह झुकी सिर के बालों में हाथ फेरती हुई कहती—शिबू रे ! अपना गाँव छोड़कर तू यहाँ क्यों आया, बेटे ? कितना अच्छा था तू ! क्या से क्या हो गया यहाँ आकर ! लौट चल, बेटा ! हम नून-भात खाकर रहेंगे, पेड़ के तले सोएँगे, मगर...

लगता है, आधी रात गुजर गयी। बेड नंबर दस के पास इतनी भीड़ क्यों है ? वाडं कुली मेरे पर्लेंग के पास से ऑक्सीजन मिलिंडर घसीटकर ले जा रहा है। लगा, फ्राइसिस मेरे पर्लेंग के पास से बेड नंबर दस के पास जा रहा है। फर्श पर भारी नोहे के घमीटने की आवाज से सारा वाडं आतंकित है। बेड नंबर पाँच पर छुरेबाजी से घायल बिहारशरीफ का टैंकसी ड्राइवर अचानक चिल्लाना शुरू कर

देता है—कहाँ रे, छोटना? कहाँ है चोट्टीवाले? मामने आ ! अब निकाल छुरा !...

बेह नंबर दम के पाम अचानक कुहराम । किडनी का मरीज, अस्मी साल का बूढ़ा चल् बसा । बेटी, पतोह, ननियों और पोतियों की भीड़ ने रोना शुरू किया । और मैं उनका रोना गुनकर ममझ जाता हूँ, वे उत्तर बिहार के किमी गाँव के हैं ।

पुष्पलाल अकसर कहता (पता नहीं, अपनी बात कहता था या कही पढ़ी हुई) कविता लिखने का एकमात्र विषय है : मृत्यु !

पुष्पलाल की कविता या कहानी कभी मेरी ममझ में नहीं आयी । पुष्पलाल से मेरी पहली मुलाकात कलकत्ता में एक खाटी-बंगाली बार में हुई थी, जहाँ स्पेशल आर्डर देने पर तेल में तली कचरी और माँ काली मार्का देशी 'माल' की बोतल मिल जाती है । करीब एक दर्जन बंगाली छोकरो के बीच कचरी कचरता और गटागट ठर्रा पीता पुष्पलाल अपनी अंग्रेजी कविता जोर-जोर से सुना रहा था । कविता में ममझ में नहीं आयी; मेरे पल्ले दो-तीन शब्द ही पड़े—'ओ लुमुबा लुमुबा' तथा 'क्रॉम ऐंड शिक्लिंग'...

आज दोपहर को हमारे एक परिचित व्यक्ति ने उमा को 'आर्ट ऐंड थ्रॉटिस्ट्स', अंग्रेजी त्रैमासिक का ताजा अंक भेज दिया है । हमारे किमी शुभचिंतक ने उसमें अपना एक लेख प्रकाशित कराया है । उस लेख में हमारी चर्चा भी की गयी है । मैंने उमा से कई बार पढ़ने को कहा, किंतु वह टालती गयी । बोली—'क्या होगा मुनकर ? क्या फायदा ? कोई गलत थोड़ी लिखा है' । तुम लोगों की कीर्तिकथा... सही-सही...

उमा की यही आदत मुझे अच्छी नहीं लगती । वह कुछ देर के लिए बाहर गयी, तो मैंने अपने पड़ोसी के नौजवान एटेंडेंट को बुलाकर लेख पढ़ने को कहा । कुछ तो उसके मगहिया उच्चारण के कारण, कुछ अपनी अल्पज्ञता के चलते, मैं लेख का पूरा आनंद नहीं ले सका । हाँ, मूल वक्तव्य भमझने में कोई कठिनाई नहीं हुई । लिखने की शैली निश्चय ही प्रशंसनीय थी...तीन साल पहले बंबई में फिल्म के प्रसिद्ध गीतकार जलधर के घर पर माल-भर तक माध्यमोष्ठी में नित्य चार नामी-गरामी कलाकार एकत्र होते । वे सभी एक्स्पेरिमेंटल फिल्म बनाने के मिलभिले में पटकथा, संवाद तथा गीतों के बोझ पर बहम करने के लिए वहाँ जमा होते । किंतु बात खुलने में पहले बोतल खुल जाती और बात जहाँ की तहाँ रह जाती । बात कभी शुरू होती भी, तो आपस में झगड़ बैठते । वे अर्थात् जलधर, लोकगीत गायक शिवनाथ, बंगाल का मूतिकार रामरंजन और बर्मा को अपनी जन्मभूमि माननेवाला हिंदी का मैथिली कवि पुष्पलाल । इन पंक्तियों के लेखक के अलावा 'आर्ट फिल्म' तथा 'न्यु मिनेमा मूवमेट' के सभी प्रेमियों को इस चतुरंग

गोष्ठी में बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। किंतु अब यह प्रमाणित हो रहा है कि यह आत्महत्याओं का गिरोह-मात्र था और वे मरने के लिए ही हर शाम को मिलकर बैठते थे। पिछले साल जलधर की मृत्यु लिवर के घाव से हुई और तीन महीने के बाद पुष्पलाल पेट के कैंसर से मरा। इस बार पेट के दर्द से संज्ञाहीन होकर शिवनाथ पटना के अस्पताल में पड़ा हुआ है। और अभी-अभी समाचार मिला है कि रामरंजन को कलकत्ता की एक नगरवधू के कोठे की मीथियो पर नशे में चूर और घायल पाया गया। दोनों की हालत गंभीर बताई जाती है।...

इसके बाद ही लेख का मूल वस्तु एक प्रश्न से प्रारंभ हुआ है—ऐसा क्यों? फिर, विद्वान् लेखक ने मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक विश्लेषण करते हुए स्वयं ही इसका उत्तर दिया है। संभव हुआ, तो कभी खुद पढ़कर समझ लूंगा। अभी मेरे दिमाग में इस लेख के कई शब्द तथा पंक्तियाँ ही रह-रहकर मुखरित होने हैं—
 पर्सनालिटी डिमॉण्डर... ईडिपस कॉम्प्लेक्स... डेथ विश... मेलफ डिस्ट्रिक्टिव...
 शापेनहावर सुमाइड जास्टेफाइड, बट नेवर कमिटेड इट... मैं इन द प्रोडक्ट ऑफ हिज कल्चर ऐंड हिज इनविरोनमेंट।...

मैं साहित्य का साधारण पाठक : मुझे इन बहुमो से क्या लेना-देना। उमा कभी-कभी एक बंगला मुहावरा दुहराकर मुझे समझाती, 'अदरक के व्यापारी की जहाज की खबर लेने की क्या जरूरत?' किंतु वह मुझे जितना समझाती, मैं उतने ही उत्साह से साहित्य तथा कला की चर्चा में लीन हो जाता। पुष्पलाल कहता—
 शिबू दा ! यह 'हैया हो हाय-हाय', यानी लोक-फोकगीत गाना छोड़कर लिखना शुरू कीजिए।...

मैंने लिखना तो नहीं शुरू किया, मगर दाढ़ी रख ली। रामरंजन दा ने अपने हाथ से एक दिन मेरी दाढ़ी को तराशकर अल्ट्रा माइंड बना दिया और उम्मी दिन पुष्पलाल और रामरंजन दा में माइंड और कांटेपरेरी शब्दों को लेकर मारपीट तक हो गयी। पुष्पलाल जब कभी अपनी गलत बात को सही करने के लिए बतंगड़ खड़ा करता, रामरंजन दा ऐसा ही करते। हममें सबसे बड़े रामरंजन दा और सबसे कनिष्ठ पुष्पलाल ! दोनों की यह लड़ाई उपभोग करने की चीज।...

सो, सब ठीक है, मगर सारे, तुम माइंड होने क्यों गये ?

मचमुच, मैं क्यों हम चोपट में पड़ गया ? कैसे पड़ गया ? किंतु मेरा क्या दोष ?...

राजनीति करता था, सभाओं में मुख्य वक्ताओं तथा नेताओं के भाषण में पहले, भीड़ को शांत रखने के लिए, गीत से भुलाए रखने के लिए मेरी जरूरत होती और हाथ में घुंघरूवाली खंजनी लेकर मैं मंच पर अलापता हुआ प्रकट होता—भैया किसनवाँ हो, दुश्मन तोहार बड़का ज-मीं-दा-आ-आ-र !...

अगर मेरे गले में एक खाम किस्म की मिठाग नहीं होती और यदि लोकगीत

आधुनिक रुचि-संपन्न शहरी लोगों के लिए फैशन नहीं बन जाता, तो आज मेरी जगह कहाँ होती ? तब शायद राजनीति नहीं छूटती और दल बदलते-बदलते पता नहीं आज किस दल में होता ! अगर पटना में रेडियो स्टेशन नहीं खुलता, तो मैं जो था, बही रहता ।...

याद आती है, पहली बार रेडियो से मैंने जब 'सारंगा सदाबुज' गीत-कथा प्रसारित की थी, भाव-विभोर होकर स्टूडियो से बाहर आते ही सबमे पहले अहिंदीभाषिणी पेक्म (प्रोग्राम एक्जिक्यूटिव) मिम नैनी कुट्टी ने गद्गद होकर मुझे बधाई दी थी, 'मैंने गीत का एक शब्द भी नहीं ममझा, किन्तु लगा कि मेरे अंदर कोई घटना घट रही है !'

इसके बाद से ही हर सप्ताह एक दिन सुबह-शाम मेरे गीत प्रसारित होने लगे, कुछ ही दिनों में लोगों की जबान पर मेरे गीत थे; मेरा नाम हर सांस्कृतिक समारोह के पंचों में मोटे अक्षरों में, विशेषण सहित, छपने लगा : 'जिसके गीत माटी की सौंधी सुगंध बिखेर देते हैं...', 'जिसके कंठ मे मिथिला की विरहिणी आकर बैठ जाती है...', 'जो जीवन का गीत गाता है...' आदि-आदि। उधर फिल्म जगत में पंजाबी भांगड़ा की लहरें घूम मचाकर लौट गयी थी। नये दौर में लोकगीत की बारी आयी और इसके साथ ही मेरी जिंदगी में एक नया तूफान चलने लगा...बंबई, मद्रास, कलकत्ता...गराब, औरत, जुआ...दुश्चरित्र जीवन-विलास...काम से जी चुराने के साथ धोखाधड़ी, जालसाजी। मिट्टी में गड़े हुए ग्रामीण शब्द उखाड़कर, अनगढ़ डंग से दर्जनों कहानियाँ गढ़कर, गीतकथा बनाकर, पुरातन तथा ट्रेडिशनल लोकगीत के नाम पर मैंने चतुराई से चला दिए : महुआ घटवारिन, नैका मुल्गिर, नैना जोगिह, मैनावंती, डोलन सरदार, दुखा पौसी। एक फिल्म के लिए तो 'झायनों का सामूहिक नृत्यगीत' तक रचकर मैंने एक प्रोड्यूसर-डायरेक्टर की आँखों में धूल झोंक दी—जनाध, नेपाल की मोग्ग तराई में बसनेवाली कोच जाति के 'ओझागुणी' तथा प.रू जाति के 'भगता', 'किरात', 'घामियो' के चरणों की सेवा करके ही इसे प्राप्त किया है।...वह सामूहिक नृत्य-गीत बाद में सेंसरवालों ने कटवा दिया। हाल में बच्चे ही नहीं, बूढ़े और जवान भी डरकर बेहोश हो गये थे !

उमा नहीं होती, तो मैं जलधर और पुष्पलाल से पहले ही हवा हो जाता। किंतु पिछले साल उमा ने एक दिन हारकर कह दिया—तुम्हारी जो मरजी हो, करो। मैं अब कुछ नहीं बोलूँगी। मेरे बूते के बाहर की बात है...मैं नहीं कह सकती...आमि आर पारी ना...!

तब मुझे अचानक गायब होने का बहाना मिल गया और करीब दस महीने तक काठमांडू, कामरूप, कामाख्या और मिहभूम के जंगलों-पहाड़ों में एक नई सभ्यता, एक नये जीवन-दर्शन का मसीहा बनकर आधा दर्जन देशी-विदेशी लड़के-

लड़कियों के साथ अलख जगाता फिरा ।... यौनाचार... चीनाचार... बामाचार !

साले ! यह अस्पताल है, चर्च नहीं !

नहीं, नहीं, मैं कोई कमूर कबूल नहीं कर रहा । मेरा मतलब है, मैंने कोई कमूर किया ही नहीं । इस दुनिया, अर्थात् इस विराट वेश्यालय में मैं ही सबसे बड़ा पुण्यात्मा हूँ, क्योंकि मैं ही इसे समाप्त करना चाहता हूँ । ध्वंस !...

उमा जग गयी है ।

मेरी ओर देखकर कहती है—नाक से ट्यूब निकाल दिया ?... जामि आर पारी ना !

—नाक के अंदर घाव हो गया है ।

—किसे कहा ?

—कहेगा कौन !...

उमा शायद नीलम्मा को बुलाने गयी । भोर होने को है, किंतु नीलम्मा उसी तरह खिली हुई है, कहती है—नाम में 'नाथ' रखता है और नाक में 'पमन्न' नहीं ! लीजिए, निगलिए... और बोड़ा... ठीक है... वोमिट करेगा तो हम देखेगा... ठीक... बाह ! लोकखी छेयले !

नीलम्मा ने न जाने कहाँ से 'लकड़ी छेले' कहना मोख लिया है । उपयुक्त अवसर पर इसका प्रयोग करती है—अबी नली खोलेगा, तो अबी इधर आके पलंग में दोनों हाथ बाँध देगा ।

मैं क्या नीलम्मा को प्यार करने लगा हूँ ? क्या उमा समझती है कि मैं नीलम्मा को प्यार करने लगा हूँ ? देखता हूँ, प्रेम में पड़ जाने का एकमात्र ख्याल आज भी अस्पताल ही है ।

हरामजादे ! नीलम्मा या किसी को प्यार करके अब क्या करेगा तू ? जब तक माँस चलना बंद नहीं हो, काम की आग शायद नहीं बुझती ! नीलम्मा को देखते ही मेरे शरीर का रोम-रोम बज उठता है । ठीक पंद्रह वर्ष पहले उमा को देखकर ऐसा ही होता था ।

नीलम्मा मेरी ऑक्सीजन मिलिडर ! प्रेम को पुनः पनपानेवासी मिथुन राशि की कन्या... अनन्या !...

साले ! फिर कविता ?

पुष्पलाल ने अपने लेटर पेंड के एक कोने पर मिथुन राशि का प्रतीक चित्र छपाया था... यौनलीला के लिए प्रस्तुत बँठी अर्धनग्न स्त्री-पुरुष की जोड़ी ! पिछले पाँच वर्षों से उमा मेरे साथ नहीं सोती । नहीं मोती, यानी यौन-संपर्क से दूर रहती है । वह मेरे अंग-प्रत्यंग को अपवित्र और घिनौना समझने लगी है । तब से मैं उमा से लजाने लगा हूँ ।... एक बार किशोरावस्था पार करने के बाद, यानी गुप्त प्रदेशों में नन्हे-नन्हे काले-काले घुँघराले बालों की पहली फसल के

दिनों, एक सुबह आठ बजे तक मुझे सोता देखकर माँ ने गुस्से से मसहरी हटाकर देह से चादर छीन ली थी और चादर के नीचे मैं एकदम नंगा था... लाज के मारे मैं सात-आठ दिनों तक माँ से आँखें नहीं मिला सका था... बैसी ही लाज ! यहीं मुझ पर अपने परिवेश, परिवार और प्रेम के संबंधों को कलुषित करने का दोषा-रोपण किया जाता है।

वह सब-कुछ नहीं, असल में मैं हर माने में दिवालिया हो चुका हूँ। शराब ? साली साँप के जहर से बनी हुई शराब भी मैंने पी है। शराब, गाँजा, चरस और सिगरेट के अतिरिक्त सेवन से मेरी आवाज विकृत हो गयी है। यह अब बाजार में नहीं चल सकेगी। जिस कंठ से मैं चंपाकली की तुनुक पंखुड़ियों के टूटने के शब्द को कुशलता से प्रस्तुत कर दिया करता था, उससे फटे झ्रॉस की-सी आवाज निकलती है। और जब गा ही नहीं सकूँगा, तो जीकर क्या होगा ? फ्लैट में मेरी अलमारी में अब भी डिपल की भरी-पूरी बोतल पड़ी होगी। मैं नहीं रूँगा, तो वह किसके काम आयेगी ? उम ! उम ! अलमारी से निकालकर खिड़की से बाहर फेंक देगी। नहीं, नहीं, फेंक नहीं सकेगी, फेंकना चाहकर भी रख लेगी; जब तक जियेगी, उसे यत्नपूर्वक रखेगी; संभवतः अपने पूजाघर के कोने में महाकाली के पेट के पास रखेगी... गंगाजल की बोतल के पास ही... गंगा... गंगा !...

पटना की गंगा को मगह की गंगा अर्थात् पुण्यहरा कहते हैं लोग। इसलिए पटना की गंगा का कोई पक्का घाट नहीं; एक-दो हैं भी, तो इतने गंदे कि उधर कोई मूँह भी नहीं फेर सके। पटना की गंगा के किनारे जलनेवाले मुर्दों को न शांति मिलती है, न मुक्ति। इसलिए पुष्पलाल जैसे विद्रोही की लाश भी उस पार सेमरिया घाट पर ले जाकर जलायी गयी... किंतु इसी गंगा के किनारे 'पटना क्लब' के रमणीय लॉन में बैठकर मौज से दारू पीते समय और पटना मेडिकल कॉलेज अस्पताल के किसी वेड पर वेबस पड़े दवा पीते वक्त आदमी के मन में पटना की गंगा की जय-जय ध्वनि अपने-आप गूँज उठती है। मेरा विश्वास पक्का है कि इस अस्पताल के सत्तर प्रतिशत रोगी सर्वरोगविनाशिनी गंगा की हवा के प्रताप से ही स्वस्थ होते हैं, मरते-मरते जी जाते हैं। अपने देश में किसी दरिया के किनारे ओर कहीं कोई अस्पताल है, मुझे नहीं मालूम।

घाट से कोई स्टीमर खुलने की तैयारी कर रहा है शायद। आजकल नये किस्म का साइरन बजता है... अथाह जल के अंदर से आती हुई, घुटती हुई-सी आवाज... इस साइरन का सही नाम क्या है, पूछना होगा।

नहीं, स्टीमर नहीं ! यह क्राइसिस ! अर्थात् ऑक्सीजन सिलिंडर लाया जा रहा है। फर्श पर भारी लोहे के घसीटने की आवाज क्रमशः नजदीक आती जा रही है। क्यों ? मेरे पास फिर क्यों ? मैं होश में हूँ। जगा हुआ हूँ। पलंग से स्टूल सटाकर, मेरे बायें कंधे के पास सिर पर रखकर उमा सो गयी है। घीरे से

पुकारता हूँ—उमा ! मुंह मे आवाज निकलने से पहले ही सिंलिडर बसीटकर लाने-वाला आदमी उछलकर मेरा मुंह दबा देता है । सिंलिडर बसीटकर लानेवाला व्यक्ति वाइं कुली नहीं, पुलिस का दरोगा है । उसके साथ पुलिस के कई सिपाही हैं, जो मेरे पर्लिंग के चारों ओर आकर मुझे घेर लेते हैं...वे मेरी तलाशी लेंगे । मैंने रजाई के नीचे अश्लील पुस्तकें, अवैध गाँजा और नर्स नीलम्मा की लाश छिपा रखी है । उमा ! देखो तो, ये क्या कह रहे हैं ? दरोगा चिस्लाता है—चुप रह साले ! एक सिपाही मेरी रजाई हटाना चाहता है । मैं विरोध करता हूँ—रजाई के नीचे मैं नंगा हूँ...एकदम नंगा हूँ...सालो...हरामजादो...मादर-चो-ओ...बेटीचो...कुत्ती का बच्चा !...दनादन दोनों सातें चलाना शुरू किया मैंने...और उसी ताल पर लड़ाई का नगाड़ा बजने लगा...किसी के मुंह पर, किसी के अंडकोष और चूतड़ पर मेरी लातें लगती हैं और वे एक-एक कर, नगाड़े के ताल पर भागते जाते हैं । हद है ! उमा उसी तरह झुकी हुई है । यहाँ इतना शोर-गुल हो गया, कान के पास लड़ाई का नगाड़ा बज गया, किंतु उसकी नींद में कोई बाधा नहीं पड़ी । तब रजाई के नीचे से गरदन निकालकर नीलम्मा मुझसे पूछती है—पुलिस का लोग सब चला गया ? अब तुम चुपचाप मुझे मार डालो । आओ ! रजनीगंधा की सुगंध मेरी नाक में समाती जा रही है और नीलम्मा अब अनुनय-भरे स्वर में कह रही है—प्लीज, किल मी...किल मी ! मैं उमा को झकझोरकर जगाता हूँ । उमा लुढ़ककर फर्श पर गिर पड़ती है और उसके गिरने की आवाज जलतरंग की तरह...या नीलम्मा खिलखिलाकर हँस पड़ी है । मैं भी उसके साथ हँसना चाहता हूँ, किंतु हँसने के बदले मैं 'माँ, माँ' पुकारकर रोने लगता हूँ । मैं रोता जाता हूँ और नीलम्मा उसी तर्ज पर बगला का 'रामप्रसादी' अलापती है—माँ-आँ-आँ-आँ ! असल में रोने के बदले गा ही रहा हूँ, मैं !

ममाधि नहीं, सपना ? पता नहीं क्या सच है और क्या सपना ! जो भी हो, मैंने नीलम्मा की हत्या नहीं की है । वह डॉक्टर की मदद कर रही है । डॉक्टर कहते हैं, मैं सपने में हाथ-पाँव मार रहा था । नीलम्मा हँसकर कहती है—हमारा इधर में ऐसा किक मारा कि हमको नोवलजिन लेना पड़ा ।...

मुझे कोई मूर्ख दी जा रही है, शायद !

उमा इस तरह घबराकर मुझे क्यों देख रही है ? ऐसी घबराहट उसके चेहरे पर जीवन में कभी नहीं देखी । रुंधे गले में पूछ रही है मुझसे—की होये छे ? ऐसा क्यों कर रह हो ? कैसा लग रहा है ? बोलो ना... बोलते क्यों नहीं...बाबू... शिवू बाबू रे... !

उमा हठात् चीख पड़ती है । लगा, आकाश चरचराकर फट गया । तारे झड़ रहे हैं झहर-झहर—माँ गो-ओ-ओ ! आमार सर्वनाश कोरो नां...आमार केउ नई...डॉक्टर बाबू ! मेरा कोई नहीं इसके सिवा...हाहाहा...डॉक्टर बाबू !...

मैं सब-कुछ देख रहा हूँ। सब-कुछ सुन रहा हूँ। पर कुछ कह नहीं पा रहा। नीलम्मा उमा को दोनों हाथों से पकड़कर उठाती हुई समझा रही है—एक नया ड्रग दिया गया था, उमी का रिएक्शन हुआ है। अभी ठीक हो जायेगा। सूई पड़ा है...

सर्जन अजय की झिड़की सुनायी पड़ती है—उमा ! यह क्या हो रहा है ?

—मेरा शिवू बोलता क्यों नहीं, डॉक्टर ?

—बोलेगा...अभी बोलेगा...तुम चुप रहो।

—अच्छा, मैं चुप रहूँगी ! मैं चुप हूँ।

हार्ट स्पेशलिस्ट डॉक्टर श्रीवास आये हैं। उनकी सफेद लबी दाढ़ी को देखकर मुझे कविराज चक्रवर्ती की याद आती है। कविराज चक्रवर्ती सूँघ करके ही रोग का निदान करते थे। डॉक्टर श्रीवास भी दूर से ही मुझे देखकर कहते हैं—हार्ट नॉर्मल है।...

मेडिसिन के डॉक्टर दास आये। वे भी मुझे दूर से देखते हैं। कोई मुझे छूता तक नहीं। वे मुझमें बोलने को कह रहे हैं। मैं हाथ के इशारे से कहता हूँ...आवाज नहीं निकल रही ! डॉक्टर दास कहते हैं—हाँ, रिएक्शन ही हुआ है।

मैं जानता हूँ, मैंने देखा है, कंठ के कैंसर में ऐमा ही होता है। बोली अचानक बंद हो जाती है। यदि बोली नहीं लौटी, तो ! वोकल कांड डेमेज तो नहीं हो गया ? मैं डॉक्टर से पूछना चाहता हूँ—डॉक्टर ?...

सभी के मुँह से एकसाथ एक स्वर से निकल पड़ा—आ गयी !

बिजली गुल होने के बाद जब लौटती है, तो लोगो के मुँह से इसी तरह एक स्वर से निकल पड़ता है—आ गयी !

किंतु उमा को विश्वास नहीं हो रहा है। वह मेरे पास आकर पूछती है—बोलो तो, मैं कौन हूँ ?

मुझे हँसी आ गयी। मैंने पूछा—यह सब सपना तो नहीं ?

—तोमार की मने हय ?—उमा पूछती है।

मैं करवट लेने की चेष्टा करता हूँ। उमा मना करती है...पेट के बीचोबीच भीषण यंत्रणा...यह क्या...मेरे पेट पर भारी क्या लदा है ? जरा भी हिल-डुल नहीं सकता। या नीलम्मा ने सचमुच मुझे पलंग से बाँध दिया है ?

पटना टाइम्स का स्टाफ रिपोर्टर मिनल आया है। उमा से वह कुछ पूछता है। उमा कहती है—ऑपरेशन के ठीक दस घंटा बाद, अभी कुछ देर पहले होश में आये है। अब ठीक हूँ।

—आपरेशन ? किसका ऑपरेशन ? कब हुआ मेरा ऑपरेशन ?

उमा चुपचाप मुस्कराती है—डॉक्टर अजय दस घंटे के बाद अभी डेरे पर गये हैं।

—और डॉक्टर श्रीवास, डॉक्टर दास ? वे कब गये ?

उमा अचरज से पूछती है—डॉक्टर श्रीवास और डॉक्टर दास ? वे यहाँ कब आये ?

मैं पूछता हूँ—मेरी आवाज फटे झाम्र की तरह सुनाई पड़ती है ?

—नहीं तो !

—मुझे ड्रग रिएक्शन हुआ था न ? मेरी बोली अचानक बंद हो गयी थी न ?

—तुम तो दस घंटे से अज्ञान थे ।

—और, नीलम्मा ? बुलाओ न उसे एक बार !

—कौन नीलम्मा ?—उमा को फिर अचरज होता है ।

मैं अपनी देह में चिकोटी काटकर देखता हूँ, मैं हूँ, या मैं भी नहीं हूँ । नहीं, मैं हूँ । सपना नहीं यह अब... मैं सपना नहीं । किंतु, फिर शंका होती है । फिर पूछता हूँ, डरते-डरते—अच्छा, उमा, पुष्पलाल उस सामनेवाले बाड में ही मरा था न ?

इस बार उमा तनिक झुंझलायी—कौन पुष्पलाल ? पता नहीं, क्या-क्या बोल रहे हो ! बोलो मत । डॉक्टर ने मना किया है ।

मुझे अब विश्वास हो रहा है, यह सपना ही है और इस सपने से अब निस्तार नहीं, छुटकारा नहीं ! क्या होगा छुटकारा पाकर ? अच्छा हो, गंगा के किनारे चलकर, पानी में अपनी काया को एक बार जो भर निहारते हुए, इस सुंदर आवरण की स्तुति करें । जीवन-भर दुनिया की हर चीज और हर व्यक्ति में अपना प्रतिबिंब खोजता रहा, देखता रहा, मुग्ध होता रहा... नारसिसस ? नॉनसेंस ! सपने में एक बार गाकर देखना चाहता हूँ, मेरी आवाज कहाँ तक पहुँचती है । गंगा के उस पार... सफेद बालुचरा के पार, हरे-भरे खेतों के ऊपर उड़ती हुई... अथवा अतल जल में बजनेवाले साइरन की तरह, अगाध जल के नीचे की ओर घुटती हुई !...

जैव

निर्मल ने—मंद-मंद मुस्कुराती, कमरे में प्रवेश करती हुई—विभावती में पूछा, “क्यों, क्या बात है?”

विभावती हँसती हुई बोली, “बात क्या होगी? बात जो होनी थी सो हो गयी।”

विभा ने स्वामी के हाथ में आज की डाक में आयी हुई चिट्ठी दी। निर्मल ने पढ़ना शुरू किया—“पूजनीया भाभी, ‘‘आगे समाचार यह कि पिछले मप्ताह में ही मुबह उठकर उलटी-मतनी ‘‘नेकिन, मेरी सामजी बहुत खुश है‘‘।”

पत्र में ननद ने ‘भौजाई’ को विस्तारपूर्वक यानी खोलकर सब-कुछ लिखा है। किंतु निर्मल इसमें आगे कुछ नहीं पढ़ सका।

“जो बात होनी थी सो हो गयी न? मैं जानती थी। चाहे पचास रुपये की किताब दीजिए ‘प्रेमोपहार’ या सो रुपये की—जो बात होनी थी सो हो गयी।”
—विभा हँसकर बोली।

निर्मल चिढ़ गया, “बेमौके की ऐसी हँसी सुनकर मेरी देह जल जाती है।”

विभावती समझ जाती है, पति अभी बहुत चिढ़े हुए है। वह कमरे से बाहर चली गयी, हँसती-मुस्कुराती।

निर्मल के सिर पर मानो वज्र गिर पड़ा है। उसका माथा चकरा रहा है। कान के पास झीगुर बोलने लगे हैं। ‘‘शारदा गर्भवती माने प्रेगनेट हो गयी? उसकी एकमात्र छोटी बहन, सोलह साल की शारदा—विना माँ-बाप की—‘कोर-पच्छू’ लड़की। निर्मल में ग्यारह साल छोटी शारदा! निर्मल की माँ ने बीछ मूँदने के पहले—विभावती में कहा था—बहू! अब तू ही इसकी माँ ‘‘पिता ने मरते समय निर्मल में कहा था—बेटा! बग, एक दायित्व तुम्हारे सिर पर डे जाता है। शारदा को ‘गुपात्र’ के हाथ में देना। ‘‘इतना खर्च-वर्च सब बेकार? यह तो पूरा ‘गुपात्र’ निकला। और, इसी ‘गुपात्र’ के फेर में पड़कर उमन अपनी दुलारी बहन की शादी कच्ची उम्र में ही कर दी ‘‘अंग्रेजी तथा हिंदी में उपलब्ध

—दाम्पत्य-जीवन को सुखमय बनानेवाली प्रसिद्ध किताबों का एक सेट उमने विशेष रूप से भेंट किया था, शारदा के पति प्रोफेसर सुकुमार राय को।...

निर्मल ने हिसाब लगाकर देखा...तो, इसका अर्थ हुआ कि मुहागरात में ही...? शारदा की शादी हुए तीन ही महीने हुए हैं। अभी 'प्रिम होटल' का बिल भुगतान देना बाकी ही है। और...और...?

पड़ोस के फ्लैट की बूढ़ी मौसी आयी है। शारदा को बहुत प्यार करती थी, बूढ़ी मौसी। विभावती ने मौसी को भी शुभ संवाद सुना दिया, "हाँ, तीन महीने..."

"विभा!"—निर्मल ने उच्च स्वर में ही पुकारा। प्रमन्नता से बूढ़ी मौसी के चेहरे की झुर्रियाँ खिल पड़ी।

"कर दिया न ब्राडकास्ट? तुम लोगों के पेट में कोई बात जो पचे..."

इस बार विभा ने जवाब दिया, "तुम तो चिढ़कर बेकार भुर्ता हुए जा रहे हो।"

"बेकार माने?...शर्म की बात है। इस कच्ची उम्र में...मुश्किल है... शारदा मर गयी समझ लो।"

"क्यों 'कुलहठन' की बोली बोलते हो? माथा गर्म करने से कुछ नहीं होगा। आज ही अस्पताल में 'साइड-रूम' के लिए दर्खास्त दे दो।"

विभा रसोईघर में चली गयी।

निर्मल सोचने लगा—सच ही तो! माथा गर्म करने से क्या होगा! आज ही अस्पताल में 'साइड-रूम' के लिए दर्खास्त दे देना ठीक होगा। प्रोफेसर सुकुमार राय! फर्स्ट क्लास फर्स्ट...गोल्ड मेडलिस्ट है। कुपात्र कहीं का!...आजकल के नौजवानों में यही एब—डिग्री से लदे हुए गधे!...लेकिन, हिसाब से तो...? मुहागरात में ही 'कसीब' किया होगा, शारदा ने। क्योंकि, उसके बाद 'मेहमान' भागलपुर चला गया था। दो महीने के बाद आकर शारदा को ले गया है। और एक महीने के बाद यह पत्र...?

दोपहर को भोजन 'रुखा' नहीं, तो विभा ने मुँह फुला दिया, "इस तरह खाना-पीना छोड़ने से क्या होगा?"

"विभा, मैं प्रार्थना करता हूँ...मुझे शांतिपूर्वक इस समस्या पर कुछ सोचने भी होगी?"

"पूछती हूँ, यह भी कोई समस्या है?"

"तुम भी बूढ़ी मौसी के सुर में सुर मिलाकर ऐसी बातें करोगी, इसकी मुझे उम्मीद नहीं थी।"

"तो क्या करूँ? सिर पकड़कर रोऊँ?"

"विभा"—निर्मल की आँखें डबडबा आईं, "शारदा मर जाएगी। जरूर मर

जाएगी।”

“तुम्हारे कहने से मरेगी ? कुछ नहीं होगा। तुम्हारी दुलारी बहन शारदा को एक गोलमटोल सुंदर मुन्ना के सिवा और कुछ नहीं होगा।”

“वह इतनी दुबली है सो...।”

“सो जानेगी डॉक्टर मिस जोजिफ और जानेगे स्त्रीरोग के पुरुष विशेषज्ञ डॉक्टर शर्मा...।”

डॉक्टर शर्मा का नाम सुनते ही निर्मल को काम की बात सूझी—क्यों न डॉक्टर शर्मा को फोन करके सलाह ले ? उमने डिरेक्टरी में डॉक्टर शर्मा का नंबर खोजकर निकाला और डिरेक्टरी के मुखपृष्ठ पर लिखने के बाद उसने डायल पर नंबर मिलाया। चोंगा रखकर, फिर डायल किया। बहुत देर तक उधर घंटी बजती रही। फिर, किसी आदमी ने चिढ़ी आवाज में पूछा, “हैलो ?”

“एँ ? डॉक्टर शर्मा है ? नहीं हैं ? अस्पताल में ? देखिए साहब, इस तरह झल्लाइए मत। आप कौन है ?... तुम डॉक्टर साहब के ड्राइवर होकर ऐसी बातें करोगे... हैलो !”

उस छोर पर चोंगा रख दिया गया। इसके बाद जब अस्पताल का नंबर मिलाया, तो ‘टू-ऊँ-ग, टू-ऊँ-ग...।’

निर्मल के कमरे से बहुत देर तक टेलीफोन डायल करने की आवाज आती रही—क्रि, क्रि, क्रि !!

फिर मन कड़वा हो गया निर्मल का।

विभा आयी और पाम बैठकर गंभीरतापूर्वक बातें करने लगी, “देखो ! तुम क्या सलाह लेना चाहते हो डॉक्टर से ? यही न कि कम उम्र की कमजोर लड़की...।”

“विभा ! तुम फिर छेड़ने आयीं...।” निर्मल कहते-कहते रुक गया। उसने अपनी पत्नी के चेहरे पर महानुभूति की रेखाएँ देखी। उसे विभा का इस तरह गंभीर हो जाना अच्छा लगा।

दोपहर के भोजन के बाद विभा रोज एक बीड़ा रानी खाती है। पान मुँह में रखकर जब वह बोलने लगती है, तो निर्मल उसके क्रमशः लाल होते हुए ओठों को देखता रहता है। विभा बोली, “तुम सुकुमार को एक चिट्ठी लिख दो और अगले महीने ही जाकर शारदा को लिव लाओ।”

“तुम ठीक कहती हो। मैं भी यही सोच रहा था।”

विभा अब मुस्कराई। निर्मल बोला, “जानवर है। क्या कहा जाए इस सुकुमार को ?...”

विभा ने बात पूरी की, “किसका ? कहा जाए ? न बहन शारदा को धैर्य और न बहनोई सुकुमार साहब को संतोष...।”

“अब माय खायेगी, विभा।”

विभा हँसती हुई लेट गयी पति के बगल में और अपनी उँगलियों पर जोड़ने और जोड़कर हिमाचल निकालने लगी शारदा का ‘एसपेक्टिंग डेट’ यानी ‘संभावित तिथि’ अर्थात् फरवरी में ‘होकर’ बंद हुआ है तो नवंबर के दूसरे सप्ताह में ? वह पति को गुदगुदाती बोली, “होनेवाले मामू साहब ! एक ‘टोकरी’ ऊन चाहिए... जाड़े में जन्म लेनेवाले शिशु को गर्म रखने के लिए पशमीना ऊन...”

भाई और भाभी ने मिलकर शारदा को बचा लिया । चौथे महीने में ही निर्मल भागलपुर जाकर, लड़-सगड़कर शारदा को पटना लावा लाया । पहले हर महीने, बाद में प्रत्येक पखवारे में ‘हेल्थ विजिटर’ और ‘मिडवाइफ’ से जाँच करवाकर—वे सलाह लेते और तदनुसार परिश्रम, भोजन और दवा की व्यवस्था । इसके बावजूद शारदा की जान संकट में पड़ गयी । नवंबर के दूसरे सप्ताह में शारदा बारह घंटे तक अस्पताल में सिर कटी हुई चिड़िया की तरह दर्द से तड़पती-छटपटाती रही । अंत में सी० एस० (सिजेरियन सेक्शन अर्थात् पेट चीरकर) करके बच्चा निकाला गया । बच्चा स्वस्थ है... छः पौंड का बेबी !

अस्पताल से पंद्रह दिन के बाद जब डेरे पर आयी शारदा, तो एक दिन चोर की तरह मुँह छिपाता हुआ आकर खड़ा हुआ प्रोफेसर सुकुमार । विभा हँसकर बोली, “आ गए, आ गए ! जुलियस सीजर के पिता सुकुमार साहब... प्रोफेसर ऑफ बोटानी !”

शाम को निर्मल और विभा तस्वीर देखने गए—बहुत दिनों के बाद । पिछले दो महीने से दोनों परेशान होकर दौड़ने-भागते रहे हैं ।

राह में विभा बोली, “मेहमान शायद शारदा को लेने आया है।”

निर्मल बोला, “बोल तो मेरे सामने । जूता खाएगा।”

लौटते समय विभा बोली, “कल एक बार डॉक्टर जोसेफ की क्लिनिक में चलेंगे ?”

“क्यों ? अब क्या है ?”—निर्मल ने चौंककर पूछा :

विभा बोली, “शारदा कहती थी कि एक बार डॉक्टर जोसेफ ने बुलाया है।”

विभा और निर्मल ! विवाह के पाँच वर्ष बाद भी जब विभा को ‘कुछ नहीं’ हुआ, तो निर्मल ने डॉक्टरों को दिखलाकर सलाह ली थी । एक छोटा-सा ऑपरेशन भी हुआ था । किंतु, अंततः दोनों ने मन-ही-मन मान लिया था—कुछ नहीं होगा । विधि के विधान को उन्होंने स्वीकार कर लिया था । वे प्रसन्न थे, सुखी थे । कहीं कोई रिक्तता नहीं । कोई कमी नहीं महसूस करते थे । किंतु, उसकी बहन शारदा के आने के बाद से...

दूसरे दिन डॉक्टर जोसेफ की क्लिनिक से लौटकर शारदा अपने पति और

भाभी के साथ खिलखिलाकर हँस रही थी, “देखा भाभी ! मैंने कहा या न ? ठीक हुआ न ? मेरी छूत लग गयी न ? हा-हा ! मैं जानती थी। तुम्हारे लक्षण सभी...”

निर्मल ने पूछा, “क्या बात है शारदा ?”

वे सभी चुप हो गए। उस कमरे से विभा की गिड़गिड़ाती आवाज और शारदा की मद्धिम खिलखिलाहट के साथ शारदा के शिशु के किलकने की सम्मिलित आवाज आयी। निर्मल ने फिर पूछा, “शारदा ! क्या है ?”

शारदा ने कोई जवाब नहीं दिया। वह उठकर पूजाघर में गयी और शंख फूँकने लगी, ‘धू-ऊ-ऊ ! धू-ऊ-ऊ !!’

प्रोफेसर सुकुमार लजाते और मुस्कराते हुए निर्मल को समझा रहे थे, “भाई जी !! वनस्पति-जगत् में भी ऐसा होता है। इस प्राकृतिक प्रक्रिया को हमारे शास्त्र में पोलिनेशन कहते हैं—पी० ओ० एल० एल० आई० एन० ए० टी० ई० अर्थात् फर्टिलाइजिंग ए पलावर बाई कनवेइंग...नारियल या पपीता अथवा सुगारी का कोई पेड़ नहीं फलता है तो पास में एक दूसरा पेड़ लगाया जाता है और जब दूसरा पेड़ फूलने-फलने लगता है, तो पहला निष्फला पेड़ भी...”

निर्मल ने झुंझलाकर कहा, “क्या बक रहे हो, मैं कुछ नहीं समझ रहा।” देखो सुकुमार, मैं कोई बहस, कोई बात नहीं करना चाहता—नहीं सुनना चाहता। शारदा सालभर यहाँ रहेगी। इस बीच कोई...”

सुकुमार धुतलाकर कह रहा था, “भाई साहब...मतलब...आप तो बेकार...”

हँसती हुई शारदा ने खिड़की के उम पार से ही अपने भाई और पति और दुनिया-जहान को सुनाने के लहजे में कहा, “मैं जाऊँगी ही नहीं। कोई जबर्दस्ती ले जायेगा क्या ?...भाभी को डॉक्टर ने...”

लगा, शारदा का मुँह किसी ने दबा दिया। उसकी बोली मुँह में ही रह गई।

सुकुमार ने झटककर देखा—भाभी अपनी ननद का मुँह हथेली से बंद करके हँस रही है।

सुकुमार ने कहा, “अच्छी बात है भाभी ! यह ‘शुभ संवाद’ मुझे ही सुनाने का अवसर आपने दे दिया। बहुत धन्यवाद ! भाई जी, बात यह है कि भाभी... भाभी को डॉक्टर जोसेफ ने जाँच कर ‘पक्की’ रिपोर्ट दे दी है—मतलब, भाभी ने ‘कंसीब’...अर्थात्—वही जो मैं कह रहा था न—पोलिनेशन...”

(अक्तूबर, 1971)

मन का रंग

मैं समझ गया, वह जो आदमी दो बार इस बेंच के आसपास चक्कर लगाकर, मेरे चेहरे को गौर से देखकर गया है न—वह मेरे पास ही आकर बैठेगा। बैठने के पहले, मद्धिम आवाज में 'कपट-विनय'-भरे शब्दों से मुझे जरा-सा खिसक जाने को यानी 'तनि डोल' जाने को कहेगा। और, यदि मैं उसके गाल के गलमुच्छों और गले के गुलुबंद से ठकी आवाज को नहीं सुनने का बहाना बनाऊँ, तो तनिक ऊँची आवाज में बेरुखाई से कहेगा—'सुनते हैं? आप ही से कहा जा रहा है...'

...हाँ-हाँ, मुझे नहीं तो और किससे कहेंगे? ...पता नहीं, मेरे चेहरे पर क्या लिखा हुआ पढ़ लेते हैं लोग कि ट्रेन या बस में अथवा प्लेटफार्म या पार्क के बेंच पर ही नहीं—इत दिशाल संसार के किसी कोने में भी बैठा रहूँ, तो ये मुझे ही तनिक-सा मरककर बैठने को कहेंगे। पास में जगह नहीं हो, तो मेरी ही गठरी पर बैठते हुए मुझसे ही पूछेंगे—'इसमें टूटनेवाला कोई सम्मान तो नहीं?'... मैं कितना ही अखबार पढ़ने में तल्लीन होने की मुद्रा बनाऊँ, चेहरे पर ही नहीं, सारे शरीर पर गुरु-गंभीरता का लबादा ओढ़कर भारी बनना चाहूँ—भगर उनकी आँखों ने मुझे पहले ही पासंग-सहित तौल लिया है। इतने लोगों के बीच—प्लेटफार्म के इस छोर से उस छोर तक—उनकी निगाह ये मैं ही एकमात्र ऐसा हल्का आदमी हूँ, जिसे मद्धिम आवाज से ही तनिक-सा मरकाया जा सकता है। बगल में बैठनेवाले इन अनचाहे बगलगीरों के अलावा खड़ा होकर तमाशा देखनेवाले तमाशबीनों में भी ऐसे लोग रहते हैं, जो मुझे ही खोजते रहते हैं। लॉन में कोई बड़ी सभा हो या फुटपाथ पर होनेवाला मदारी का खेला—ये मुझे वहाँ भी पा लेते हैं और ठीक मेरे सामने आकर खड़े हो जाते हैं। मेरे दृष्टिपथ को उनका 'मुँह' पूरी तरह छँक लेता है। तब, यदि मैं दाहिनी ओर सिर मुकाऊँगा तो वह 'मुँह' भी दाहिने झुकेगा और बायें मोड़ूँ तो वह भी तत्काल उधर मुड़ जाएगा। इसके बाद सभा के सारे लोग नेताजी का भाषण, उनके हाथ-पाँव भ्रंजने के साथ देखेंगे-सुनेंगे; मदारी के मजमे के लोग कबूतर गायब होने का तमाशा

देखेंगे और मैं देखा करूँगा सिर्फ़ इनका मुँह। इस मुँह को पकड़कर—आसपास के अन्य मुँहों से टकरा देने का जी बार-बार करने के बावजूद—बैसा नहीं कर पाना। और, बैसा नहीं कर पाने का दुःख...? आत्मग्लानि की उन अनुभूतियों के दंश से मन दिस चिढ़ा रहता है। अपनी कायरता के लिए अपने-आपको घिबकारता रहता हूँ। जीभ पर अपने लिए कोई हल्की-फुल्की गाली भी कड़ आती है, जिसे मैं चुपचाप निगल जाता हूँ।...सुना है, जापान के लोग गाली नहीं बकते और न कसमें ही खाने हैं। शायद इसीलिए वहाँ 'हाराकिरी' यानी आत्महत्या करने का प्रचलन पनपा है। गानी तो... (क्या कहते हैं उसको, जो प्रेशर कूकर में लगा रहता है?)...हाँ, सेगटी बल्ब है।...लीजिए, वे आ गये। वे मुझसे ही कह रहे हैं—'तनि डोलिएगा?'

मरकने या खिमकने के बदले 'डोलना' शब्द का प्रयोग, तिस पर इस तेवर के साथ कि अगर मैं नहीं डोलना चाहूँ अथवा डोलने में मुझे कोई कष्ट हो, तो वे स्वयं मुझे डुला देंगे !

मुझे डोलना नहीं पड़ा। आप बंठ गये हैं। और, अब मुझसे कुछ पूछना चाह रहे हैं।...पता नहीं, मेरे चेहरे पर क्या है कि लोग मुझसे ही दुनिया-भर के सवाल करते हैं। मेरी विरक्त मुद्रा ने काम किया। उन्होंने कुछ पूछना चाहकर भी कुछ नहीं पूछा। मुझे संनोष हुआ, अपनी विरक्त मुद्रा को कारगर होते देखा। किंतु, एक ही क्षण के बाद फिर दपदपाकर जी जल उठा। सामने बड़े बोर्ड पर एक रेलवे कर्मचारी खूब बड़े-बड़े अक्षरों में लिख गया—'फोर्टी डाउन ट्रेन तीन घंटा लेट !'

एक हल्की-सी चीख मेरे मुँह से निकल पड़ी, शायद। बगलगीर जी बैठते ही ऊँघने लगे थे। मेरी अस्फुट चीख पर चिहूँककर जगते हुए बोले—का हुआ ?

देखता हूँ, सुनता हूँ—मेरे मुँह से ही नहीं—गाड़ी के लेट आने की सूचना पाकर सारे प्लेटफार्म के लोगों के मुँह से कुछ-न-कुछ भला-बुरा निकल रहा है। बहुत देर से रुकी हुई भुनभुनाहट अचानक फिर शुरू हो गयी है !

... तीन घंटे लेट ? अर्थात् दस तीन तेरह—एक बजे रात में आएगी गाड़ी। ऐसा ही होता है। पता नहीं ऐसा क्यों होता है कि जब कभी मैं कहीं की यात्रा पर निकलता हूँ अथवा किसी को 'रिसीव' और 'सी ऑफ' करने के लिए स्टेशन आता हूँ, तो गाड़ी लेट हो जाती है। मैं जानता था, आज भी वही होगा। सो, हुआ।...इस चायवाले को अबकी डाँटूँगा, अगर उसने मेरी ओर मुँह टेढ़ा कर उस तरह 'च्ये-हे-य !' कहकर पुकारा तो।

गाड़ी के तीन घंटा लेट आने की सूचना के साथ ही प्लेटफार्म के उस छोर से उसकी आवाज बुलंद हुई है, जो क्रमशः निकटतर होती जा रही है—'च्ये-हे-य !'

“ते ! इधर मुनो जी। पहले भी तुम मुझसे पाँच बार पूछ चुके हो। इस बार मुन लो, मैं चाय नहीं पीता। समझे ?”

चायवाला कुछ अप्रतिभ हुआ। नहीं, अप्रतिभ हो ही रहा था कि मेरे पड़ोसी की नींद खुली और उन्होंने चायवाले को पुकारा, “देना एक कुलफी।”

चायवाले का चेहरा बदल गया। उमने टेढ़ी निगाह से मेरी ओर देखकर फिर हाँक लगायी—“च्ये-हे-य !” और, मुझे जो जवाब मिलना चाहिए, मिल गया। पुनः आत्मग्लानि हुई। इस चायवाले की चिढ़ानेवाली आवाज को नहीं बंद कर पा सकने की ग्लानि ! कई लोगों ने एक ही माथ चाय की माँग की, तो उमने फिर मेरी ओर एक बार देखा। इस बार उमकी आँखों में मेरे प्रति दया का भाव था। मेरे बगलगीर जी ने तश्तरी में चाय डालकर फूँकते हुए कहा, “मेरा बोहनी कैसी सगुनियाँ है। देखा, पाँच कुलफी एक साथ।” फिर मेरी ओर देखकर मुखरित हुए, “पीजिए न आप भी एक कुलफी। गाड़ी तो तीन घंटा लेट है !”

क्या जवाब दूँ इस भले आदमी को; गाड़ी तीन घंटे लेट है, इसलिए मैं भी एक कुलफी चाय पीऊँ उनके आग्रह पर ! इसमें क्या तुक है भला ?

मेरी ओर से निरुत्साहित होकर उन्होंने चायवाले से ही फिर बातचीत जारी रखी, “का जी ! रोज कितना कमा लेते हो ?”

मैं जानता था, चायवाला यही जवाब देगा—“जी, कोई ठीक नहीं। किमी दिन सात—किसी दिन दस—जब जंसा...”।

हठात् मेरे मन में भी हुआ कि चायवाले से पूछूँ कि अगर तुमको मात रुपये रोज अथवा दो-ढाई सौ रुपये महीने पर कोई नौकर रखे, तो क्या इसी तरह दिन-रात प्लेटफार्म के इस छोर से उस छोर तक घूम-घूमकर चाय बेचा करोगे ? किंतु, मैंने पूछा नहीं। क्योंकि मैंने उमकी चाय नहीं खरीदी थी और फोकट के ऐसे सवालियों के जवाब वह इस तरह नकद देगा—“ढाई सौ क्या, पाँच सौ भी दे कोई, नौकरी नहीं करेंगे साहेब !”

लाउडस्पीकर पर खुसफुमाहट हुई, तो उत्कर्ण हुआ। गाड़ियों के आने-जाने की सूचना देनेवाले इस यंत्र से आती हुई आवाज में—ग्यारह बजे रात के बाद से नींद बुल जाती है। यानी ग्यारह बजे के बाद से इसकी आवाज में धीरे-धीरे दिहाग का स्पर्श लगता जाता है और तब इसका भी वही प्रभाव पड़ता है, जो फिल्मों लीरियों के मुन पर पड़ता है—“यात्रीगण... कृपया ध्यान दें... बट्टिन अप गाड़ी...!!”

इस घोषणा के बाद मेरे पास बैठे सज्जन ने मुझसे पूछा, “आपको किधर जाना है ?”

अब मैं अपने को समझाने लगता हूँ कि इस तरह दिन-रात दुनिया से बेवजह नाराज रहना अच्छा नहीं, उचित नहीं।... इस आदमी ने मुझसे कुछ पूछकर

अन्याय नहीं किया है। बल्कि, इसका उचित उत्तर नहीं देना असंगत और अनुचित होगा। और, अंततः मैं अपने-आप पर नाराज हो जाता हूँ। फिर, अपने-आपकी प्रतिरक्षा करने लगता हूँ—'क्या मैं बेवजह ही सुबह से शाम तक नाराज रहा करता हूँ? अपना गाँव-घर छोड़कर पराये नगर में आकर रहने को मजबूर आदमी भी कभी खुश रह सकता है!'

ठीक वही हुआ, जो ऐसे मौकों पर संयोग से हुआ करता है। ऐसे तर्क-वितर्क के क्षणों में ही कोई मेरी आँखों में उँगली डालकर—इसी तरह जवाब दिखला देता है—'सामने सोई हुई भिखारिन का छोटा-सा शिशु बहुत देर से उठकर बैठा है और चुपचाप स्वयं ही किलकारियाँ लेकर प्रसन्न हो रहा है। भिखारिन हठात् हड़बड़ाकर उठ बैठती है। फिर, अपने प्रसन्न शिशु को मस्त होकर खेलते देखकर आश्चर्यचकित होती बच्चे को दुलारने लगती है, "बबुआ, जाग गइल हो? आज बहुत सबेरे जगलन है हमार बबुआ!..." फिर, उसका हुलसकर बच्चे को छानी से लगाना...' मेरा भी मन अजाने प्रसन्न होने लगा। और अचानक ही एक योजना मन में कौंध गयी। योजना नहीं, एक विचार। जिस नगर में मैं रहता हूँ, वह एक नया बसा हुआ नगर है। सड़क के दोनों ओर बनते हुए मकानों को देखकर नाराज होने के बदले इस नगर में आकर बस जानेवाले परिवारों का एक सर्वेक्षण प्रस्तुत करना उचित नहीं क्या? मेरे नगर में सैकड़ें निम्नानवे बामिन्दे गाँव से आकर बसे हैं। सिर्फ एक प्रतिशत परिवार ही पैदादशी शहरी हैं। मगर बाकी आबादी उसी एक प्रतिशत की नकल में दिन-रात व्यस्त है।...कन ही तो, गाँव में जन्मे, पले और बड़े होकर बूढ़े होनेवाले राम-निहोरा बाबू (डॉक्टर रामस्वारथ बाबू के पिताजी) कह रहे थे, "जानते हैं?—आधुनिक डॉक्टरों का आधुनिक मत है कि शुद्ध दूध और घी स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हानिकारक है।..." और, मेरी अपनी ही अर्धेड़ मौसी उस दिन जिस वेश में मेरे फ्लैट में आयी थी—वह किसी सचित्र साप्ताहिक पत्रिका के किसी रंगीन विज्ञापन के मॉडल से क्या कम लगती थी?...अचानक मेरे मन में दूसरा खयाल आया—क्यों न अपने नगर में भी एक 'ब्यूटी कंटेस्ट' का आयोजन किया जाए?...फिर, अचरज हुआ यह सोचकर कि कलर फोटोग्राफी के डेवलप होते ही सारा समाज एक ही माथ किस तरह रंगीन हो उठा है! चारों ओर घोर गाढ़े नीले-पीले-बैंगनी-गुलाबी और तोतापंखी रंगों के धब्बे! मैं अब तक इन रंगों से चिढ़ता रहा हूँ। लेकिन, अब सोचता हूँ कि रंग से चिढ़ना क्यों? रंग तो हमारी सभ्यता के मूल में ही है। मोरमुकुट और पीतांबर, रंगभरी एकादशी... मेरे अंदर का कुढ़ता हुआ आदमी भिखारिन के बच्चे को निकलते देखकर ही हार मान चुका था। अब वह मुझ पर व्यंग्य करने लगा—क्यों? दुनिया रंगीन मालूम होने लगी?...मैं उसको जवाब देता हूँ—क्यों नहीं मालूम होगी रंगीन दुनिया—जब यह सचमुच रंगीन

है ? तीन मी रुपये के बाउचर पर दस्तखत करके डेढ़ मी रुपये माहवार, तीन महीने के बाद पाता हूँ, तो क्या मुझे खुश रहने का अधिकार नहीं ?.....

मेरे बगलगीर की गर्दन नींद में झुकती हुई मेरे कंधे पर आ गयी है। मेरे अंदर का नाराज व्यक्ति होता तो तुरंत कंधा खींच लेता और उसका मुँह बेच से 'खट' आवाज के साथ टकरा जाता। किंतु, मैं अब पूर्ण स्वस्थ हो गया हूँ। गाड़ी आने में अब बस आधा घंटा रह गया है। मैं अपने बगलगीर का सिर पकड़कर धीरे से जगा देता हूँ। फिर चायवाले को पुकारता हूँ और बगलगीर के हाथ में एक कुलफी चाय थमाकर आग्रह करता हूँ—पीजिए ! एक कप मैं भी पी लूँगा आज ।

लफडा

उम बार 'यूनिट' के 'प्रोडक्शन मैनेजर' ने मेरे ठहरने की व्यवस्था 'दि डायना गेस्ट हाउस' में की थी। इसके पहले मुझे खार स्टेशन के पास 'होटल मदाबहार' में ठिकाया जाता था। इसलिए, नयी जगह के बारे में तरह-तरह के सवाल मुझ से अनायास निकलने लगे और 'ऑफिस-व्हाय' गर्दन हिलाकर सभी सवालों के जवाब में 'हाँ जी-हाँ जी' कहता गया। बोला, "साब ! डायना गेस्ट हाउस में भी इंडस्ट्री का लोग सब रहता है। एक गोआनीज लेडी का..." है।"

गोआनीज लेडी ? याद आयी. होटल मदाबहार में रहते समय इस गेस्ट हाउस के किस्से सुना करता था। जब-जब हमारे होटल मदाबहार में कोई 'लफडा' होता, उम दिन कोई-न-कोई व्यक्ति 'डायना' की कोई नई कहानी जरूर सुनाता।

होटल मदाबहार में भी 'इंडस्ट्री' अर्थात् 'फिल्म इंडस्ट्री' के लोग ही रहते हैं। इसके प्रोप्रायटर बड़े सरदारजी और उनके लड़के, हर नये व्यक्ति को हर कमरे की विशेषता बतलाते समय, फिल्मी दुनिया की किसी बड़ी हस्ती का नाम लेते हैं, "म्यूजिक डिरेक्टर रबिनदेव मजुमदार का नाम सुना है ? जब पहली बार बंबई आया था, तो इसी कमरे में डेढ़ साल तक था और गमंतकुमार जब आया था..."।"

यो, लफडे तो मदाबहार होटल के भी एक से एक दिलचस्प हैं। लेकिन, डायना गेस्ट हाउस के किस्से दिलचस्प होने के साथ 'हाँ' भी हैं। "गोआनीज लेडी का नाम लेते ही मेरी आँखों के सामने गमांगर्म 'स्पाइड-वोर्क' का एक प्लेट आ जाता है !

गेस्ट हाउस के सामने टैम्पो लगी। तीन-चार परिचित चेहरे एक साथ दिखलाई पड़े और सभी एक साथ किलक पड़े, "अरे ! दादा ! आप ?" कब आये ?"

मुझे राहत मिली। सुना, गडुयीर भी इसी गेस्ट हाउस में रहता है। उसके दोस्त रामपाल ने कहा, "दादा ! आपको क्या बताएँ ?" बगैर एक बार आपकी

चर्चा किये यदुवीर कभी 'बेड-टी' तक नहीं लेता। और, इस बार आपको यहाँ ठहराने का इंतजाम उसी हंगामजादे ने करवाया होगा। वह बोलता था—दादा को एक बार इस गेस्ट हाउस में जरूर टिकाना होगा...।”

इन परिचितों की कृपा से मुझे इस नई जगह में आकर कोई प्रारंभिक परिश्रम नहीं करना पड़ा। सचमुच गेस्ट की तरह बैठ रहा। रामपाल दौड़कर गया और दो-तीन 'मूरत' को साथ ले आया। कमरे की सफाई में लेकर बाथरूम की घुलाई तुरत हो गयी। रामपाल ने हर 'मूरत' का परिचय दिया, “दादा ! यह है गफूर। यह रामदाम और यह दासगुप्ता। हाँ, बंगाली दामगुप्ता। ये सभी आपके 'बंदे' हैं। सभी साले 'चाइल्ड-हीरो' बनने के लिए घर से भागे थे और अब...दादा ! अब आप आ गये हैं। कमम खुदा की—आपको रोज एक नया प्लॉट मिलेगा यहाँ।...अभी तो आप हमारी 'मंडम' से मिले ही नहीं।”

बाहर एक तीखी और पतली आवाज गूँज उठी। रामपाल ने दाँतों से जीभ का काटते हुए कहा, “आ गयी ! आ गयी चुड़ैल !”

नीले रंग के स्कर्ट में एक नाटी, काली और मोटी महिला दरवाजे पर प्रकट हुई और अचरज से मुझे देखने लगी। फिर, रामपाल पर बरस पड़ी, “तुम ? तुम इंदर में कहाँ ? नया गेस्ट के पाम हमारा चुगली खाने आया है ? इडियट ! ठहरो, आज तुमको निकालेंगा। अब्बी निकालेंगा...।”

रामपाल ने आज्ञाकारी पुत्र की तरह मुखमुद्रा बनाकर कहा, “मंडम ! क्या बोलता है आप ? हम अभी पेट भर बंदे की भुजों और बटाटा-फाय खाया है, तुम्हारा चुगली किस पेट में खाएगा ? पूछ लो, दादा को इस 'गेस्ट हाउस' में लाया कौन ? मंडम, हम तुम्हारा भला छोड़कर कभी बुरा नहीं कियो। और, तुम...।”

मंडम तुरत खुश हो गयी। बोली, “अरे नहीं बेटा। तुमको हम खूब पहचानता है।...बोलो ना, तुम्हारा यह नया गेस्ट...यह दादा किंदर से आया ?”

रामपाल ने जवाब दिया, “आप है हमार दादा। स्टोरी और डायलॉग लिखते हैं। खुदा कसम, ए फस्ट क्लास जेंटलमैन...।”

“रम्हो तुम्हारा खुदा कसम। अरे, जब आता है, तो सभी फस्ट क्लास जेंटलमैन होता है।”—मंडम बोली, “मगर, तुम लोग सबको बिगाड़कर छुट्टी कर देता है। एकदम 'थंडु क्लास' कर देता है।”

इस बार रामपाल के तेवर बदल गये, “मंडम, प्लीज बी सीरियस ! दादा तुम्हारे इस 'रेवेड गेस्ट हाउस' में आ गये हैं तो इसका यह मतलब नहीं कि...।”

“अरे बेटे ! गाली काहे कूँ बकता है ? हम तो 'लव' में बोला और तुम बोम मारने लगा।”—मंडम अब खुशामद के सुर में बोलने लगी, “दादा ! आपका यह रामपाल...हि इज ए चाइल्ड...लड़का है एकदम।”

बाहर, फटी हुई आवाज में किमी ने पुकारा, "मैंडम !"

मैंडम ने मिर पकड़कर कहा, "यह कुना का बच्चा इंदर में किंदर से काहेकू आ गया ? जरूर डूंक है ।"

मैंडम बाहर चली गयी । मुझे मुस्कगने देखकर रामपाल उत्साहित हुआ, "दादा, आप आ गये है । कमम खुदा की, आप खुश होकर लौटिएगा इस बार बंबई से ।" ठहरिए, मैं यदुवीर को फोन करना हूँ । माला आजकल 'बेरी बिजी हीरो' के साथ लगा हुआ है ।"

मैंने पूछा, "और तुम ?"

"अपन तो वही 'हेपी बूझी' साहब का साथ है । 'दर्द का दरिया' में फस्टें अमिस्टेट लगा हुआ है ।" अभी आया दादा । आप तब तक नहा-धो लीजिए । बाथरूम में जाइएगा, तो कमरा अंदर में बंद कर लीजिएगा ।"

रामपाल चला गया । मैं नहाने की तैयारी में लग गया । कपड़े पर लुंगी-तीनिया और हाथ में माबुनदानी लेकर दरवाजा बंद करने जा रहा था कि मैंडम आयी, "दादा, एक्मक्यूज मी, डिस्टें किया आपको । लेकिन ..."

वह इधर-उधर देखकर मेरे करीब चली आयी । फिर धीरे से बोली, "यह रामपाल को तुम कितने दिन से जानता है ?" बस ? दो साल से ? यो लड़का अच्छा है । मगर, मैं कहती हूँ—थोड़ा 'कियरफुल' रहना । यहाँ किसी का भरोसा नहीं । डोंट बिलीव एनीबडी । तुमको फुर्सत में सब बतलाएँगा...दे आर बेरी डर्टी ! अच्छा दादा, तुम ड्रिंक तो नहीं करता ? हाँ, खबरदार ..."

बाहर फिर किमी ने पुकारा, "मैं-ड-म !"

मैंडम ने मुंह बनाकर कहा, "इंदर नभी शैतान है मगर मैं भी शैतान का खाला है । मेरे पाम कोई लफड़ा नहीं । अच्ची गडबड किया कि अच्ची गेट आउट किया । तुम इनकी बात में नहीं आना । सब डेजरम है ! फुर्सत में तुमको सब बतलाएँगा..."

बाहर यदुवीर का ठहाका सुनायी पड़ा । मैंडम बोली, "यह आया दूसरा शैतान का बच्चा । वो रामपाल है न, फिर भी अच्छा है । या जदवीर...तुम जानता है उसको ? कब से ?" ओह, बहुत गदा, बहुत ..."

"क्यो मदर ? दादा में पुगना रिश्ता है क्या ?"—यदुवीर के ठहाके से कमरा हिलने लगा ।

मैंडम बोली, "देख जदवीर ! हमेशा 'मस्करी' ठीक नहीं । तुम इस तरह पागल का माफिक हंमता क्यो है ?"

"मदर...!"

"फिन मदर बोलता है ?"

"मदर नहीं तो क्या बोलेगा ? प्रैंड मदर ?"

"अब्बी निकालेंगा..."

"किमको?"

"तुमको।"

"देखता हूँ कौन निकालता है किसको!"

"हम निकालेंगा—हम। पाँच महीने का रेंट बाकी पड़ा है। ऊपर से बीकली इम-पेंडा कर्जा खाता है रेगुलरली... लाज नहीं?"

"काहे की लाज?"

"तुम दिन में भी ड्रिक करने लगा?"

"ड्रिक किया तो किमी के मरे हुए खसम का क्या?"

"अब्बी निकल जाओ!"

"नहीं निकलेंगा!"

"नही?"

"नहीं निकलता।"

"नही?"

"नहीं! नहीं! नहीं!"

"माई गाँड..."

मैंडम मिर पीट-पीटकर रोने लगी। पैर पटक-पटककर नाचती न जाने किम भाषा में क्या-क्या बोलने लगी।

मैंने अवाक् और अप्रसन्न होकर यदुवीर की ओर देखा। यदुवीर अप्रतिष्ठ नहीं हुआ। उसने आँखें मटकाकर मुझे संकेत किया, "मजा दुंखिये ना।"

मैंडम कमरे से बाहर चली गयी, तो यदुवीर फिर ठठाकर हँस पड़ा। मैंने कहा, "यह कहाँ आ गया मैं?"

"दादा, आपको यहाँ ठहराने की व्यवस्था मैंने ही करवायी है। एक सप्ताह ही रहकर देख लीजिए..."

रामपाल हँसता हुआ आया, "बूतिय! देखना, मैंडम आज तुमको निकालकर ही पानी पीएंगी। कह रही है, नया गेस्ट के सामने हमारा इनमस्ट किया, हमारे मरे हुए खसम का नाम लिया।... रो रही है, ऑफिस का दरवाजा बंद करके।"

"मारो माली कुतिया को!"—यदुवीर ने बिछावन पर लुढ़कते हुए कहा, "और बतलाइए दादा..."

बांद्रा के 'दि डायना गेस्ट हाउस' की मालकिन, अष्टपगनी गोआनीज मोटी मेम को बांद्रा से खार तक का बच्चा-बच्चा जानता है। राह चलते बड़बड़ाती रहती है। 'तंदूरी चिकन' कहने में जेहद चिढ़नी है। छोटे-छोटे बच्चे 'तंदूरी चिकन' कहकर गली में भाग जाते हैं और मैंडम मोड़ पर खड़ी होकर गालियाँ

मुनाती रहती है, "तेरी मदर तंदूरी चिकन, तेरा बाप तंदूरी चिकन....।"

उसी शाम को यदुबीर ने नया तमाशा दिखाया। दिन-भर की रूठी और नाराज मैडम को चुटकी बजाकर खुश कर दिया। यदुबीर ने बड़े प्यार से 'हेलो मैडम' कहा और वह रोने लगी, "नहीं, नहीं, हम तुमसे नहीं बोलेंगे। नहीं....।"

"मैडम ! डियर...बालिंग...मेरी मुनो....।"

"कुच्छ नहीं सुनेगा।हम तुमसे 'लव' में बात किया और तुम नया गेस्ट के मामले हमको गाली बोला। नहीं-नहीं....।"

चौबीस घंटे में ही मेरा मिर बार-बार चकराने लगा।—मैं कहाँ आ गया ? पागल हो जाऊँगा यहाँ....।

डायना गेस्ट हाउस बाहर से जितना नया और साफ-सुधरा दिखाई पड़ता है, अंदर से उतना ही पुराना और गंदा है। लकड़ी की खिड़कियाँ और रंजीन टाइल के इस मकान की उम्र एक सौ साल से कम नहीं होगी। सब मिलाकर बीस बड़े और पाँच छोटे कमरे हैं। बड़े में चार और छोटे में दो गेस्ट रहते हैं। हर कमरे के बीच में लकड़ी का एक पार्टीशन और दरवाजा है जो दोनों ओर से बंद रहता है। हर कमरे के बायरूम का पलंग बिगड़ा हुआ है और झरना हमेशा चूता-टपकता रहता है। तिलचट्टों की टोलियाँ दिन-रात टहलती रहती हैं। दीवारों के पलस्तर छूते ही सरसराकर झड़ने लगते हैं। पलंग पर खटमलों का और कमरों में मच्छरों का राज। किचन तो 'हल' ही है। फिर भी, यहाँ रहनेवाले गेस्ट को हमेशा एहसास होता है कि मैडम की विशेष कृपा यानी एहसान से ही उन्हें यह जगह मिली है।

मैडम फिल्मी लोगो से घृणा करती है। कहती है, "एक आदमी होता है शराबी, कोई होता है छोकरीबाज, कोई जुआड़ी। अलग-अलग आदमी में अलग-अलग ऐब। मगर यह फिल्म का आदमी एक ऐसा जानवर होता है जिसको सिग भी होता है, जहरीले दाँत भी, तेज नाखून और हाथी के जंसा सूँठ भी... आई हेट...आई हेट....।"

लेकिन, उसकी घृणा के बावजूद उसके गेस्ट हाउस के हर कमरे में हमेशा फिल्मी लोग ही रहते हैं और रहेगें। मैडम रोज शराब के खिलाफ हर गेस्ट के कमरे में जाकर भाषण और चेतावनी देती है, "नो वाइन एंड नो बीयन...शराब भी नहीं, छोकरी भी नहीं !" और रोज शराब भी आती है और लड़कियाँ भी। खुद मैडम शराब पीती है और उसके लिए एक अंधेड़ आदमी हर शनिवार को आता है जिसको ऑफिसवाले कमरे में बंद करके मैडम खुद छोकरी हो जाती है। सभी जानते हैं....।

उस रात रामपाल और यदुबीर दोनों रैस में हारकर लौटे थे। इसलिए टैक्सी

मे उतरकर सीधे मैडम के पास हाजिर हुए। रामपाल ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, "मैडम ! हमारी जान आज तुम्हारे हाथ। बाहर टैक्सी में 'छोकरी' का मवाली बैठा हुआ है। प्लीज मंडम..."

"क्या-आ-आ ! छोकरी लेकर आया है ?"

"नहीं मैडम।"—कान पकड़ते हुए रामपाल ने कहा, "ऐसा काम हम कभी नहीं करेंगे।"

"तब ?"

"उधर ही 'खलाम' करके आया। मैं समझा कि यदुवीर साले के पास पैसा है और यदुवीर साला समझा कि रामपाल साले के पास पैसा होगा।"

"एक ही छोकरी या दो ?"—मैडम ने दिलचस्पी के साथ पूछा।

"नहीं मैडम ! एक ही..."

"गेट आउट..."

"मैडम ! मवाली टैक्सी में बैठा है। हमारी जान ले लेगा। खुदा की कसम..."

"और तुम ?"—मैडम ने यदुवीर की ओर मुड़कर कहा, "तुम चुप काहे कूँ है ? अब बोलता क्यों नहीं ? ए ? उदर में छोकड़ी के साथ ऐश करके आया है। इदर में अब बाहर जाकर मवाली के जूतें खाओ ना।... ठीक है। अच्छा है !"

यदुवीर बोला, "तुम यहाँ लाने ही नहीं देती मैडम !"

"हम तुमको कब मना किया ? बो-नो ? मना किया कबी ? कमम खाकर बोल—तुमको कबी बोला..."

बाहर टैक्सी का कंश हॉर्न बजा।

रामपाल हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाया, "मैडम, प्लीज !"

"कितना माँगता है ?"

"दो सौ।"

मैडम चीख पड़ी, "ऊ-य-ह ! टू हू डू ? एक कुतिया के वास्ते—हू डू रुपी पर हेड ? माइ गॉड... बेटे रामपाल, बेटे जदवीर ! तुम दोनों का जवाब नहीं। जवाब नहीं।... कैसी थी छोकरी ?"

"मैडम, पहले मेहरबानी करके रुपये दो। फिर सब-कुछ बताऊँगा। सब कुछ..."

मैडम ने यदुवीर की ओर देखकर नाक मिकोइते हुए कहा, "तुम लोगों को नरक में भी जगह नहीं मिलेगी। समझे ?"

मौ-मौ के दो नोट रामपाल के हाथ में थमाकर मैडम बोली, "आई हेट यू योय... तुम दोनों को कल ही यहाँ से निकालेगा। देख लेना। गेट आउट !"

मुंता, रामपाल और यदुवीर ने ऐसा नाटक बहुत बार किया है। और हर बार मंडम ने इसी तरह की धमकियों के साथ कर्ज दिये हैं।

एक दिन यदुवीर ने कहा, "आज आपको यहाँ का 'मिनेमास्कोप' दिखलाऊँगा। आज शनिवार है न?"

"मिनेमास्कोप?"

वे दोनों एक ही साथ हँसे। रामपाल ने किमफिमाकर यदुवीर से कुछ पूछा। यदुवीर ने बताया, "तीन-तीन पेयर का प्रोग्राम है आज। दस नंबर—फ्लूट बनानेवाले बंगाली फटिक की पंजाबन भी आज आयेगी। चार नंबर—जवान सरदार की बुढ़िया... और आठ नंबर में तो आज 'कोरम'..."

यदुवीर बोला, "और साली मदर का साला फादर भी तो आज ही आयेगा!"

एक बोतल काजू की शराब और कई बोतल कोला लेकर छोकरा दामगुप्ता आया।

रामपाल ने कहा, "दादा, कगम खुदा की—इसके सामने स्कॉच भी कुछ नहीं। साली पहला 'किंक' ही ऐसा जमकर लगाती है कि आदमी सीधे 'आउटर-स्पेस' में पहुँच जाता है।"

दासगुप्ता छोकरा आँखों में कोई सकेत लेकर आया। यदुवीर ने गटगटाकर गिलास खाली किया और उठकर दरवाजा बंद कर आया। फिर, बीचवाले लकड़ी के दरवाजे के पास जाकर बैठ गया।

रामपाल ने धीमे स्वर में पूछा, "बयो? चालू है? साला, इतना 'अर्ली' ही शुरू कर दिया इस भूखे बंगाली ने?"

रामपाल गिलास हाथ में लिए ही यदुवीर के पास गया। यदुवीर को ठेलकर, खुद छेद में आँखें सटाकर देखने लगा। फिर, दोनों ने इशारे से मुझे बुलाया। मैंने सिर हिलाकर कहा, "नहीं।" दोनों ने ऐसी मुद्रा बनायी जिसका मतलब था, 'एक बार आकर देखिए तो! ऐसा 'शो' फिर कभी देखने को नहीं मिलेगा।'

अचानक कमरे का दरवाजा कचमचाकर खुला। कमरे में मंडम दाखिल हुई। दोनों पार्टेशनवाले दरवाजे के पास उठ खड़े हुए। मंडम ने पहले अचरज से हमें बारी-बारी से देखा। फिर बगैर कुछ बोले—पार्टेशनवाले दरवाजे के पास घुटने के बल बैठ गयी और छेद से देखने लगी। अचानक वह छिटककर फर्श पर लुढ़क गयी। ऐसा लगा, बिजली मार गयी। रामपाल और यदुवीर ने दौड़कर मंडम को संभाला। मंडम दोनों की बाँह में अधलेटी-सी थर-थर काँप रही थी और बोलने की चेष्टा कर रही थी, "माई गोड... यह बीमार बंगाली जरूर मरेगा। देखा नहीं, छोकरा ने 'पलटपोज' लगाया है। यह जरूर मरेगा। देख लेना। अच्छी

निकालेंगा उसको....।”

यदुवीर और रामपाल, दोनों एक साथ मैडम से प्यार-भरी खुशामद किए जा रहे थे, “मैडम ! प्लीज...डोट डिस्टर्ब...‘जो’ बर्बाद मत करो...मरने दो साले को...तुम्हारा क्या...हमारा क्या...डालिग...तुम कितनी अच्छी हो....”

अग्निसंचारक

लगता है, फिर कहीं किसी पर्वत शिखर पर हिमपात हुआ है। सुबह की हवा में पर्याप्त 'कनकनी' व्याप्त है, फिर शीतलहरी चलेगी। मैं बाघ से उतना नहीं डरता हूँ, जितना माघ की इस कनकनी से। इसी के डर से कभी दार्जिलिंग नहीं गया—जो हमारे घर से ज्यादा दूर नहीं। जाने की बात दूर—कभी कल्पना भी नहीं की आज तक। यो, उन्न के हिसाब से अथवा अन्य किसी हिसाब से मैं बूढ़ नहीं। किंतु, हर साल अगहन में माघ तक अपने को 'धुरधुर बूढ़े' से भी हीन अनुभव करता हूँ। 'सब-कुछ ठंडा-ठंडा ! चाय, कांफी तथा अन्य उष्ण एवं उत्तेजक द्रव्य के अहर्निश और अनर्गल सेवन का कठोर दंड पेट की अंतड़ी को भोगना पड़ता है। इसलिए हर साल 'फागुन महीना' के तीसों दिन, प्राकृतिक चिकित्सा के उपचार में...समझिए कि यो ही यानी 'अलोने' बीत जाते हैं।

'शीतलहरी' शब्द के उच्चारण और श्रवण मात्र से मुझे लगता है कि कोटि-कोटि नन्ही मुड़ियाँ मेरे अंग-प्रत्यंग में बिद्ध होने के लिए पंक्तिबद्ध उड़ती हुई आ रही हैं। सो, ऐसी ही एक कनकन-ठंडी दुर्दिन की रात में एक बार हजारीबाग रोड स्टेशन पर 'उनसे' मेरी पहली और अंतिम मुलाकात ! माघ महीने की शीतलहरी की हर लहर पर कापती-सिहरती छोटा नागपुर की पहाड़ी घरती। हजारीबाग रोड स्टेशन के प्रतीक्षालय में गाड़ी की प्रतीक्षा में जमकर बरफ होता जा रहा था कि अचानक 'उनका' आविर्भाव !

प्रतीक्षालय में प्रवेश करके उन्होंने एक बार चारों ओर देखा और फिर सीधे मेरे पास आकर मुस्कराने लगे। मैं उनकी असामयिक मुस्कराहट का अर्थ नहीं समझ सका तो वे बोले, "लगता है, आप भी पटना जानेवाली गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

मेरे मुँह से कोई शब्द नहीं निकल सका। स्वीकारात्मक मुद्रा बनाकर गर्दन हिला दी और उनकी ओर जिज्ञासापूर्ण दृष्टि से देखता रहा।

उन्होंने अपना परिचय दिया—"मैं हूँ अग्निबोध ! हे-हैं..." पत्र-पत्रिकाओं में

मेरी रचनाओं से कदाचित् परिचय हुआ हो। और मेरी आगामी कृति 'अग्निबोध' का विज्ञापन तो आपने अवश्य देखा होगा।"

मैंने पूछा, "अग्निबोध तो आपका 'धराऊ' नाम हुआ। 'धराऊ' नाम क्या है?"

इस प्रश्न से उनकी मुखमुद्रा तनिक विकृत हुई। बोले, "मान लीजिए कि मेरा धराऊ नाम अजबलालदास हो तो इससे क्या? वह लेकर आप क्या कीजिएगा? मैंने अपना शुभ और साहित्यिक नाम बतलाया है।... और आप अपना परिचय दें अथवा नहीं दें—मैंने आपको पहचान लिया है ...।"

मैंने कंबल के नीचे समेटे हुए अपने मुँह को जरा बाहर किया और अचरज में पड़कर सोचने लगा कि इस अजनबी अजबलालदास उर्फ अग्निबोध ने मुझे कैसे पहचान लिया और क्या पहचान लिया है। मुझे अचरज में पड़ा देखकर वे प्रफुल्लित हो गए। मैंने कुनमुनाकर कहा, "आपने मुझे कैसे पहचान लिया अग्निबोधजी! मेरा नाम तो आपने मुना भी नहीं होगा कभी।"

"अर्थात्?"—अग्निबोधजी ने पासवाली कुर्सी पर दखल जमाते हुए पूछा।

"अर्थात् मेरा नाम है हिमकूट हुस्सा!...क्यों, विश्वास नहीं हो रहा है न?"

उनके आश्चर्यमिश्रित अप्रतिभ मुखमंडल को देखकर समझ गया कि मेरे कथन का उन्हें रत्तीभर विश्वास नहीं रहा तो मैंने कहा, "जाने दीजिए! नाम में क्या है? नाम में क्या रखा है?"

इस पर वे तमककर बोले, "सो क्यों? नाम में सब-कुछ रखा हुआ है। आपका नाम यदि ब्राह्मण में हिमकूट हुस्सा है तो आपके संपूर्ण व्यक्तित्व और अस्तित्व से हिमकूट हुस्सा का बिंब, प्रतिबिंब और संवास..."

मैंने बीच में ही टोक दिया, "देख नहीं रहे हैं कि जाड़े और ठंड से दाँत-पंक्तियाँ कटकटा रही हैं और ऊपर से खादी ग्रामोद्योग का 'धुस्सा' ओढ़े हुए हैं। इससे बढ़कर और क्या प्रतिबिंब आप खोज रहे हैं?"

इस पर वे चिल्ला-चिल्लाकर हँसने लगे। आदमी ऐसी विकट और उत्कट हँसी भी हँसता है, मुझे ज्ञात नहीं था। वेंटिंग रूम में सोए और ऊँघते हुए सभी लोग आतंकित होकर उठ बैठे। अगर एक हँसी को फुलझड़ी कहते हैं तो इस हँसी को क्या कहेंगे? पटाखा हँसी?

वातावरण में तनिक उष्णता का आभास आ गया। उनकी हँसी के विस्फोट से समस्त प्रतीक्षालय सरगम हो उठा।

अब अग्निबोध बोले, "जाड़े से दाँत कटकटा रहा है तो मुनिए..."

इतना कहकर वे चालू हो गए अर्थात् अपनी कविता का पाठ शुरू किया,

“कविता का शीर्षक है—अग्नि-निमंत्रण....”

उनकी कविता अंगारे की तरह उनके मुँह से विगलित होने लगी। रामायण की एक चौपाई भी मुझे याद नहीं, यद्यपि वचन से ही पारायण करता आ रहा हूँ। किंतु, अग्निबोध की कविता तो हृदय को दग्ध कर गई है न। इसलिए, आज तक प्रत्येक पंक्ति मेरे मानस में मिडियम-डायल वाली घड़ी की तरह जगमगा रही है।

शीर्षक की घोषणा के बाद मूल कविता शुरू हुई :

“आओ सभी बंधुगण

सादर निमंत्रण है,

नहीं कोई बाधा, न कोई नियंत्रण है

शीताकुल जितने जीव, प्राणी शीतल

काँप रहे हैं जीर्ण-शीर्ण दुलाई और

नार-तार उधरे कंबल के नीचे

सभी मुन लें— निमंत्रण है, निमंत्रण है !!

युग के जमे हुए गोयठे और भूसे राशि राशि

टूटी-फूटी और दरकी असंख्य आशाओं और

आकाशओं के स्तूप, पुरानी-धुरानी संस्कृति

सभी को जमाकर लगा दो एक ‘घूर’

मैं इस घूर अर्थात् अलाव में

तुम्हारी पुजीभूत क्रोधाग्नि की दियासलाई

लहका दूँगा...आओ तापो तापो

नवयुग की पहली आग....”

मेरी देह उत्पन्न हो गई। लगा, प्रतीक्षालय में हठात् इलेक्ट्रिक हीटर अथवा शीत-ताप-नियंत्रक मशीन चालू हो गई। सभी लोग अपनी रजाई, दुलाई, चादर आदि फेंककर अग्निबोध के पाम पतंगे की तरह आकर एकत्र होने लगे। उनकी पहली कविता से ही चतुर्दिक् अग्निसंचार हो गया था।

कविता समाप्त करके अग्निबोधजी ने सभी को एक बार देख लिया। मुझे लगा कि वे अब दूसरी कविता सुनाने की तैयारी कर रहे हैं तो डर गया। एक ही कविता के प्रभाव से यह हाल है, तो दूसरी कविता से तो लाक्षागृह की तरह घघक उठेगा यह प्रतीक्षालय। मैंने हड़बड़ाकर रोकने की चेष्टा की, “अग्नि-

बोधजी ! जरा घाम सूखने-सुखाने दीजिए...।”

किंतु, अग्निबोधजी ने छान्ह-पगहा तुड़ाकर भागनेवाले ‘बन्हीटा घोड़ा’ की तरह दुसकी छोड़कर ‘दुटप्पा’ उठाया, “इस कविता का कोई शीर्षक नहीं :

अजी ओ ! ओ जी ओ !!
तुम्हीं से कह रहा हूँ कि
रोमांटिक लोर से भीगी और भुवाई
अपनी दियासलाई की डिबिया
फँको, फँको, उसमें अब आग नहीं
एक बूंद चिनगारी तक नहीं
प्रतिगामी बारूद वाली तिलियाँ
किसी काम की नहीं। अतः
लाया हूँ तुम्हारे ही लिए खासकर
कितनी बाधा-विपत्तियों को ‘पास’ कर
सीमा के उस पार से—
स्टेनलेस स्टील के विदेशी लाइटर
जिस पर किसी देश का ‘मेक’ दर्ज नहीं
(यही इसकी विशेषता है !)
झड़ी हो—बतास हो
वर्षा हो, दुन्नी हो अथवा हो तूफान !
त्रब जी चाहे बटन दबाइए
आग उपजाइए,
नवयुग की नयी आग !!”

इस कविता के बाद सुननेवालों की समस्त सत्ता जमे हुए घी की तरह पिघल चुकी थी। मुझे ऐसा लगा कि एक सौ पाँच डिग्री ज्वर से मेरी देह तप रही है। अब यदि किसी कविता की एक या आधी पंक्ति भी पढ़ी गई तो हम राख हो जाएंगे। अतः गिड़गिड़ाते के पहले कोई शीतल शब्द बूँदने लगा। तब तक अग्निबोध ने अपने चमड़े के बैग से एक सेल्युलाइड का डिब्बा निकालकर बाहर किया और शुरू किया, “यही है ! नये साल का नया स्टॉक। घाम भी ज्यादा नहीं। फकत तीन रुपये ! लीजिए, बटन दबाइए और आग जन्माइए ! नये युग की नयी आग, नयी आग !!”

देखते ही देखते अग्निबोध ने आघा दर्जन 'लाइटर' बेच लिया !...वे मेरी ओर एक उड़ती और हलकी निगाह डालकर देखते रहे । मैं तो हैरत के मारे गूंगा हो गया था । अतः वे अब 'नयी आग-नयी आग' हाँक लगाते हुए प्लेटफार्म की ओर चले गए ।

जब अग्निबोधजी प्रतीक्षालय से बाहर चले गए, तो प्रतीक्षालय के एक कोने में शुरू से अंत तक स्पोए हुए एक भोजपुरी भाई ने न जाने किससे पूछा, "ई सरवा अग्निबोट चल गैल का ?"

मैं हर साल की शीतलहरी अब अग्निबोधजी की तथा उनकी कविताओं की याद करके कुशलतापूर्वक काट लेता हूँ ।

अगिनखोर

सूर्यनाथ बाहर जाने के लिए तैयार हो रहा था। पत्नी ने टोक दिया, “कहाँ जा रहे हो? अभी दस बजे आभा का बेटा आयेगा।”

सूर्यनाथ कुर्ते का बटन लगा रहा था। उसका हाथ रुक गया। याद आयी। कल रात को घर लौटने पर पत्नी ने कहा था, ‘जानते हो, आज आभा का बेटा अचानक बाजार में मिला...’ अरे! आभा की याद नहीं?... तुम्हारी दुलारी आभारानी राय। और, उसका बेटा माने, वही बेटा?’

सूर्यनाथ ने पूछा था, ‘देखने में कैसा है?...’ मेरा मतलब है कि चेहरा किससे मिलता-जुलता है? एंजुलेंस ड्राइवर से या उस कपड़े की दूकान के बूढ़े मालिक से...?’

पत्नी बोली थी, ‘मैंने उतना खयाल करके नहीं देखा। कल सुबह दस बजे वह आयेगा। देखकर मिल लेना, किससे मिलता है, किससे नहीं।’

“लेकिन तुम तो बाहर निकल रही हो।” कुर्ता उतारते हुए सूर्यनाथ बोला।

“वह तुमसे मिलने आ रहा है। कह रहा था, उनको एक ‘इनफॉर्मेशन’ देना है।” वह मुस्कराती हुई बोली, “अरे! उम लड़के ने तो मुझे कल अजीब हैरत में डाल दिया, कुछ देर के लिए। अचानक, न जाने किधर से आकर बीच राह में खड़ा हो गया—‘आप अन्नपूर्णा मौसी हैं न? मुझे पहचानिए तो, मैं कौन हूँ...’ फिर खुद ही बोला, ‘पहचानिएगा कैसे? कभी देखा तो नहीं। मैं आपकी आभारानी का बेटा हूँ...’ मैं तो अवाक्!”

“आपकी दुलारी आभारानी नहीं कहा?” सूर्यनाथ ने व्यंग्य किया।

अन्नपूर्णा वकिंग वीमेंस एसोसिएशन की गश्ती चिट्ठी अपने बैग में डालती हुई बोली, “मेरी या तुम्हारी दुलारी?”

“तुम्हारी।”

“बेकार की बातें मत करो।” अन्नपूर्णा अर्धपूर्ण हँसी हँसकर बाहर चली

गयी। जाते-जाते कह गयी, “लड़का पहली बार आ रहा है। विस्फुट है, मिठाई है... जलपान करा देना।”

पत्नी चली गयी। सूर्यनाथ के मन के पर्व पर, सत्रह-अठारह साल पहले की कई स्मरणीय घटनाओं, मुहूर्त और क्षणों की तस्वीरें फ्लैश बैक के रूप में उभरने लगीं...

...उम बार अन्नपूर्णा मेटरनिटी सेंटर की ऑनरेरी सेक्रेटरी चुनी गयी थी। सो, घर में अक्मर लेडी हेल्थ विजिटर, नर्स, मिडवाइफ और ट्रेनिंग के मिलसिले में लड़कियाँ आती रहतीं। बाद में अन्नपूर्णा ने उन्हें मना कर दिया था।

...किंतु आभारानी राय जब सेंटर में ट्रेनिंग लेने के लिए दाखिल हुई, तो अन्नपूर्णा स्वयं उसे अपने साथ डेरे पर ले आया थी, एक दिन, ‘लो, अब कितना मुनोगे बंगला कीर्तन’ यह आभारानी राय है। हमारे सेंटर में ट्रेनिंग लेने आयी है। रिफ्यूजी नहीं, बेचारी विडो है। कीर्तन बहुत सुंदर गाती है।’

‘श्यामा संकीर्तन या...’ सूर्यनाथ ने पूछा, तो आभारानी ने धीमे स्वर में जवाब दिया था, ‘कृष्ण कीर्तन।’

सूर्यनाथ ने आँखें उठाकर गौर से आभा के ललाट को देखा। भरी जवानी में विधवा होनेवाली उमकी कई परिचित लड़कियों के ललाट भी ठीक ऐसे ही... लेकिन चेहरे पर प्रचुर लावण्य देखकर उमने कहा था, ‘यथायोग्य नाम है आपका।’

अन्नपूर्णा से पहले, सूर्यनाथ के वक्तव्य का अर्थ आभा ने ही समझा था। वह तनिक बिहंसकर बोली थी, ‘आपनि कोबि मानुष... आप कवि ठहरे।’

‘किसने कहा कि मैं कवि हूँ? श्रीमती अन्नपूर्णा ने?’

अन्नपूर्णा हँसती हुई आयी, ‘नहीं, मैंने कवि नहीं, साहित्यिक कहा था।’

‘एकई कथा... एक ही बात है।’

‘एकई कथा’ कहने समय आभारानी ने अपनी दाहिनी आँख की पपनियों को जिस तरह मूँदा, उसे सिर्फ सूर्यनाथ ने ही देखा और समझा था।

आभा के जाने के बाद अन्नपूर्णा बोली, ‘विधवा नहीं, बेचारी परित्यक्ता है। स्वामी ने छोड़ दिया...’

सूर्यनाथ ने ठीक आभारानी की तरह दाहिनी आँख की पलकों को दबाकर कहा था, ‘एकई कथा।’

‘कैसे एक ही बात हुई?’

‘अगर स्वामी इसे छोड़ नहीं देता, तो बेचारा मर ही जाता और यह विधवा हो जाती।’ सूर्यनाथ के कहने के ढंग में ऐगा लगा, मानो वह आभा को भली-भाँति पहचानता है। अन्नपूर्णा पूछ बैठी थी, ‘तुम पहले से ही जानते हो

इसको ? उधर ही कहीं, माने...। पूर्णिया-सहरसा की ओर रहती है किसी कस्बे में...

‘कहीं की भी हो। यह किसी की पत्नी होकर रहने के लिए पैदा ही नहीं हुई। देखा नहीं, कैसा ‘सखि-सखि’ भाव है स्वभाव में। यह किसी की ‘सखि’ होकर ही रह सकती है।’ कहकर सूर्यनाथ हँसने लगा था।

पति की ऐसी कुटिल हँसी देखकर अन्नपूर्णा को संदेह हुआ था, निश्चय ही किसी ‘असभ्य’ बात की ओर संकेत किया है, ‘क्या मतलब ?’

‘श्रीमतीजी, मतलब समझाने के लिए आपको संपूर्ण ‘वैष्णव साहित्य’ सुनाना पड़ेगा।’

‘सखि होकर ही रह सकती है... इसका क्या मतलब ?’

सूर्यनाथ समझ गया था, अन्नपूर्णा को शंका हो रही है कि बात उसकी होस्टल के दिनों की सखि ओलिव डाइसन को ‘छुआ’ कर कही गयी है। और, ऐसी बात की भनक पाकर ही वह इस तरह नाराज हो जाती है कि सूर्यनाथ घंटों आरजू-मिन्नत करके, किस्म-किस्म की कसमें खाकर भी उसको मना नहीं पाता है। इसलिए उसने सहज ढंग से कहा था, ‘सखि का अर्थ मित्र होता है न ? मेरा मतलब है कि इस किस्म की लड़की पुरुष के साथ मित्र की हैमियत से ही रह सकती है।’

अन्नपूर्णा उस रात को तुरंत ही सहज हो गयी थी। लेकिन, उसने दूसरा सवाल किया था, ‘तुमने यह क्यों कहा कि अगर स्वामी इसको नहीं छोड़ देता, तो बेचारा मर जाता...’

‘कपाल देखकर मैंने कहा।’

‘बड़े आये हैं सामुद्रिक बघारनेवाले।’

‘त्रिभुजाकार ऊँचा कपाल और चमकती हुई माँग... और ऐसी देह की बनावट जिसकी हो, तनिक अधिक ‘एनर्जेटिक’ होती है... मत्ता, प्रमत्ता, अति-मत्ता, महामत्ता !’

‘ए ! आभा ने जो ‘कवि मानुष’ कहा था, उसका तात्पर्य तुमने समझा था ?’

‘कवि मानुष माने रसिक पुरुष।’

‘जी नहीं, उसका तात्पर्य इसके अलावा भी—इससे आगे भी कुछ था... साहित्यिक लोग जरा चरित्रहीन होते हैं, यह दुनिया-जहान जानती है।’

‘जरा नहीं, पूरे।’ सूर्यनाथ ने एप्रूवर यानी मुखबिर की मुद्रा बनाकर कबूल किया था।

उस रात को बहुत देर तक दोनों एक-दूसरे को गुदगुदाकर हँसाते-चिढ़ाते जगे रहे थे...

...और हरिसभा की वह शाम !

पहली बार हरिसभा में आभारानी का कीर्तन सुनकर सूर्यनाथ और अन्नपूर्णा सचमुच मंत्रमुग्ध हो गये थे... किंतु जब आभा ने उनके घर पर आकर कीर्तन सुनाने की इच्छा प्रकट की, अन्नपूर्णा राजी नहीं हुई, 'कीर्तन और भजन हरिसभा और ठाकुरबाड़ी में ही सुनना अच्छा लगता है।'

अन्नपूर्णा की चतुराई को चतुर आभा ताड़ गयी थी और मन-ही-मन दाँत पर दाँत रखकर पीसती रही थी।

एक दिन आभा बाजार की झोली में हाथ लटकाकर आयी, 'दीदी... मैं अपनी दीदी और जमाय बाबू को एक विशेष 'मेनू' बनाकर खिलाने आयी हूँ। विद इयू रेसपेक्ट आई बेग...'

उस दिन आभा ने बहुत जतन से 'मलाई करी' बनाकर सूर्यनाथ और अन्नपूर्णा को चखायी थी। सूर्यनाथ ने चखकर चटखारे नेते हुए कुछ कहने की मुद्रा बनायी। अन्नपूर्णा ने प्यार-भरी झिड़की दी थी, 'मैं जानती हूँ, आप क्या कहना चाहते हैं। कहेंगे—'चोमोत्कार', यही न ?'

'नहीं, एकदम नहीं। मैं कहना चाहता था, 'भीषोण संदोर' लेकिन अब आपने टोक दिया, तो कहूँगा, 'अपूबों'...'

कच्चे नारियल की गरी को पीसकर दूध निकाला गया और उसमें रोहित मत्स्य के कंटकशून्य खंड... सूर्यनाथ ने बंगाली वैष्णव संप्रदाय की भाषा में कहा था, 'अहा ! ऐ तो क्षीरसागरे स्वयं भगवान् मत्स्यावतार...'

'जमाय बाबू ! आप रसिक ही नहीं, सुरसिक हैं।'

'सुरसिक नहीं, चटोर और पेटू। एक बार दिल्ली में इसी तरह आकंठ ठूसकर...'

सूर्यनाथ ने डकार लेते हुए कहा था, 'अवस्थीजी के घर ? हाँ, ऐसा ही भूरि-भोजन—और, वहाँ भी कई व्यंजन और पकवान अवस्थीजी की साली ने बनाये थे। ठीक इसी तरह परोसकर खिलाया था... उसी बार अवस्थीजी ने बताया था, साली को संस्कृत में 'केलिकुंजिका' भी कहा जाता है।'

अन्नपूर्णा हँसकर बोली थी, 'सावधान, आभा !'

हूँसी के हिलोर पर सुपरइंपोज होती है, वर्षा की एक शाम।

...भीगती हुई आभा अकेली आयी थी, 'दीदी ! दीदी नहीं हैं घर में ?'

सूर्यनाथ ने अचरज से पूछा था, 'अरे, आप नहीं गयीं ?... आपको साथ नहीं

ले गयी अन्नपूर्णा ? आज वकिंग बीमें के लिए 'चैरिटी शो' है न ।'

'मेरी आज 'आपटरनून ड्यूटी थी । मैं एकदम भीग गयी हूँ जमाय बाबू...'

बाथरूम से अन्नपूर्णा की साड़ी और अंगिया पहनकर आभा बाहर निकली । सूर्यनाथ हाथ में चाय की प्याली लेकर खड़ा था, 'चाय नहीं । गुलबनफसा का काढ़ा, अदरक और नींबू के रस के साथ...' बहुत जोरों का फ्लू हुआ है, चारों ओर । गटगटाकर पी जाइये और निश्चित रहिये...'

आभा ने चखकर देखा था, सचमुच काढ़ा ही है । सूर्यनाथ पूछ बैठा था, 'आपको किस चीज का संदेह हुआ ? बतलाइये न...'

'सुनिये, आप मुझे यह आप-आप क्यों कहते हैं ?' आभा तुनककर बोली थी ।

'आपको संदेह हुआ कि चाय में कोई नशा मिला दिया है, मैंने ?'

'आप लोगों का क्या विश्वास ! आप लोग सब-कुछ कर सकते हैं ।' वह हलाल करनेवाली हँसी हँसकर सूर्यनाथ को देखती रही ।

'लेकिन आपमें साहस तो कम नहीं ।'

'मुझे आप कहिएगा, तो जवाब नहीं दूंगी ।'

सूर्यनाथ उसके पास आकर बैठ गया था । वह बालों को पीठ पर बिखेरकर सुखा रही थी । आभा अचानक पूछ बैठी थी, 'सचमुच चाय में और कुछ नहीं मिलाया था आपने ?... तब मेरी देह इस तरह झनझना क्यों रही है ? सिर चकरा रहा है ।'

सूर्यनाथ ने राँ टी मे गुलबनफसा, नींबू और अदरक के रस के सिवा और कुछ नहीं मिलाया है । इसके बावजूद यदि आभा पर नशा त्वार हो गया है, तो सूर्यनाथ उसे विश्वास दिलाने की चेष्टा क्यों करे ?

'आभारानी !'

आभा ने सफल अभिनेत्री की तरह सूर्यनाथ के कंधे पर अपना सिर रख दिया था । सूर्यनाथ की देह अचानक तप उठी थी । स्वचालित यंत्र की तरह उसकी भुजाओं ने आभा को जकड़ लिया । बाहर आकाश में बिजली कौंधी थी । मेघ गर्जन हुआ था और सूर्यनाथ का तप्त शरीर तत्काल ठंडा हो गया था । वह छिटककर आभा से अलग हो गया था । आभा अस्फुट स्वर में बोली थी, 'कोई नहीं—हवा से खिड़की का पल्ला खुल गया है । सूर्योदय... जमाय बाबू... आप कहाँ चले गये... ?'

इस घटना के बाद आभा ने सूर्यनाथ से बोलना बंद कर दिया । और कई दिनों के बाद अन्नपूर्णा ने उसको अपने घर आने को मना कर दिया था । पड़ोस की बुढ़िया महरी ने फिसफिसाकर अन्नपूर्णा से कहा था, 'ऊ छींड़िया 'छिनार' है, बहूजी । घर में उसकी आवाजाही बंद कर दो...'

अपमानिता आभा ने अपना तबादला मंगलातालाब सेंटर में करवा लिया। इसके बाद वह जब कभी अन्नपूर्णा के सेंटर में किसी काम से आती, अन्नपूर्णा को नमस्कार तक नहीं करती थी।

दम-भ्यारह महीने के बाद एक शाम को आभा अचानक आयी। अन्नपूर्णा के पैर छूकर प्रणाम किया। अन्नपूर्णा ने प्रसन्न होकर कहा था, 'पास कर गयी न?'

आभा ने सिर झुकाकर ही जवाब दिया था, 'जी, दोदीजी!'

उसी रात को अन्नपूर्णा ने सूर्यनाथ को बताया था, 'तुमने ठीक ही कहा था। अरे, इस लड़की का माहम तो देखो। छह महीने का पेट लेकर बिना लाज-भय के घूम रही है। छिः-छिः, अब गिराना चाहती है। रो रही थी, किसी तरह 'उद्धार' करवा दीजिये... डाँटकर भगानी नहीं, तो अभी घंटों धुनधुनाकर रोती रहती।'

सूर्यनाथ ने कहा था, 'मैंने एबुलेम के ड्राइवर के साथ कई बार सिनेमा हॉल में देखा है...'

अन्नपूर्णा बोली, 'वह कहती है कि कपडे की दूकान क बूढ़े मालिक ने फुमलाकर उसका सर्वनाश कर दिया है...'

सूर्यनाथ कुछ कहना चाहता था, किंतु अन्नपूर्णा कहती गयी, 'यह तो भला हुआ कि उमने यहाँ मे अपना तबादला करवा लिया, नहीं तो और न जाने किस-किसका नाम बदनाम करती।'

सूर्यनाथ चाहकर भी कुछ नहीं बोल सका था। अन्नपूर्णा एक उदासन्ती हँसी हँसकर बोली थी, 'वह जो गाती थी न—'मरिबो मरिबो सखि निश्चय मरिबो...' अब सचमुच मरेगी निगोड़ी!'

किंतु आभारानी राय मरी नहीं थी। होली फैमिली हॉस्पिटल में पुत्र-रत्न को जन्म देकर न जाने कहाँ चली गयी। 'मदर' के नाम एक पुर्जा लिख गयी थी...

...और, आभारानी का वहीं बेटा आज सूर्यनाथ को एक आवश्यक समाचार देने के लिए आ रहा है।

सूर्यनाथ के मन के पदों पर लावण्यमयी आभारानी का मुखड़ा उभरकर स्थिर हो जाता है। और पृष्ठभूमि कीर्तन के आलाप से मुखरित—'आमार... सकलि... गरल... भेल...'

'गे-ए-क्-गेक्-गेक्... गे-ए-क्...!'

बजर अस्वाभाविक सुर में बज उठा। लगता है, कोई खिलवाड़ कर रहा है। सूर्यनाथ ने विरक्त मुद्रा के साथ दरवाजा खोला। बजर के बटन पूर्ववत् दबा-दबाकर बजाता, वह हँस रहा था, "हाउ फैंटास्टिक!... मैं आभारानी का बेटा..."

“अंदर आ जाइये।”

गेहुआँ रंग, दुबली-पतली काया, मेंझोला कद और बिखरे हुए भूरे बाल...
मुखथी ठीक आभारानी की... ठीक आभारानी पर पड़ा है उसका बेटा...

अंदर आकर उसने कहा, “मैं पाँव या घुटना अथवा कोई अन्य अंग छूकर किसी को नमस्कार नहीं करता। दरअसल, मैं किसी को अभिवादन करता ही नहीं। आप बुरा मानें या भला—ठेंगे से। आइक्-स्ला !”

सूर्यनाथ के पीछे-पीछे वह बैठक में गया। कमरे में पहुँचते ही उसने ठाका लगाया, “साहब... आप तो ऐसी तैयारी करके—सज-धजकर बैठे हैं, मानो कोई आपका सचित्र इंटरव्यू लेने को आ रहा हो—आइक्-स्ला—इधर तो लगातार आपकी कई भेंट-वार्ताएँ प्रकाशित हुई हैं। जी भ्राम्या नहीं, शायद ? लेकिन मैं आपसे कोई—आइक्-स्ला—साहित्यिक अथवा अखबारी मुलाकात के लिए नहीं आया। और, आपका और आपकी पीढ़ी का कूड़ा-कचड़ा—आइक्-स्ला—साहित्य मैं नहीं पढ़ता। लेकिन बिना पढ़े ही कह सकता हूँ कि आपकी पूरी पीढ़ी मुर्दा हो चुकी है... कर्मशियल चीजें मैं नहीं पढ़ता। इट्म नॉसिएटिंग—आइक्-स्ला—निराश मत होइएगा। मैं आपको एक सूचना-मात्र देने आया हूँ।”

सूर्यनाथ अप्रतिभ होकर मुस्कराने की चेष्टा करता रहा। उसने पूछा—
“आप बीच-बीच में वह कौन-सा शब्द... यह ‘आइक्-स्ला’ क्या है...?”

“यह मेरे व्यक्तिगत शब्द-भंडार का शब्द है, जिसका अर्थ कुछ भी हो सकता है।” उसने सोफे पर बैठते हुए लापरवाही से कहा।

उसने कमरे की दीवारों पर नजर डाली और एक कुटिल हंसी हँसकर बोल पड़ा, “हाउ डिसेग्रेस्टिंग—आइक्-स्ला—आपने तो अपनी छाया-छवियों, अभिनंदन-पत्र, उपाधि और ‘सर्टिफिकेट ऑफ मेरिट’ की अच्छी-सी प्रदर्शनी लगा रखी है... कमरे में दाखिल होते ही आगंतुक को आपका व्यक्तित्व तेंदुए की तरह उछलकर दबोच डालता होगा। है न ? उद्देश्य ही यही होगा। लेकिन एक बात पूछूँ ? आपको स्वयं यह सब बलगर नहीं लगता ?”

सूर्यनाथ ने संक्षिप्त उत्तर दिया, “एकदम नहीं।”

“आइक्-स्ला—क्यों लगेगा ? पेशे का सवाल है न। कर्मशियल लेखकों की मजबूरी... लेकिन, आपके साहित्य के बारे में कुछ नहीं वोल्गूंगा। और अगर बोलने लगूँ, तो मना कर दीजियेगा।”

सूर्यनाथ के क्रमशः अप्रतिभ होते हुए चेहरे को देखकर उसका उत्साह बढ़ता जा रहा है। कहता है, “गोसी बाहर गयी है न ? मैं जानता हूँ, वह आपको अकेला छोड़कर अक्सर बाहर निकल जाती है। मुझे सब पता है... आपका यह प्लैट, इट्स एन आइडियल प्लेस फॉर आत्मरति... आइक्-स्ला !”

सूर्यनाथ ने खबारकर गला साफ करते हुए कहा, “तो आप आभारानी राय

के पुत्र हैं ?”

उसने लापरवाही से कहा, “हूँ । फिलहाल, धनवाद में रहता हूँ । मेरे कई नाम हैं । कोई नाम छद्म नहीं, सभी असली नाम । अभी मैं आपसे अपने सूतपुत्र नाम के अनुसार बातें कर रहा हूँ ।”

सूर्यनाथ हँसने की चेष्टा करके भी नहीं हँस सका । सूतपुत्र ने अपना वक्तव्य जारी रखा, “मेरा कवि नाम है—आइक्-स्ला—शिवलिगा ।”

सूतपुत्र शिवलिगा ने सूर्यनाथ से पूछा, “क्यों, चौक गये न ?”

“चौकूंगा क्यों ? मेरे पड़ोस में ही निर्जलिगा साहब रहते हैं ।” सूर्यनाथ ने सप्रतिभ स्वर में कहा, “अब आप अपने आगमन का उद्देश्य बतलाएँ—आइक्-स्ला, यानी, कृपया !”

सूतपुत्र ने कनखी निगाह से सूर्यनाथ को देखा । आभारानी ठीक इसी तरह पलकों को तनिक मूँदकर देखती थी । उसने कहा, “उद्देश्य अति शुभ है । आपको एक समाचार सुनाने आया हूँ । बस……”

“आपकी माताश्री……”

सूर्यनाथ के मुँह से बात छीनते हुए सूतपुत्र ने कहा, “आपकी केलि-कुंजिका आभारानी का कोई समाचार मुझे नहीं मालूम । मेरे पास मेरी जन्मदायिनी की एक मोटी डायरी है—1955-56 की……होली फैमिली हॉस्पिटल की ‘मदर’ ने सहेजकर रख दी थी……समझे ?”

“समझा—आइक्-स्ला । अब समाचार सुनाइये ।” सूर्यनाथ के स्वर में दृढ़ता लौट आयी थी ।

“समाचार सुनाने के पहले मैं यह देख लेना चाहता हूँ कि आपका मानसिक धरातल उस समाचार को ग्रहण करने योग्य है अथवा नहीं । देखिये, मैंने आपका लिटरेचर नहीं पढ़ा । इसलिए नहीं जानता कि आप किस कोटि के प्राणी हैं । किंतु, यह मुझे मालूम है, आपकी पूरी पीढ़ी इल्लिटरेट और हाफलिटरेट है……सबसे पहले आपका कौतूहल मिटा दूँ । है न ? तो होली फैमिली हॉस्पिटल से यतीमखाना, वहाँ से टांटी मरिया, कलकत्ता, जबलपुर, इलाहाबाद आदि जगहों में मेरा बचपन बीता और जबानी आयी । पढ़ाई-लिखाई जो हुई, बुरी नहीं हुई । कवि, कथाकार, नाटककार और चित्रकार हूँ । लेकिन, वे आपकी बुद्धि के बाहर की बातें हैं । आइक्-स्ला—मैं अभी धनवाद में हूँ और भजे में हूँ और सानंद अपना इस्तेमाल होने दे रहा हूँ……आपका बाथरूम किधर है ?”

सूतपुत्र लंबोटेरी में बंद हुआ । सूर्यनाथ को सहज और सबल होने का अवसर मिला । उसने लक्ष्य किया है, सूतपुत्र अब ‘आइक्-स्ला’ का व्यवहार क्रमशः कम करता जा रहा है ।

सूर्यनाथ ने समझ लिया—यह लड़का एक ‘वस्तु’ है, यानी चालू भाषा में

जिसको 'माल' कहते हैं, उसके बाल, पोशाक, स्वास्थ्य सब-कुछ 'बीट' और द्विपियों से विपरीत हैं। लेकिन तेवर वही है। सूर्यनाथ को हँसी आयी—आते ही तड़ातड़ चाबुक लगाये जा रहा है पट्ठा। होना ही चाहिए—नेच्युरली...

स्नानागार से बाहर निकलकर उसने कहा, "बाथरूम में जिन मासिक पत्रिकाओं का पारायण करते हैं, उसके संपादकों को लिख दीजिये, कुछ 'रेचक-साहित्य' भी प्रकाशित करें।" और एक बात ! आपने देश-विदेश के इतने बिगब गस—आइक्-स्ला—सोकाल्ड वी० आ० पी० न, ज के साथ इतनी सारी तस्वीरें छपवाकर लटका रखी है चारों ओर। लेकिन... न्हाय नाँट ए न्यूड ? मैं कहूँ, आप अपनी एक नंगी—एकदम मादरजाद—खिचवाकर टाँग दें और उसके नीचे लिख दें—'विद माइसेल्फ !' क्यों, ठीक रहेगा न ?"

सूर्यनाथ समझ गया था—स्नानागार के बाहर निकलकर, बैठकखाने में पहुँचकर इस तरह असभ्यतापूर्वक पैट के बटन लगाते हुए—यह ऐसी ही बातें करेगा। अतः वह मंद-मंद मुस्कराता रहा।

तब उसने सूर्यनाथ को अप्रतिभ करने के लिए अपना सवाल छोड़ा—

"...अच्छा, अब यह बताइये कि आपका संबंध अपनी स्वीटी सोपटी साली आभारानी से कैसा और कहाँ—आइक्-स्ला..."

"आप जो समाचार देने आये है, पहले वह दे दीजिये। आप मेरा 'इंटरव्यू' तो नहीं लेने आये। फिर कोई सवाल-जवाब कैसा ?" सूर्यनाथ अब पालथी मारकर कुर्सी पर बैठ गया।

"आइक्-स्ला—मैंने पहले ही कह दिया है कि मैं यह जान लेना चाहता हूँ..."

"आइक्-स्ला—मैं पहले—आइक्-स्ला—आपका—आइक्-स्ला—समाचार सब लेना चाहता हूँ—तइक्-स्ला। बस।" सूर्यनाथ ने गभीरतापूर्वक कहा।

सूतपुत्र हँसा। सूर्यनाथ ने लक्ष्य किया, हँसी में तनिक कपड़ों की दूकान की छाया झलकती है।

"अच्छा ? आपके बाल तो कुदरती काले हैं ! मैंने ममझा था कि आप 'डाय' करते हैं। क्योंकि मेरी माँ की डायरी में आपके बालों की खूब तारीफ लिखी हुई है। अब तक इतने काले हैं ? और आपकी दंत पंक्तियाँ नकली सेट्म की नहीं। तब तो अभी एक दशक और प्रेम-कहानियों का व्यापार चला सकते हैं आप। पचास की उम्र में ऐसे घने काले बाल और हड्डियों के ज्वायंट्स को कड़कड़ाकर तोड़नेवासी दंत पंक्तियाँ... आइस्... मतलब, इसका योगा से कोई ताल्लुक है क्या ? आप कोई हब इस्तेमाल करते हैं ?"

सूर्यनाथ के जी में आया कि हम छोकरे का वह नुस्खा दे दे—चपरकनाती। नीला थोथा दही में घोलकर—किंतु उसने जवाब दिया, "यह ट्रेड सीक्रेट

मेरा ।”

ठठाकर हँस पड़ा सूतपुत्र । सूर्यनाथ ने पहचान लिया है, यह अपने को ‘फायरईटर’—अग्निखोर समझता है, ‘सेल्फ पोज्ड लोनली रिबेल’ का एक नकली नमूना । उसे एक और लेखक याद आया जो कहा करता था—‘आई एम बॉन बिफोर माई टाइम’...

“आप करने क्या है ? यानी रोटी कौन देता है ?” सूर्यनाथ ने साधिकार पूछा ।

“जो मेरा इस्तेमाल करता है ।”

“ट्रेड यूनियन के सदस्य है आप ?”

“मैं आवांगार्द हूँ । आपने अतर्कवाद का नाम सुना है ?”

“अतर्कवाद या कुतर्कवाद ?”

“आपको समझाने के लिए कुतर्क आवश्यक है । मैं पूछता हूँ कि आप विलियम ब्लैंक, ज्याँ कोक्तो, ज्याँ जेने को जानते है ? ‘मेटामॉर्फसिस’ का लेखक कौन है, और हेनरी मिलर...”

“मुझे यह सब जानने की जरूरत कभी नहीं हुई । मैं सिर्फ यह जानना चाहता हूँ कि तू करता क्या है ?”

“देखिये, यह ‘तू-आ-तू’ मेरे साथ नहीं चलेगा । आइक्-स्ला...”

“आइक्-स्ला !”

“मतलब ?”

“आपने कहा था न, इसका कोई मतलब हो सकता है । कृपया बताइये कि आप...”

“मैंने कवि-कर्म छोड़कर फिलहाल अपनी रोटी के लिए कॉमेडियन का काम शुरू किया है । धनबाद, झरिया, जमशेदपुर और कलकत्ते के कई गुप्त क्लब और डिसकोथेक्स में अपना शो दे चुका हूँ...”

“सीधे कह न कि गड़ैती करता हूँ ।” सूर्यनाथ ने ठेठ बिहारी बाबू के लहजे में कहा ।

“नही, भड़ंती नहीं । यह एकदम नयी विधा है, जिसका नाम आपके ग्रेट ग्रेंडफादर ने भी नहीं सुना होगा... मैं गालियाँ देता हूँ । फूहड़, भदी और अश्लील अश्रव्य गालियाँ ।”

“वह जो ‘साई’ सजकर साँझ-सबेरे मुरादपुर की गलियों में घूमता-फिरता है—एक पैसा लूंगा, पाँच गालियाँ दूंगा । चुन-चुन के गालियाँ दूंगा, बाप-दादे को गालियाँ दूंगा...”

सूतपुत्र ने कहा, “इस कॉमेडियनवाले कारबार में मेरा ट्रेड नेम है—डोगलास । अर्थात् अब मैं डोगलास की परिभाषा में आपसे बातें करूँगा । फिलहाल, गालियाँ

और अपशब्द भोजपुरी से अंग्रेजी में अनुवाद करके व्यवहार करता हूँ। लेकिन, ऐसे घरेलू माहौल में शुद्ध मगही या मैथिली में भी....”

सूर्यनाथ ने एक बार सोचा, अब इसको बाइज्जत पलैट से बाहर कर दिया जाये; किंतु कुछ सोचकर थोड़ी देर और उसे सहन करने का निश्चय किया... कुछ भी हो, उस ‘शोध-छात्र’ से तो अच्छा है जो कई दिन पहले, अपने मौलिक विषय ‘हिंदी साहित्य में रामघराना’—के माल-मसाले के लिए आया था। छात्रराम ने अनुसंधान नहीं, अनुनय किया था, ‘सर ! ऐसे साहित्यिक, जिनके नाम के शुरू, मध्य या अंत में ‘राम’ जुड़ा हो उनके व्यक्तित्व पर ‘राम’ का प्रभाव प्रमाणित करते हुए...’ जो, बचपन में आपको किसी ने, कभी-न-कभी, राम सूरजनाथ जरूर कहा होगा। इस आधार पर यदि आपको भी ‘रामघराना’ में युक्त कर लूँ तो आपको कोई आपत्ति ?’

सूर्यनाथ ने शांत चित्त से कहा, “आप अभूतपूर्व काम कर रहे हैं। गालियाँ देकर लोगों को हँसाते हैं। लोग प्रसन्न होकर आपको पैसे देते हैं।”

“ऐसी-वैसी हँसी नहीं। एकदम रेक्टम रव्चरिंग लाफ ! समझे ?” डोगलास ने कहा।

“हमारे जिले में एक राजा साहब अपने दरबार में एक ‘बुड़िराज’ अर्थात् ‘मूरखराज’ रखते थे....”

“आइक्-स्ला—योर राजा साहब ! आप सामंती युग की बातें करने लगे, फिर ? मैं अकस्मात् आघात करके वस्तुस्थिति से अवगत कराने में विश्वास करता हूँ।” डोगलास बोला।

“डोगलाससाहब ! मैं नहीं जानता कि आप क्या शो-देते हैं, लेकिन आज से तीस साल पहले उस बुड़िराज के जो तमाशे मैंने देखे हैं, मेरा खयाल है कि उसमें से एक का वर्णन गुनकर समझेगे। आप इसको अपने काम में भी इस्तेमाल कर सकते हैं।”

डोगलास राजी हुआ। सूर्यनाथ ने शुरू किया, “राजा के मेले में बड़े-बड़े नामी पहलवानों की कुश्ती होती थी। एक बार, एक चैंपियन पहलवान सभी को पछाड़कर, गर्व से छाती फुलाकर दुलकी चाल में अखाड़े में चक्कर लगा रहा था ‘यानी—‘है कोई माई का लाल जो आ जाए मैदान में !’ बुड़िराज ताब खा गया और कूदकर अखाड़े में उतर पड़ा। अपने सारे कपड़े फेंककर ‘आ-जा-आ-आ-’ कहकर उस चैंपियन पर टूटा, ताल ठोंकता हुआ। जनता एक साथ ठठाकर हँस पड़ी। चैंपियन पहलवान कुछ क्षण तक भौंचक्क होकर देखता रहा। फिर, दृष्टान्तिक भाग। एक विशालकाय आदमी को, एक नंग-धड़ंग पिद्दी जैसे आदमी के डर से उम्र तरह भागते देखकर सारी जनता हँसते-हँसते बेदम हो गयी।”

डोगलास को यह कहानी अच्छी लगी, "मैं इस पर 'बक' करके इमको रिफाइन करके इस्तेमाल करूँगा...मैंने हाल में अपना एक स्किट प्रस्तुत किया है, एक व्यक्ति लघुशंका के लिए दोपहर, रात को होटल के कमरे में, किस तरह वाश बेसिन में..."

सूर्यनाथ ऐसा अवसर हाथ से जाने नहीं देगा। बस, यही है—ब्रेकिंग प्वाइंट। मुस्कराकर उसने डोगलासाहब को काटा, "अरे ! वह पादरी वाला प्रहमन... यह तो, अमेरिकन कमिडियन लेनी ब्रूस की कृति है। आज से दस-ग्यारह साल पहले ही उसने इमका अभिनय करके प्रचुर ख्याति प्राप्त कर ली है। आप कहते हैं कि..."

लेनी ब्रूस का नाम सुनते ही डोगलास का चेहरा अचानक बुझ गया, "आप लेनी ब्रूस को जानते हैं ? आइक्-स्ला—आप लेनी ब्रूस के बारे में कैसे जान गये ?"

"जानता ही नहीं, 1964 में उसकी रिहाई के लिए अपील पर मैंने भी हस्ताक्षर किये थे। आज तक मेरे कई पॉलिटिकल मित्र उन्हीं हस्ताक्षरों के कारण मुझे गालियाँ दे रहे हैं और बदनाम कर रहे हैं कि मैं --आइक्-स्ला—लेकिन अब तो लेनी स्वर्ग में देवताओं और देवियों को गालियाँ देकर प्रसन्न कर रहा है। अतः अब आप अपने को इस 'त्रिधा' का भारतीय आवांगार्द घोषित कर सकते हैं।" सूर्यनाथ ने घड़ी देखी।

डोगलास साहब के मृतपुत्र सिर से उतर गये। मृतपुत्र तुतलाने लगा, "अब मैं काम की बात कहूँ...मेरे पास मेरी माँ की डायरी है। डायरी के मुताबिक आप ही मेरे जनक हैं और मैं आपकी ही प्रजा..."

"असंभव।"

"असंभव नहीं। यह आपका ही क्रोमोजोम है जो...आप घबराइए मत। मैं आपकी संपत्ति पर दावा नहीं करूँगा।"

"डायरी आपके पास है, यहाँ ?"

मृतपुत्र अपने बैग से डायरी निकालकर पृष्ठ पलटने लगा। बोला, "बंगला तो आप अच्छी तरह लिख-पढ़ लेते हैं। पढ़कर देख लीजिये।"

सूर्यनाथ ने देखा, लिखावट आभारानी की ही है। लिखा है, 'आज के सूर्योदय आमार संगे जा कोरलेन, आमार जीवने आर केउ नरे नि...' (आज सूर्योदय ने मेरे साथ जो कुछ किया, जीवन में और किसी ने नहीं किया।)

मृतपुत्र का चेहरा पुनः दमकने लगा। सूर्यनाथ ने पूछा, "दिन 'कल' के आसपास यह डायरी गौरी, दामे गणक 'डिट लर्न'... 'मैं खोना'... 'डिया होना'..."

"लिफ्टाई...नेट्स टेक्स्ट...क्याही पढ़ी नै लगे हूँ।"

"कितने ही ऐसे लड़कों की तात्त्विक शिक्षा ही यही है।"

“आप ऐसे ज्वलंत प्रमाण को झुठला नहीं सकते, पिताजी महाराज !”

सूर्यनाथ ने उसके सुर में सुर मिलाकर कहा, “सूतपुत्र सरकार ! आप मानें या न मानें, ठीके से । मैं जानता हूँ कि यह सच नहीं । असल में... बाबजूद आकर्षण के, आभारानी के साथ मेरा संबंध हुआ ही नहीं । कामातुरा सुंदरी के साथ एकांत के उस क्षण में मैं मदनोन्मत्त अवश्य हुआ था । किंतु... किंतु... उस लावण्यमयी-लास्यमयी रमणी के मुंह में ऐसी उत्कट दुर्गंध थी कि मैं अचानक विरक्त हो गया...”

“दुर्गंध ?”

“जी । बदबू ! उतना सुंदर सलोना मुखड़ा । वंसी मुरीली आवाज और मधुर कीर्तन—और वैसे मुंह में सड़ी हुई गंध ! ओह ! आज भी याद करके बोमिट हो जाता है ।”

सूतपुत्र के मुंह से एक हल्की-सी चीख निकल पड़ी । वह थर-थर कांपने लगा । उसकी आंखें डबडबा आयीं । वह कुछ नहीं बोल सका...

सूर्यनाथ ने अब समझा, इस छोकरे को इतनी देर तक सहन करने का एक कारण यह भी है कि कभी-कभी इसके चेहरे पर आभा के मुखड़े की मासूमियत झलक जाती है । उसने शांत स्वर में कहा, “किंतु आप असंस्कृति और अपरंपरा के इतने कट्टर हिमायती होकर अपने पिता को क्यों खोज रहे हैं ?”

“आइक्-स्ला—खोज नहीं रहा । पिछले आठ-नौ साल से मेरी यह धारणा दृढ़ हो गयी थी कि मेरा पिता एक प्रसिद्ध साहित्यकार है । मेरी रगों में दौड़ने-वाले लहू का संबंध एक महान् कलाकार से है—अपने-पिता को अपना दुश्मन मानकर मुझे अपार बल मिलता था, इसी के सहारे मेरा सब-कुछ—मेरी प्रेरणाओं का मूल स्रोत ही अचानक सूख गया...”

वह फूट-फूटकर खोये हुए बालक की तरह रो पड़ा । सूर्यनाथ सोचने लगा—कबच-कुडलहीन ‘कर्ण’ भी क्या इसी तरह रोया था ?... उसके जी में आया—आभारानी के रोते हुए बेटे के बालों पर हाथ फेरकर चुप कराये । किंतु सहानुभूति, दया, करुणा और किसी प्रकार की कृपा की गंध लगते ही यह लड़का तुरंत गुस्से में गालियाँ बकने लगेगा । वायलेट भी हो सकता है । उसने कहा, “अब आप जाइये अग्निखोरजी ! मुझे अब एकदम एकांत की जरूरत है ।”

सूतपुत्र तुरंत उठकर खड़ा हो गया, “हाँ-हूँ । आई एम ए फायरईटर... अग्निखोर ! ठीक है, एक यह नाम भी रहा । आइक्-स्ला—”

भित्तिचित्र की मयूरी

फुलपतिया की माँ हाथी के सूँड़ में काला रंग भरकर सींकी से मयूरी के पंख उकेरने में तन्मय थी। अचानक, बिजली-सी कौंधी। उसने उलटकर देखा तो एक हाकिम जैसा जवान आदमी छोटा पनबट्टा जैसा काला डिब्बा में आँखें सटाकर खड़ा था। वह धबराकर अपने अस्तव्यस्त कपड़े सँभालने लगी। फिर बिजली चमकी। तब वह डर गयी। उसके मुँह से अस्फुट स्वर में निकला, “हज़ूर !”

लेकिन, उस आदमी ने फुर्ती से झुककर फुलपतिया की माँ के पैर छू लिए, “माताजी, मैं हज़ूर नहीं, कोई। आपका बेटा हूँ।”

फुलपतिया की माँ की हालत अब और खराब हो गयी। वह थर-थर काँपने लगी। बहुत चेष्टा करने के बाद उसके मुँह से किमी तरह एक पुकार निकली, “फुलपत्ती रे !”

तब तक गाँव के करीब डेढ़ दर्जन बच्चे घटनास्थल पर पहुँच गए थे। फुलपत्ती अपने आँगन में अरवा चावल सिलौटे पर रखकर पीम रही थी। एक आठ-दस साल के लड़के ने दौड़कर उसको सूचना दी, “फुलपतिया देया...अरी, फुलपतिया दीदी ! तू यहाँ बैठी चावल पीस रही है, वहाँ दरवाजे पर मौसी को ‘निसपिट्टर साहेब’ ने रैस्ट कर लिया है...”

“ऐं ? कौन निसपिट्टर रे, नहरवाला ?”

“मालूम नहीं, ‘नहर’ वाला है या ‘करज’ वाला। चलकर देख ना ! बही सुनो, मौसी बुला रही है।”

“फुलपत्ती रे-ए-ए-ए !”

माँ की पुकार सुनकर फुलपतिया बिना हाथ धोए ही दरवाजे की ओर दौड़ी। दरवाजे पर पहुँचकर उसने देखा, ‘निसपिट्टर’ मौसी के पास घुटने मोड़कर बैठा है और कह रहा है, “माताजी, आप अपना काम खत्म कर लीजिए, तब मैं अपने काम की बात करूँ !”

फुलपतिया पर अचानक ‘भगवती धान’ की कोई देवी सवार हो गयी, मानो।

उमकी माँ के पास एक घूर जमीन नहीं। न अपनी, न बटैयादारी की। लेकिन, नहर के हाकिम ने पानी का खजाना 'लगान' करके चपरासी के मार्फत 'लोडिस' भेज दिया है कि पंद्रह दिनों के अंदर खजाना नहीं चुकाने से माल-मवेशी 'कुरक' हो जाएगा। इसी को कहते हैं, पानी में आग लगाना। वह बरस पड़ी, "देखिए, हाकिम साहेब, रैस्ट करना है, हमको करिए। जेहल ले चलना है, हमको ले चलिए। अपनी माँ का इस बुढ़ीती में हथकड़ी नहीं लगने दूंगी—इसके चलते चाहे जो हो जाए...."

तब तक गाँव के 'मर्द-पुरुष' लोग भी खबर पाकर, खेत-खलिहान और बगीचे-बागान से दौड़े आए। 18 वर्ष की लड़की फुलपतिया अपनी माँ को अगोरकर बैठी जोर-जोर से चिल्ला रही थी, "चाहे जान चली जाए, लहाश निकल जाए...."

गाँव का मशहूर 'पुच-पुच' कर हमेशा बेमतलब हँसने वाला 'हँसनाह-मर्द' तोफालाल साह सबसे पहले दौड़ा आया था और हाकिम को सलाम करने के बाद मंद-मंद मुस्कराता कुछ बोलने का मौका खोज रहा था। गाँव के किसी के सिर कोई आफत आयी हो, किसी घर में कोई बुरी घटना घटी हो, बाप-बेटे में झगड़ा होता रहे अथवा कोई अपनी औरत को पीट रहा हो—सबसे पहले तोफालाल ही हँसता हुआ घटनास्थल पर पहुँचता है। लोगों को दुःख में देखकर अद्भुत आनंद आता है उसको। लेकिन, किसी का कोई शुभ समाचार सुनकर वह कभी कहीं नहीं जाता। और, फुलपतिया की माँ की गिरपतारी की खबर सुनकर उसको अपने हिसाब से वाजिब और हादिक प्रसन्नता हुई थी। अपनी भतीजी की शादी में उसने कितनी खुशामद की थी, फुलपतिया की माँ की, 'भोजी, तुम चलकर 'मंडवा की भित' पर सिर्फ 'लिखनी' खींच दो—रंग भरने का काम फुलपतिया फुसंत में जाकर कर देगी।' -

मगर वह जरा भी टप-से-मस नहीं हुई थी। बहाना बनाकर बोली थी, 'कमर में बहुत दर्द है।' इस पर फुलपतिया 'कूट' करती हुई बोली थी, 'जाओ न, तोफा काका शहर से 'डागडर' मँगाकर-इलाज करा देंगे।' इतने दिनों के बाद तोफालाल को फुलपतिया की माँ और फुलपतिया पर हँसने का अवसर मिला है। उसने हँसते हुए फुलपतिया से कहा, "अरी, इतनी बड़ी 'बारी कुमारी' होकर तुम काहे जेहल जाओगी? अभी माँ को ही जाने दो। जेहल जाएगी तो मुफ्त में ही सरकारी डॉक्टर से इलाज कराने...."

फुलपतिया ने घुड़की देकर बीच में ही उसकी बोली बंद कर दी, "तुम क्यों आ टपके बीच में? हूँ! 'हँसनाह-मर्द' और 'पदनाह-घोड़ा'। भाबो यहाँ से।"

तब तक गाँव के 'सरपंच' ताहा मियाँ भी पहुँच गए थे। आते ही, ताहा मियाँ ने 'सरकारी आदमी' के लहजे में फुलपतिया को डाँटा, "तेरा माया खराब हो

गया है क्या ? चुप क्यों नहीं रहती !”

फुलपतिया आज किमी को नहीं छोड़ेगी, चाहे मुखिया हो या सरपंच । उसने ताहा मियाँ की बात को काटकर दो टूक करते हुए कहा, “आज हमसे जो भी लगेगा, उसको नहीं छोड़ेंगे, सरपंच हो चाहे खड़पंच...”

बच्चों की टोली इस उक्ति पर ठठाकर हँस पड़ी ।

तब खुद ‘हाकिम’ हाथ जोड़कर फुलपतिया के पास जाकर खड़े हुए, “सुनिए, मैं न नहर-विभाग का हाकिम हूँ और न मैं किमी को गिरफ्तार करने आया हूँ । मैं ‘कुटीर शिल्प पटना’ की ओर से...बात यह है कि...”

उनकी बात सुनकर वहाँ उपस्थित सभी जन एक साथ हँस पड़े, “घत्तेरे की ! बेकार में बिना जाने-ममझे-बूझे बात लेकर...”

लेकिन बात हँसी में उड़ नहीं गयी, बल्कि धीरे-धीरे गाँव में फैल गयी, फैलती गयी, “कुछ सुना ? समझो कि जुल्म हो गया । पटना से एक ‘जेंटलमैन बाबू’ आया है । फुलपतिया के हाथ की बनाई ‘लिखनी-पढ़नी’ देखकर कहता है, इसकी ‘छापी’ खींचकर अमेरिका या रूस या न जाने कहाँ भेजेंगे...”

“किसको ‘मिरकारूस’ भेजेगा । फुलपतिया की माँ को ?”

“कहता है, डबल बकसीस मिलेगा ।”

“मगर वह आदमी तो देखने में ठीक ‘देसवाली’ लगता है, ‘बिलैती आदमी’ की तरह ‘बिलरमुँहा नहीं ।”

“फुलपतिया तभी गरज रही थी न । अभी जाकर देखो, शहरी मेहमान के लिए कोंहड़े के फून का ‘बचका’ बना रही है—हँस-हँसकर ।”

“बहु भात ही खायेगा ? किस ‘जात’ का है ?”

“फुलपतिया की माँ का भाग फिर गया समझो ।”

“अरे भैया, बेचारी जर-जमीन और घरवाले को गँवाने के बाद से कम दुःख झेल रही है ! ‘जिनगी’ भर शुभ-लाभ और ‘परब-पावन’ के समय गाँव के लोगों की ‘श्रित’ पर ‘फूल-पत्ती’ के बीच देवी-देवता लोगों की ‘मुरती’ बनाती रही है । उसी का ‘सुफल’ है यह । भगवान् एकदम अंधा नहीं है जी !”

“अब फुलपतिया की शादी हो जाएगी । तिलक के लिए ‘टका’ ‘मिरकारूस’ से आएगा ।”

“तुम लोग भी खूब हो भाई !” ‘गुलाब-तकिया’ पर गंजी की पत्ती रखकर ‘प्रेमकटारी’ से कतरते हुए अनूपलाल ने कहा, “अभी से लगे अटकल लगाने । पहले देखो तो कि आदमी असली है या नकली । लबटोलिया गाँव के मरचू महतो का पचास रुपये ठगकर वह नकली लौट्टी का नकली एजेंट ले गया था, सो याद नहीं ? सारे इलाके में खबर फैल गयी थी, मरचू महतो ‘खाखपति’ से ‘लाखपति’ हो गया है । सिर्फ पचास रुपये का ‘इस्टाम’ खरीदकर कागज पर लगाता है, क्योंकि

गाँव में दो मरचू महतो हैं। कागज पर इस्टाम लगाकर 'आफीडिफी' करके दाखिल करते ही बैंक से एक लाख टका के 'कड़कडिया-नोट' सब निकल आएंगे तुरंत। इसके बाद जो हुआ सो मालूम ही है। वह तो धन्न कहो कि मरचू महतो पागल नहीं हो गया।"

सभी हँसते हैं। रामफल बात गढ़कर बोलना जानता है। कहता है, "मरचू को लाख टका नहीं मिला। मगर 'भोटर-लिस्ट' में नाम के साथ महतो के बाद लखपति तो दर्ज हो गया। अरे, एक ही गाँव में दो मरचू और दोनों महतो। भोटर-लिस्ट लिखनेवाला बोला—दोनों का पेसर भी एक ही है। बड़ा गड़ड़ब है। तब चौकीदार ने कहा—एक मरचू महतो को गाँव में लोग दिल्लगी में 'लाखपति' कहते हैं। बस, कागज में वही दर्ज कर दिया लिखनेवाले मोहरिल ने।"

नागेशरदास गाँव में सबसे बड़ा झूठ बोलनेवाला समझा जाता है। लेकिन उसकी बात को लोग चाव से सुनते हैं। वह बोला, "और मरचू महतो को लौटरी ने एक और 'भितरिया-खेला' लगाया या सो किसी को है मालूम? जोखन चौधरी को जब मालूम हुआ कि मरचू का नाम लौटरी के 'टिक्स' में निकल आया है तो उसने तुरंत जोख-तौलकर एक तरीका निकाला। मरचू से जाकर बोला कि अगर पाँच हजार खर्च करने का वादा करो तो तुम्हारा 'चुमोना' तक 'तड़-तड़-जवान' बेबा से करवा दे सकता हूँ—तुरंत। मरचू महतो तैयार हो गया तो जोखन बोला—सादा कागज बना दो। मरचू को लौटरी तो मिला नहीं, जोखन ने उसी सादे कागज पर किए अँगूठा के निशान के बल पर उसकी दोनों भँस..."

"भैया, हमको तो 'परतीत' नहीं होता है कि यह आदमी अमली है। जरूर कोई 'शीआयडी' है। नहीं तो, शहर में फोटू, छापी और तस्वीर की कोई कमी है? एक से एक देवी-देवता के 'कलैंडर' छोटी से छोटी पान की दूकान पर लटकते रहते हैं। तब, शहर का आदमी गाँव में आकर—देहानी तस्वीर पर 'लट्ठू' हो जाए—यह भी परतीत करने का बिल बात है, भवा?" एक सदा बीमार ग्रामीण अघड़े ने कहा।

गाँव के हर टोले और घर में दिनभर फुलपतिया की माँ और फुलपतिया की चर्चा होती रही। उधर, इतनी ही देर में वह जेंटलमैन 'फुलपतिया और उसकी माँ से इस तरह दूध-मिथी की तरह घुल-मिल गया मानो सचमुच अपना 'सर्वांग' हो।

शाम की गाड़ी से लौटने के पहले उसने फुलपतिया की माँ से कहा, "अगले सप्ताह ही आप लोगों को चिट्ठी लिखकर सब खबर भेज दूँगा।"

फुलपतिया की माँ ने पूछा, "बबुआ, तुमने सब-कुछ तो बतलाया, मगर अपना नाम ही बतलाना भूल गए।"

उमने हँसकर कहा, "मेरा नाम मनातनप्रसाद है, माताजी।"

फुलपतिया लजाती हुई बोली, "अनजाने में, गुस्मा के झोक में न जाने क्या-क्या निकल गया। उसको मन में नहीं रखिएगा।"

सनातन ने गंभीर होने की मुद्रा बनायी और शरारत-भरी निगाह में देखने हुए कहा, "उन्हें, मन में ही रखेंगे। आपने क्या कहा था, याद है—हमको 'रैस्ट' करिए।"

फुलपतिया का चेहरा लाज के मारे 'लाल-टेमू' हो गया। वह भागकर आँगन में चली गयी।

इसी को कहते हैं, 'भगवान् छप्पर फाड़कर भी देता है।'

फुलपत्ती की माँ के छप्पर पर आज छाजन के फूम भी नहीं। अठारह-उन्नीस साल पहले फुलपत्ती के बाबूजी मुकदमाबाजी में जगह-जमीन सब झोंककर आखिर भी झोक में आकर चले गए। हार के शोक में, कुछ खाकर सो रहे। तब से फुलपत्ती की माँ गाँव-घर के किमानों के घर में कूट-पीसकर गोदी की इकलौती संतान को पालती रही। हाथ में एक गुण था—जिमके कारण थोड़ी पूछ और प्रतिष्ठा होती थी। अब वह भी नहीं। अब, शादी-ब्याह, पर्व-त्यौहार के अवसरों पर 'भित्त' पर कागज में छपे देवी-देवताओं की तसवीरों के अलावा बाइस्कोप की तसवीरें लटकायी जाती हैं। लेकिन, कल जब डाकपियून आकर फुलपत्ती की माँ के नाम ढाई सौ रुपये का मनीऑर्डर दे गया, तब से गाँव के लोगों ने स्वीकार कर लिया—पुराने जमाने की सभी चीजें फालतू नहीं। गाँव में तुरंत बात फैल गयी—पटना में आया हुआ वह आदमी 'नकली' नहीं, 'असली' था।

आठ-दस दिनों के बाद सनातन प्रमाद फिर आया। गाँव में इन दिनों फुलपत्ती की माँ के भाग फिरने की बात को छोड़कर और कोई बात नहीं होनी। उसके आँगन में औरतों की भीड़ जमा रहती है, सदा। दरवाजे पर मुखिया और मरपंच आकर 'कुशल-खेम' पूछ जाते हैं।

और एक दिन अचानक लोगों ने सुना—'फुलपत्ती' की माँ, अपने को संग में लेकर—पटना नहीं 'डिल्ली' गयी है। सनातन ही ले गया है। डिल्ली में एक ही 'भित्त' पर 'लिखाई' करने की मजदूरी एक हजार।

"मजदूरी नहीं, बकमीस कहो।"

"और, फुलपत्ती? वह नहीं गयी साथ?"

"नहीं। उसकी मास्टरनी मामी आयी है। दस-पंद्रह दिन रहेगी। छुट्टी लेकर आयी है।"

"अब देखना, मामा-मामी, मौमा-मौमी, फूफा-फूफी के अलावा ममेरे-फुफेरे, अपने-पराये सब जुटेगे आकर—जो कभी झोंककर भी नहीं देखने आते थे।"

कई दिन के बाद स्टेशन-बाजार का बदरी भगत हाथ में एक अखबार लेकर आया, जिम पर फुलपत्ती की माँ की तसवीर छपी है। 'बड़े लाट' साहब के हाथ

से बकसीम से रही है फुलपत्ती की माँ !

बदरी भगत स्टेशन-बाजार पर रहता है। बनिया है मगर आटे-दास के भाब के अलावा दुनिया-भर की खबर याद रखता है। खूब अखबार पढ़ता है। वह कहता है, “चाची जिस दिन लौटेगी, हम लोग धूम-धड़ाके के साथ स्टेशन पर उसका स्वागत करेंगे। घाम-फूम का ‘गेट’ बनाकर उस पर मिट्टी की लिपाई-पोताई करके—फुलपत्ती के हाथ से निखाई करवाई जाएगी...’ अरी, फूलो दीदी, माँ की ‘ईलम’ जो मिली है उसको मन लगाकर साधोगी तो एक दिन तुमको भी सरकारी ‘प्राइज’ मिलेगा।’ अपने गाँव का नाम औल इंडिया में क्या, इंडिया से भी बाहर चला गया समझो। अखबार में लिखा है कि श्रीमती पनिया उर्फ पन्नादेवी अपनी बनाई हुई तसवीरों पर टेढ़ी-मेढ़ी देवनागरी में अपने नाम के साथ, अपने गाँव और जिला का नाम लिखना नहीं भूलतीं। अब बतलाओ, गाँव का नाम बढ़ाया या नहीं?”

“ठीक बात !”

गाँव के नौजवानों ने एक स्वर से नारा लगा दिया, “बोलिए, एक बार प्रेम से—पन्नादेवी जी की जै...जै...”

औरतों की बैठकी में बैठी फुलपत्ती की मामी हमेशा ‘कचहरी’ बोली में बोलती रहती है—‘जाती हूँ, खाती हूँ, पीती हूँ’ मुनकर गाँव की औरतें घूँघट की ओट में कभी-कभी हँसती भी हैं।

“हाँ, फुलपत्ती के हाथ में रकम आठ आना गुण आ गया है !”

“आएगा नहीं ? इसके चलते दीदी के हाथ की मार क्या कम खाई है फुलपत्तिया ने ?” फुलपत्ती की मामी कहती है।

फुलपत्ती की मामी अपने गाँव—पोठिया के कन्या पाठशाला में पढ़ाती है। हमेशा पान खाती रहती है और किमी बाहरी ‘मरद-पुरुष’ से बात करने में जरा भी नहीं ‘धखाती’ है। बदरी भगत उसकी मजलिस में आया तो उसने कपड़ा सरकाकर सिर भी नहीं ढँका। बोली, “बाकी सब काम तो फुलपत्ती ही करती थी, पिठार के चावल को खूब महीन करके सिलबट्टे पर पीसना। पिठार को दूध में धोलना। थोड़ी देर के बाद, ठीक समय पर जंगली पेड़—‘मेशाकाठ’ की कोमल पत्तियों को उसमें डालकर मथते रहना, सींकी की काठियों में कपड़े और छोटे-छोटे लत्ते लपेटकर—अलग-अलग रंग के लिए तैयार करना; रंग धोलना—सब काम तो फुलपत्ती बचपन से ही करती आयी है।’ और, कहीं जो पिठार जरा-सा मोटा हुआ, काठी के लत्ते डीले पड़े या रंग गाढ़ा, पतला हुआ थोड़ा भी कि सोंटा पकड़कर दे धुमक्का दे धुमक्का।”

बदरी भगत ने कहा, “मामी, अपने घर पर रखकर फुलपत्ती को ‘दो अच्छर’ आगे और पढ़ा देती तो...”

मामी बोली, “भैया, हम क्या करें? लोअर तक पढ़ाकर रामायण बाँचना सिखाकर, अपर में पढ़ाना चाहती थी। मगर, उसकी माँ की जिद—अब आगे नहीं पढ़ाना है। और, दीदी की वह इकलौती बेटो ठहरी। हम क्या करें?”

“अब एक बड़िया घर-वर देखकर हाथ पीले करवा दो मामी। तिलक-दहेज भी थोड़ा देना पड़े तो....”

मामी बदरी भगत का दिया हुआ जर्दा मुँह में डालती हुई बोली, “बड़िया घर-वर मिलने-मिलाने की बात तो बदरी बाबू, बस भगवान् के हाथ है। तब, यह बात ठीक है कि अब सुगम हो जाएगा। जानते ही हो, इसका तो गाना भी बन गया है सिनेमा में—‘पैसा फेंको, तमाशा देखो’....”

नागसरदास ने फिर एक किस्सा लोगों को सुनाना शुरू किया है, “जानते हो, जोखन ने यहाँ भी तोल-जोखकर मोल-तोल किया है। फूलपत्ती की माँ अगर पाँच हजार पेशगी दे तो एक दुलहा उसके—समझिए कि पाकिट में है। मगर फूलपत्ती की मामी ने उसकी चानाकी नहीं चलने दी।”

फूलपत्ती की माँ लौट आयी है।

साथ में तीन बैलगाड़ियों पर सिर्फ इनाम में मिले हुए असबाब सड़ के आये हैं।

स्टेशन पर खूब धूमधाम और जयजयकार करके स्वागत हुआ। सचमुच, देखने के काबिल गेट बनाया था स्टेशन वालों ने। फूलपत्ती के हाथ में आठ आना ही नहीं, बारह आना गुण आ गया है। सनातन भी साथ में आया है। गाड़ी से उतरकर उसकी नजर सबसे पहले गेट की कारीगरी पर—चौकठ, कलस और फूल-पत्तियों पर पड़ी थी। बहुत देर तक वह गौर से देखता रहा था। फिर घर पहुँचकर फूलपत्ती से पूछा था, “लाल रंग की मछली किस नदी में पाई जाती है? वहाँ कलस के आसपाम, आपकी आँकी हुई दोनों मछलियों के रंग लाल देखने के बाद से ही यह सवाल मेरे मन में छलमला रहा है।”

फूलपत्ती ने कहा, “क्यों? हमारी इस गँवई नदी चंद्रभागा में जेठ-आसाढ़ में पहली वर्षा के बाद जाकर देखिएगा—कभी-कभी नदी की धारा लाल हो जाती है—हजारों-साखों मछलियों के जोरे.... वे क्या पटना की ओर किसी नदी में कभी नहीं जाती?”

“कैसे जाएंगी! उधर चंद्रभागा या कोसी की कोई धारा गयी ही नहीं।”

फूलपत्ती के मामा नरोत्तम बाबू को लोग एक मिनट की भी छुट्टी नहीं देते, “दिल्ली का किस्सा और सुनाइए थोड़ा!”

फूलपत्ती की मामी आकर कहती है, “भैया, भले आदमी को अब थोड़ी

घर-गृहस्थी की भी बात करने दो !”

फुलपत्ती की मामी ने अपने पति को आँगन के एकान्त घर में बुलाकर धीरे से कहा, “यह सनातन क्या कहता है ! जानते हो ?”

“जानता हूँ, जो कहता है, ठीक ही कहता है। यहाँ धरा ही क्या है ? चार झोपड़े और एक दादा आदम के जमाने के पुनाना चौबारा-चौखड़ा के मोह में क्यों पड़ी रहेगी दीदी ? जब भगवान् ने आँख खोलकर हेरा है तो शहर में क्यों नहीं रहेगी दीदी ? पाँच मी में नौ सौ तक माहवारी और रहने के लिए ‘लोहिया-नगर’ की वैसी कोठी !” ठीक ही कहता है सनातन !” फुलपत्ती के मामा ने कहा।

“सनातन है किम बिरादरी का ?”

“बिरादरी को कौन पूछना है आजकल। पूछा कि आदमी क्या है, हैसियत क्या है। एक बड़े आदमी का बेटा है। बाप अच्छी संपत्ति छोड़कर मरा है। बाप की वनाई कांठी है, मोंटरगाडी है। साल में दम-बारह हजार रुपये की तमबीरे ही खरीदता है। पटना में लिखने-पढ़ने, नाचने-गाने और आँकनेवालों के बीच खूब ‘बोलबाला’ है। कला-अकादमी पटना का सेक्रेटरी है। और क्या चाहिए ?”

“दीदी तैयार... माने... दीदी क्या कहती है ?”

“तैयार क्यों नहीं होगी ? अगर नहीं तैयार हो तो उनको तैयार कराना हम लोगों का काम है।”

फुलपत्ती की माँ तो गौ है गौ। उसके मन में कोई छल-कपट नहीं। वह सब-कुछ मुन-समझकर तुरंत राजी हो गयी। मगर, यह लड़की फुलपत्ती !

फुलपत्ती एकदम राजी नहीं। जब से इस प्रस्ताव की भनक उसके कान में पड़ी है—नहाना-घाँना, खाना-पीना छोड़कर घर में पड़ी हुई है। माँ समझाकर थक गयी। मामा गये और निराश होकर लौटे। तब मामी ने कहा, “एक बार मैं भी देखूँ !”

“फुलपत्ती बेटा !”

“मामी, अब तू आयी है जलाने ? तेरा भी मन डिल्ली और पटना जाने के लिए डोल गया ? मैं कहती हूँ, अपने बाप-दादे की ‘डीह’ छोड़कर कहीं नहीं जा सकती मैं। मेरी लहानाश ही निकलेगी इस घर से... हाँ...” वह अब रोने लगी।

“भारी जिद्दी है बचपन से ही...”

सनातन मोच में पड़ा हुआ है। पिछली दो रातों में उसकी आँखों में नींद नहीं आ रही। आँख मूँदते ही उगकी लगता है—उसके अंदर कोई बैठा हुआ है जो उसे आँखें तरेरकर देखता है और पूछता है—यह क्या कर रहा है तू ?

बलात्कार ? कुमांगी को अपवित्र करेगा नू ? अपनी वामना पूगे करने के लिए कला का यह व्यापार ? हाहाहाहा... विगस्केल फोकआर्ट इंडस्ट्री ? हीहीही... इंडस्ट्री नगर में—तुम्हारी फैक्टरी में—फुलपत्ती और उसकी माँ का जिबह भोषरी छुगी से करेगा न ? मधुबनी जूनी का प्रमुख जाता, वक्ता अधिकांगी बनकर तू लोक-कल्याण वातावरण का पर्दा डालकर अपने प्राइवेट चंबर में बैठ रहेगा और फुलपत्ती, उसकी माँ ही नहीं वरन् मैकडो की तादाद में तुम्हारे 'स्लाटर-हाउस' में जिबह होती, चीखती रहेगी... ?"

आज वह फुलपत्ती से स्वयं बातें करेगा ।

उमने देखा, फुलपत्ती आज थोड़ा प्रमत्न है । वह अपने दरवाजे की 'भित' पर माँ की उकेरी हुई अधूरी मयूगी की रेखाओं में रंग भर रही है ।

सनातन ने पास जाकर कहा, "मयूर नाचना है या मयूरी ?"

"मयूरी को नाचने-नचानेवाले पंख होने ही कितने हैं, जो वह नाचेंगी ?"

"आपने मोर को नाचने देखा है कभी ?"

"इस घोर जंगली देहात के करीब हर प्राणी ने हर वर्षा के समय उसकी बोली सुनी होगी और जंगल में उसे नाचते देखा होगा । आप क्या कहना चाहते हैं—सीधे क्यों नहीं कहते ।"

"मैं कह रहा था कि आप एक बार फिर मोचकर..."

"बार-बार मोचकर क्या होगा ! जो मोचना था एक ही बार..." देखिए, सनातन बाबू, आप माँ को ले जाइए यदि वह जाना चाहती है तो ! हमसे कुछ मत कहिए ।"

"लेकिन, याद कीजिए—आपने कहा था कि 'रैस्ट' करना हो..."

"छोड़िए बेकार की बातें । नहीं तो गुस्से में मुंह से कुछ भला-बुरा निकल जायेगा तो..."

"सो तो, जिस दिन आया—उसी दिन मुन चुका हूँ ।"

"आप क्या हमको—हम लोगों को—तमबीर ही समझते हैं ?"

"क्या मतलब ?"

"आप समझते हैं कि आप सब-कुछ खरीद सकते हैं !"

"कहाँ ? मैं तो बिकना चाहता हूँ ।"

"सनातन बाबू, आप तो बहुत पढ़े-लिखे आदमी हैं । फिर भी आप समझते क्यों नहीं ?"

सनातन ने चुप होकर समझने की चेष्टा की । बोला, "ठीक है, लेकिन आप मेरे एक सवाल का जवाब दें तो बड़ी कृपा हो । आखिर वह कौन... कौन है वह सोभाग्यवान, जिसके बंधन को आप... देखिए, मुझे बड़ी खुशी होगी अगर आप..."

फुलपत्ती ने 'भित्ति' पर बने हुए सजे-सँवरे कलंगी ऊँची किये, पंख छत्राकार फैनाये, नाचते हुए मयूर की ओर दिखलाते हुए अंगुली उठाई—“वह, वहाँ... वही... नाच रहा है जो। समझे ?”

सनातन ने एक लंबी साँस लेकर कहा, “समझकर क्या होगा ! अच्छी बात। अब मेरा एक दूसरा प्रस्ताव... यानी... दूसरी प्रार्थना है...”

सनातन उसको अपना दूसरा प्रस्ताव सुनाता रहा—अति उत्साहपूर्वक और फुलपत्ती भित्तिचित्र की मयूरी के पंखों में रंग भरती रही।

सनातन को लगा—मयूरी हठात् पंख फैलाकर किलक उठी। केका ध्वनि से उसके अंदर का घनघोर 'बिजूबन' मुखरित हो उठा। आम के बाग में झूले पर बारहमासा गाती हुई लड़कियों के कंठ से निकली एक कड़ी—उसके मन के मेघाच्छादित आकाश में बहुत देर तक मँडरातो रही, 'बिजूबन कुहुक मयूष...'

गाँव में फिर एक बार जोर से एक नई खबर फैली, नहीं-नहीं ! फुलपत्ती की माँ नहीं जायेगी गाँव छोड़कर। अपने पति की डीह छोड़कर वह कहीं नहीं जायेगी। लेकिन, सनातन ने यहाँ एक 'सेंटर' खोलने का फैसला किया है। पटना और दिल्ली और कलकत्ता से चुनी हुई लड़कियाँ तीन महीने की ट्रेनिंग लेने आयेंगी, यहाँ। फुलपत्ती की माँ को घर बैठे ही समझो—पाँच सौ से हजार रुपये तक मिलेंगे और जिले और गाँव की लड़कियों को भी मुफ्त में सिखाया जायेगा... अखबार में भी यह खबर छप गयी है। बदरी भगत सबको सुना रहा है। इस बार गाँव का पूरा नाम छपा है अखबार में—“मोहनपुर के 'मधुबनी आर्ट सेंटर' के भवन के शिलान्यास के लिए देश के प्रसिद्ध चित्रकार हुसैन से अनुरोध किया गया है...”

मुननेवालों ने एक स्वर से जय-जयकार कर दिया, “मोहनपुर गाँव की जै... जै...”

(नवंबर, 1972)

